परमात्म वैभव

भाग १

परमात्मप्रकाश प्रवचन

ॐ

परमात्मने नमः

परमात्म वैभव

(भाग-1)

श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव प्रणीत श्री परमात्मप्रकाश परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1965-66 वर्ष के शब्दशः प्रवचन
प्रवचन क्रमांक 1-31, परमात्मप्रकाश
प्रथम अधिकार गाथा 1 से 48

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत 2081 | **वीर संवत 2551** | **ई. सन 2025**

—: प्रकाशन :—

शाश्वत् अष्टाह्निका पर्व (फाल्गुन)
दिनांक 07 मार्च से 14 मार्च 2025
के पावन प्रसंग पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

ॐ
सहज चिदानन्द

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। उनकी दिव्यध्वनि में प्रकाशित हुए मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास देखने में आवे तो श्री योगीन्दुदेव ई.स. की छठवीं शताब्दी में हुए। उन्होंने स्वयं की सातिशय अनुभव लेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की। आपश्री ने स्वानुभव दर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आपश्री ने स्वरूप की भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान और वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती है।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1100 के मध्य होने का माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढुंढारी में सुबोध टीका रची है। यह ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित हुआ है। आत्मा परमात्मा किस प्रकार हो, उसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन दृष्टिगोचर होता है। प्रथम अधिकार में भेदविवक्षा से आत्मा—बहिर्आत्मा, अन्तरआत्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, उसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्वप्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान शासन में अपने सबके परमतारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर

अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्राय: हुए अखण्ड मोक्षमार्ग को पुन: जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट करके प्रकाशित किया है। आपका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील बने हैं और पंचम काल के अन्त तक उनके द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से चलता रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन किये हैं। उनमें से एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के ऊपर प्रवचन ऑडियो में आज मौजूद है, वह सुनते हुए आपश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। आपश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप प्रकाशता तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपकी उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन इस वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलपना, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष लिया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार की संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों का हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वे अलौकिक हैं! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलाकर उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना या बोलना, वह सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। तथापि उनका अपार उपकार हृदयगत होने से शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से प्रस्फुटित हो उठते हैं। आपके उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से नहीं चुकाया जा सकता, मात्र आपके द्वारा प्रकाशित पंथ के ऊपर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं। तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके भी आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना की उपलब्धता सी.डी., डी.वी.डी., वेबसाईट www.vitragvani.com, vitragvani app, vitragvani YouTube channel जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के

पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ सामान्यजन लें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् जीवंत रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं। इससे पूर्व ई.स. 1976-77 में हुए प्रवचन 'परमात्मप्रकाश प्रवचन, भाग 1 से 8' तक प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती भाषा में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा ईम्प्रेशन्स द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारुलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई; श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड, मुम्बई, श्री अतुलभाई जैन, मलाड, मुम्बई द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है। ट्रस्ट सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-गुरु-शास्त्र से क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट का मुमुक्षुगण से अनुरोध है कि दृष्टिगोचर अशुद्धियों से हमें अवगत कराये, जिससे आगामी आवृत्ति में अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ www.vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ सात भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। जिसका यह प्रथम भाग है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

इति शिवम्

ट्रस्टीगण
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई

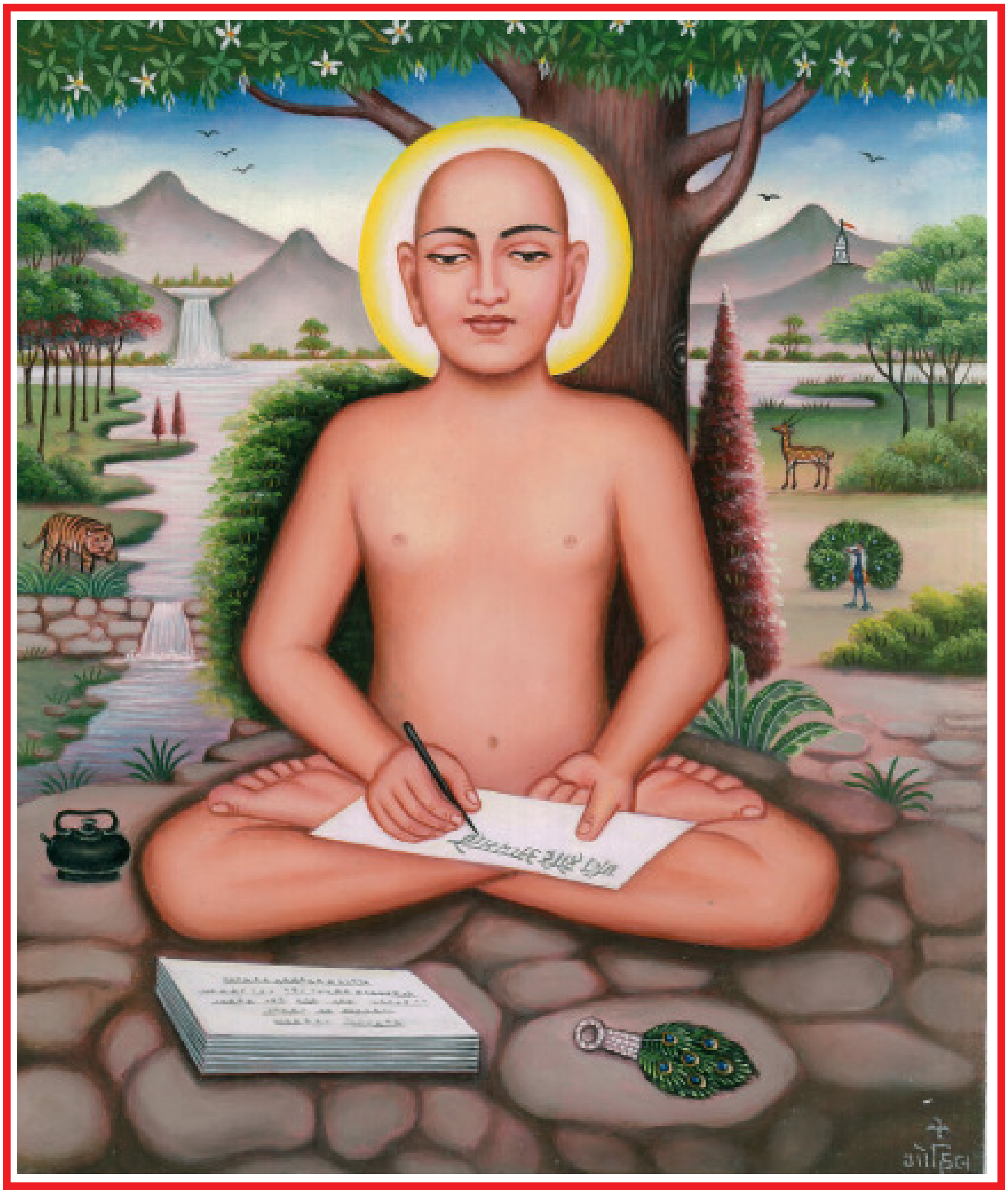

श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्यार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
०१	१७-०९-१९६५	मंगलाचरण और गाथा -१	००१
०२	१९-०९-१९६५	गाथा -१	०२१
०३	२१-०९-१९६५	गाथा -१, २	०४२
०४	२२-०९-१९६५	गाथा -२ से ५	०६३
०५	२३-०९-१९६५	गाथा -५ से ७	०८२
०६	२४-०९-१९६५	गाथा -७	१०३
०७	२६-०९-१९६५	गाथा -८, ९	१२३
०८	२७-०९-१९६५	गाथा -८	१४२
०९	२८-०९-१९६५	गाथा -११, १२	१५९
१०	२९-०९-१९६५	गाथा -१२	१७६
११	३०-०९-१९६५	गाथा -१३ से १५	१९६
१२	०१-१०-१९६५	गाथा -१५-१६	२१३
१३	०३-१०-१९६५	गाथा -१७-१८	२३०
१४	०४-१०-१९६५	गाथा -१८ से २१	२४४
१५	०५-१०-१९६५	गाथा -१९ से २३	२६०
१६	०६-१०-१९६५	गाथा -२३	२७६
१७	०७-१०-१९६५	गाथा -२४ से २६	२९१
१८	०८-१०-१९६५	गाथा -२६ से २८	३०७
१९	०९-१०-१९६५	गाथा -२८-२९	३२३
२०	१०-१०-१९६५	गाथा - ३०	३३८
२१	११-१०-१९६५	गाथा - ३१ - ३२	३५६

२२	१२-१०-१९६५	गाथा - ३२ - ३३	३७१
२३	१४-१०-१९६५	गाथा - ३४ - ३५	३८७
२४	१५-१०-१९६५	गाथा - ३५ - ३६	४०४
२५	१६-१०-१९६५	गाथा - ३६ - ३८	४२०
२६	१७-१०-१९६५	गाथा - ३८ से ४०	४३५
२७	१९-१०-१९६५	गाथा - ४० - ४१	४५२
२८	२०-१०-१९६५	गाथा - ४२ - ४३	४६९
२९	२१-१०-१९६५	गाथा - ३४ - ४५	४८७
३०	२२-१०-१९६५	गाथा - ४६ - ४७	५०३
३१	२४-१०-१९६५	गाथा - ४७ - ४८	५२१

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

परमात्म वैभव

(भाग-१)

(श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित श्री परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६५-६६ वर्ष के शब्दशः धारावाहिक प्रवचन)

भाद्र कृष्ण ७, शुक्रवार, दिनांक १७-९-१९६५
मंगलाचरण तथा गाथा - १, प्रवचन - १

ॐ श्री परमात्माने नमः, श्रीमद्योगीन्दुदेवविरचित,... योगीन्द्रदेव ने बनाया हुआ यह शास्त्र परमात्मप्रकाश दो टीकासहित, इसकी दो टीका है—एक श्रीमद्ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीका और श्री पण्डित दौलतरामजीकृत मंगलाचरण भाषा टीका। दो टीका है। अब पहले ब्रह्मदेव टीका का पहला श्लोक। है ?

श्रीमद्ब्रह्मदेवकृतसंस्कृतटीका

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥१ ॥

यह श्लोक है ब्रह्मदेव संस्कृत टीका। अब श्री पण्डित दौलतरामजीकृत भाषा टीका। उसका पहले मंगलाचरण करते हैं। फिर श्लोक का अर्थ चलेगा।

(दोहा)

चिदानंद चिद्रूप जो, जिन परमातम देव।
सिद्धरूप सुविसुद्ध जो, नमों ताहि करि सेव ॥१ ॥

परमातम निजवस्तु जो, गुण अनंतमय शुद्ध।
ताहि प्रकाशनके निमित, वंदू देव प्रबुद्ध॥२॥

देखो! क्या अर्थ किया इसका? **चिदानन्द चिद्रूप...** यह आत्मा चिदानन्द—चिद् अर्थात् ज्ञान। ज्ञानानन्द चिद्रूप और ज्ञानरूप, ज्ञानानन्द और ज्ञानरूप। **जो जिन परमात्म देव।** वीतरागी परमात्मदेव। **सिद्धरूप सुविसुद्ध जो,...** जो सिद्धरूप दशा प्रगट हुई, सुविशुद्ध निर्मल हुई। **नमों ताहि करि सेव।** जो परमात्मा पूर्ण वीतरागपर्याय को प्राप्त हुए, ऐसे परमात्मा की दृष्टि, सेवन करके और नमस्कार करता हूँ। दौलतरामजी (कृत है)।

परमात्म निज वस्तु... यह वास्तव में तो परमात्म निज वस्तु है। अपना आत्मा ही परम स्वरूप से है। एक पर्याय का, एक समय की अवस्था राग-द्वेष का लक्ष्य छोड़ दो तो भगवान आत्मा परमात्मा ही है—परमात्मा ही है।

परमात्म निज वस्तु जो, गुण अनन्तमय शुद्ध... यह द्रव्य लिया। उसमें अनन्त गुण शुद्ध हैं। वस्तु एक और गुण अनन्त। है? **गुण अनन्तमय शुद्ध...** अनन्तमय अभेद **ताहि प्रकाशन के निमित्त,...** उस परमात्मा को प्रकाशित करने के लिये **वंदूं देव प्रबुद्ध।** जो परमात्मस्वरूप प्राप्त हैं, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ। यह मांगलिक करके इसकी टीका करते हैं। यह तो हिन्दी है, हिन्दी का अर्थ हुआ। अब संस्कृत जो है न, उसका अर्थ।

'चिदानन्द इत्यादि' श्लोक का अर्थ :—श्री जिनेश्वरदेव शुद्ध परमात्मा आनन्दरूप चिदानन्द चिद्रूप है,... लो! वीतराग परमेश्वर सिद्ध परमात्मा, शुद्ध परमात्मा आनन्दरूप है, ज्ञानानन्द चिद्रूप है। **उनके लिये मेरा (सदाकाल) नमस्कार होवे,... उनके लिये...** अर्थात् उन्हें मेरा नमस्कार तीनों काल पहुँचो। सदा काल नमस्कार। परमात्म पूर्णानन्द, वही आदरणीय है, वही वन्दनीय है और वही प्राप्त करनेयोग्य है। **किसलिए? परमात्मा के स्वरूप के प्रकाशने के लिये।** नमस्कार किसलिए करता हूँ? कि परमात्मा का प्रकाश अन्दर में प्रगट हो और यह शास्त्र परमात्मप्रकाश कहना चाहता हूँ।

कैसे हैं वे भगवान? शुद्ध परमात्मस्वरूप के प्रकाशक हैं, अर्थात् निज और

पर सबके स्वरूप को प्रकाशते हैं। अपने स्वरूप को स्वयं प्रकाशित करते हैं, पर के स्वरूप को, ऐसे ही सभी आत्मायें शुद्ध परमात्मा हैं, ऐसा परमात्मा प्रकाशित करते हैं। **फिर कैसे हैं ? 'सिद्धात्मने' जिनका आत्मा कृतकृत्य है।** सिद्ध-सिद्ध। जिनका आत्मा कृतकृत्य—सिद्धस्वरूप—हो गया। पूर्णानन्द की प्राप्ति सिद्ध हो गयी।

सारांश यह है कि नमस्कार करनेयोग्य परमात्मा ही है, इसलिए परमात्मा को नमस्कार कर परमात्मप्रकाश नामा ग्रन्थ का व्याख्यान करता हूँ। लो! इतना तो वन्दन ब्रह्मदेव संस्कृत टीकाकार ने किया। पहला हिन्दी में किया था। यह अब मूल श्लोक, मूल श्लोक। यह तो फिर इसमें क्या-क्या आयेगा, वह सब (बात की है)।

★ ★ ★

गाथा - १

मूल श्लोक। यह योगीन्द्रदेव का मांगलिक है। पहला मांगलिक दौलतरामजी का किया, दूसरा मांगलिक का अर्थ किया ब्रह्मदेवसूरी का। ब्रह्मदेव ब्रह्मचारी थे। अब यह योगीन्द्रदेव महा मुनि दिगम्बर सन्त जंगल में—वन में बसनेवाले, उन्होंने परमात्मा का स्वरूप प्रकाशित करने के लिये यह ग्रन्थ बनाया है।

जे जाया झाणग्गियएँ कम्म-कलंक डहेवि।
णिच्च-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि॥१॥

इसमें कुछ हाथ आवे ऐसा नहीं वहाँ। छोटी पुस्तक में क्या हो? अब इसका अर्थ। **अब, प्रथम पातनिका के अभिप्राय से...** दो प्रकार की अन्दर कथन पद्धति है, उसमें पहली कथन पद्धति के अभिप्राय से **व्याख्यान किया जाता है। उसमें ग्रन्थकर्ता श्री योगीन्द्राचार्यदेव ग्रन्थ के आरम्भ में मंगल के लिये...** मांगलिक के लिये **इष्टदेवता श्री भगवान को नमस्कार करते हुए एक दोहा छन्द कहते हैं।** मांगलिक—महा मांगलिक करते हैं। कहो, यह विवाह में मांगलिक डालते हैं न? माणेक स्तम्भ। माणेक स्तम्भ कहते हैं? क्या कहते हैं? विवाह में लकड़ी नहीं डालते? लकड़ी नहीं डालते? मंगल स्तम्भ, माणेक स्तम्भ। लकड़ी डालते हैं कुछ। चार लकड़ियाँ होती हैं न? चारों ओर

चार। भटकने की चार गति। मण्डप में डालते हैं। मण्डप करते हैं न? मण्डप। अन्दर चार होती है, तुमको खबर नहीं। उसके अन्दर चार ऊपर बारीक अन्दर ऐसे निकले हुए हों ऊपर। क्या कहते हैं?

अन्वयार्थ :- जो भगवान... यहाँ से शुरु किया है। **'ये'** अर्थात् **जो भगवान ध्यानरूपी अग्नि से...** देखो! यहाँ से बात शुरु की है। पहले तो वे भगवान भी पर्याय में मलिन थे। पर्याय, पर्याय अर्थात् अवस्था, (उसमें) मलिन थे। पर्याय में अनादि के कहीं शुद्ध नहीं थे। वे **ध्यानरूपी अग्नि...** देखो! यह स्वरूप परमात्मा का निज स्वरूप, उसका ध्यान लगाकर। जैसा अनादि का राग-द्वेष का, विकार का ध्यान था, वही ध्यान स्वभाव सन्मुख का लक्ष्य करके, ध्यान की दिशा पलटी। अनादि से ध्यान राग और द्वेष, चिन्ता-कल्पना किया ही करे। निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक गया तो भी वह आर्त और रौद्रध्यान की ही कल्पना का ध्यान था। समझ में आया?

मुमुक्षु : भगवान भी पहले से....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान भी पहले से थे। है न? यह क्या बात करते हैं? भगवान पहले से पर्याय में निर्मल नहीं थे। क्या अभी तक सुना यह?

मुमुक्षु : .... वांक नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वांक की कहाँ बात है। पहले से मलिन अवस्था अनादि की जीवों की है। वस्तु स्वरूप—वस्तु से परमानन्दमूर्ति अखण्ड आनन्दकन्द होने पर भी, पर्याय में—अवस्था में—हालत में सब—तीनों एक कहलाते हैं, अनादि से मलिन थे। मलिन न हो तो यह दुःख किसे हो? चिल्लाहट मचाता है। शरीर जरा शिथिल पड़े तो चिल्लाहट कौन मचाता है यह अन्दर?

यह पर्याय में अर्थात् अवस्था, पर्याय अर्थात् अवस्था। अभी तो मूल (बात की खबर नहीं होती)। एक व्यक्ति कहता था कि, आत्मा की पर्याय तो रूपी है न सब? पण्डित नाम धरावे। खबर भी नहीं होती। कौन जाने क्या चला है सब? रास्ते में कहते थे। रूपी (है न?) कहा, ऐसा रूपी नहीं होती। वह तो विकार को रूपी कहा है, (वह) निकल जाता है, इसलिए कहा है। विकार कहीं रुपी है? अमरचन्दभाई! बड़े पण्डित

थे, हों! समझे न। रास्ते में ऐसा पूछे तो ऐसा हो जाये कि अरे! परन्तु यह क्या पढ़े हैं? खबर ही नहीं होती वहाँ।

यह आत्मा में... वस्तु जो आत्मा, वह तो शुद्ध चिदानन्दमूर्ति परमानन्द का कन्द, अनन्त गुण शुद्ध है। यह तो कहा न? अनन्त गुण शुद्ध कहा। परन्तु उसकी अवस्था में मलिनता है, वह मलिनता अरूपी है। आत्मा की पर्याय है, परन्तु उसे रूपी क्यों कहा है? कि निकल जाती है इसलिए। उसका (आत्मा का) मूल स्वभाव नहीं। समझ में आया? तथापि सभी पर्यायें ऐसी नहीं। आत्मा वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी सभी पर्यायें मलिन नहीं। अस्तित्वगुण, वस्तुत्वगुण, प्रमेयत्वगुण आदि गुणों की पर्यायें तो निर्मल हैं। अभी निर्मल हैं, निगोद के जीव को निर्मल हैं। आहाहा! समझ में आया? अर्थात् आत्मा वस्तु, उसकी पर्याय रूपी है, ऐसा नहीं, सभी पर्यायें विकारी है, ऐसा नहीं। कितनी ही विकारी और कितनी ही अविकारी हैं। श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, कर्ता, कर्म आदि गुण की उल्टी अवस्था, वह विकारी है और अस्तित्वगुण, प्रमेयत्वगुण, अगुरुलघुगुण, द्रव्यत्वगुण, वह सब उनकी पर्यायें वे निर्मल, अनादि से निर्मल हैं। परन्तु अस्तित्वगुण की पर्याय में मलिनता क्या आवे? अस्तित्वगुण की पर्याय में मलिनता आवे तो अस्तित्वगुण न्यून हो जाये, घट जाये। ऐसा हो कभी? आहाहा! समझ में आया?

देखो! यह बात, सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसा आत्मा कहीं नहीं होता। सब आत्मा आत्मा बातें करे परन्तु उस आत्मा का मूल स्वरूप है, उसे समझे बिना बातें करते हैं। सेठी! ऐसा आत्मा कि जिसमें अनन्त गुण शुद्ध त्रिकाल (रहे हुए हैं)। तथापि उसकी पर्याय के दो भाग (पड़ते हैं)। कितनी ही पर्यायें निर्मल हैं और कितनी ही मलिन हैं। है तो मलिन और निर्मल दोनों अरूपी, अमूर्त हैं। आत्मा अरूपी अमूर्त है और उसके गुण अमूर्त अरूपी हैं, उसकी पर्याय अमूर्त और अरूपी है। तीनों अरूपी, तीनों अमूर्त हैं। समझ में आया? परन्तु किसी जगह उसे पुद्गल के परिणाम और विकार को रूपी कहा, वह किसलिए? वह स्वभाव में रह नहीं सकता, अन्तर भान होने से वह छूट जाता है। विकार छूट जाता है, इसलिए उसे रूपी कहा, उसे पुद्गल के परिणाम कहा, उसे जड़ के परिणाम भी एक न्याय से कहा। आहाहा! अमरचन्दभाई! अपेक्षा समझे नहीं।

मूल यह चीज़ क्या है ? सर्वज्ञदेव ने देखा हुआ, कहा हुआ आत्मा। दूसरे अज्ञानी यह समझे बिना कल्पित बातें करे (कि) ऐसा आत्मा है और ऐसा ध्यान करो और... वह सब थोथा। आकाश के फूल निकलेंगे उसमें से। ध्यान करेगा तो उसमें धूल भी नहीं निकले, चार गति प्राप्त होगी।

ऐसा आत्मा, जो एक समय के अन्दर पूर्ण शुद्ध द्रव्य से है, परन्तु पर्याय में मलिन है। वह मलिन अवस्था आत्मा की दशा में है। वह अरूपी, निश्चय से तो अरूपी है, अमूर्त है, उसे—विकार को रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं। और कितनी ही पर्यायें निर्मल हैं, वे तो अत्यन्त अरूपी हैं। यह भी अरूपी है, परन्तु इसे रूपी कहने का आशय विकार टलेगा, इसलिए (कहा है)। ऐसे इन भगवान ने '**ध्यानाग्निना**', ऐसा लगाया पहला। देखो! ध्यानाग्नि का अर्थ क्या किया? कि ध्यान लगाया द्रव्य के ऊपर। वस्तु जो है, उसके ऊपर ऐसे (ध्यान) लगाया। क्या चीज़ है वह ? अनन्त गुण का पिण्ड, वह स्वयं है। यह कहेंगे अभी, सब इसका स्पष्टीकरण (करेंगे)। समझ में आया ?

'**निरंजनज्ञानमयाः**' देखो! कहते हैं कि जिन भगवान आत्माओं ने अनादि से जो मलिन दशा थी; रजकण कर्म भिन्न है, शरीर भिन्न है, मलिन अवस्था उसकी पर्याय में उसकी हालत में है, परन्तु उस मलिन पर्याय को ध्यानाग्नि द्वारा। ध्यान (करके)। ऐसे द्रव्यस्वरूप पूर्ण अखण्ड आनन्द है, उस पर दृष्टि लगाकर। सम्यग्दर्शन भी एक ध्यान है, सम्यग्ज्ञान भी एक ध्यान है और सम्यक्चारित्र भी एक ध्यान है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु... देखो! यह पर्याय पलटती है। पर्याय में मलिनता थी, वह ध्यानाग्निरूपी पर्याय द्वारा... देखो! ध्यान अग्नि कहा है।

'**कर्मकलङ्कान्**' **पहले कर्मरूपी मैलों को...** देखो! पहले कर्मरूपी मैल था। भावरूपी कलंक था और जड़ के कर्म का निमित्तरूप से सम्बन्ध था। दो की बात करेंगे, अकेला नहीं। इसलिए नय से उठायेंगे। यह पूरी सूक्ष्म बात है। पूरा वीतराग का कहा हुआ तत्त्व किस प्रकार से सिद्ध होता है और कैसे वह खड़ा होता है और किस नय की अपेक्षा से उसके कथन हैं, यह सब इसमें समाहित कर दिया है। आहाहा! समझ में आया? पहले कर्मरूपी कलंक था, मैल था। (उसे) **भस्म करके...** लो! भस्म किया अर्थात्? विकारी पर्याय तो नाश हो गयी और कर्म को भस्म किया अर्थात्? रजकण-

परमाणु कर्मरूप अवस्था है, उसकी अवस्था पलट गयी। पलट गयी, उसका नाम आत्मा ने उन्हें भस्म किया, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आयेगा अभी।... यह तो अभी शब्दार्थ चलता है न? यह तो भस्म क्या किया? राख हो गयी न कर्म की? क्या राख हो? कर्म तो सूक्ष्म रजकण हैं। जैसे लकड़ा, लकड़ा है या नहीं? लकड़ा। उस लकड़े की राख हुई। राख हुई तो क्या हुआ? उसकी अवस्था पलट गयी। लकड़े की जो अवस्था थी, वह राख की अवस्था हुई। परमाणु तो ऐसे के ऐसे यहाँ हैं। परमाणु तो यहाँ थे, वैसे वहाँ हैं। मात्र यहाँ लकड़े की अवस्था थी, वह व्यय होकर राख की अवस्था का उत्पाद (हुआ)। परमाणु कायम ध्रुव (रहे)। राख किसे हो? राख कहना किसकी? यह उसमें आया है अपने कि अकर्म अवस्था, भाई! आया था न? कलश-टीका में। अकर्म अवस्था धारण की। कर्म की अकर्म अवस्था हुई, उसका नाम भस्म किया, कहा जाता है। उसमें है या नहीं कहीं? ऐई! किसमें है? यह कहीं याद रहे? उसमें नहीं आया? पहले कहा कर्म। कहीं था अवश्य। कर्म का अकर्म किया। नहीं आया था? क्या खबर पड़े इतने सबमें? ११५ श्लोक? (इस भाई ने) याद रखा। याद रखना चाहिए न। कहो, समझ में आया? परमाणु की कर्म अवस्था हुई थी, वह अवस्था पलटकर अकर्मरूप अवस्था हुई, उसका नाम कर्म को भस्म किया, कहा जाता है।

मुमुक्षु : परमाणु परमाणुरूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : परमाणुरूप के नहीं, परमाणु तो परमाणु है ही, परन्तु परमाणु की पर्याय कर्मरूप थी, वह दूसरी अकर्मरूप अवस्था हुई। समझ में आया? परमाणु तो द्रव्य है, परन्तु वह द्रव्य की—वस्तु की कर्मरूप अवस्था थी, वह अवस्था पलटकर वापस साधारण परमाणु की जो अवस्था थी, वह अवस्था हो गयी। समझ में आया?

भस्म करके... 'नित्यनिरंजनज्ञानमयाः जाताः' देखो! भाषा इतनी प्रयोग की है। **नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं,...** देखो! नित्य, वस्तु में नित्य थे, वस्तु में निरंजन थे, वस्तु में ज्ञानस्वरूप ही था, वह यहाँ पर्याय में हो गया, ऐसा बताना

है। समझ में आया? **नित्य, निरंजन और ज्ञानमयी सिद्ध परमात्मा हुए हैं,...** नित्य वस्तु तो नित्य थी। वह पर्याय में ध्यानाग्नि द्वारा मलिनता का नाश करके, वह पर्याय नित्य ऐसी की ऐसी, ऐसी की ऐसी सादि-अनन्त रह गयी। **निरंजन,...** वस्तु निरंजन थी, पर्याय निरंजन—मलरहित हो गयी और निरंजन ज्ञानमयी। वस्तु तो ज्ञान और आनन्दमय ही थी, परन्तु वह पर्याय में अकेली ज्ञान और आनन्दमय दशा हुई, उसे सिद्ध भगवान कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! देखो!

सिद्ध परमात्मा हुए हैं,... अनादि के सिद्ध नहीं थे, एक जीव अपेक्षा से, हों! सिद्ध ऐसे सदा ही हैं, यह अलग बात है। परन्तु एक सिद्ध की जब व्याख्या करे, तब यह ध्यानाग्नि द्वारा, ऐसा कहकर अनादि शुद्ध ही है सब जीव, सब शुद्ध ही जीव है, सदा शिव है, ऐसा नहीं। जब-जब वह भगवान सिद्ध स्वरूप धारण करता है, तब भगवान आनन्द, ज्ञान आदि अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके ऊपर दृष्टि, ध्यान लगाकर, जो ध्यान परद्रव्य और परसंयोग के ऊपर था, वह ध्यान स्व के अनन्त गुण के पिण्ड के ऊपर लगाया, इससे कर्म का मैल और कर्म का नाश होकर सिद्धस्वरूप को नित्य, निरंजन, ज्ञानमय पर्याय को प्राप्त हुए। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : णमो अरिहंताणं.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह णमो अरिहंताणं की बात चलती है, यह सिद्ध की। अभी सिद्ध की (बात चलती है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह सिद्ध ही है न। समझ में आया? अरिहन्त और सिद्ध ऐसे होते हैं। उसकी ओर श्लोक है न? अकर्मसहित। कौनसा श्लोक है? (एक सौ) पन्द्रहवें पृष्ठ पर। हाँ, यह बराबर होगा। निर्जरा का पहला बोल, देखो! बराबर। निर्जरा का पहला बोल, ११५ पृष्ठ पर। देखो! निर्जरा की व्याख्या :- पूर्वबद्ध कर्म का अकर्मरूप परिणाम। निर्जरा का पहला श्लोक। इन्होंने तो एक-एक के गजब अर्थ किये हैं। निर्जरा अर्थात् क्या? आत्मा में कर्म निमित्तरूप से थे, मलिनरूप पर्याय (थी), वह स्वभाव का ध्यान होने से मलिन की पर्याय टली और कर्म बद्ध थे, वह अकर्म परिणाम

हुआ। कर्म के परिणाम का अकर्मरूप परिणाम होना, उसका नाम निर्जरा। यह निर्जरा की व्याख्या। इसका नाम भस्म किया कहा जाता है। आहाहा! जैनदर्शन में लोगों को अभ्यास नहीं होता। वाडा में निवृत्ति नहीं होती। घण्टे-दो घण्टे आवे और धुन लगावे और उसकी सब बाहर की लगी हो चौबीस घण्टे।...भाई! यह तम्बाकू की, यह पुड़िया की, फलाना और ढींकणा और यह पूरे दिन यह हीरा-माणेक का उसे। इन भाई को मलूकचन्दभाई को तो अब कम हो गया होगा। चारों ओर का, निवृत्ति नहीं मिलती। घण्टे-दो घण्टे सुनकर अब कुछ, कुछ कहते थे। समझे न?

एक व्यक्ति (बोलता था), हे गौतम! हे गौतम! आता है न? आता है न? भगवान कहे, हे गौतम! भगवान ऐसा कहते हैं, हे गौतम! समयमात्र का प्रमाद नहीं करना, हे गौतम! आत्मा का पुरुषार्थ करना। एक बाई गयी होगी, उसका पति सुनने गया वह। समझे नहीं कुछ। फिर गयी घर में। (पूछा), क्या सुनकर आये? ओय मा, ओय मा करते थे। उस गोरमा के ठिकाने ओय मा। ओय मा, समझ में आया? हमारे काठियावाड़ में... ओय मा, ओय मा (अर्थात्) पेट में दर्द हो न? पेट में दर्द (हो तब) आये मा, ओय मा, ऐसा करते हैं न? हे माँ, हे माँ—ऐसा नहीं करते? ऐसा कि कोई कुछ ओय मा, ओय मा करते थे। क्या महाराज को दुःख होगा, कौन जाने? ओय मा, ओय मा करते थे, लो! ऐसे के ऐसे सुननेवाले, कुछ भान नहीं होता। क्या मार्ग है, क्या तत्त्व है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अवग्रह किसका किया? उल्टा किया।

यहाँ निर्जरा की व्याख्या की, देखो! ११५ पृष्ठ पर अथवा निर्जरा का पहला श्लोक और धारावाही का १३३ श्लोक, लो! दो तिगड़े हुए। निर्जरा अर्थात् यहाँ क्या कहा? ध्यानाग्नि है न? ध्यानरूपी अग्नि लगाने से निर्जरा की अर्थात् कर्म को भस्म किया। अर्थात् क्या? कि, वह कर्म के रजकण की विकारी अवस्था कर्मरूप पुद्गल की पर्याय कर्मरूप थी, वह पलटकर अकर्मरूप अवस्था हो गयी। परमाणु तो ऐसे के ऐसे रहे। अकर्मरूप अवस्था हो गयी, इसका नाम निर्जरा और इसका नाम ध्यानाग्नि से कर्म को जलाया, ऐसा कहा जाता है।

यह काल मुश्किल-मुश्किल से मिला। शास्त्र में दृष्टान्त दिया है न? काई की पर्तें पड़ी हों ऊपर। काई... काई। यह तालाब के ऊपर काई होती है न? थर। उसमें से किसी दिन छूटे और अन्दर कछुए की ऐसे नजर पड़े आकाश के ऊपर (तब उसे ऐसा लगता है), अरे! यह क्या? मैंने तो कभी देखा नहीं था। घर में कुटुम्ब को कहने गया, वहाँ मुँद गया। वहाँ परिवारी जहाँ आये तो कुछ नहीं मिलता। वे कहे, पागल हो गया लगता है यह, पागल हो गया है। हमने तो कभी सुना नहीं। भाई! मैंने कुछ देखा है। ऐसे कुछ ऊपर था। पानी के ऊपर बहुत काई लग जाये न? यह तालाब के ऊपर, सरोवर के ऊपर बहुत इतनी-इतनी काई... काई, काई जम जाये। कभी किसी दिन (देखी नहीं थी)। अन्दर कछुआ बहुत रहते। कछुआ जानवर होता है न? उस समय हवा आयी और पर्त टूट गयी और ऐसे देखा तो चन्द्र और तारे, प्रकाश... प्रकाश... प्रकाश। लाओ न, परिवार को कहने जाऊँ। कहने गया वहाँ (मुँद गया)। सब देखने आये तो कहे, यह पागल हो गया है। कभी हमने बाप-दादा से सुना नहीं, तूने यह और कहाँ से (देखा)? भाई! परन्तु कुछ है, हों! था, मैंने नजरों से देखा है।

इसी प्रकार अनादि का अज्ञानी कुछ आत्मा का भान होने पर दूसरे को कहे, अरे! कुछ आत्मा ऐसा है, हों! भाई! अरे! चल.. चल। कभी हमने सुना नहीं। आत्मा और अन्दर आनन्द और शुद्ध और ऐसा कैसा? जादवजीभाई! अरे! आत्मा तो अनन्त आनन्दकन्द ज्ञान की ज्योति चैतन्यसूर्य, चैतन्यधातु का तारा है वह तो। अब चल, हमने तो कभी देखा नहीं अनन्त काल में।

यहाँ आचार्य कहते हैं कि, ऐसा ध्यान करके जिन्होंने **सिद्धों को...** ऐसे सिद्धपद को प्राप्त हुए, उन्हें **नमस्कार करके...** मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। देखो! सिद्ध को सीधा नमस्कार। समयसार में ऐसा आता है न? **'वंदित्तु सव्व सिद्धे' मैं परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करता हूँ...** 'ब्रह्मदेव' कहते हैं। **यह संक्षेप व्याख्यान किया।** इसके बाद विशेष व्याख्यान करते हैं। अब एक-एक शब्द का भंग पाड़-पाड़कर, खण्ड-खण्ड करके, उसका अर्थ करते हैं।

भावार्थ :- जैसे मेघ-पटल से बाहर निकली हुई सूर्य की किरणों की प्रभा प्रबल होती है,... है? जैसे मेघ का पटल। पटल अर्थात् बादल। दल, दल। उससे **बाहर**

निकली हुई सूर्य की किरणों की प्रभा... सूर्य के किरणों की प्रभा बाहर निकली **प्रबल होती है, उसी तरह कर्मरूप मेघसमूह के विलय होने पर...** इसी प्रकार कर्मरूपी मेघ, उनका समूह आत्मा के ध्यान द्वारा विलय होने पर, नाश होने पर **अत्यन्त निर्मल केवलज्ञानादि...** अत्यन्त निर्मल केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। **अनन्त चतुष्टय की प्रगटतास्वरूप परमात्मा परिणत हुए हैं।** लो! यह भगवान अनन्त चमुष्टय शक्तिरूप से थे, शक्तिरूप से तो परमात्मा अनन्त ज्ञान (आदि) अनन्त चतुष्टय थे, (उसका) ध्यान करके, अन्तर की एकाग्रता करके प्रगटरूप से पर्याय में अनन्त चतुष्टयरूप हुए। **परमात्मा परिणत हुए हैं।** देखो! आहाहा! परिणमित हुए हैं, परिणमे हैं। उस अवस्था में परिणत हो गये हैं। अनादि की अवस्था मलिन विकारीरूप से वस्तु का परिणमन था, उस वस्तु का ध्यान करने से पर्याय में परमात्मरूप पर्याय परिणम गयी है, हो गयी है। समझ में आया?

सिद्ध भी एक पर्याय है, संसार भी एक पर्याय है, मोक्षमार्ग भी पर्याय है और सिद्ध भी पर्याय है। इसलिए पर्याय को कोई एकदम रूपी कहे तो सिद्ध भी पर्याय है। वस्तु है त्रिकाल द्रव्य ध्रुव, उसका परिणमन पलटते... पलटते... पलटते... विकार जो अनादि का था, अन्तर स्वरूप की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल पर्याय हुई। वह निर्मल पर्याय मोक्ष का मार्ग है। जितना मलिन रहा, उतना बाधक। वह पूर्ण जहाँ ध्यान होकर पूर्ण निर्मल पर्याय प्रगट हो गयी, वह सिद्ध परमात्मा परमात्मारूप से परिणम गये। आहाहा!

और सिद्ध में भी अभी पर्याय? एक व्यक्ति कहे, सिद्ध को भी पर्याय? अरे! भगवान! अभी खबर नहीं होती द्रव्य की। पर्याय अर्थात् परिणमन की अवस्था। अवस्था बिना का कोई तत्त्व तीन काल-तीन लोक में होता नहीं। आहाहा! मूल वस्तु की खबर नहीं और बिना भान के लगे कूटने। सामायिक, प्रतिक्रमण और चतुर्विध आहारत्याग, लो! तीन। देखो!

निर्मल केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय की प्रगटतास्वरूप परमात्मा परिणत हुए हैं। जो भगवान आत्मा वर्तमान अवस्था में—पर्याय में विकार और मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप पर्याय थी, उस पर्याय का व्यय अर्थात् नाश होकर भगवान आत्मा अपनी निर्मल

शुद्ध पर्यायरूप से भगवान परिणम गये। वह सिद्ध की पर्याय सादि-अनन्त परिणमी रहती है। सिद्ध भगवान में भी वह परिणति सादि-अनन्त सदा परिणमा ही करती है। थकान लगती होगी या नहीं? अरे! वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का परिणमन है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण आनन्द अनन्त गुण की निर्मल पर्याय है। उस पूर्ण पर्याय का परिणमन, वह तो वस्तु की स्थिति हो गयी। वह परिणमन सिद्ध को समय-समय में चालू है। समय-समय में वह परिणमन (चलता है)। पहले समय में था, वह दूसरे (समय में) नहीं, दूसरे (समय में) था, वह तीसरे में नहीं। ऐसे परमात्मद्रव्य पर्याय में पूर्ण परिणमा, दूसरे समय में, तीसरे (समय में), ऐसे सादि-अनन्त परिणमा करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्ययरहित उत्पाद।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यय अर्थात् संसार के व्ययरहित उत्पाद। अपना तो व्यय है। यह भाषा कही वहाँ, यह व्यय नहीं। यह तो परमात्मा की पर्याय एक समय में उत्पन्न हुई, उसका व्यय होकर परमात्मा दूसरे होते हैं। वह व्ययरहित उत्पाद अर्थात् संसार का जो व्यय है, वह अब उत्पाद नहीं होगा। प्रवचनसार में वह दूसरी बात है। यह दूसरी बात है। यह तो आत्मा में जो अनन्त गुण जो शक्तिरूप से थे, उनका अन्तर ध्यान करके पर्याय में पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, एक समय में हुई, वह व्यय होती है, दूसरे समय में उत्पाद होता है। वह परमात्म पर्याय दूसरे समय में उत्पन्न हुई, तीसरे समय में नाश होता है, चौथे समय में दूसरी उत्पन्न होती है। वस्तु का पर्यायरूप से परिणमना, वह उसका स्वत: धर्म है। समझ में आया?

संसार की पर्याय तो अनादि-सान्त हुई। बहुत थोड़ी। संसार की अनादि से एक-एक समय की पर्याय लो तो अनन्त है, अनादि-सान्त। तब भगवान की पर्याय सादि-अनन्त अर्थात् जितनी पर्याय की संख्या संसार की थी, उससे मोक्ष की पर्याय अनन्तगुणी हो गयी। अनन्तगुणी उसकी पर्याय ऐसी की ऐसी सादि-अनन्त (रहेगी)। आहाहा! द्रव्य, गुण और पर्याय का वास्तविक स्वरूप जाने बिना जैन, भगवान कहते हैं, वह तत्त्व हाथ नहीं लगता। ऐसी की ऐसी बातें करे आत्मा की और आत्मा ऐसा है और आत्मा ऐसा है और आत्मा (ऐसा है)। समझ में आया?

जैन अर्थात् वस्तु का तत्त्व। जैन अर्थात् क्या ? जीता। वस्तु के स्वभाव का लक्ष्य करके अज्ञान और राग-द्वेष को जीता, उसे जैन कहते हैं। यह जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, जैन कोई वाड़ा नहीं। वस्तु का स्वरूप आत्मा का, आत्मा का, हों! जड़ का, वह तो जानने का विषय है, जड़ तो जानने का विषय है, परन्तु वह विषय है, इतना बड़ा, वह ज्ञान का स्वभाव है। समझ में आया ? ज्ञान की एक समय की पर्याय अपने को और तीनकाल के पदार्थों को जाने, इतनी एक समय की पार्यय, वह जैन की पर्याय है। जैन आत्मा की वह पर्याय है। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, **अनन्त चतुष्टय अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, ये अनन्त चतुष्टय सब प्रकार अंगीकार करने योग्य हैं,...** लो! जीव को यही अनन्त चतुष्टय जो परमात्मा को पर्याय में प्रगट हुए, वही आत्मा को अंगीकार करनेयोग्य है। राग-द्वेष नहीं, विकार नहीं, मोक्षमार्ग की पर्याय भी वह वास्तव में तो क्षणिक है। त्रिकाल स्वरूप में से वे अनन्त ज्ञान आदि प्रगट हुए, वही अंगीकार अर्थात् प्रगट करनेयोग्य है। प्रगट करनेयोग्य आत्मा में से। आत्मा में अनन्त चतुष्टय है। कहो, समझ में आया ?

अनन्त चतुष्टय है न आत्मा में ? स्वचतुष्टय और अनन्त चतुष्टय दोनों एक ही है न ? स्वचतुष्टय और अनन्त चतुष्टय। स्वचतुष्टय भिन्न और अनन्त चतुष्टय भिन्न। कितनी बार कहते हैं। तुम ध्यान कहाँ रखते हो ? ... ध्यान रखते हैं। स्वचतुष्टय का अर्थ प्रत्येक द्रव्य, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है, वह स्वचतुष्टय और परद्रव्य के (द्रव्य-)क्षेत्र-काल-भाव से नहीं, उस परचतुष्टय से नहीं। स्वचतुष्टय अर्थात् द्रव्य वस्तु। क्षेत्र (अर्थात्) चौड़ाई। काल (अर्थात्) अवस्था और भाव (अर्थात्) गुण। वे सब द्रव्य में स्वचतुष्टय होते हैं। और यह अनन्त चतुष्टय जो भाव में गुणरूप से पड़े हैं, वे पर्यायरूप से प्रगट करना, उसका नाम सिद्ध की पर्याय है। भाव में से काल में लाना। अनन्त चतुष्टय गुण शक्तिरूप से है, उसकी प्रगट पर्याय करना, वह अवस्था है। और स्वचतुष्टय तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को स्वचतुष्टय कहा जाता है। थोड़े दिन पहले यह बात हो गयी थी। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हुई थी न। यहाँ तो बहुत बात होती है, भाई! उस गाली को गाँठ बाँधता है, परन्तु इस गुण को गाँठ बाँधने में देरी लगती है इसे। गाली... गाली। गाली याद रखता है कि पाँच वर्ष पहले इसने गाली दी थी। गुण को तो गाँठ बाँध! गाली दी हो तो कैसा लगे इसे! आहाहा! सही समय में दामाद ने मण्डप में मेरा नाक काटा था। विवाह होता है न? विवाह, उसमें दामाद ऐसा कड़क हो, दामाद ऐसा वचन बोला हो, ऐसा याद रहे मरण तक, हों! एक तो ससुर मरता था तो मरते-मरते कहे, मेरी अग्नि जलेगी। मेरे दोनों दामाद ऐसे पके हैं। समझ में आया? नाम नहीं देते। समझ में आया?

वह ससुर था। वह ससुर मरते-मरते उसका एक दामाद था अमुक प्रकार का, एक दामाद ऐसा था दूसरे प्रकार का। उसे दोनों लड़कियों का सन्तोष नहीं था। इसलिए मरते-मरते कहे, मेरी अग्नि श्मशान में धगधग सुलगेगी, शान्त नहीं होगी। ऐसे दो दामाद मिले हैं। ऐसी की ऐसी होली। दामाद कहते हैं न? संसार की ऐसी स्थिति है। एक दामाद को मतलब पहले से विवाह किया था तब से बँधी थी पहले से, विवाह पहले की ब्रह्मचर्य की बँधी। अब ऐसे का ऐसा रह गया पूरी जिन्दगी। बारह महीने, बारह महीने बढ़ाते गया। विवाह के पहले बारह महीने की बँधी थी। फिर विवाह किया तो बँधी थी, फिर और बारह महीने पूरे हुए, तो फिर दूसरे बारह महीने अर्थात् बारह महीने अर्थात् पूरी जिन्दगी निकाली। इसलिए उस ससुर को दाह (हुई), मेरी पुत्री (के साथ) विवाह किया परन्तु.... (उसको) दूसरी कुछ थी। वह इस भाई को खबर होगी। विधवा होगी। यह तो उसे खबर हो न ताराचन्दभाई को। कहो, समझ में आया? आहाहा! क्या है परन्तु यह? मेरी अग्नि श्मशान में धगधग सुलगेगी। मुझे शान्ति नहीं। परन्तु पर के कारण से क्या है तुझे अब? परन्तु खदबदाहट... खदबदाहट। कषाय की कल्पना... कल्पना... कल्पना।

कहते हैं, अरे! जीव कहाँ भूला भ्रमता है? भाई! भगवान तेरा स्वरूप है न! वह पर्याय में भगवान ने प्रगट किया, वह तुझे प्रगट करनेयोग्य है। तेरा काम वह है, दूसरा काम नहीं, ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा! तेरी जेब में भरा है। गुंजा कहते हैं? जेब... जेब। जेब में भरा है, निकालकर खा। इतनी बात है। भूख लगी हो और फिर जेब में पेड़ा-बेड़ा मूल्यवान ऐसे मावा के पड़े हों। (यह भाई) और बादाम कहते हैं। ठीक है,

लो! बादाम-पिस्ता, उसी प्रकार भगवान! तेरे स्वरूप में अन्दर अनन्त आनन्द और ज्ञान आदि, महा पेड़ा अन्दर जेब में पड़े हैं। अन्तर दृष्टि कर और खा, इतनी तेरी देरी है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका माहात्म्य आना चाहिए न! यह वह क्या है परन्तु यह!! शास्त्र कहते हैं न? कौतूहल का तो कर एक बार। यह आता है न? भाई! यह अमृतचन्द्राचार्य के (समयसार २३) कलश में आता है। कौतूहल तो (कर)। तत्त्व का कौतूहल तो (कर)। 'तत्त्व कौतूहलीसम्'। एक कलश है। कौतूहल तो कर कि यह तत्त्व क्या है? यह क्या बात करते हैं? यह किसकी करते हैं? मेरी! इतना मैं! कौतूहल तो कर एक बार, कौतूहल। कला और खेल तो करो कि यह क्या कहते हैं परन्तु यह। अन्दर आओ... आओ... आओ... क्या कहते हैं यह? कौतूहल कर। दूसरे की कौतूहलता कैसे (करता है)? एक महिला बहुत वर्ष से निकली नहीं थी। नही निकली हो। उसमें हो न? पर्दे में। क्या कहा जाता है अपने? ओझल... ओझल (पर्दा)। बाहर निकले तो ऐसे सब देखने निकले। यह भगवान (आत्मा) अन्दर पड़ा है अनादि-अनन्त शान्त और अनन्त चतुष्टय का भण्डार! वह पर्दे में—राग की आड़ में पड़ा है। आहाहा! एक विकल्प की आड़, पुण्य-पाप का प्रेम, प्रेम-रुचि की आड़ में पूरा भगवान पड़ा है। आहाहा!

कहते हैं, वह अनन्त चतुष्टय भगवान ने प्रगट किये, वे तुझे प्रगट करनेयोग्य हैं। **तथा लोकालोक के प्रकाशन को समर्थ हैं।** कौन? सिद्ध परमात्मा। सिद्ध परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने। सिद्ध भगवान अपनी पर्याय में (जाने)। यह कैसी बात परन्तु! सिद्ध, अनन्त सिद्ध जो हैं... **'वंदित्तु सव्व सिद्धे'** समयसार की पहली गाथा। सिद्धों की केवलज्ञान की अनन्त पर्याय है, ऐसी अनन्त पर्यायें अनन्त गुण की हैं। परन्तु सिद्ध को एक गुण की पर्याय में लोकालोक भासित होते हैं। सिद्ध की एक केवलज्ञान की पर्याय में लोकालोक भासित होते हैं। **समर्थ हैं।**

जब सिद्धपरमेष्ठी अनन्त चतुष्टयरूप परिणमे, तब कार्य-समयसार हुए। देखो! क्या कहते हैं? भगवान सिद्ध परमात्मा अपनी वर्तमान पर्याय में केवलज्ञान, केवलदर्शनरूप

से, कार्यरूप से परिणमे, कार्यरूप से अवस्था हुई, कार्यरूप दशारूप से परिणमे, तब उन्हें कार्यसमयसार कहा जाता है, वे कार्यसमयसार हुए। **अन्तरात्म अवस्था में कारण-समयसार थे।** यह पर्याय जो अन्तर आत्मा में थी न? कारणसमयसार त्रिकाली तो है। यह तो साधक अवस्था में कारणसमयसार है। क्या कहा? क्या कहा? क्या कहा, यह थोड़े-थोड़े शब्द में अन्तर है। बहुत ध्यान रखे तो धीरे-धीरे अभ्यास हो जाये। हिन्दी और गुजराती का एक कोश है। दिया तुमको? है। दिया या नहीं? अपने दो पृष्ठ का है। काल आये थे, (कहा), सीखो। तुम अब यहाँ रहने लगे हो तो थोड़ा-थोड़ा सीखो। ऐई! हमारे सेठिया आते हैं न? वे तो कहे, हिन्दी बोलो ही नहीं, आप गुजराती ही बोलो। हमको तो गुजराती बहुत अच्छा मीठा लगता है। वह हिन्दी है। सरदारशहर, दीपचन्द सेठिया। गुजराती मीठी भाषा है। सरस... सरस तो हिन्दी में भी चलता है न। सरस, सरस ऐसा गुजराती में बोले। रस सहित। आत्मा रससहित-सरस है। सरस है अर्थात् आत्मा के आनन्द के रससहित आत्मा है। यह **कार्यसमयसार हुए।**

जब कार्य-समयसार हुए, तब सिद्धपर्याय परिणति की प्रगटता रूपकर शुद्ध परमात्मा हुए। कितना स्पष्ट किया है! जब भगवान आत्मा कार्यपरमात्मा पर्याय में हुए, तब सिद्धपर्याय परिणति हुई। सिद्धरूपी अवस्था की परिणति अर्थात् पर्याय की प्रगटतारूप-व्यक्तरूप शुद्ध परमात्मा हुए, शुद्ध परमात्मा हुए। आहाहा! कितनी व्याख्या की है! सिद्धपर्याय परिणति से प्रगटतारूप। अर्थात् सिद्धपर्याय पहले प्रगटरूप नहीं थी, शक्तिरूप से थी। उसकी सिद्धपर्याय, परमात्मा अनन्त सिद्ध हुए, उनकी पर्याय प्रगटरूप से पर्याय की परिणति प्रगट हो गयी। उसे कार्यसमयसार और सिद्ध भगवान या कार्यजीव, कार्यजीव (अर्थात्) उस जीव ने कार्य पूरा किया, कृत्य-कृत्य हो गये, उन्हें कार्यजीव कहा जाता है। समझ में आया?

यह बात ऐसी नहीं, न समझ में आये ऐसी नहीं। समझ में आया? परन्तु भाई! केवलज्ञान प्रगट होकर पड़े, ऐसा केवलज्ञान का कन्द तेरे मूल में केवलज्ञान पड़ा है और वह केवलज्ञान जिसमें प्रगट हो, (वह) एक समय में लोकालोक जाने। देखो! सिद्ध को लोकालोक ज्ञात होता है। जितने सिद्धपरमात्मा हुए, उन सबको एक पर्याय में लोकालोक ज्ञात होता है। अनन्त पर्याय तो दूसरी रह गयी। दर्शन की, आनन्द की,

अस्तित्व की, वस्तुत्व की, स्वच्छता की अनन्त पर्यायें। एक समय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें। एक केवलज्ञान की पर्याय में लोकालोक सिद्ध भगवान जानते हैं। समझ में आया? आहाहा!

णमो सिद्धाणं कैसे, उसकी व्याख्या चलती है, लो! पहले से पहाड़े बोलते थे। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उव्वज्झायाणं... आड़ा-टेढ़ा करते होंगे। णमो लोए सव्वसाहूणं। भाई! सिद्ध को नमस्कार करनेवाला आत्मा कैसा है, ऐसा जानकर हम नमस्कार करते हैं, ऐसा आचार्य कहते हैं। ऐसे के ऐसे हम सिद्ध को नमस्कार नहीं करते। यह सिद्ध का स्वरूप शक्तिरूप से था, उन्होंने ध्यान से प्रगट किया। पर्याय में अनन्त पर्यायें निर्मल हो गयी। उनकी एक ज्ञान की पर्याय में लोकालोक ज्ञात हो, ऐसे सिद्ध हैं, उन्हें समझकर हम नमस्कार करते हैं, समझे बिना णमो सिद्धाणं—नमस्कार हम नहीं करते। समझ में आया या नहीं? बड़ा मांगलिक... मांगलिक (किया)।

जैसे सोना अन्य धातु के मिलाप से रहित हुआ... सोना था न सोलहवान? उसके साथ उसकी अन्य धातु कथीर या ताँबा था। **अपने सोलहवानरूप प्रगट होता है,...** वह धातु... रहित हुआ। सोलहवान। तुम्हारे सोणवलुं कहते हैं न? क्या कहते हैं? सौ टंच का सोना सोलहवान्। यह तुम्हारे हिन्दी में तो है। यह पाठ है न? सोलहवान्। समझ में आया? **उसी तरह कर्म-कलंकरहित....** जैसे सोना में पहले ताँबा का कलंक था, ताँबा आदि। उस कलंक से रहित होकर सोलहवान् हुआ। उसी प्रकार सिद्ध भगवान का आत्मा पहले कर्म-कलंकसहित, निमित्त सम्बन्ध और विकारसहित था, उससे **रहित सिद्धपर्यायरूप परिणमे।** सिद्ध की पर्यायरूप से परिणम गये, परिणम गये। वह परिणमन हो गया, समाप्त। समझ में आया?

तथा पंचास्तिकाय ग्रन्थ में भी कहा है जो पर्यायार्थिकनयकर... 'अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो।' क्या कहते हैं? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने पंचास्तिकाय में ऐसा फरमाया है कि **पहले सिद्धपर्याय कभी नहीं पाई थी,...** अनन्त काल में सिद्ध की निर्मल पर्याय कभी प्राप्त नहीं हुई थी, पाये नहीं थे। **वह कर्म-कलंक के विनाश से पाई। 'अभूदपुव्वो'** है न? **'अभूदपुव्वो'** पूर्व में कभी सिद्धपर्याय पायी नहीं थी। पर्याय। द्रव्य तो है वह है, वस्तु अनन्त गुण। मोक्षमार्ग की पर्याय मलिन से रहित होकर

शुरु हुई अभूतपूर्व—पूर्व में नहीं प्रगट हुई, अभूतपूर्व (प्रगट हुई)। पूर्व के अनन्त काल में नहीं हुई, ऐसी पर्याय भगवान को प्रगट हुई। **यह पर्यायार्थिकनय की मुख्यता से कथन है...** क्या कहा? क्या कहा यह? सिद्ध की पर्याय प्रगट हुई, वह पर्यायार्थिकनय का कथन है। पर्याय प्रगटी न? वह तो पर्यायनय का कथन है। द्रव्यार्थिकनय से तो शक्ति त्रिकाल थी। समझ में आया?

क्या कहा? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचास्तिकाय में कहा कि सिद्ध भगवान पर्यायनय से अभूतपूर्व—पूर्व में नहीं थे, ऐसे हुए। नहीं थे, ऐसे हुए, वे पर्याय में हुए, अवस्था में हुए, वह पर्यायनय का कथन है। जो अवस्था को जाने, ऐसे नय का यह कथन है। द्रव्य में जो त्रिकाल शक्तिरूप से सिद्ध हैं, यह द्रव्यार्थिकनय का कथन है। समझ में आया? अब यह नय शुरु हुए।

नय अर्थात् जो पदार्थ का एक अंश जाने। पूर्ण जाने, उसे प्रमाण कहते हैं। एक-एक द्रव्य के एक पर्याय को या द्रव्य के एक-एक भाग को जाने, उसे नय कहते हैं। समझ में आया? तो सिद्ध भगवान सिद्धरूप से परिणमे, वह किस नय का वचन है? पर्याय का, पर्याय प्रगटी न? पर्यायरूप से हुए न? वर्तमान सिद्ध पर्यायरूप से हुए। नहीं थे और हुए, यह पर्यायनय का वचन है। अवस्था का वचन है, अवस्था-दृष्टि का वचन है, अवस्था को सूचित करे, उसका यह कथन है। मुख्यता है, हों!

और द्रव्यार्थिकनयकर... वस्तु को द्रव्य से देखो; द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसके नय से देखो तो **जब सदा ही शुद्ध बुद्ध (ज्ञान) स्वभाव तिष्ठता है।** वस्तुरूप से देखो तो त्रिकाल ज्ञान और आनन्द और शुद्ध ही आत्मा पड़ा है। वह द्रव्यदृष्टि, द्रव्यार्थिकनय से। पूरे द्रव्य को देखने की दृष्टि से देखो तो अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि शक्तिरूप से त्रिकाल है। उसे प्रगट होना या ढँकना उसमें है नहीं। पर्याय के अन्दर भगवान प्रगट हुए। जो स्वभाव में थे, उस स्वभाव में थे, वे पर्याय में प्रगट हुए। सिद्ध प्रभु, उसे सिद्ध कहते हैं। यह पर्यायनय का वचन है। अवस्था को बतानेवाला यह नय है। और जो त्रिकाल थे... प्रगट हुए, वह तो पर्याय हुई। त्रिकाल वस्तु अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द शुद्ध स्वरूप ध्रुव, ध्रुव गुणरूप से जैसी थी, यह द्रव्यार्थिकनय का वचन है। द्रव्य अर्थात् शक्ति को बतानेवाले ज्ञान का वह विषय है। समझ में आया? धीरे-धीरे यह पोचा तो होता है।

देखो! वस्तु है या नहीं? यह पीपर है न? पीपर। पीपर का दाना, यह छोटी पीपर। अमृतचन्दभाई! यह छोटी पीपर—लींडी पीपर, नहीं? यह छोटी पीपर। उसमें चौसठ पहरी चरपराई—तीखाश पड़ी है या नहीं? शक्तिरूप से है या नहीं? वह शक्तिरूप से है, वह द्रव्यार्थिकनय का वचन (हुआ)। द्रव्य, द्रव्य की शक्ति को बतानेवाला ज्ञान और प्रगट हुई बाहर में, वह पर्यायनय का वचन (अर्थात्) प्रगट हुई को बतलानेवाला। इसी प्रकार संसारी प्रत्येक जीव में सिद्धपद और केवलज्ञान तो शक्तिरूप से त्रिकाल पड़ा है, वह द्रव्यनय का वचन। प्रगट हुआ, वह पर्याय का वचन। समझ में आया?

बात तो बहुत सीधी और सादी होती है, परन्तु कभी अभ्यास नहीं होता। आँगन में चढ़ा नहीं, और आँगन में आया हो तो ऊपर-ऊपर से। मूल उसका पर्दा फाड़कर-चीरकर तत्त्व क्या है, यह देखने की दरकार नहीं की। पर्दे के आड़े-आड़े कुछ दिखता है, कुछ न कुछ लगता है। वह पर्दा होता है न घर में? वहाँ कुछ लगता है अवश्य, लाल कपड़ा है। महिला होगी या पुरुष, खबर नहीं, लाल कोट है या साड़ी, खबर नहीं। यह तो पर्दा चीरकर यह आत्मा ऐसा है, (ऐसा कहते हैं)। समझ में आया?

वस्तु से आत्मा, एक-एक आत्मा, हों! द्रव्यार्थिकनय—द्रव्य अर्थात् वस्तु, अर्थी अर्थात् प्रयोजन, नय अर्थात् ज्ञान। जिस ज्ञान का प्रयोजन पूर्ण द्रव्य को देखने का है, उस नय से देखें तो आत्मा में सदा ही सिद्धपद शक्तिरूप से पड़ा हुआ है। वह नहीं था और प्रगट हुआ और प्रगट हुआ है, ऐसा है नहीं। वह अभूतपूर्व कहा था न? नहीं प्रगट हुआ था सिद्ध (पद)। वह पर्यायरूप से नहीं थी और पर्याय प्रगट हुई। द्रव्यरूप से त्रिकाल है। दोनों नय से वस्तु को देखने की आँख है, वस्तु को देखने की आँखें दो हैं। एक त्रिकाल द्रव्य को देखने की आँख, वह द्रव्यार्थिक आँख और एक वर्तमान प्रगट पर्याय को प्रगट हुई को देखने की आँख, अर्थात् पर्यायार्थिक की आँख। ये दो आँखें होकर पूरा दिखता है। समझ में आया?

द्रव्य, द्रव्य अर्थात् वस्तुरूप से आत्मा को एक-एक को देखो तो **शक्ति की अपेक्षा यह जीव सदा ही शुद्ध बुद्ध (ज्ञान) स्वभाव तिष्ठता है। जैसे धातु पाषाण के मेल में भी शक्तिरूप सुवर्ण मौजूद ही है,...** क्या कहते हैं? धातु पाषाण (रूप) है जब पत्थर और सोना, उसमें भी शक्तिरूप से सोना तो शुद्ध ही शुद्ध है। **क्योंकि सुवर्ण-**

शक्ति सुवर्ण में सदा ही रहती है,... उस पत्थर के सोना में सुवर्णशक्ति ऐसी चाहिए। समझ में आया? धातु पाषाण में सुवर्णशक्ति ऐसी चाहिए। है न अन्दर? देखो! छठवीं लाईन। धातु पाषाणेषु, ऐसा चाहिए। सुवर्णशक्ति सुवर्ण में सदा रहती है, ऐसा नहीं चाहिए। धातुवाला है न सोना का पत्थर? धातुसहित पत्थर। उस पत्थर में ही सोनापना शक्ति कायम रही हुई है और धातु से भिन्न करो, तब सोना अकेला प्रगट हो जाता है। समझ में आया? यह पत्थर होते हैं न बड़े? सोना के आते हैं न खान में से। उसका कारखाना होता है, पिघलाते हैं, अकेला सोना पड़ा हो। परन्तु उस पत्थर के सोना में इस सोना की शक्ति है। समझ में आया?

जब परवस्तु का संयोग दूर हो जाता है, तब वह व्यक्तिरूप हो जाता है। सोना, सोना, हों! **सारांश यह है कि शक्तिरूप तो पहले ही था, लेकिन व्यक्तिरूप सिद्धपर्याय पाने से हुआ।** इसी प्रकार आत्मा में, प्रत्येक आत्मा में शक्तिरूप, सामर्थ्यरूप, सत्त्वरूप, भावरूप सिद्धपद गुणरूप तो सदा ही अनादि-अनन्त है। प्रगट अवस्था हुई, तब पर्यायरूप से परिणमित हुए, तब उसे मोक्ष दशा कहा जाता है। यह पर्यायनय का वचन है। कहो, समझ में आया? इसका आधार देकर बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ९, रविवार, दिनांक १९-९-१९६५
गाथा - १, प्रवचन - २

परमात्मप्रकाश, पहले अध्याय की पहली गाथा। देखो! क्या अधिकार चलता है? कि, जो संसार में से सिद्ध भगवान हुए, वे ध्यानाग्नि द्वारा कर्म का नाश करके हुए। जो यह संसारी जीव है चौरासी लाख के अवतार के जीव, उनमें से जो सिद्ध भगवान परमात्मा हुए, वे किस प्रकार हुए, इस गाथा में नय उतारते हैं। आत्मा... देखो!

ऐसा ही द्रव्यसंग्रह में कहा है,... है? इस ओर तीसरी लाईन है। '**सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया**' वे संसारी जीव भी अनन्त जितने आत्मायें हैं, वे **शुद्ध नयकर...** शुद्धनय अर्थात् जो उसकी वस्तु शुद्ध पवित्र है, उसे जाननेवाले नय के द्वारा देखें तो **सभी जीव शक्तिरूप शुद्ध हैं...** सभी आत्मा शक्तिरूप से परमात्मा ही है, शुद्ध ही है। समझ में आया? यह लोग नहीं कहते? कि, भाई! माल निकाल लो शरीर में से जितना निकले उतना। अपवास करके फलाना, नहीं कहते? धूल में—शरीर में कहाँ माल था? आत्मा में माल है, अन्दर शक्तिरूप से परमात्मा है। उसमें से जितना माल निकालना हो, उतना एकाग्र होकर निकाल। कहो, समझ में आया? कहते हैं कि **शुद्ध नयकर...** शुद्ध अर्थात् वस्तु आत्मा पवित्र अनन्त गुण का शुद्ध स्वरूप, परमात्म शुद्ध शक्तिरूप परमात्मा वही है। इस नय से अर्थात् इस ज्ञान से देखें तो सभी शक्तिरूप से, सामर्थ्यरूप से, स्वभावरूप से चैतन्य अन्तर चमत्कार के स्वभावरूप से शुद्ध ही हैं।

पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिकर शुद्ध हुए। देखो! क्या कहते हैं? परन्तु वर्तमान पर्याय में—अवस्था में जो सिद्ध हुए, उस पर्यायनय अर्थात् अवस्था की दृष्टि से देखें तो पर्यायनय से शक्ति की व्यक्ति हुई। प्रगट अवस्था हुई, वह पर्यायनय से हुई, वस्तुनय से तो त्रिकाल शुद्ध ही है। समझ में आया? पर्याय से अर्थात् अवस्था, उसकी हालत। सिद्ध भगवान हैं, वह पर्याय है। सिद्ध भगवान कहीं द्रव्य और गुण नहीं। द्रव्य, गुण तो शाश्वत चीज़ है। सिद्ध पर्याय है, परिणमन एक अवस्था है, उस अवस्था की दृष्टि से

देखें तो व्यक्तरूप भगवान हुआ है, वह अवस्था दृष्टि से हुए हैं। वस्तु दृष्टि से तो त्रिकाल शुद्ध ही है। कहो, समझ में आया?

पर्यायार्थिकनय से व्यक्तिकर... व्यक्ति अर्थात् प्रगट। प्रगटरूप से **शुद्ध हुए।** यह पर्यायनय की अपेक्षा से प्रगटरूप शुद्ध हुए, वस्तुरूप से तो शुद्ध ही थे, अनादि थे ही। सब जीव शुद्ध ही हैं। पर्याय में ध्यान करके (शुद्ध हुए)। ध्यान भी एक पर्याय है। वस्तु का स्वरूप पूर्ण आनन्द है, उसका ध्यान, वह भी एक पर्याय है, अवस्था है। वह ध्यान भी वास्तव में पर्यायनय का विषय है। उस द्वारा परमात्मा की प्रगट अवस्था हुई, इसलिए उसे सिद्ध कहा जाता है।

किस कारण से? ध्यानाग्निना... यह मूल शब्द है न, इसका अर्थ करते हैं। **ध्यानरूपी अग्निकर...** देखो! ध्यानरूपी अग्नि। वस्तु अखण्ड आनन्द और शुद्ध वस्तु है, उसे अन्तर निर्विकल्प ध्यान द्वारा (साधा है)। कर्मरूपी, जड़ है, उनका नाश अर्थात् रूपान्तर होकर आत्मा स्वयं के कारण से सिद्धपद को प्राप्त हुए। समझ में आया?

मुमुक्षु : ध्यानाग्नि की पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एकाग्र कहा न! बात कही न! अन्दर शब्द कहा। वस्तुस्वरूप जो है, उसमें अन्तर एकाग्र होना, वह ध्यानाग्नि है। यह कहा था, बीच में शब्द कहा था। किसी को पूछना नहीं पड़े। ध्यान रखे तो सब आ जाये। वस्तु जो शुद्ध चिदानन्द अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका एकाग्र होकर अन्तर्मुख होकर ध्यान अर्थात् एकाग्र होना, वह ध्यानाग्नि है। अन्तर स्वभाव पूर्ण है, उसके ऊपर लक्ष्य करके एकाग्र होना, वह ध्यानाग्नि है। अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र की आवश्यकता पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अन्दर किसी की आवश्यकता नहीं पड़ती। कहो, समझ में आया?

ध्यानाग्निना अर्थात् ध्यानरूपी अग्निकर... अर्थात् भगवान आत्मा अन्दर शक्तिरूप से है। जैसे दियासलाई में शक्ति है न? दियासलाई कहते हैं न? दियासलाई। दियासलाई में शक्ति है न? अग्नि(रूप) शक्ति तो है अन्दर। ऐसे हुई तो अवस्था में

प्रगट हुई, वर्तमान पर्याय में प्रगट अग्नि हुई। दियासलाई। कहो, समझ में आया? आत्मा की शक्ति...

जैसे दियासलाई में अग्नि की शक्ति है न? वह अग्नि की शक्ति तो अन्दर है, घिसा तब वर्तमान दशा में प्रगट हुई। ऐसे घिसा। उसी प्रकार आत्मा में पूर्ण आनन्द और ज्ञान और परमात्मा ही शक्तिरूप से है। उसकी एकाग्रतारूपी ध्यान लगाया। एकाग्रता की घिसावट, अन्तर्मुख एकाग्रता की घिसावट, घिसना। उस एकाग्रता के घिसने से सिद्धपर्याय प्रगट होती है। कहो, समझ में आया? इसमें तो सिद्ध कैसे हुआ जाये, यह सब बात इकट्ठी आती है। परन्तु लोगों को अन्दर रस नहीं होता न रस, इसलिए ऐसे मानो रूखा लगे। रस से भरपूर ऐसी सराबोर बात है। पूरणपोळी बनाते हैं न? पूरणीपोळी नहीं? लबालब ऐसे घी की तपेली में गर्म डाले। पूरणपोळी कहते हैं, समझ में आया? पूरणपोळी, गर्म-गर्म होती है न? पूरणपोळी। फिर घी की तपेली तैयार हो। ऊँचा घी। पाँच रुपये का सेर अभी तो मिलता है न! बहुत सरस घी। ऐसे अन्दर डाले। सराबोर (हो जाये)।

उसी प्रकार आत्मा अन्तर में पूर्ण आनन्द का सराबोर स्वभाव है। उसकी अन्तर्मुख एकाग्रता (करे)। परन्तु एकाग्रता, वह पर्याय है। पहले पर्याय है, ऐसा निर्णय होना चाहिए। तो द्रव्य में एकाग्र होने पर, वस्तु में एकाग्र होने पर वास्तविक भगवान ने कहा वह आत्मा, हों! अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु शक्तिरूप से शुद्ध है, परमात्मा ही है। उसकी एकाग्रता होने से ध्यानरूपी अग्नि। यह तो उपमा दी है।

कर्मरूपी कलंकों को भस्म किया,... भगवान सिद्धों ने, कर्मरूपी कलंक था, (उसे भस्म किया)। कलंक था, जड़कर्म का सम्बन्ध, वह कलंक था और पुण्य-पाप के मलिन भाव (थे), वह कलंक था। आहाहा! लो! यहाँ कलंक तो कहते हैं। आत्मा के ऊपर वर्तमान पर्याय में जो पुण्य और पाप जीव करता था, वह पुण्य-पाप कलंक है, मैल है। उसे अन्तर की एकाग्रता द्वारा उस कलंक को धो डाला—नाश किया। इसमें समझ में आये ऐसा है, हों! शोभालालभाई! बहुत ऐसा न समझ में आये, ऐसा नहीं है, यह तो सादी भाषा है। भाई! सेठियाओं को ऐसे तैयार करना थोड़ा, न हो तो ऊँचा करके तैयार करना। न समझ में आये, ऐसा नहीं, ऐसा गुजराती (में कहते हैं)। कैसे,

अमरचन्दभाई! आहाहा! **कर्मरूपी कलंकों को भस्म किया,...** भस्म का अर्थ क्या? कर्मरूपी जो पर्याय थी, (वह) अकर्मरूप हो गयी और यहाँ विकार का नाश हो गया। **तब सिद्ध परमात्मा हुए।** तब सिद्ध भगवान हुए।

वह ध्यान कौन-सा है? अब ध्यान की व्याख्या (करते हैं)। एक-एक शब्द की व्याख्या स्पष्ट (आती है)। ध्यान क्या है? ध्यान शुं छे? अर्थात् ध्यान क्या है?

आगम की अपेक्षा तो वीतराग निर्विकल्प शुक्लध्यान है... शास्त्र की आगम अपेक्षा की शैली से तो वस्तुस्वरूप जो है, उसका रागरहित वीतरागी अभेद आत्मा का ध्यान—शुक्लध्यान, उस शुक्लध्यान की अग्नि द्वारा केवलज्ञान प्राप्त हुए, कर्म का नाश किया। वीतराग निर्विकल्प अर्थात् अभेद रागरहित स्वरूप की एकाकार दृष्टि। ऐसा शुक्ल अर्थात् श्वेत अर्थात् उज्ज्वल अर्थात् उजली पर्याय प्रगट करने का कारण। उजली एकाग्रता, उजली। तुम्हारे में उजली कहते हैं? शुक्ल... शुक्ल-सफेद। यह सफेद रंग नहीं। निर्मल निर्मल वस्तुस्वरूप में एकाग्र होने से निर्मल परिणति—निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसे शुक्लध्यान कहते हैं। उस शुक्लध्यान द्वारा कर्मों का नाश किया।

अध्यात्म की अपेक्षा वीतराग निर्विकल्प रूपातीत ध्यान है। लो! इतना किया। अध्यात्म अपेक्षा से **वीतराग निर्विकल्प रूपातीत ध्यान...** ध्यान एक ही है, नाम में अन्तर है। यहाँ रूपातीत कहा, वहाँ वीतराग निर्विकल्प कहा। रूपातीत का अर्थ ही वह सिद्ध समान पर्याय अन्दर एकाकार हुई, सिद्ध को प्रगट करने के लिये एकाकार हुआ, उसका नाम यहाँ निर्विकल्प रूपातीत कहा है, उसमें निर्विकल्प शुक्लध्यान कहा था। यह वीतराग निर्विकल्प शुक्लध्यान कहा, यहाँ वीतराग निर्विकल्प रूपातीत (कहा)। इतना शब्द में अन्तर किया? कितना किया? पहले में शुक्लध्यान (कहा) और यहाँ रूपातीत (कहा) इतना।

अब रूपातीत की व्याख्या करते हैं। **तथा दूसरी जगह भी कहा है—'पदस्थं' इत्यादि, उसका अर्थ यह है कि णमोकार मंत्र आदि का जो ध्यान है, वह पदस्थ कहलाता है,...** पदस्थ—पाँच पद में रहे हुए पाँच भाव। णमो अरिहंताणं, णमो (सिद्धाणं) यह पाँचों आत्मा की दशा है, हों! आत्मा की दशा है। अरिहन्त की दशा, सिद्ध की दशा,

आचार्य की दशा, उपाध्याय और साधु (की दशा)। यह पाँच पद। पद अर्थात् पद में स्थ (अर्थात्) पाँच पद में रहे हुए आत्मा की अवस्थारूप पाँच पद। उनका ध्यान करने से... उसे पदस्थ ध्यान कहा जाता है।

पिण्ड (शरीर) में ठहरा हुआ जो निज आत्मा है, उसका चिन्तवन, वह पिण्डस्थ है,... 'खोज पिण्ड ब्रह्माण्ड का तो पत्ता लग जाये।' इस पिण्ड के अन्दर रहा हुआ भगवान पूर्णानन्द, शास्त्रज्ञान से बराबर ज्ञान करके, गुरुगम से ज्ञान करके, अन्तर में शोध और अन्तर (में) उतर, उसे यहाँ पिण्डस्थ ध्यान कहते हैं। पिण्ड अर्थात् शरीर में, स्थ अर्थात् रहा हुआ आत्मा। उसका अन्तर एकाग्र ध्यान, उसे पिण्डस्थ कहते हैं।

रूपस्थ। **सर्व चिद्रूप (सकल परमात्मा)...** अर्थात् अरिहन्त। सकल अर्थात् शरीरसहित। **जो अरहन्तदेव उनका ध्यान वह रूपस्थ है,...** रूप है न? भगवान अरिहन्त अभी शरीर में है न बारह में। रूपस्थ है। रूपस्थ ध्यान है। उनका ध्यान है, वह रूपस्थ कहलाता है।

और निरंजन (सिद्ध भगवान) का ध्यान रूपातीत कहा जाता है। लो! अत्यन्त निरंजन-अंजनरहित स्वभाव भगवान का है, ऐसा ही मेरा (स्वभाव) है, ऐसा अन्दर में ध्यान करना, उसका नाम रूपातीत निर्विकल्प वीतराग ध्यान कहा जाता है।

वस्तु के स्वभाव से विचारा जावे,... वस्तु अर्थात् भगवान आत्मा। अपना, हों! उसके स्वभाव से विचारें तो **शुद्ध आत्मा का सम्यग्दर्शन,...** शुद्ध भगवान आत्मा, उसकी अन्तर्मुख की निर्विकल्प प्रतीति। उसका **सम्यग्ज्ञान...** उस शुद्ध आत्मा पूर्णानन्द का अन्तर ज्ञान, अन्तर स्वरूप का ज्ञान। और अन्तर **सम्यक्चारित्ररूप...** अन्दर रमणता। वह **अभेद रत्नत्रयमयी जो निर्विकल्प समाधि है,...** वह निर्विकल्प समाधि। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों रागरहित, विकल्परहित समाधि अर्थात् शान्ति है। सम्यग्दर्शन शान्ति, सम्यग्ज्ञान शान्ति, सम्यक्चारित्र शान्ति, इन तीनों शान्ति को यहाँ समाधि कहा है। वह बाबा लोग समाधि (लगावे) उसकी बात नहीं है, हों! यह वस्तु पूर्ण अन्दर में शक्ति से चैतन्य चमत्कार पदार्थ भगवान पूर्ण स्थित है, उसके अन्दर में एकाकार होकर श्रद्धा, ज्ञान, चारित्ररूपी शान्ति प्रगट करना। **उससे उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्द...** उससे उत्पन्न हुआ रागरहित **परमानन्द समरसी भाव सुखरस का आस्वाद वही जिसका**

स्वरूप है,... यह ध्यान की व्याख्या करते हैं, ध्यान की व्याख्या करते हैं। आहाहा! ध्यान में लोग ऐसे कल्पना करे कि, यह है—ऐसा नहीं।

यह आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण परमानन्द का रूप, अनन्त गुण का स्वरूप, उसकी शुद्ध की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसका चारित्र, उससे उत्पन्न हुई शान्ति, उससे उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्द समरसी भाव। उससे उत्पन्न हुआ रागरहित परम आनन्द का वीतरागी भावरूप सुखरस, उसका आस्वाद। **वही जिसका स्वरूप है, ऐसा ध्यान का लक्षण जानना चाहिए।** यह ध्यान का लक्षण। आहाहा! कहते हैं कि, यह भगवान आत्मा... देखो! ध्यान तो करते हैं अनादि का, आर्तध्यान और रौद्रध्यान। ध्यान तो करते हैं अनादि का। दो-दो घण्टे विचार में चढ़ जाये तो दूसरे विचार भी न आवे उसे। चला जाये एक के बाद एक, पुणी में पुणी, पुणी में पुणी। पुणी समझ में आया? रुई की पुणी होती है न?

मुमुक्षु : चौबीस घण्टे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चौबीस घण्टे चले। यह तो एक धारा दो-दो घण्टे किसी समय चढ़ जाये। रोग के लक्षण से या लड़के के थोड़े अल्पता की इज्जत में या लड़के की विशेष इज्जत में या पैसे के ढ़ेर के विचार में चढ़ जाये (तो) दो-दो घण्टे तक लवलीन हो जाये ध्यान में। जेचन्दभाई! मलूकचन्दभाई!

ध्यान का अर्थ एक ज्ञेय में लक्ष्य रखकर दूसरे विचार आने नहीं देना, इसका नाम ध्यान। तो संसार में भी एक लक्ष्य करके जहाँ-तहाँ कोई कमाने की, भोग की, विषय की, कोई कल्पना की, इज्जत की, कीर्ति की (उसमें) एकाकार (हो जाना), वह ध्यान है, वह संसार का आर्तध्यान और रौद्रध्यान है।

वह यहाँ गुलाँट खाता है, अब पलटा मारता है। एक समय का भगवान पूर्ण ऐसे शुद्ध-शुद्ध निर्लेप दीवार। ऐसी ऐसे ध्रुव दीवार वस्तु, उसे चिपटकर, उसमें अन्तर एकाग्र होकर जो परम आनन्द का स्वाद (आया), सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से उत्पन्न हुई शान्ति और उससे उत्पन्न हुआ परम आनन्द, उसका जो ध्यान-सुखरस का स्वाद, वह जिसका स्वरूप है। किसका?—कि, ध्यान का। उसमें (सांसारिक विषय में)

ध्यान का स्वरूप था दुःख। संसार में कमाना, उसमें दो-दो, चार-चार घण्टे, और दूसरे दो घण्टे चले, और दूसरे दो घण्टे चले, बीच में थोड़ा बहुत दूसरा विचार हो जाये। उसका स्वाद दुःखरूप स्वाद, वह गूँगे का स्वाद। नाक का गूँगा होता है न? नाक का मैल। उसका स्वाद। दृष्टान्त नहीं दिया था हमारे (उमराला के) भावसार का? गूँगा समझे? नाक का मैल। उसी प्रकार राग और द्वेष, पुण्य और पाप का ध्यान (मैल है)। समझ में आया? राग और द्वेष, पुण्य और पाप, कमाना, खाना, पीना, भोग, विषय, लड़के का विवाह करना, वह सब ध्यान है, वह अकेला दुःखरूप है। अकेला राग और द्वेषरूप दुःखरूप ध्यान है कि जिसमें दुःख का स्वाद है, उसका नाम आर्त और रौद्रध्यान। जिसमें आनन्द का स्वाद है, उसका नाम आत्मा का ध्यान। समझे? वह धर्मध्यान और शुक्लध्यान के भेद। समझ में आया?

ऐसा ध्यान का लक्षण जानना चाहिए। अर्थात् वे मांडकर ऐसा करे, कुम्भक और रेचक और फलाना, वह ध्यान-फान नहीं, ऐसा कहते हैं। योग को करते हैं न कितने ही? योग से यह साधे और ढींकणा साधे। वह योग-बोग नहीं। योग तो आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु शुद्ध अनन्त गुण की प्रतीति करके, उसका ज्ञान करके उसमें लीनता में से उत्पन्न हुआ आनन्द, वह आनन्द जिसका लक्षण है, ऐसा ध्यान। उस ध्यान द्वारा कर्मकलंक का नाश किया। भगवान ने ऐसे (कर्मकलंक का ध्यानाग्नि द्वारा नाश किया)। यहाँ क्या कहा? कि, कर्म का नाश हुआ, वह दुःख से किया या बहुत सहन करना पड़ा? आनन्द का स्वाद लेते-लेते अनुभव में, ध्यान में उन्होंने आठ कर्मों का नाश कर दिया। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चार। परन्तु सब आवे। फिर जाता है तो अन्तर में। यह तो प्रकार और भेद किये। मूल तो आत्मा में (लीन होता है)। समझ में आया? पदस्थ अर्थात् पाँच पद में रहे हुए। रूपस्थ वह अरिहन्त में रहा हुआ आत्मा। ऐसा मूल तो आत्मा का ध्यान है। सिद्ध रूपातीत है। समझ में आया? पिण्डस्थ—पिण्ड में रहा हुआ भगवान, वह तो वह का वह आत्मा है। चारों में आत्मा का अन्तर में ध्यान है। सिद्ध का लक्ष्य करके भी यहाँ ध्यान, अरिहन्त का लक्ष्य करके यहाँ ध्यान, रूपस्थ, पाँच पद में

रहे हुए आत्मा का लक्ष्य करके यहाँ ध्यान और पिण्डस्थ, वह तो अपना स्वरूप है।

मुमुक्षु : पादस्थ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पदस्थ, पादस्थ नहीं, पदस्थ। पद अर्थात् पाँच पद कहा, पाँच पद में रहा हुआ पाँच पद, जो अरिहन्त, सिद्ध (आदि), उन पाँच पद में रहे हुए आत्मायें, उनका पदस्थ—पाँच पद, पद में रहा हुआ आत्मा, उसकी जो पर्याय निर्मल हुई, उसके द्वारा यहाँ विचार करके आत्मा में उतरना, उसका नाम पदस्थ ध्यान है।

मुमुक्षु : ....रोज गिने वह पदस्थ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला धूल गिने तो क्या करे ? कहो, ठीक कहते हैं यह। प्रतिदिन णमोकार गिने न ? णमो अरिहताणं... वह कहाँ (पदस्थ ध्यान है) ? यह तो उसका भाव आत्मा है, वह उसका बराबर ज्ञान करके, उस आत्मा का ज्ञान करके अन्दर में उतरे, वह ध्यान है। णमो अरिहंताणं करके मर जाये नहीं, अनन्त बार किया ऐसा तो। वह तो विकल्प है, राग है। कहो, समझ में आया ? णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... अन्तरजल्प है, बोले नहीं तो वह अन्दर तो राग है। वीतराग निर्विकल्प ध्यान इसके लिये तो विशेष डाला था। दोनों जगह आगम में और अध्यात्म में, दोनों में। है ? देखो ! वीतराग निर्विकल्प रूपातीत ध्यान, वीतराग निर्विकल्प शुक्लध्यान। इसलिए यह विशेषण दिया है। यह विकल्प नहीं। यह बात, बापू ! ओहोहो !

पूर्ण स्वरूप को अन्तर में रागरहित पर्याय द्वारा एकाग्र होकर जो कलंक का नाश होता है, तब उसे सिद्धपद की पर्याय प्रगट होती है। **उनको भस्मकर सिद्ध हुए।** उन्हें नाश करके सिद्ध हुए, ध्यानाग्नि की इतनी व्याख्या की, लो ! **'जे जाया झाणग्गियएँ कम्मकलंक डहेवि।'** पहले दो पद की व्याख्या की। अभी इनके नय घटित करेंगे। **उनको भस्मकर सिद्ध हुए।**

कर्म-कलंक अर्थात् द्रव्यकर्म... आठ कर्म के रजकण। **भावकर्म...** पुण्य-पाप के भाव, वे भावकर्म। **इनमें से जो पुद्गलपिण्डरूप ज्ञानावरणादि आठ कर्म वे द्रव्यकर्म हैं, और रागादिक संकल्प-विकल्प परिणाम भावकर्म कहे जाते हैं।** दोनों—द्रव्यकर्म आठ कर्म की सूक्ष्म धूल और भावकर्म पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध

के परिणाम, वे भावकर्म। **यहाँ भावकर्म का दहन...** अब जरा अधिक ध्यान रखना पड़ेगा, तो समझ में आयेगा। **अशुद्धनिश्चयनयकर हुआ,...** क्या कहा? सेठी! अभ्यास नहीं होता, अभ्यास। आत्मा पूर्ण शुद्ध स्वरूप वस्तु से है, उसकी वर्तमान दशा में जो विकार-भावकर्म था, उसका नाश किया—ऐसा कहना, वह अशुद्ध निश्चयनय से है। क्योंकि अपनी पर्याय में था, इसलिए निश्चय और मलिन है, इसलिए अशुद्ध; अशुद्ध निश्चयनय से भावकर्म का नाश किया, ऐसा उसका ज्ञान करना। फिर से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। शुद्ध निश्चय में तो है ही कहाँ? वह शुद्ध तो त्रिकाल है। यह तो आत्मा की पर्याय में जितना विकार पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध का जो था, उसका आत्मा ने नाश किया, वह किस नय से? किस ज्ञान द्वारा, उसका देखना? कि, अशुद्ध ज्ञान द्वारा अर्थात् जो ज्ञान इस अशुद्धता को देखे। उसकी पर्याय में था न अशुद्ध? और वह अशुद्ध अपने में था, इसलिए निश्चय, अशुद्ध निश्चयनय से उसका नाश किया, ऐसा कहने में आता है। सेठी! सिद्ध भगवान ने अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप का अन्तर ध्यान करके निर्विकल्प रूपातीत हुए। जो मैल अर्थात् पुण्य-पाप के मैल, जो अरूपी विकार है, उसका नाश किया, उसे कौनसा नय लागू पड़े, नय अर्थात् क्या ज्ञान की अपेक्षा लागू पड़े? कि उसे अशुद्धनय लागू पड़े। लागू पड़े, समझ तो हो न?

इसी प्रकार आत्मा तो त्रिकाल शुद्ध है। अब पर्याय में—अवस्था में जो अशुद्धता थी, उसका आत्मा ने नाश किया, ऐसा कहना, ऐसा जो जानना, उस अशुद्धता को जानना अर्थात् नाश हुआ न अशुद्धता का? और वह भी अपने में था, इसलिए निश्चय। अशुद्ध निश्चय से नाश किया, ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञात होता है। वास्तव में तो अशुद्धता अन्दर है ही नहीं। यह पर्याय का लक्ष्य करके अशुद्ध (नय) से 'नाश किया' ऐसा कहा जाता है अर्थात् जानने में आता है। अशुद्धनय से नाश किया, ऐसा जानने में आता है। शुद्धनिश्चयनय में नाश

करना या कुछ है नहीं। शुद्ध तो शुद्ध ही है, त्रिकाल है। वह आयेगा, देखो! एक-एक शब्द का (स्पष्टीकरण) आयेगा। एक-एक का स्पष्टीकरण करेंगे। यह तो वाँचन हो गया है। यह तो मात्र (टेप रिकॉर्डिंग) उतारने के लिये फिर से लिया है।

द्रव्यकर्म का दहन... देखो! सब वस्तु है, ऐसा सिद्ध करते हैं। भगवान आत्मा वह शुद्ध वस्तु है, उसमें तो दहन करना और उत्पन्न होना, वह वस्तु में नहीं। शुद्ध निश्चयनय वस्तु के स्वभाव की अपेक्षा से यह लागू पड़ता नहीं। परन्तु वर्तमान पर्याय में मलिनता है, उसका नाश किया, वह अशुद्धनिश्चय से जाननेयोग्य है। कहनेयोग्य कहो तो वाणी है और जाननेयोग्य कहो तो ज्ञान का अंश है। एक बात यह सिद्ध की कि मलिन परिणाम थे। कुछ नहीं थे और मैंने श्रद्धा (की), ऐसा नहीं है।

क्या कहा? सात तत्त्व की श्रद्धा कहा है न? सात तत्त्व की (श्रद्धा)। तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। अब जब तत्त्वार्थ सात हैं, उनमें आत्मा एक तत्त्व आया, वह तो पूर्ण शुद्ध है। अब उसमें पर्याय में पुण्य-पाप जो है, वह आस्रव और बन्ध। वह आस्रव, बन्ध अस्तिरूप से थे, ऐसा जानना, वह भी अशुद्धनिश्चय से और उनका नाश किया, वह भी अशुद्धनिश्चय से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु में तो है नहीं, पर्याय में है। अब पर्याय में सिद्धपद प्रगट करना है। अब सिद्धपद स्वरूप से तो है। अब प्रगट करना, वह परमात्मा है। तब (कोई कहे) कि प्रगट कैसे हुआ? कि, अशुद्ध पर्याय जो मलिन थी, वह अशुद्ध निश्चयनय से थी, अस्तिरूप से थी, बफम् है, ऐसा नहीं। वे कहते हैं न कि आत्मा क्या कहते हैं? ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या। जगत कुछ है ही नहीं, ऐसा नहीं। मलिनता थी, थी उसका नाश हुआ, ऐसा अशुद्ध निश्चयनय से जानने में आता है।

अब कर्म का नाश हुआ, वह कर्म भी थे। निमित्तरूप से साथ में जड़कर्म (थे)। उन **द्रव्यकर्म का दहन...** दहन अर्थात् जलना, अर्थात् द्रव्यकर्म का टलना। इसमें कौनसा नय लागू पड़ता है? किस ज्ञान से देखना उसे? **असद्भूत अनुपचरित व्यवहारनयकर...** असद्भूत अर्थात् झूठी दृष्टि। क्योंकि आत्मा में वह है नहीं। वह

विकार तो आत्मा में था। विकार पुण्य-पाप, मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रत तो पर्याय में था। उसका नाश किया, इसलिए उसे अशुद्धनिश्चय कहने में आया। कर्म आत्मा में नहीं, वह तो परवस्तु है। तो परवस्तु है, उसका नाश किया (ऐसा) किस नय से कहा जाता है? कि असद्भूत—झूठी दृष्टि से। उसमें नहीं इसलिए असद्भूत अनुपचरित। परन्तु ऐसे निमित्त-नैमित्तिक नजदीक सम्बन्ध है। सम्बन्ध है न नजदीक? इसलिए अनुपचरित सम्बन्ध कहा। व्यवहार अर्थात् निमित्त। **नयकर हुआ...** उसका नाश अशुद्ध **असद्भूत अनुपचरित व्यवहारनयकर हुआ...** ऐसा जानने में, ज्ञान करने में आवे। कहो, शशीभाई! यह तो बहुत सूक्ष्म आया, भाई! कुछ खबर नहीं होती आत्मा क्या? विकार क्या? विकार कैसे नाश हो? उसका उपाय क्या? उसकी पर्याय (क्या)? यह बिना भान के करने लगे, करो धर्म। किसका धर्म? धूल में होता होगा। जादवजीभाई!

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा देवाधिदेव... एक शब्द जहाँ उठाया कि आत्मा ने ध्यानाग्नि द्वारा सिद्धपद प्रगट किया। अब उसमें सब ज्ञान के न्याय घटित करते हैं। आत्मा ने अशुद्धता का नाश किया, ऐसा जानना, वह अशुद्ध निश्चयनय है। कर्म का नाश किया, ऐसा जानना वह असद्भूत, असद्भूत, सम्बन्धवाला निमित्त था और व्यवहार अर्थात् निमित्त था, इस दृष्टि से असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय से नाश किया, ऐसा कहने में आता है। वास्तव में उसका नाश आत्मा ने किया नहीं, वह तो उसके कारण से हो जाता है। परन्तु निमित्त का सम्बन्ध था, इसलिए व्यवहार अर्थात् अनुपचरित और असद्भूत अर्थात् आत्मा में वह नहीं, आत्मा में वह नहीं, उसमें असत् है। इस प्रकार असद्भूत सम्बन्धवाले व्यवहारनय से उसका दहन किया, कर्म का नाश किया, ऐसा ज्ञान किया जाता है। उसका नाश आत्मा ने किया नहीं। वह कर्म कहीं आत्मा में नहीं थे। कर्म तो कर्म में थे, जड़ में है, वह तो पर में है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु असर-फसर क्या पहुँचे? धूल। समझ में आया? इसीलिए तो असद्भूत कहा, वस्तु पर्याय से अपने में सत् है और अपनी अपेक्षा से कर्म असत् है। अपनी अपेक्षा से... पोतानी समझे? निज की अपेक्षा से। वे कर्म असत् हैं। तो असत् का नाश करे तो असत् दृष्टि से (आत्मा ने) उनका नाश किया, ऐसा कहा

जाता है। आहाहा! भाषा तो ऐसी प्रयोग की है। उपचार (अर्थात्) यह बाह्य का यह मकान बनाते हैं, फलाना करे, तोड़े, वह उपचार। यह नजदीक-नजदीक सम्बन्ध है न। यह बाहर का उपचार। समझ में आया?

यह बीड़ी सुलगायी और बीड़ी बुझा दी। यह उपचार से असद्भूत व्यवहारनय का उपचार है। क्योंकि आत्मा में नहीं था। उसके कारण से वहाँ हुआ, परन्तु वह निमित्त बाह्य दूर है और इतना निमित्तपना है, इतना कहकर असद्भूत उपचार व्यवहारनय से बीड़ी सुलगाई और बीड़ी बुझाई। शोभालालभाई की बीड़ी ली वापस। कहो, समझ में आया? यह हीरा लो, हीरा, पन्ना। यह सेठिया ने हीरा हाथ में लिया और किसी को दिया। वह सब असद्भूत उपचार व्यवहारनय है। उपचार है न! दूर है न वस्तु! कर्म तो यहाँ नजदीक है, एक क्षेत्र में है। जहाँ आत्मा है, वहाँ कर्म है। वह हीरा और बीड़ी कहीं एक क्षेत्र में नहीं। आगे क्षेत्र में है, भिन्न आगे है। भिन्न क्षेत्र की अपेक्षा से उपचार। कहो, समझ में आया? उपचार कहो या आरोप कहो। यह जरा ऐसे नजदीक है अवश्य, इसलिए अनुपचार का सम्बन्ध लिया। आहाहा!

यह वस्तु सर्वज्ञ के घर में ही होती है, अन्यत्र कहीं (नहीं)। सब बातें भले करे वेदान्तवाले कि आत्मा ऐसा है और फलाना ऐसा और ध्यान ऐसे करो। सब धूल-धाणी है, उसे आत्मा की कुछ खबर नहीं। भगवान ने देखा ऐसा आत्मा और भगवान ने प्रगट किया, ऐसा आत्मा, वह सर्वज्ञ वीतराग पंथ के अन्दर ही होता है। ऐसी बातें बहुत से करते हैं, ऐसे ध्यान करना, ऐसा करना ध्यान। परन्तु किसका ध्यान? वस्तु क्या है? पदार्थ कैसा है? कितने गुण से भरपूर है? अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा है। ऐसे गुण की अवस्था में वर्तमान विकार कितनी ही अवस्था में है और कितनी ही अवस्था तो अनादि से निर्मल है, अस्तित्व, वस्तुत्व, वह निर्मल है।

उसमें अशुद्धता का नाश जीव ने किया और सिद्ध हुए, ऐसा कहना, वह अशुद्ध निश्चय का वाक्य है और अशुद्ध निश्चय का ज्ञान है, बस इतना। भगवान ने द्रव्यकर्म का नाश किया। णमो अरिहंताणं, लो न! कर्मरूपी वैरी को भगवान ने नाश किया, यह शब्द। अरिहन्त आया न? अरि। भाई! किस नय का वाक्य है? कर्म तो जड़ हैं। क्या आत्मा जड़ का नाश करे? वह तो उसकी उत्पाद पर्याय उसके कारण से होती है। कर्म

की अवस्था उसके कारण से उत्पन्न हुई, वापस व्यय-अभाव होता है, वह उसके कारण से होता है। आत्मा जड़ का नाश करे ? कि तब कहा किस प्रकार ? कि असद्भूत—झूठे नय से। जो नय अपने में लागू न पड़े, पर की अपेक्षा से उसमें वह नहीं और वह उसमें नहीं। ऐसे नय के ज्ञान द्वारा अनुपचरित निमित्त सम्बन्ध था, वह व्यवहारनय से उसने 'कर्म का नाश किया' ऐसा कहा जाता है। निश्चयनय से आत्मा कर्म का क्या नाश करे ? वे तो जड़ हैं। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... असद्भूत अर्थात् आत्मा में विकार तो था। उसका नाश किया, इसका नाम अशुद्ध निश्चय। स्व में था, इसलिए अशुद्ध निश्चय और कर्म का नाश किया, (ऐसा कहा वह) स्व में नहीं, इसलिए असद्भूत। परन्तु निमित्त सम्बन्ध था, इसलिए अनुपचरित व्यवहारनय से नाश किया, ऐसा जानने में—ज्ञान करने के लिये है। नाश-फाश पर का किया नहीं। अपने आप नाश हो गया है। आहाहा!

यहाँ तो अभी णमो अरिहंताणं के अर्थ की खबर नहीं होती। णमो अरिहंताणं कर्मरूपी शत्रु को (जिसने नाश किया है)। जड़ कर्म वैरी होंगे आत्मा के ? जड़ बैरी होगा आत्मा का ? उस जड़ को खबर भी नहीं, बेचारा कौन है ? उसकी खबर भी नहीं। वैरी तो अन्दर विपरीत मान्यता और राग-द्वेष का भाव, वह वैरी है, वह वैरी है, वह अशुद्ध निश्चय से है और उसका नाश किया, वह भी अशुद्ध निश्चय से है। कर्म-बर्म को वैरी कहना, वह असद्भूत अनुपचारनय का कथन है। वस्तु में वह है नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भजन करे उसमें पाप बाँधता है मिथ्यात्व का। श्रद्धान मिथ्यात्व का। पहिचान बिना किसकी श्रद्धा ? पाप की श्रद्धा है उसे। वस्तु क्या है और यह विकल्प क्या उठता है और विकल्प क्या टलता है, उसका ज्ञान नहीं, वहाँ पाप का ही ध्यान है, मिथ्यात्व है वहाँ तो। बात कठिन बात है, भाई!

मुमुक्षु : नौ लाख...

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ लाख क्या, अनन्त लाख जपे नहीं, वह राग है, वह तो विकल्प है।

एक मास्टर थे, इनके गाँव के। वे दिल्ली जैनशाला पढ़ाने जाते, दिल्ली, दिल्ली। पाठशाला कहलाती है न? पाठशाला। वहाँ आगे झवेरी इन्द्र बड़े लाखोंपति झवेरी थे। उस समय बहुत गिना जाता था न लाखोंपति। चालीस, पचास लाख। अब तो लाखोंपति धूल में गिने जायें। अभी अब करोड़पति गिने जाते हैं। पच्चीस लाख, चालीस लाख और पचास लाख। वह झवेरी लाखोंपति थे। इसलिए वह मास्टर पाठशाला (पढ़ाने जाते थे)। वेतन पच्चीस का, तीस का महीने में देते थे। नागनेश के विसाश्रीमाली थे। हरजीवभाई, नहीं? वे फिर वहाँ के परिचित हुए न, इसलिए यहाँ नागनेश आये। उनका गाँव वह न। फिर दिशा को जंगल प्रतिदिन जाये और (वहाँ) बड़ी नदी है। नदी का नाम क्या? भादरण। वह नदी है, नदी में घण्टे, दो घण्टे बैठे, देखे। जाँच करते-करते सफेद कंकड़ निकले अच्छे, उसमें से कोई हीरा निकल जाये तो। बारीक, बारीक कंकड़ खोजे। क्योंकि वह परिचित था न दिल्ली का झवेरी। झवेरी के पास रहते थे।... इसलिए वह मानो कि मेरा परिचित है तो लाओ न उसमें भादरण नदी में से कोई हीरा निकाल जाये तो दो-पाँच हजार आ जाये। प्रतिदिन बारीक-बारीक खोजे। बहुत थोड़े छोटे सफेद सफेद सेर-सवा सेर इकट्ठे किये होंगे। बारीक-बारीक पत्थर, समझे न? थैली भरी, हों! उसने स्वयं ने मुझसे बात की। फिर लेकर मैं गया दिल्ली। बहुत लोभी थे, विदुर थे न। अन्त में मर गये तब चार हजार निकले। परन्तु दवा-बवा करावे नहीं और ऐसा सब। हमारे बहुत परिचित थे। फिर उस सेठिया के पास गये। इन्द्रलाल या ऐसा कुछ नाम है। आओ.. आओ, मास्टर साहेब! दूसरा नाम (बोलते थे), पण्डितजी, हाँ पण्डितजी। पण्डितजी! आओ आओ पण्डितजी! (यह कहे), मेरी नदी में से खोज-खोजकर यह सवा सेर बारीक-बारीक (कंकड़) खोजकर लाया हूँ। उसमें से कोई हीरा निकले पच्चीस, पचास, सौ, दो सौ, पाँच सौ का तो खोजो। देखा, फिर देखकर अपनी जो दालान था न दालान, बाहर नीचे गलियारे में डाल दिये। क्यों? कि इसमें हीरा तो नहीं, परन्तु हीरा के तौल में जो रत्ती चाहिए न, वह इसमें भी काम आवे ऐसा नहीं। तोला तो उसके कैसे हों। तोला, तोला समझे न? न घिसे ऐसे। क्या कहलाते

हैं ? गंची हो तो ऊँची कोमल चीज़ घिसे नहीं, ऐसी हो वहाँ तोला। यह तोला घिस जाये तो दस हजार रुपये का एक रति भार हीरा आता है। दस हजार का एक रति भार हीरा। अभी आता है, आता है या नहीं ? मैंने देखा है न। आठ रति का लाये थवे ८० हजार का हीरा (बेचरभाई) लाये थे। यह आठ रति का है, ८० हजार रुपये का है। दस हजार की एक रति। अब उसके तोला कैसे हों पक्के कि घिसे हुए न हों। घसायेला समझते हो ? उसका कांटा भी कितना ! ऐसे चार मण चावल तोले ऐसे-ऐसे जाये, ऐसा उसका कांटा नहीं होता। उसका कांटा तो एक जरासा ऐसे झुके, बस। जरा-जरा (झुके)। कांटा एक जरासा ऐसा झुके और जरा ऐसा झुके। क्योंकि वहाँ घिसावट नहीं लगती वापस कांटा की ... (झवेरी) कहता है, पण्डितजी ! इसमें हीरा तो एक भी पाई का नहीं, परन्तु उसके तोला (बांट में) काम आवे, ऐसा नहीं। तेरे नागनेश की नदी में हीरा कैसे ? ये नागनेश के सेठिया हैं। कहो, समझ में आया ? मलूकचन्दभाई ! वहाँ हीरा कैसा ? आशा से मेहनत की तो धूल में निकली।

इसी प्रकार भगवान आत्मा क्या चीज़ है, उसका ज्ञान यथार्थ हुए बिना उसे तोलने जाये, उसका माप करके ध्यान करने जाये थोथे थोथा निकले। पाई न उपजे, मेहनत मुफ्त में जाये। कितने समय की मेहनत उसकी। अरे.. अरे ! कुछ नहीं निकाल, हों ! परन्तु नहीं निकले। क्या कहते हो ? ठगाओगे कहीं। कोई देखने आयेगा तो (कहेगा) तोला (बांट) भी नहीं हो ऐसे। आहाहा !

मुमुक्षु : अभी तक माना हुआ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तक मानी ममता। निकला खोटा खोटा, गप्प निकला। आहाहा ! इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने देखा, ऐसा इसके ज्ञान में न आवे, तब तक इसकी यथार्थ श्रद्धा हो नहीं और यथार्थ श्रद्धा बिना उसका सच्चा ध्यान हो नहीं। तीनों आ गये, ज्ञान, दर्शन और चारित्र।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टा सब। मर गया अनन्त बार ऐसा ध्यान करके। नौवें

ग्रैवेयक गया अनन्त बार जैन साधु होकर, पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार किये। हजारों रानियाँ छोड़कर जंगल में रहता था। क्या हो ? वस्तु क्या है, उसकी खबर नहीं।

भगवान आत्मा परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जैसा अन्दर देखा, वैसा तू है अन्दर। उन्होंने देखा कि, यह पूर्णानन्द है। पुण्य-पाप का विकार तो भगवान ने तुझमें आस्रवतत्त्वरूप से देखा है। कर्म, शरीर अजीव रूप से देखा, भगवान पूर्ण ज्ञानमूर्ति पूर्णानन्द स्वरूप से भगवान ने देखा। ऐसे अन्तर में दृष्टि करके देखे और प्रतीति करे और फिर ध्यान करे, उसे ध्यान सच्चा कहलाता है। समझ में आया ? आहाहा! ऐसी मेहनत अभी... देखो!

शुद्ध निश्चयकर तो जीव के बन्ध-मोक्ष दोनों ही नहीं है। वस्तुरूप से देखो तो वहाँ बन्ध और मोक्ष वस्तु में तो है ही नहीं। पर्याय में बन्ध और पर्याय में मुक्ति है। क्या कहा ? वस्तु जो है ऐसे त्रिकाल चैतन्यमूर्ति अखण्डानन्द सूर्य प्रभु, वह तो बन्ध और मोक्ष, ऐसी जो पर्यायरहित की चीज़ है। पर्याय में बन्ध और मोक्ष है। मोक्षमार्ग भी पर्याय है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ध्यान यह कहा, वह भी पर्याय है, विकारीभाव भी पर्याय है, यह केवलज्ञान आदि भी एक पर्याय है। वह सब पर्यायें हैं। पर्यायें वह वर्तमान पर्यायनय का विषय है। वस्तु जो त्रिकाल अखण्डानन्द प्रभु, वह बन्ध-मोक्षरहित वस्तु है। आहाहा! समझ में आया ? सुजानमलजी! सादडी-बादडी में है या नहीं वहाँ ? क्या करना है तुम्हारे ?

तीन न्याय दिये। कौनसे तीन ? एक तो भगवान आत्मा वस्तुरूप से देखो तो उसके अन्दर पर्याय उत्पाद-व्यय की पर्याय ध्रुव में नहीं। क्या कहा ? आत्मा के तीन अंश हैं। ऐसे प्रत्येक तत्त्व में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्। प्रत्येक तत्त्व के तीन अंश भगवान ने अनादि-अनन्त देखे हैं। तो आत्मा में तीन अंश हैं। उत्पाद—नयी अवस्था उत्पन्न (होना)। व्यय—पूर्व अवस्था का व्यय। और ध्रुव—कायम। तो कहते हैं कि ध्रुवरूप जो शुद्ध वस्तु है, उसमें तो उत्पाद-व्यय की पर्याय का अभाव है। इसलिए उसमें बन्ध और मोक्ष नहीं।

बन्ध, वह विकार का उत्पाद है और उसका व्यय होकर मोक्ष की पर्याय का

उत्पाद हो, वे दोनों पर्यायें हैं। एक पर्याय का व्यय—नाश हुआ और एक पर्याय का उत्पाद हुआ। ये दोनों पर्यायनय का—अवस्था दृष्टि का—विषय है। अवस्था की दृष्टि से बन्ध, मोक्ष है, वस्तु की दृष्टि से बन्ध, मोक्ष अन्दर में है नहीं। समझ में आया? भगवान जाने, उसमें और अवस्था क्या और ध्रुव क्या? भगवान तो जानते ही हैं। वे तो यह कहते हैं कि भाई! सुन तो सही, समझ तो सही। लो!

वस्तु त्रिकाल एक ध्रुव अखण्ड आनन्द और शुद्धस्वरूप ध्रुव। उसमें तो बन्ध-मोक्ष नहीं। क्योंकि उसमें उत्पाद-व्यय नहीं। अब बन्ध की पर्याय जो थी, वह अशुद्ध निश्चय से थी, उसका नाश किया अशुद्ध निश्चय से। अब मोक्ष की पर्याय नहीं थी, वह द्रव्य में से नयी प्रगट हुई, वह भी शुद्ध पर्यायनय का विषय है, वह शुद्ध पर्यायनय का विषय है। त्रिकाल शुद्ध में है नहीं। और त्रिकाल शुद्ध में वह मोक्ष और बन्ध दोनों है नहीं। समझ में आया? सद्भूत व्यवहारनय से वह पर्याय प्रगट हुई। केवलज्ञान भी सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है उसकी और एक अंश है, इसलिए व्यवहार। सद्भूत व्यवहारनय से पर्याय प्रगट हुई। त्रिकाल सद्भूत भगवान तो ध्रुवरूप त्रिकाल है, उसमें बन्ध-मोक्ष है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह बात इन्होंने टीका में विशेष स्पष्ट किसलिए की है? कि जैन के नाम से कोई दूसरे रास्ते चढ़ जाता है और ध्यान करना और यह करना और हमारे में भी ध्यान है और तुम्हारे में भी ध्यान है। दूसरे के ध्यान आदि, वह सब खोटा है। यह वीतराग कहते हैं, उस तत्त्व को समझे बिना उसे सच्चा ध्यान, सच्चा नय या सच्चा सिद्धपद प्रगट नहीं होता। समझ में आया? ध्यान तो सभी कहते हैं। कुम्भक करो और ऐसा करो और ऐसा करो और ध्यान में चढ़ जाना और योग साधे न। योग साधे कुम्भक और रेचक और पूरक और धूल-धाणी। धूल में भी कुछ नहीं उसमें। समझ में आया?

यह तो भगवान आत्मा जितने सिद्ध हुए, वे सब स्वरूप से शक्ति से तो सिद्ध थे। उन्हें तो बन्ध-मोक्ष कुछ लागू पड़ता नहीं। यहाँ ससार अवस्था का अभाव और सद्भाव, वह अशुद्ध निश्चय से है। मोक्ष अवस्था का सद्भाव पर्याय में प्रगट हुआ सद्भाव, पर्याय भी अंश है इसलिए व्यवहार (कहा)। सद्भूत व्यवहारनय से मोक्ष होता है। समझ में आया? कठिन बात, न्यालभाई! यह सब समझे बिना ज्ञान के नयों बिना कितने

ही उल्टा मारते हैं। इसलिए यह स्पष्टीकरण किया है।

इस प्रकार कर्मरूपमलों को भस्मकर जो भगवान हुए,... यह अरिहन्त की व्याख्या। आठ कर्म का नाश और चार का नाश और उसमें वस्तु क्या? नाश कैसे हुआ? 'नाश हुआ' को कैसे कहना? प्रगटा क्या? और प्रगटे बिना की चीज़ क्या? समझ में आया? **इस प्रकार...** इस प्रकार से अर्थात्? अशुद्ध निश्चय से भावकर्म का पुण्य-पाप का नाश किया, असद्भूत अनुपचरित व्यवहारनय से कर्म का नाश किया। वस्तु दृष्टि से बन्ध और मोक्ष है नहीं। **इस प्रकार कर्मरूपमलों को भस्मकर जो भगवान हुए,...**

वे कैसे हैं? वे भगवान सिद्ध परमेष्ठी नित्य निरंजन ज्ञानमयी हैं। वे सिद्ध भगवान तो नित्य निरंजन ज्ञानमयी हैं। अकेला ज्ञानसूर्य रह गया प्रगट। सिद्ध अर्थात् आत्मा का जो ज्ञानसूर्य स्वभाव था, वह पर्याय में अकेली ज्ञानमय दशा, आनन्दमय दशा, शुद्ध दशा, अनन्त वीर्य दशा, पूर्ण पवित्र दशा (प्रगट हो गयी), उसका नाम सिद्ध दशा कहा जाता है। यह विवाद। विवाद, जहाँ हो वहाँ। उसका भी विवाद कि क्या है धर्म। महाव्रत होंगे महाव्रत, करो। यहाँ बाहर के नाम से विवाद और झगड़ा। वस्तु समझे बिना चिड़िया जैसी ही लड़ाई है या नहीं, क्या है वहाँ?

यहाँ पर नित्य जो विशेषण किया है,... देखो! अब सिद्ध भगवान को तीन विशेषण दिये। नित्य, निरंजन और ज्ञानमय। ये तीन विशेषण। कौन से तीन? पर्याय में तीन विशेषण लिये न? **यह एकान्तवादी बौद्ध जो कि आत्मा को नित्य नहीं मानता,...** देखो! बौद्ध मत एकान्त है। वह नित्य को नहीं मानते। उसका निषेध करने के लिये (नित्य कहा है)। वह अज्ञानी है, उसे—बौद्ध को भान नहीं आत्मा का। **यह एकान्तवादी बौद्ध जो कि आत्मा को नित्य नहीं मानता, क्षणिक मानता है...** वह तो क्षणिक ही मानता है। **उसको समझाने के लिये है।** आत्मा क्षणिक नहीं, नित्य है। पर्याय से भी पूर्ण शुद्ध हो, तब शाश्वत् रहनेवाली होती है। **द्रव्यार्थिकनयकर आत्मा को नित्य कहा है,...** वस्तु दृष्टि से वस्तु नित्य, त्रिकाल नित्य है। पर्याय से एक क्षणिक मलिन पर्याय का नाश होकर, क्षणिक पर्याय का—सिद्ध का उत्पाद होता है, वस्तुरूप से त्रिकाल नित्य है। समझ में आया?

टंकोत्कीर्ण अर्थात् टांकी का सा घढ़ा सुघट ज्ञायक एकस्वभाव परम द्रव्य है। भगवान आत्मा द्रव्य। द्रव्य अर्थात् वस्तु, उत्पाद-व्यय रहित **टांकी का सा घढ़ा सुघट ज्ञायक...** ऐसा। भला घढ़ा हुआ मानो ऐसे घाट बिना की, बाहर के घाट बिना की चीज़। ज्ञायक एक स्वभाव... ज्ञायक एक स्वभाव... ज्ञायक एक स्वभाव। चैतन्यप्रकाश द्रव्य एक स्वभाव, उसे भगवान द्रव्य कहते हैं। **ऐसा निश्चय कराने के लिये नित्यपने का निरूपण किया है।** कहो, समझ में आया? पाठ है न? **'णिच्च-णिरंजण-णाण-मय'** यह पहले श्लोक का अर्थ चलता है।

जे जाया झाणग्गियएँ कम्म-कलंक डहेवि।
णिच्च-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि॥१॥

इसका अर्थ चलता है यह। अभी तो एक-एक श्लोक का, एक-एक शब्द का अर्थ चलेगा। आहाहा! पहले श्लोक में नित्य क्यों कहा? कि बौद्ध नित्य नहीं मानते। एकान्त मिथ्यादृष्टि को समझाने के लिये नित्य ऐसा विशेषण दिया है।

दूसरा, **इसके बाद निरंजनपने का कथन करते हैं। जो नैयायिकमती हैं, वे ऐसा कहते हैं, सौ कल्पकाल चले जाने पर जगत शून्य हो जाता है और सब जीव उस समय मुक्त हो जाते हैं,...** नैयायिक का मत है, सब मुक्त हो जाये। सदाशिव। **तब सदाशिव को जगत के करने की चिन्ता होती है।** नया जगत बनाना। वह खोटा है। वह वस्तु ऐसी है नहीं।

उसके बाद जो मुक्त हुए थे, उन सबके कर्मरूप अंजन का संयोग करके संसार में पुनः डाल देता है। मुक्त हो जाये और फिर संसार का कलंक लगा जाये। **ऐसी नैयायिकों की श्रद्धा है। उनके सम्बोधन के लिये निरंजनपने का वर्णन किया...** अब सिद्ध को कोई अंजन नहीं। भावकर्म नहीं, द्रव्यकर्म नहीं और नोकर्म नहीं। ये तीनों कोई नहीं। उन्हें अब अवतार-बवतार होता नहीं। नैयायिक मानते हैं कि उन्हें अवतार होता है, जीव समाप्त हो जाते हैं। इतने अधिक जीव मोक्ष जाये तो फिर यहाँ कौन रहे? वे वापस वहाँ से आवे। अनेक एकान्त मत वीतराग के अतिरिक्त जितने माननेवाले हैं, वे जैन के वाडावालों को भी खबर नहीं और मानते हों वीतराग, कहे उससे उल्टा। समझ में आया?

ऐसी नैयायिकों की श्रद्धा है। उनके सम्बोधन के लिये निरंजनपने का वर्णन किया कि भावकर्म—द्रव्यकर्म—नोकर्मरूप अंजन का संसर्ग सिद्धों को कभी नहीं होता। वे वापस अवतार कहते हैं न? नहीं। अब कभी सिद्ध परमात्मा संसार में आते नहीं। अवतार लेते हैं, ऐसा कितने ही कहते हैं न? राक्षसों को मारने और भक्तों को तारने के लये अवतार ले।... ऊपर से उतरे भगवान, ऐसा होता नहीं, तीन काल में यह बात खोटी है, ऐसा बताने के लिये इसका स्पष्टीकरण किया है।

मुमुक्षु : निरंजन का भाव क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : निरंजन—अंजन नहीं, मैल नहीं। भावकर्म। भावकर्म-द्रव्यकर्म। अब सिद्ध को भावकर्म और द्रव्यकर्म नहीं। पर्याय में, हों! द्रव्य में तो है ही नहीं। सिद्ध की पर्याय को पर्याय निर्मलानन्द है। उस निर्मल पर्याय का अनुभव, वह सिद्ध है। उन्हें अब मलिनता द्रव्यकर्म की, भावकर्म की है नहीं। वे लोग वापस अंजन कहते हैं। समझ में आया? संसार में वापस आवे, वापस भेजे। अब सांख्यमती कहते हैं। अरे! जैन में भी अभी गड़बड़ चलती है। अभी एक पण्डित पूछते थे, सब जीव इतने अधिक यहाँ से मोक्ष जाये, फिर कुछ न कुछ कम हो जाये या नहीं इसमें से? अन्दर में गहरे-गहरे कितनी शंकायें होती हैं। अरे! भाई! अनन्त जीव की संख्या इतनी है, छह महीने और आठ समय में ६०८ मुक्ति में जाते हैं। छह महीने और आठ समय में भगवान ने ६०८ मुक्ति में जाये, ऐसा देखा है। यह अनन्त अनादि काल गया, उस एक शरीर के अनन्तवें भाग में मोक्ष गये हैं। एक शरीर के अनन्तवें भाग में। कब कम हों? तू निकल न अब। छह महीने और आठ समय में ६०८। पहले मिथ्यात्व जाये, विपरीत मिथ्यात्व पहले जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न। यह किसलिए कहा जाता है? जैन का अर्थात्? ... करने के लिये तो यह बात चलती है। जैनियों के लिये तो यह चलता है। जैन नाम धराकर जैन (कहलावे) परन्तु ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन कहाँ हैं ? वे जैन होते नहीं। अरे! बहुत जैन पड़े हैं न। महाविदेह में बहुत सन्त हैं न! जैन परमेश्वर के निकट बहुत सन्त हैं। महा आत्मध्यान-ज्ञान में स्थित हैं। यहाँ जैन का भी बड़ा भाग ऐसा है। ... है नहीं ? है या नहीं ? कोई भी है न। समझ में आया ? बाकी बड़ा भाग तो जैन का नाम धरावे तो कहीं जैन हो गया ? वाडा में नाम धरावे। जैन की खबर नहीं होती। जैन परमेश्वर क्या कहते हैं ? उपाय क्या ? वस्तु क्या ? पर्याय क्या ? मलिन क्या ? संयोग क्या ? कुछ भान हो, जैन कहे कौन उसे ? थैली में लिखे लाख रुपये, थैली के ऊपर लिखे लाख और अन्दर भरा हो चिरायता। इसलिए कहीं चिरायता मीठा हो जाये ? चिरायता रुपये हो जायें ? करीयाता समझते हो ? चिरायता। थैली में चिरायता भरा हो और ऊपर लिखे शक्कर। तो चिरायता मीठा हो जाये ?

इसी प्रकार भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा आत्मा और उसका अन्तर में शुद्ध का ध्यान और अशुद्धता का नाश, कर्म का अभाव और पूर्णानन्द की प्राप्ति, ऐसी जिसे अन्तर में पहिचान और प्रतीति हो, उसे अन्तर अनुभव की दृष्टि, उसे जैन कहा जाता है, दूसरे को जैन, परमेश्वर कहते नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ११, मंगलवार, दिनांक २१-९-१९६५
गाथा - १, २, प्रवचन - ३

परमात्मप्रकाश चलता है। पहली गाथा, पहली गाथा में क्या कहते हैं? देखो!

जे जाया झाणग्गियएँ कम्म-कलंक डहेवि।
णिच्च-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि॥१॥

एक-एक शब्द का अर्थ करते हैं। कहाँ तक आया? देखो! अपने इस ओर। सिद्ध भगवान जो अभी तक हुए, वे सब ध्यानरूपी अग्नि से हुए हैं। कर्मरूपी कलंक को दहन करके। आत्मा पूर्णानन्द वस्तु अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का स्वरूप, उसका ध्यान अर्थात् उसके ओर की एकाग्रता करके पूर्ण सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं। अर्थात् सिद्धपद कैसे प्राप्त हुआ, उसकी पहिचान होकर सिद्ध को नमस्कार किया है।

पश्चात् उन्होंने बहुत प्रकार लिये। नित्य, निरंजन, ज्ञानमय—इन तीन शब्दों की व्याख्या चलती है। सिद्ध भगवान, वे नित्य हैं। बौद्ध आदि कोई अनित्य कहते हों तो उनका खण्डन किया। अनित्य हो नहीं सकते। वस्तु से नित्य है और पर्याय भी सादि-अनन्त है। वह पर्याय क्षण-क्षण में भले नयी-नयी हो, तथापि अनन्त काल ऐसी की ऐसी रहेगी, परन्तु वहाँ द्रव्य तो नित्य है।

निरंजन।... व्याख्या की। नैयायिक कहते हैं कि सिद्ध होने के पश्चात् भी वापस अवतार धारण करे। उसके लिये निरंजन कहते हैं। उन्हें मैल होता नहीं। अब अवतार नहीं हो, उन्हें कर्म-बर्म अब नहीं। पूर्णानन्द का ध्यान करके जो आनन्द को प्राप्त हुए, ऐसे परमात्मा को (अब जन्म होता नहीं, ऐसा कहकर) उपाय भी बताया कि, आत्मा का स्वभाव, उसका ध्यान करना, वह उपाय। और फल में सिद्धपद प्राप्ति हुई, उन्हें फिर से अवतार होता नहीं। कहो, समझ में आया? इसलिए निरंजन विशेषण कहा।

अब एक विशेषण रह गया ज्ञानमय। सिद्ध में भी ज्ञान रहता है। ज्ञान कहाँ जाये? ज्ञान तो उनका स्वरूप है। वह ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, वह केवलज्ञान है। केवलज्ञानमय

सिद्ध भगवान हैं। उन्हें—परमात्मा को सिद्ध कहा जाता है।

अब सांख्यमती कहते हैं जैसे सोने की अवस्था में सोते हुए पुरुष को बाह्य पदार्थों का ज्ञान नहीं होता। क्या कहते हैं? सांख्यमती में ऐसा एक अभिप्राय है (कि) सोता हुआ मनुष्य (हो), उसे बाह्य पदार्थ का ज्ञान नहीं होता। सोता हुआ नींद में। इसी प्रकार सिद्ध को। सिद्ध सो गये हैं अब। परमात्मा हुए वे सो गये, अब उन्हें ज्ञान नहीं होता। परमात्मा हो तो अभी तीन काल का ज्ञान? उपाधि कितनी! सेठी! केवलज्ञान तो उनका पर्याय स्वभाव है। तीन काल, तीन लोक को और स्व को पूर्ण जानना, ऐसी पर्याय, वह सिद्ध का पर्याय धर्म है, वह ज्ञानमय है, वह ज्ञान से खाली नहीं। देखो!

वैसे ही मुक्त जीवों को बाह्य पदार्थों का ज्ञान नहीं होता। ऐसे जो सिद्धदशा में ज्ञान का अभाव मानते हैं, उनको प्रतिबोध कराने के लिये तीन जगत तीन कालवर्ती... आत्मा सर्वज्ञपद प्राप्त हुआ, यहाँ आत्मा के अन्तर ध्यान, ज्ञान, श्रद्धा, अनुभव से, वह पर्याय वहाँ भी पूर्ण सिद्ध में रही। **तीन जगत तीन कालवर्ती सब पदार्थों का एक समय में ही जानना है,...** सिद्ध भी केवलज्ञान से तीन काल-तीन लोक को जानते हैं। अब उन्हें क्या बाकी रह गया होगा उसे जानते होंगे? जानने का तो उनका स्वभाव है। बाकी क्या रहे? केवलज्ञान आत्मा की पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, वह पूर्ण प्रगट हुई, उसमें तीन काल-तीन लोक को जानने की अवस्था, उनके आनन्द सहित, उनके ज्ञान के साथ वर्तती है। **अर्थात् जिसमें समस्त लोकालोक के जानने की शक्ति है...** पर्याय में। सिद्ध की परमात्मा की पर्याय में तीन काल-तीन लोक को जानने की सामर्थ्य है। ऐसी पर्यायसहित सिद्ध को सिद्धपना प्राप्त हुआ है। कहो, समझ में आया?

ऐसे ज्ञायकतारूप केवलज्ञान के स्थापन करने के लिये सिद्धों का ज्ञानमय विशेषण किया। सिद्ध ज्ञान निरंजन कहा, नित्य कहा, निरंजन और ज्ञानमय। तीन विशेषण के हेतु बतलाये। **वे भगवान नित्य हैं, निरंजन हैं, और ज्ञानमय हैं...** नित्य कहने से सिद्ध द्रव्यरूप से नित्य है और पर्याय एक क्षण की रहती है। ऐसी पर्याय वापस ऐसी और ऐसी नयी-नयी होने पर भी अनन्त काल रहते हैं। निरंजन—अंजन नहीं और ज्ञानमय तीन काल-तीन लोक का ज्ञान भी सिद्धपद को होता है। **ऐसे**

सिद्धपरमात्माओं को नमस्कार करके ग्रन्थ का व्याख्यान करता हूँ। एक-एक शब्द की व्याख्या की।

यह नमस्कार... है न? नमस्कार करके, आया न? अन्तिम '**णवेवि**' है, अन्तिम शब्द '**णवेवि**'—नमस्कार करके। **यह नमस्कार शब्दरूप वचन द्रव्यनमस्कार है...** सिद्ध भगवान को पहिचाना कि ऐसे सिद्ध, द्रव्यस्वभाव का ध्यान करके, वस्तु जो अखण्ड आनन्द की ज्ञान, श्रद्धा, स्थिरता करके केवलज्ञान प्राप्त हुए, (वे) नित्य, निरंजन, ज्ञानमय रहे, उन्हें मेरा नमस्कार। वाणीरूप से नमस्कार, उसे द्रव्य नमस्कार असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है। असद्भूत अर्थात् वाणी है न? वह आत्मा में नहीं। उसे निमित्तरूप से असद्भूत वचन का नमस्कार व्यवहार कहा और **और केवलज्ञानादि अनन्त गुणस्मरणरूप भावनमस्कार कहा जाता है।** परमात्मा के अनन्त गुणों का स्मरणरूप, है विकल्प, वह भावनमस्कार। समझ में आया? वह अशुद्ध निश्चयनय से। वह अशुद्ध निश्चय और व्यवहार और कहा कोई (बात सुनी न हो)।

नमस्कार करने के दो प्रकार। एक तो वाणी द्वारा नमस्कार किया, वह असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है। क्योंकि वह आत्मा की पर्याय नहीं। और भाव नमस्कार, यह भाव नमस्कार अशुद्ध निश्चय का है। वह सिद्धपद जो पहला समयसार में (भाव नमस्कार किया है), वह यह नहीं। समयसार में भाव नमस्कार (अर्थात्) निर्विकल्प समाधि है। समझ में आया? भाव अर्थात् अनन्त गुण के स्मरणरूप जो विकल्प, उससे जो नमस्कार किया जाता है, उसे अशुद्ध निश्चयनय से नमस्कार किया, ऐसा कहा जाता है। अब अशुद्ध निश्चय क्या होगा? आत्मा में भगवान को वन्दन करने का विकल्प उठा न, वह अशुद्ध है। है अपनी पर्याय में, इसलिए निश्चय है। उस द्वारा नमस्कार किया, ऐसा अशुद्ध निश्चय से कहा जाता है। वाणी से नमस्कार किया, वह असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है। समझ में आया? इन्होंने लेखन में नय नहीं उतारे। टीका में है। समझ में आया? एक-एक में नय उतारे हैं।

यह द्रव्य-भावरूप नमस्कार व्यवहारनयकर साधकदशा में कहा है... पूर्ण स्वरूप में तो फिर कुछ वन्दन करूँ और वन्दन योग्य, ऐसा रहता नहीं। वह तो पूर्णानन्द को प्राप्त हुए। यहाँ तो **व्यवहारनयकर साधकदशा में कहा है, शुद्धनिश्चयनयकर**

वंद्य-वंदक भाव नहीं है। शुद्ध निश्चय में, भगवान वन्दन योग्य है और मैं वन्दन करनेवाला—ऐसा भेद होता नहीं। एकाकार स्वरूप में अकेली रमणता, वह नमस्कार है। कहो, समझ में आया?

ऐसे पदखण्डनारूप... पद पद। एक-एक पद का खण्डन—भिन्न-भिन्न करके **शब्दार्थ कहा...** एक-एक का शब्दार्थ कहा। कहा न? '**जे जाया**' ध्यान किया, वह क्या? '**झाणग्गियएँ**' क्या किया? '**कम्म-कलंक**' क्या था? वह द्रव्यकर्म क्या टला? भावकर्म कैसे टले? किस नय से (कहा)? '**णिच्छ-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि**' अन्तिम नमस्कार था। उस नमस्कार पद के भी इस प्रकार से दो अर्थ किये। ऐसे शब्दार्थ कहा। **ऐसे पदखण्डनारूप शब्दार्थ कहा और नयविभागरूप कथनकर नयार्थ भी कहा,...** नय का कथन किया। शब्द का नमस्कार असद्भूत व्यवहार से, विकल्प का नमस्कार अशुद्ध निश्चयनय से, कर्म का दहन करना, वह असद्भूत व्यवहारनय से, भावकर्म का जलना, वह अशुद्ध निश्चयनय से। कितना याद रखना इसमें? समझ में आया? यह नयार्थ भी कहा, एक श्लोक के अन्दर शब्द का अर्थ भी कहा और उस शब्द में क्या भाव था; ध्यान वह क्या; कर्म का टलना, वह क्या; नमस्कार वह क्या, उसका नय से भी घटित किया है।

तथा बौद्ध, नैयायिक, सांख्यादि मत के कथन करने से मतार्थ कहा,... इससे—इस अभिप्राय से विरुद्ध कहनेवाले कौन थे, उसका इसमें निषेध बताया। यह मतार्थ भी इसमें बताया है। एक-एक श्लोक में पाँच बोल के अर्थ हैं। आहाहा!

इस प्रकार अनन्त गुणात्मक सिद्ध परमेष्ठी संसार से मुक्त हुए हैं,... यह सिद्धान्त अर्थात् आगम का अर्थ हुआ। आगमार्थ। अनन्त सिद्ध, अनन्त गुणस्वरूप सिद्ध परमेष्ठी संसार की पर्याय से मुक्त हुए। अपनी निर्मल पर्याय को प्राप्त हुए। यह सिद्धान्त का—आगम का अभिप्राय कहा। समझे? अब भावार्थ। **और निरंजन ज्ञानमयी परमात्मद्रव्य आदरने योग्य है,...** वे निरंजन अर्थात् मलिनरहित, ज्ञानमय सिद्ध भगवान ऐसे परमात्मा, वे ही आदरणीय हैं, वे ही उपादेय है। यह भावार्थ कहा।

एक गाथा में पाँच बोल कहे—शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, भावार्थ। कहाँ ऐसा सब करने जाये? ऐसे एक-एक गाथा में पाँच-पाँच घटित करना, ऐसा कहते हैं।

प्रत्येक शास्त्र में यह शब्द कहा, शब्द कहा, ऐसा नहीं। यह अभी विवाद करते हैं न? यह लिखा शास्त्र में, यह लिखा शास्त्र में। परन्तु वह कथन किस नय का है? शब्दार्थ तो हुआ कि, व्यवहार से कर्म का जीव ने नाश किया। यह तो शब्दार्थ हुआ। व्यवहार। परन्तु अब इसका नयार्थ क्या? कि, व्यवहार से किया अर्थात् वास्तव में उसका नाश किया नहीं। यहाँ विकार का नाश होने पर उसका निमित्त और उसके कारण से कर्म के नाश होने की योग्यता (थी), उतना निमित्त सम्बन्ध बतलाने के लिये जीव ने व्यवहार से नाश किया, ऐसा कथन असद्भूत—झूठे नय से कहा जाता है। समझ में आया? शास्त्र को समझने के लिये यह पाँच प्रकार चाहिए, ऐसा कहते हैं। ऐसा का ऐसा वाँच जाये (कि) इसमें यह लिखा, इसमें यह लिखा। (ऐसा नहीं चलता)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ है? निकाल डालते हैं। ऐसा कि ऐसा भी समय लेने की कहाँ निवृत्ति है? वाँचन करना घण्टे, दो घण्टे, चार घण्टे। परन्तु वाँचने में भी इस प्रकार वाँचना चाहिए। यह जो गाथा रखी हो, उसका शब्दार्थ एक-एक पद का, वह किस नय का वाक्य है? पराश्रित है, स्वाश्रित है, भेदवाला है, अभेदवाला है? नय का अर्थ करना चाहिए। और उससे विरुद्ध किस मतवाले ने इससे विरुद्ध कहा है? कि बौद्ध मतवाले के लिये नित्य कहा; सांख्य कहते हैं ज्ञान नहीं, इसलिए ज्ञानमयी (कहा), ऐसे मतार्थ लेना। और आगमार्थ तो सिद्धान्त को सिद्ध करना है कि सिद्धपद अपनी निर्मल पर्याय को प्राप्त हुए। यह सिद्धान्त का आगमार्थ है। भावार्थ वह निरंजन, निराकार परमात्मस्वरूप, वही आत्मा को अन्तर में आदरणीय है। वह तात्पर्य—अर्थ कहा। तात्पर्य अर्थ कहो या भावार्थ कहो, (दोनों एकार्थ हैं)।

यह सब विवाद अभी है। सब कहे, इस शास्त्र में हमने लिखा। हमको खबर नहीं कि, ऐसे उल्टे अर्थ करेंगे। हमने इस शास्त्र में आचार्यों के शब्द कहे, इसलिए मानेंगे, परन्तु नहीं माना उन्होंने। फूलचन्दजी को ऐसा लिखते हैं। किस नय का वाक्य तू दे देवे? हो व्यवहारनय का वाक्य और ठहरावे परमार्थ का। अमरचन्दजी / फूलचन्दजी के सामने बहुत लिखा है न? तो फूलचन्दजी ने, यह तो व्यवहारनय का कथन है। यह परमार्थ से नहीं। (तो वे कहें), नहीं, तुम आचार्य को मानते नहीं, आगम को मानते नहीं, लो, ठीक।

यह क्या कहते हैं? पहली गाथा में यहाँ रखा। परमात्मप्रकाश। वस्तु का स्वरूप कैसा है, ऐसा अज्ञानी बहुत प्रकार से कल्पित करते हैं। आत्मा के नाम से तो बातें भी बहुत चले, परन्तु परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर जैन परमेश्वर कि जिन्होंने सर्वज्ञपद में जैसा स्वरूप सिद्ध का जाना, संसारी का जाना, नौ तत्त्व और छह द्रव्य उन्होंने जो जाने, तत्प्रमाण जिसकी श्रद्धा और ज्ञान हो, उसे सच्चा तत्त्व प्रतीति में आया, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा तो सब (कहे), आत्मा करो। परन्तु क्या आत्मा? आत्मा का ध्यान करके भगवान ने (कर्म का नाश किया)। वह ध्यान क्या होगा? बोल! ध्यान अर्थात् क्या? कौन जाने? वह द्रव्य अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय? भगवान जाने। वह पर्याय है तो किस नय की पर्याय है? वर्तमान पर्याय है तो किस नय की? निश्चय की, शुद्ध निश्चय की है या वर्तमान भेदरूप व्यवहारनय की है? यह तो किसकी है? अशुद्ध निश्चय की है। समझ में आया? कहो, धर्मचन्दजी! इसमें बहुत याद रखना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। अभी तक क्या किया? (कुछ) नहीं किया? एक गाथा में कितना...! समझे? देखो! पाठ लिया न? मूल पाठ।

'जे जाया झाणग्गियएँ' जो ध्यानाग्नि से हुए, ध्यानाग्नि। ध्यान, वह क्या? आत्मा क्या? और उसमें से ध्यान के फलरूप से आया क्या? कि आत्मा तो शुद्धनय से त्रिकाल अखण्डानन्द द्रव्यस्वभाव है। उसकी ध्यानाग्नि लगाकर एकाकार, वह तो पर्याय है, अभी अपूर्ण पर्याय है और अपूर्ण पर्याय के फलरूप से केवलज्ञान और सिद्धपद की पूर्ण पर्याय प्रगट हो, ऐसी पर्यायों के प्रकार बताये। और कर्म का नाश (किया, ऐसा कहा)। आत्मा में वे कर्म नहीं, इसलिए आत्मा में—पर्याय में विकार है, उसका नाश किया, वह अशुद्ध निश्चय से स्व में है, मलिन है। स्व में है, इसलिए अशुद्ध निश्चय से नाश किया। उसका निमित्त पाकर वहाँ पाने के योग्य था, उसका सम्बन्ध बतलाने के लिये असद्भूत व्यवहारनय से उसका नाश किया, ऐसा कहा गया है। कर्म, अशुद्धता, ध्यान, शुद्धता का फल, पर्याय पूर्ण, वह सब एक-एक तत्त्व के अन्दर उसमें समावेश आना चाहिए। बराबर है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अग्नि उस लकड़ी को जलावे, इसलिए अग्नि की उपमा

(दी है) । कर्मरूपी लकड़ी की पर्याय बदल गयी न ? यह विकार नाश हो गया, लो न! विकार का नाश हुआ अग्नि से। अग्नि अर्थात् स्वरूप में एकाग्रता हुई और उसका नाश, इसलिए उसे अग्नि की उपमा दी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्वाला कहाँ उठे ? धूल। वह ज्वाला उठे एकाग्रता की। आता है न ?

इस प्रकार भगवान आत्मा एक स्वरूप से अनन्त गुणरूप। एक स्वरूप से अनन्त गुणरूप। अकेला द्रव्य और एक ही गुण, ऐसा नहीं। अनन्त गुणरूप एक स्वरूप, ऐसा पहले निर्णय होना चाहिए। पश्चात् उसकी पर्याय में—अवस्था में संसार मलिन दशा है। यदि मलिन दशा न हो तो उसे ध्यान करना और कुछ करना रहता नहीं। अशुद्धता है, वह उसकी दशा में—पर्याय में है। उसे आत्मा की अन्तर एकाग्रता द्वारा उसका व्यय होता है और उसकी पूर्ण शुद्धता का उत्पाद होता है। पूर्ण शुद्धता में भी नित्यता, निरंजन और ज्ञानमय रहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तुम्हारे क्या काम है ? यह तो मुख्य वस्तु है। किस अपेक्षा से कहना है, उस कथन की अपेक्षा न समझे तो उसका भाव समझ नहीं सकता। समझ में आया ? भगवान से यह आत्मा अनन्त समझ पड़ी। लो! आता है या नहीं ? तीर्थंकर हो तो अनन्त जीव तिर जायें, लो! यह वाक्य आया शास्त्र में। अब उसे समझना पड़ेगा या नहीं ? कि तीर्थंकर हुए, इसलिए अनन्त तिरे ? तिरनेवाले अपनी पर्याय से तिरें, उसमें यह निमित्त कहा गया। इसलिए उनसे तिरे, ऐसा व्यवहारनय से कथन किया जाता है। शोभालालभाई! न्याय समझना पड़ेगा या नहीं ? किस अपेक्षा से कहा है ? ऐसे का ऐसा समझे बिना माने तो उल्टे अर्थ करेगा। यह सब अन्यमत और जैन में गड़बड़ी उठी है, ऐसी न अभी ? जैन में रहे हुए को खबर नहीं (कि) अन्य क्या कहते हैं, नहीं खबर जैन क्या कहते हैं। जैन अर्थात् सत्य वस्तु और अजैन अर्थात् सत्य से विरुद्ध कहनेवाले। दोनों की उसे खबर मिले। बड़े मानधाता त्यागी नाम धरावे और पण्डित नाम धरावे, खिचड़ा करते हैं सभी। अमरचन्दभाई!

यह तो जैन का परम सत्य है। जैन अर्थात् सम्प्रदाय नहीं। वस्तु ही अखण्डानन्द अनन्त गुण का पिण्ड एक-एक पदार्थ है। उसकी पर्याय में विकार (होता है), उस विकार को जीतना अर्थात् स्वभाव का आश्रय लेकर वह नाश हो, ऐसी दशा करे, माने, अनुभव करे, उसे जैन कहते हैं। वह तो वस्तु की स्वरूप स्थिति है। उसमें भगवान ने कहा, इसलिए स्थिति है ? स्थिति है, ऐसा जाना और जाना, वैसा कहा। आहाहा! सेठी! एक गाथा में तो कितना रखा है! दृष्टि करना पड़ेगी। निवृत्ति नहीं वहाँ। निवृत्त होते हैं कि उसमें ? बहियों में कितनी बहियाँ की ? कहीं रास नहीं आया। ऐसे से ऐसे भटका भटक, भटका भटक (की)। कितनी इकट्ठी की और कितनी छपाते और कितनी लिखते हैं। उत्साह बहुत करे फिर ठिकाने पड़े नहीं, ऐसी सब तुम्हारी छाप ऐसी है अन्दर। समझ में आया ? ...भाई! परन्तु वह उत्साह क्या काम आवे ? बाहर की क्रिया में क्या काम आवे ? तब उसे ऐसा हो कि भाई! अशुद्ध निश्चय से विकल्प आया। समझ में आया ? अब यह कार्य जो मैं करता हूँ, ऐसा कहता हूँ, वह तो असद्भूत व्यवहार से है। बने तो असद्भूत व्यवहारनय से किया, ऐसा कहा जाता है। बने तो। न बने तो नहीं। वहाँ क्या काम आवे उत्साह पर में ? कुछ काम की नहीं। नोवेल-बोवेल में कुछ नहीं ? सेठी! उत्साह क्या काम आवे ?

'होंशिडा मत होंश न कीजे' ऐसी एक स्वाध्याय आती है, हों! चार स्वाध्याय आती है न ? चार सज्झायमाला आती है। सब पढ़ी हुई है न! दुकान पर चारों पढ़ी हुई है। (संवत्) १९६४-६५-६६ के वर्ष दुकान पर (पढ़ी हुई है)। 'होंशिडा मत होंश न कीजे' होंश समझे न ? होंश को क्या कहते हैं ? होंश का अर्थ नहीं ? वह तुम्हारी भाषा तुमको बराबर (आती नहीं)। होगा वहाँ होंश में होगा। होंश नहीं करना, होंश नहीं करना। अर्थात् ऐसा कि, ऐसा कर डालूँगा, ऐसा कर डालूँगा, मैं ऐसा कर दूँगा, मैं ऐसा कर दूँगा। ऐसी पूरी एक सज्झाय है। चार सज्झायमाला में स्वाध्याय है। 'होंशिडा मत होंश न कीजे' ऐसा है, हों! फिर भूल गये। उस समय सब याद था न। १६४-६५-६६ में। संवत् १९६४-६५-६६। तब से वांचन तो था न। दुकान पर निवृत्ति बहुत थी। चारों स्वाध्याय (की हुई)। बड़ी पुस्तक है। क्या कहलाती है वह ? सज्झायमाला। सज्झाय, सज्झाय करने की माला। अर्थात् अनेक-अनेक उसमें स्वाध्याय। बहुत प्रकार की, तेरह

काछिया की और उसकी, बहुत आती है। दुकान के ऊपर बहुत वांचते थे। होंशिडा अर्थात् हे होंश के करनेवाले! यह बाहर का उत्साह, लो! ऐसा कर दूँगा, ऐसा कर दूँगा। धीर हो, धीर हो। बाहर का तेरा विचारा कुछ होता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे खबर भी कब थी, उसे तो ऐसा कि, होंशिडा (अर्थात्) बहुत होंश नहीं करिये। ऐसा उसका (अर्थ होगा)। धीर हो, धीर हो, ऐसा अर्थ है। परन्तु उसका अर्थ यह यहाँ अपने होता है। बहुत ऐसा उत्साह नहीं करना विकल्प में कि, ऐसा कर दूँगा, ऐसा कर दूँगा। वह बाहर का होनेवाला होगा, वह होगा; कहीं तेरे विकल्प से और उत्साह से हो, ऐसा नहीं। उत्साह करो। उत्साह करे न? ऐसा कर दूँ। सवेरे ही उठकर आज तो दस हजार मण तम्बाकू तो बेचनी ही है। क्योंकि भाव घटने लगा है। ऐसा नहीं होता, वह तो होनेवाला होगा, वह होगा। बाहर का कोई लेनेवाला मिले या देनेवाला हो, वह कहीं आत्मा के अधिकार की बात नहीं। समझ में आया? यह क्या कहते हैं? हराजी, हराजी नहीं कहते? हराजी नहीं कहते? सवेरे बस यह पचास हजार का माल है, हराजी कर दूँ। एक व्यक्ति ... दुकान-बुकान छोड़कर सब सौंप दिया किसी को। ... कपड़े की दुकान। वे कहते थे। कपड़े की दुकान थी, वह जो दे, वह लेकर भागो वहाँ से, क्योंकि बम पड़ते थे। यह सब भागे थे वहाँ से। जो आया और जो बिका, एकदम बेच डालो सब, पैसा ले लो। यह कपड़े नहीं ले जाने देंगे। पैसा आना वह वापस नसीब हो तत्प्रमाण आवे न! बेच डालें इसलिए आवे? ऐसा कुछ हिम्मतभाई एक बार कहते थे, कितनी ही हुण्डियाँ रह गयीं। और फिर धीरे-धीरे ली। ऐसी बात करते थे एक बार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आनेवाले थे, वे हो गये। संग्रह किया किसने? धूल ने।

यहाँ कहते हैं किसी भी बोल का, वाक्य का भाव, उसके पीछे रहा हुआ आशय और वाक्य में क्या कहना है, उसे नय से समझना चाहिए। नय अर्थात् ज्ञान के प्रकार से वह ज्ञान का कौन सा प्रकार है, ऐसा इसे जानना चाहिए। कहो, समझ में आया?

'**णिच्छ-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि**' है न? **इसी तरह शब्दार्थ, नयार्थ,...** शब्दार्थ। है अन्तिम शब्द? **नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, भावार्थ...** भावार्थ अर्थात् तात्पर्य **व्याख्यान के अवसर पर सब जान लेना।** सब जगह यह जानना चाहिए। एक जगह नहीं, सब जगह जानना चाहिए।

मुमुक्षु : झगड़ा न रहे....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, झगड़ा ही रहे नहीं, यदि यह समझे तो। विवाद यह (निकालते हैं) न? इस शास्त्र में यह आचार्य ने कहा है न! परन्तु किस नय का कथन? समझ में आया? उन श्वेताम्बर में आता है, एक समय में केवलज्ञान और दूसरे समय में केवलदर्शन। तब और वे कहे, यह तो अन्यमति का वाक्य है, अन्यमति का है। परन्तु खोटी बात है, वह तो शास्त्र का वाक्य है। श्वेताम्बर में ऐसा आता है कि केवलज्ञान एक समय में और दूसरे समय में दर्शन। एक समय में दो उपयोग नहीं होते। केवलज्ञान और केवलदर्शन दो उपयोग एक समय में नहीं होते। तब उनके शास्त्र में ऐसा आया है कि, एक समय में एक ही उपयोग होता है। (एक व्यक्ति ने) 'सन्मति तर्क' बनाया है, उसमें यह कहा है कि यह वाक्य आया सही उसमें, परन्तु वह अन्यमति के लिये है। ऐसा करके अपना बचाव किया। ऐसा नहीं, श्वेताम्बर आचार्य की श्रद्धा यह है। केवलज्ञान और केवलदर्शन समयान्तर में मानते हैं। दिगम्बर (में) ऐसा है नहीं वस्तु का स्वरूप। क्यों? कि कर्ता आत्मा। उसकी शक्तियाँ दो कर्ता की और उनके कार्य एक समय में दो, दो के एक समय में दो। इसलिए एक समय में दो उपयोग, वह वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? यह आगमार्थ का अर्थ है। वे अन्यमति अर्थात् कि श्वेताम्बर आदि अन्यमत में ऐसा कहते हैं, उसका अर्थ ऐसा कहते हैं, ऐसा निर्णय करना चाहिए। समझ में आया?

उसमें से तात्पर्य निकालना चाहिए कि वस्तु है वह अखण्ड है और शक्तियाँ भी ज्ञान, दर्शन पूर्ण अखण्ड है। और कार्यरूप परिणमन हुआ तो समय तो एक ही होता है, कहीं समय दो होते हैं? कर्ता एक, शक्ति साथ में दो, कार्य साथ में दो। इसलिए एक समय में दो ही उपयोग होते हैं, ऐसा उसका स्वरूप है। परन्तु कहीं निवृत्ति नहीं

मिलती, निवृत्ति नहीं मिलती। नवराश क्या? फुरसत। क्या तत्त्व है? क्या केवल? केवलज्ञान और केवलदर्शन में गये।

एक श्वेताम्बर कहते हैं कि आत्मा में केवलज्ञान सत्तारूप से है। दिगम्बर कहते हैं कि शक्तिरूप से केवलज्ञान है। बड़ा अन्तर, पूर्व-पश्चिम का (अन्तर है)। सत्तारूप अर्थात् क्या? कि ऐसे केवलज्ञान है अन्दर, मात्र ऊपर कर्म का आवरण है, कर्म का आवरण अर्थात् ऐसे सूर्य है, वैसा ही केवलज्ञान (अन्दर प्रगट) है। ऐसा नहीं। केवलज्ञान शक्तिरूप से है। जैसे चौंसठ पहरी पीपर में पीपर की चरपराई शक्तिरूप से है। चौंसठ पहरी ऐसे बाहर भरी हुई है, ऐसा नहीं। यह पीपर, छोटी पीपर। यह चौंसठ पहरी की शक्ति है, उसे घूंटे तो प्रगट होती है। यह चौंसठ पहरी ऐसे पड़ी नहीं कि सीधे ऐसे निकालकर खाने लगे।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ से....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पुरुषार्थ। शक्ति है उसमें, परन्तु उसमें एकाग्रता का ध्यान करे तो शक्ति की व्यक्तता होती है। यह वस्तु का स्वरूप है। तब वे कहते हैं कि केवलज्ञान सत्तारूप से है। अर्थात् ऐसा खुल्ला है। मात्र कर्म का आवरण है। कर्म हट जाये तो केवलज्ञान ऐसा का ऐसा है। ऐसा नहीं। समझे? इस प्रकार नय से वहाँ जानना चाहिए न। क्योंकि एक वस्तु है, उसकी शक्तियाँ व्यक्तरूप जो होती हैं, इस प्रकार से व्यक्तरूप ऐसा पूरा पड़ा है, ऐसा नहीं। जैसे यह सूर्य की किरणें ऐसे बाहर प्रगट है, उसे बादल आते हैं। वे बादल हटे (तो दिखाई दे)। ऐसा नहीं है। इसी प्रकार अन्दर केवलज्ञान की किरणें प्रगट हैं, उन्हें कर्म का आवरण है, ऐसा नहीं है।

अन्दर में केवलज्ञान शक्ति... शक्ति... शक्ति..., सत्त्व... सत्त्व... भावरूप सत्त्व ऐसा है द्रव्य का, द्रव्य का सत्त्व कि यदि एकाग्र हो तो वह शक्ति व्यक्तरूप से केवलज्ञानरूप से प्रगट हो। समझ में आया? उसमें स्वसन्मुखता के एकाग्रता की उसमें आवश्यकता है, उन कर्म के टालने की आवश्यकता है, ऐसा नहीं। दोनों में बड़ा अन्तर है। एक व्यक्ति कहता है कि सत्ता और शक्ति सब एक है। अब सुन तो सही अब! वह तो एक अपेक्षा से एक है, परन्तु इस अपेक्षा से अन्तर है। पंचाध्यायी में शक्ति और सत्ता ऐसे नाम दिये हैं। वहाँ एक कहे हैं। यहाँ ऐसा नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा, जैसे दियासलाई में अग्नि सत्तारूप से है, ऐसा नहीं, शक्तिरूप से है। उस दियासलाई का चूरा ऐसे-ऐसे करोगे तो उसमें हाथ गर्म नहीं होगा। यह दियासलाई, चूरा करोगे तो वहाँ अग्नि की गर्मी दिखाई देगी कहीं? भूको समझे न? चूरण। ऐसी नहीं वहाँ अग्नि। अग्नि शक्तिरूप से है, ऐसे घिसे तो उसमें से अग्नि प्रगट हो। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा में केवलज्ञान स्वभाव का शक्तिरूप से भाव पड़ा है। उसकी एकाग्रता होने पर शक्ति का घर्षण होकर अन्दर में एकाकार पर्याय का लगने से, पर्याय में पूर्ण केवलज्ञान प्रगट होता है। यह वस्तुस्थिति है।

मुमुक्षु : घर्षण (एकाग्रता) की आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर्षण की आवश्यकता है। उसे कर्म का नाश करना और ऐसा कुछ है नहीं। वह तो यहाँ एकाग्रता करे तो कर्म अपने आप नाश हो जाते हैं। शक्ति की व्यक्तता प्रगट होती है। इसी प्रकार आत्मा में आनन्द है, वह आनन्द ऐसे अन्दर खुल्ला पड़ा है, ऐसा नहीं। यह डिब्बे में हाथ (डालकर) गुड़ निकालते हैं, ऐसा नहीं गुड़ अन्दर। गन्ने के रस में, गन्ने के रस में गुड़ का रस—शक्ति पड़ी है। यह छिलके निकालकर जब उसे गर्म करे न? क्या करे वह? गर्म करे, तब गुड़ होता है। गोळ समझे? गुड़ होता है न? गन्ने के रस में। कोई कहे, लो! गन्ने में गुड़ पड़ा है। काटकर निकालो, गुड़ निकलेगा। गुड़ कहाँ से निकलेगा? उसका छिलका निकाल डाले, रस निकले और उस रस को तपावे, तब गुड़ होता है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा में ज्ञानरूप शक्ति, आनन्दरूप शक्ति, श्रद्धारूप शक्ति, शान्ति अर्थात् चारित्ररूप शक्ति, शान्ति अर्थात् ऐसा वीतरागस्वभाव। अन्दर शक्ति पड़ी है। उस शक्ति का अन्तर प्रयोग करे तो व्यक्त हो। समझ में आया? आहाहा! सुजानमलजी!

एक-एक शब्द में शब्दार्थ किया। शब्दार्थ (अर्थात्) इस शब्द का अर्थ क्या? ध्यान। पश्चात् कहे, ध्यान अर्थात् पर्याय क्या? कौन सी? कि निर्मल होना वह। किस नय से? कि एकदेश शुद्धनय से अथवा अशुद्धनय से। समझ में आया? और राग का नाश, वह किस नय से? कि, अशुद्ध निश्चयनय से। कर्म का नाश असद्भूत व्यवहारनय

से। आहाहा! कितना काम किया है! 'ब्रह्मदेव ने' इतना... समयसार, प्रवचनसार, कथानुयोग, द्रव्यानुयोग जिसमें शास्त्र है परन्तु उसमें किस नय से? यह व्यवहार पराश्रय का कथन है? स्वाश्रय का है? यह दोनों समझे बिना ऐसे का ऐसे दीधे रखे। दीधे रखे अर्थात् क्या? कहता रहे। यह हमारे दुभाषिया हैं। इन्हें अब गुजराती आयी और यह भी आता है। दो का अर्थ करते हैं। दुभाषिया रखे। दुभाषिया समझे? दोनों भाषा जाने। यह क्या कहते हैं, इसका अर्थ और वे किस भाषा में समझे वह। दोनों अर्थ इसका होता है। समझ में आया? ओहोहो! यह तो बहुत जगह (आता है)। द्रव्यसंग्रह में आता है, पंचास्तिकाय में आता है, जयसेनाचार्यदेव की टीका में (आता है)। यह तो पहली गाथा में ही लिया। उसमें तो फिर रखा जाये। यहाँ तो पहले शुरुआत से ही बात रखी। तुझे परमात्मप्रकाश वांचना हो और समझना हो तो उसे यह पाँच प्रकार से अर्थ करके समझना पड़ेगा। समझ में आया?

शब्दार्थ तो ऐसा ही हुआ। लो! समझ में आया? ऐसे लोक में लो न! समझ में आया? लिया-दिया, लो! ऐसी भाषा हुई या नहीं? व्यापारी माल लेने आवे न? माल लेने आवे और वह कहे, दो रुपये का सेर। वह कहे, नहीं। डेढ़ रुपये में देना है? अब लिया दिया। वह व्यापारी ऐसा कहे कि लिया-लिया। लिया-लिया अर्थात्? तू नहीं ले सकेगा, ऐसा लिया-लिया का अर्थ। ऐसा कहते हैं या नहीं? क्या कहते हैं? लेकिन बोले ऐसा कि लिया... लिया। शोभालालभाई! बोलते हैं या नहीं? दो रुपये का सेर हो और माँगे एक रुपये में सेर देना है? सेठ! अब लिया, लिया। लिया-लिया का अर्थ क्या हुआ? लेना लेना होता है। परन्तु उसका अर्थ ही कि तू नहीं ले सकेंगा। भाषा का क्या आशय है, यह समझे बिना भाषा कहता रहे तो ऐसा कहीं चले? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो बार लिया-लिया लिखा, लो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव दूसरा है। लिया... लिया अब। लिया-लिया, ऐसा कहते

हैं न? लिया... लिया। लिया-लिया अर्थात्? अर्थात् दो का लिया? बापू! ऐसा कहते हैं, उसे जब बहुत सस्ता माँगता है तब कहे, लिया... लिया अब। अर्थात् कि तू ले नहीं सकेगा। तेरी हैसियत नहीं, बापू! वह तो विशेष उदार व्यक्ति हो, वह ले सकेगा।

पहले आम आवे न? भाई! ऊँचा। हमारा उमराला में सब अनुभव। उसका आम ऊँचा आवे, वहाँ हमारा उमराला है न? नजदीक। बहुत ... आम। पहले आम महँगा बहुत आवे, बहुत महँगा। एक-एक आम तब, हों! एक आम दो-दो आना, और चार-चार पैसे का। तब। ऊँचा परन्तु पहला लाया हो, दस सेर, पाँच सेर आम आया हो। उसमें खानेवाला स्वादिया हो न, वे सब टोकरे के पास खड़े हों। किस भाव देना है? किस भाव देना है? (वह कहे), यह है। चार आना सेर, चार आना सेर। तब चार आना सेर अर्थात् तो बहुत है न! अभी यह सब तुम्हारा (बढ़ गया)। खानेवाला स्वादिया हो (उसे कहे), चार आना। तो कहे, ले चार आना। वे कहे, दो आना देनी है? अब चल... चल, लिया... लिया... लिया। अब। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २

अब संसार-समुद्र के तरने का उपाय जो वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप जहाज है,... देखो! जहाज। इस संसाररूपी समुद्र में यह निर्विकल्प वीतराग जहाज ही संसार का पर प्राप्त करा देता है। आहाहा! उपमा दी है, हों! **उस पर चढ़के उस पर आगामी काल में कल्याणमय अनुपम ज्ञानमयी होंगे, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।** देखो! भविष्य के तीर्थंकर आदि मोक्ष जायेंगे, उन्हें मैं अभी नमस्कार करता हूँ, भले अभी कोई नरक में पड़े हों। श्रेणिक राजा नरक में है। है न? पहले नरक में है। भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हैं। यह अनन्त भविष्य में होंगे। अभी निगोद में कितने पड़े हैं। ओहो! और उसकी श्रद्धा में ऐसा तीन काल तैरता है। अनन्त-अनन्त सिद्ध हुए, अनन्त-अनन्त भविष्य में सिद्ध होंगे, ऐसे सिद्ध होंगे, ऐसा प्रतीति में है न! अनन्त जीव स्वीकार किये, अनन्त जीव के उपाय करके मुक्ति पाये ऐसा स्वीकार किया, किस उपाय से पाये, उसका ज्ञान हुआ, अनन्त जीव भविष्य में (प्राप्त करेंगे)। आहाहा! अभी तो कहीं

निगोद में पड़े होंगे। वह मनुष्य अभी तो अनन्त काल में किसी समय होंगे। ऐसे जीव को भी अभी से कहा है। देखो! है?

आगामी काल में कल्याणमय अनुपम ज्ञानमयी होंगे,... यह शब्द **कल्याणमय अनुपम ज्ञानमयी होंगे, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।** आहाहा! भूतकाल के सिद्धों को तो नमस्कार किया। भविष्य में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अधिक तो यह है संख्या। संख्या अर्थात् भविष्य काल। समझ में आया? संख्या तो ऐसी की ऐसी है। काल बहुत बहुत। उन सबको श्रद्धा में लेते हैं। दूसरी गाथा है।

(२) ते वंदउँ सिरि-सिद्ध-गण होसहिँ जे वि अणंत।
सिवमय-णिरुवम-णाणमय परम-समाहि भजंत॥२॥

देखो! यह '**णाणमय**' तो उसमें आया था, यहाँ दो शब्द प्रयोग किये, वहाँ '**णित्य-णिरंजन**' था। यहाँ '**सिवमय-णिरुवम**' ऐसे दो शब्द प्रयोग किये। वहाँ '**णित्य-णिरंजन-णाणमय**' भूतकाल के सिद्धों का कहते हुए। यहाँ '**सिवमय-णिरुवम-णाणमय**' (कहा है)। क्योंकि, अभी उपद्रव में पड़े हैं न अभी? शिवमय होंगे, निरुपमा बिना के ज्ञानमय '**परम-समाहि भजंत**' उस परम समाधि को भजते हुए केवलज्ञान को पायेंगे। ओहोहो! क्या कहते हैं? देखो! इसका शब्दार्थ।

मैं उन सिद्ध समूहों को नमस्कार करता हूँ... है? इसका शब्दार्थ। दूसरी गाथा का अन्दर शब्दार्थ। **मैं उन...** '**तान**'। लो! यह तुम्हारा '**तान**' का 'उन' आया इसमें अब। **सिद्ध समूहों को नमस्कार करता हूँ, जो आगामी काल में अनन्त होंगे।** अनन्त शब्द पड़ा है। आहाहा! भविष्य में। समझ में आया? '**जाया झाणग्गियएँ कम्म कलंक डहेवी**' वहाँ अंक नहीं था, यहाँ भविष्य का अंक रखा। ओहो! जो भविष्य में अनन्त सिद्धों का समूह—सिद्ध के गण—टोला। आहाहा! यह श्रद्धा में अनन्त आत्मायें हैं और अनन्त आत्मायें सिद्धपद को भविष्य में पायेंगे, ऐसा सिद्ध करते हैं। यह एक ही आत्मा है और एक ही आत्मा की मुक्ति हुई तो सबकी हो गयी, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है तो अनन्त वह सब ... काल अधिक है। परन्तु उस

काल का कहाँ समाप्त होता है?

सिद्ध समूहों को नमस्कार करता हूँ, जो आगामी काल में अनन्त होंगे। आहाहा! कहाँ का कहाँ काल! जहाँ अभी अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... पुद्गलपरावर्तन के बाद भी अनन्त पुद्गलपरावर्तन। अनन्त पुद्गलपरावर्तन, एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी जाये। एक पुद्गलपरावर्तन काल के माप में अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी (जाये)। ऐसे एक पुद्गलपरावर्तन में अनन्त-अनन्त चौबीसी। ऐसे अनन्त-अनन्त पुद्गलपरावर्तन में जो मोक्ष जायेंगे, उन सबको याद करके अभी नमस्कार करते हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे! पचास पीढ़ी पहले का हुआ हो और बारोट कहे, तुम्हारे पचास पीढ़ी पहले एक करोड़पति था। वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये, लो! तुम्हारा बाप करोड़पति था पचासवीं पीढ़ी,... पेढी कहते हैं? भूतकाल में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उनके सबके बारोट होते हैं। काशी के पण्डित, वे तो और ठीक। वह तो आवे पैसा लेने के लिये। परन्तु सबके बारोट होते हैं। बारोट समझे न? वैयावंता... उसे खबर हो पाँच सौ वर्ष पहले तुम्हारे पिताजी के पिता वहाँ पाटण में एक बड़ी प्याऊ बनायी थी। और वहाँ रास्ते के ऊपर बनायी थी, वहाँ पच्चीस हजार खर्च करके। तब के पच्चीस हजार अर्थात् बहुत। वहाँ प्रसन्न हो जाये, आहाहा! हमारे परिवार में से! यह हमारा परिवार है, यह कहते हैं। अनन्त सिद्ध ध्यानाग्नि द्वारा हो गये और अनन्त सिद्ध होंगे।

कैसे होंगे? 'भविष्यन्ति' होंगे। आहाहा! होंगे, इसका निर्णय है न? मैं भी भविष्य में मोक्ष जानेवाला हूँ। मुझे मैं नमस्कार करता हूँ, ऐसा यहाँ कहते हैं, लो! समझ में आया? भविष्य में अनन्त सिद्ध में स्वयं है या नहीं? भविष्य में सिद्ध होंगे, उन आगामी अनन्त सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ। मैं मेरी पूर्ण पर्याय को अभी नमस्कार करता हूँ। चिदानन्द भगवान जहाँ अन्तर दृष्टि में आया, अनुभव में ज्ञायक को लिया, कहते हैं कि ऐसे अनन्त सिद्ध हो गये, इस प्रकार हमको विश्वास है, हम भी होनेवाले हैं, यह विश्वास है। हमारे साथ दूसरे अनन्त होंगे, यह भी हमको विश्वास है। आहाहा! समझ में आया?

कैसे होंगे ? परमकल्याणमय... शिवमय-कल्याणमय। यह उपद्रव में पड़े हैं न अभी तो बहुत जीव? परन्तु भविष्य में शिवमय हो जायेंगे। उपद्रवरहित अनन्त सिद्ध सिद्धपद को प्राप्त करेंगे। आहाहा! यहाँ तो अभी एक आत्मा और एक आत्मा से ऐसा हो गया, फिर कुछ बौद्ध ने कहा, महावीर ने कहा, ईशु ने कहा, सब समान है। अरे! सुन, सुन। सेठी! अभी सब खिचड़ा बहुत करते हैं। खिचड़ा में तो अभी दाने भी होते हैं, यह तो कंकड़, अच्छे दाने में कंकड़। खिचड़े में तो दाने हों, मूँग हो, मोंठ हो, बाजरा हो। हमारे लालन (पण्डित) थे, (उनकी) ९५ वर्ष की उम्र और सोलह वर्ष की उम्र से अभ्यास। ९५ वर्ष तक अभ्यास (किया)। खिचड़ा किया है, कहा। बहुत अभ्यास परन्तु श्रद्धा का कुछ भान नहीं। ९५ वर्ष की उम्र। फिर सुने। यहाँ बैठते थे, यहाँ बैठते थे। एक वर्ष रहे थे। मलूकचन्दभाई के मकान में (रहे थे)। किसी समय तो रोवे हाय... हाय...! क्या पढ़े? कहा। सब खिचड़ा करे, हों! खिचड़ा। कहा, खिचड़ा नहीं, हों! तुम्हारा। खिचड़े में तो मूँग, उड़द, दाने, सब दाने होते हैं। यह तो दाने और कंकड़ सब इकट्ठे। फिर कितनी बार रोवे, हों! आँख में से आसूँ (निकल जाये)। और वापस आवे अन्दर से, शल्य पड़ा हो न अन्दर। ऐसा हो? फलाना, ढींकणा। धूल में भी नहीं।

परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने जो जीव, जड़, चेतन द्रव्य, गुण, पर्याय देखे, कहे, ऐसी बात तीन काल में अन्यत्र है नहीं। कहीं नहीं तीन काल-तीन लोक में। ऐसा जब तक निर्णय नहीं करे, तब तक उसे आत्मा की दृष्टि होगी नहीं। समझ में आया? **अनुपम...** आहाहा! उसे क्या उपमा देना? समझ में आया? अभी कारण बाद में देंगे, हों! यह तो सिद्धपद की व्याख्या की। परमकल्याणमय होंगे। होंगे की (बात) है न?

परमकल्याणमय, अनुपम और ज्ञानमय होंगे। उनकी पर्याय केवलज्ञानमय रहेगी। ज्ञानमय केवलज्ञान अनन्त आत्मायें ... ज्योति रहेगी। उनकी पर्याय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसी ज्ञान पर्यायरूप परिणमे। उन्हें सिद्ध कहा जाता है। आहाहा! यहाँ तो अभी णमो अरिहंताणं के अर्थ की खबर नहीं होती। कर्मरूपी वैरी को नष्ट किया, जड़ को आत्मा ने नष्ट किया। जड़ को आत्मा ने घात किया, यह किस नय का कथन? णमो

अरिहंताणं। नमस्कार हो, कर्मरूपी वैरी को घात किया। लो! कर्म-जड़ वैरी को घात किया, जड़ का घात करता होगा आत्मा? जड़ तो स्वतंत्र तत्त्व है। उसका उत्पाद-व्यय तो उसके आधीन है। तेरे आधीन है? लो! वहाँ ऐसा कहना तो असद्भूत एक निमित्त का सम्बन्ध था, वह सम्बन्ध टूटा, इतना बतलाने के लिये असद्भूत व्यवहारनय से कहा है। समझ में आया?

क्या करते हुए? होंगे ऐसे। परन्तु **क्या करते हुए?** क्या करते हुए होंगे ऐसे? सिद्धपद कल्याणमय। **परमसमाधि...** लो! **रागादि विकल्प रहित परमसमाधि उसको सेवते हुए। 'भजन्तः'** भगवान पूर्णानन्द प्रभु, अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी अन्तर में गुण की सेवा करते हुए अर्थात् एकाग्रता करते हुए। सेवा का अर्थ यह। यह वस्तु अखण्ड अनन्त गुणस्वरूप ऐसा दृष्टि में लेकर, ज्ञान में लेकर लीनता करने से, उसका नाम परमसमाधि। अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विधि, यह उपाय। परमसमाधि क्यों कही है? और दूसरे कहे, समाधि ऐसे करना और ऐसे, एक ही होगा, ऐसा नहीं। परमसमाधि। पुण्य-पाप के विकल्प थे, है, उसे आत्मा की अन्तर स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, रमणता द्वारा, स्वरूप की सेवा द्वारा परमात्मा होंगे। राग की और निमित्त की सेवा द्वारा कोई सिद्ध अभी तक हुए नहीं, होंगे नहीं। समझ में आया? ओहो! कितनी दृष्टि लम्बाई है!

परमसमाधि उसको सेवते हुए। उसकी सेवा, लो! 'सेवा धर्मो गहनं' अभी और कितने ही पण्डित नाम धराकर (ऐसा कहते हैं)। भाई! 'सेवा धर्मो गहनं' उसमें अहंकार टालना पड़े। धूल में भी नहीं, उसमें अहंकार है। पर की सेवा करना, यह मान्यता ही मूढ़ मिथ्यादृष्टि का अहंकार है। अरे! इसमें कितनी निर्मानता (चाहिए)। किसी की कुछ, कोई ऐसे हों, कोई साधारण हों, उसे रोगचला हो, उल्टी होती हो, साफ करना पड़े, बापू! वह कहीं निर्मानता कम है? 'सेवा धर्मो योगी नाम गहनं' क्या आता है या नहीं? वह सेवा यह, वह नहीं। देखो न! यह क्या कहा? '**भजन्तः भजन्तः**' पाठ है या नहीं? '**परम-समाहि भजंत**' '**भजंत**' अर्थात् सेवा करते हुए। अपने शुद्ध स्वरूप की सेवा। समयसार में आता है न? एक समयमात्र भी ज्ञान की सेवा की नहीं। अनन्त

काल में इसने राग, पुण्य और पाप के भाव की सेवायें की। भगवान आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न, (उसकी सेवा नहीं की)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सेवा होगी? राग मन्द हो, पुण्य बाँधे। और हम यह करते हैं, यह क्रिया हमारे से होती है। मिथ्यात्व का बड़ा पाप साथ में इकट्ठा। 'बिल्ली निकालते ऊँट घुसा' हम करते हैं, हमने किया। हमने पचास लाख खर्च किये और पचास हजार खर्च किये और पचास हजार तेरे कहाँ थे? वे तो धूल के हैं। तूने क्या खर्च किये? राग मन्द किया हो जरा तो पुण्य है, और मैंने यह काम किया। सब पैसेवाले समझने जैसे हैं। कोई बेचारा कोमल जीव हो, तथापि उसे अन्दर में तो होता है कि, यह हम करते हैं। उसे ऐसा कब भान है? आहाहा! पैसे हम नहीं दे सकते हैं? तो किसने दिये? किसने दिये तब? अरे! तूने नहीं दिये, सुन न अब! मैंने पैसे दिये, यह मान्यता ही मिथ्यात्व का बड़ा महापाप है। आहाहा!

मुमुक्षु : पैसे कहाँ गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे कहाँ इसके थे, वे जायें? इसके पास ममता थी। वह ममता कहीं घटायी हो थोड़ी सी और फिर वापस यह ममता इकट्ठी साथ में रखी हो। मेरे थे और मैंने दिये न! मैंने दिये तो दिये गये, वरना अपने आप रुपये जाते? शोभालालभाई! अटपटी बातें हैं, बापू! बात तो ऐसी है। द्रव्य स्वतन्त्र पदार्थ है। उसमें एक द्रव्य को कौन (परिणमावे)? जीभ से कौन बके? वह तो जड़ की अवस्था है। समझ में आया?

यहाँ तो रागादिरहित। वाणी तो कहीं नहीं होती, लेने-देने की तो बात भी नहीं होती। पुण्य, रागादि में पुण्यभाव आता होगा या नहीं? पुण्यभाव रहित। राग अर्थात् पुण्य-पाप के रागरहित जो परमसमाधि अर्थात् आत्मा की शान्ति। पूर्ण शान्ति अन्दर पड़ी है, उसकी एकाग्रतारूपी परम शान्तरस की शान्ति, उसे सेवन करते हुए भविष्य में अनन्त सिद्ध होंगे। आहाहा! इस प्रकार सिद्ध होंगे, दूसरा कोई उपाय वह सेवन करेगा ही नहीं। इसी उपाय से सिद्ध होंगे। इस उपाय से हुए, इस उपाय से वर्तमान में सिद्ध

होते हैं। तीनों काल का एक ही उपाय है। आहाहा!

अब विशेष कहते हैं। **जो सिद्ध होंगे, उसको मैं वन्दता हूँ।** है न? **'वंदउँ'** पहला शब्द पड़ा है। **'ते वंदउँ' कैसे होंगे, आगामी काल में सिद्ध,...** भविष्यकाल में सिद्ध होंगे। **केवलज्ञानादि मोक्षलक्ष्मी सहित...** सिद्ध होंगे। वह केवलज्ञान की पर्याय प्रगट होगी। केवलज्ञान, केवलदर्शन, परम आनन्द और परम वीर्य। ऐसी पर्याय प्रगट होगी भगवान सिद्ध को, अनन्त सिद्ध भविष्य में होंगे उन्हें। **और सम्यक्त्वादि आठ गुणों सहित अनन्त होंगे।** लो! समकित आदि आठ गुण। है न? आठ कर्म के अभाव से आठ (गुण प्रगट हुए)। 'तत्त्वार्थसूत्र' में आता है। ऐसे अनन्त होंगे। आहाहा! तीन काल के सिद्ध को अन्दर ज्ञान की रजाई में लिया है—ज्ञान की पर्याय में ऐसे तीन काल के सिद्ध ऐसे उपाय से हुए, (ऐसा जान लिया)। समझ में आया?

क्या करके सिद्ध होंगे? वीतराग सर्वज्ञदेवकर प्ररूपित मार्गकर दुर्लभ ज्ञान को पाकर... लो! एक सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा। दो विशेषण दिये हैं। एक तो वीतराग, दूसरा सर्वज्ञ। जिसे सर्वज्ञ पद हो, वह वीतराग ही होता है। वीतराग नीचे हो और सर्वज्ञ भी हो नहीं, परन्तु वीतराग कहकर फिर सर्वज्ञ कहा है। समझ में आया? परमसमाधि। **'रागादि विकल्परहित समाधि'** सिद्ध भगवान। **'केवलज्ञानादिमोक्षलक्ष्मीसहितान् सम्यक्त्वाद्यष्टविभूतिसहितान्'** ऐसा लिया, लो! क्या कहते हैं? संस्कृत में वह शब्द भी पड़ा है **'वीतरागसर्वज्ञप्रणीतमार्गेण'** संस्कृत में है। **'वीतरागसर्वज्ञप्रणीतमार्गेण दुर्लभबोधिलब्ध्वा'।** संस्कृत है। वीतराग सिद्ध होंगे वे। **सर्वज्ञदेवकर प्ररूपित मार्गकर...** सर्वज्ञ परमात्मा जो पूर्व में उनके पहले हुए, उनके कहे प्रमाण यह मार्ग है। ऐसे **दुर्लभ ज्ञान को पा के राजा श्रेणिक आदिक के जीव सिद्ध होंगे।** श्रेणिक राजा अभी पहले नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में। भविष्य में पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं, परन्तु वह वीतराग सर्वज्ञदेव प्ररूपित मार्ग दुर्लभ ज्ञान को पाकर होंगे। क्षायिक सम्यग्दर्शन तो पाये हैं। वहाँ से निकलेंगे, तीर्थंकर होकर, केवलज्ञान पाकर सिद्धपद को प्राप्त करेंगे। वहाँ से लेकर अनन्त सिद्ध होंगे, ऐसा कहते हैं। श्रेणिक को स्मरण किया। समझ में आया? है न? **'श्रेणिकादयः' 'भविष्यन्त्यग्रे श्रेणिकादयः' श्रेणिक आदि के जीव सिद्ध होंगे।** आहाहा!

पुनः कैसे होंगे ? शिव अर्थात् निज शुद्धात्मा की भावना, उसकर उपजा जो वीतराग परमानन्द सुख, उस स्वरूप होंगे,... जो अन्तर में आत्मा में आनन्द पड़ा है, शिवस्वरूप भगवान सदाशिव है आत्मा। शक्ति से। उसकी सेवा करके। अन्तर शुद्धात्मा की भावना अर्थात् एकाग्रता अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। **उसकर उपजा जो वीतराग परमानन्द सुख,...** उससे उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्द सुख, **उस स्वरूप होंगे,...** उस रूप होंगे। वीतराग परमानन्द को प्राप्त होंगे। पूर्णानन्द की प्राप्ति, दुःख का अभाव और पूर्णानन्द की प्राप्ति, ऐसे सिद्ध होंगे, उन्हें मैं अभी वर्तमान में नमस्कार करता हूँ। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १२, बुधवार, दिनांक २२-९-१९६५
गाथा - २ से ५, प्रवचन - ४

परमात्मप्रकाश, पहला अध्याय। पहली गाथा में गत काल के अनन्त सिद्धों को नमस्कार किया। दूसरी गाथा में भविष्य के अनन्त सिद्धों को नमस्कार किया। समझ में आया? पहली गाथा में अनन्त जो सिद्ध हो गये, (उनका नमस्कार किया)। देखो! भक्ति बहुत उछली है। कितनी गाथा में वन्दन... वन्दन करेंगे। अभी तो पाँच और छह और... समझे न? स्वभाव का करके वन्दन करेंगे। साधु को करेंगे। सात (गाथा) तक। चलता ही है, वन्दन की ही गाथा चलती है। परमात्मप्रकाश कहता हूँ न! फिर आठवीं से कहेंगे। पंच गुरु को वन्दन करके 'प्रभाकर भट्ट' को समझाता हूँ। सात (गाथा) तक तो अकेला वन्दन... वन्दन (किया है)।

पहली गाथा में अनन्त सिद्धों, जो अपने समाधि, शान्ति, दृष्टि, ज्ञान और रमणता से प्राप्त हुए, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहा। निश्चय और व्यवहार दोनों... तथा दूसरी में यह बात ली नहीं, वन्दन करता हूँ इतनी बात ली। भविष्य के अनन्त सिद्धों को मैं वन्दन करता हूँ। बस, इतनी सामान्य बात ली है। उसमें जो दो भाग किये हैं, ऐसे इसमें किये नहीं।

क्या करके सिद्ध होंगे? वीतराग सर्वज्ञदेवकर प्ररूपित मार्गकर दुर्लभ ज्ञान को पाकर... भविष्य में अनन्त सिद्ध होंगे, वह सिद्धपद की प्राप्ति उन्हें कैसे होगी? कि **वीतराग सर्वज्ञदेवकर प्ररूपित मार्गकर दुर्लभ ज्ञान को पाकर...** अन्तर का आत्मज्ञान महा सर्वज्ञ परमात्मा ने जो वस्तु देखी, कही, जानी, उस मार्ग को प्राप्त करेंगे, उस मार्ग के बिना दूसरा कोई उपाय नहीं। वह **राजा श्रेणिक आदि के जीव सिद्ध होंगे। पुनः कैसे होंगे? शिव अर्थात् निज शुद्धात्मा की भावना,...** अब श्रेणिक राजा आदि किस प्रकार से सिद्ध होंगे? निज शुद्धात्मा। दूसरे परमात्मा हुए, ऐसा नहीं। उन्हें वन्दन, निज शुद्धात्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य आनन्द और अनन्त गुण शुद्धस्वरूप, ऐसा निज स्वभाव, निज

आत्मा, उसकी भावना, उसकी अन्तर एकाग्रता। **उसकर उपजा जो वीतराग परमानन्द सुख,...** उससे उत्पन्न हुआ, अन्तर में पर्याय में—अवस्था में वीतराग परमानन्द का सुख। **उस स्वरूप होंगे,...** ऐसे परम वीतरागी आनन्द की पर्याय स्वरूप सिद्ध होंगे, सिद्ध होंगे। समझ में आया? यह शिव की व्याख्या की।

शिव अर्थात् उन अनन्त सिद्धों को कोई उपद्रव नहीं रहे। निरुपद्रव आनन्द की, सुख वीतराग आनन्द की प्राप्ति होगी, ऐसे अनन्त सिद्ध भविष्य में होंगे, उन सबको मैं वर्तमान में अनन्त सिद्ध के गण—टोला को—अनन्त सिद्ध के समूह को वन्दन करता हूँ। समझ में आया?

दूसरा बोल। कैसे होंगे सिद्ध अनन्त? **समस्त उपमा रहित अनुपम होंगे,...** कोई उपमा नहीं दी जाये, ऐसी पर्याय को प्राप्त होंगे। वस्तु तो द्रव्य-गुण शुद्ध है, उसकी एकाग्रता द्वारा, भावना द्वारा; भावना अर्थात् एकाग्रता, उसमें से जो निर्मल पर्याय प्राप्त होगी, उसे कोई चार गति या उसे कोई उपमा मिले, ऐसा है नहीं। निरुपम सिद्धपद की पर्याय को—अवस्था को अनन्त सिद्ध प्राप्त होंगे, उन्हें मैं वर्तमान में नमस्कार करता हूँ। कहो, समझ में आया?

तीसरा बोल। **केवलज्ञानमय होंगे,...** मूल पाठ शब्द इतना है। ज्ञानमय होंगे, ऐसा है न? समझ में आया? '**सिवमय-णिरुवम-णाणमय**' इन तीन शब्दों की व्याख्या। कैसे होंगे? कि **केवलज्ञानमय होंगे,...** अनन्त सिद्ध को केवलज्ञान की प्राप्ति होगी। उन सिद्ध को भी एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानने का, निश्चय से स्व को और व्यवहार से पर को (जानता हुआ), ऐसा ज्ञान भगवान सिद्ध को भी, अनन्त परमात्मा होंगे, उन्हें ज्ञान होगा और वह ज्ञान उन्हें वैसा रहेगा। होगा और रहेगा। समझ में आया? आहाहा!

अब इतनी बात (करने के बाद कहते हैं), **क्या करते हुए ऐसे होंगे?** क्या करते हुए ऐसा प्राप्त करेंगे? **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मा...** यह निज आत्मा कैसा है? निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव। उसका शाश्वत् ज्ञाता-दृष्टा का निर्मल जो स्वभाव, ऐसा जो भगवान शुद्धात्मा **उसके यथार्थ श्रद्धान...** ऐसे शुद्धात्मा का यथार्थ श्रद्धान। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की यहाँ बात नहीं ली। ऐसे से कहीं मोक्ष प्राप्त होता नहीं। क्यों, क्या हुआ? सेठी!

निज शुद्धात्मा है, उसके यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अमोलिक रत्नत्रयकर पूर्ण... यहाँ जहाज लेना है न? जहाज। जहाज भरा हुआ। रत्न से भरा हुआ जहाज लेकर सिद्ध में जायेंगे। पर्याय की बात है न अभी तो यहाँ? समझ में आया? द्रव्य-गुण तो ऐसे के ऐसे पड़े ही हैं। यह तो बात की, दर्शन-ज्ञान निर्मल स्वभाव का धारक शुद्ध आत्मा, उसकी एकाग्रता—भावना, उससे उत्पन्न हुआ अनन्त गुण-पर्यायरूप समूह, उससे भरे हुए रत्न ऐसे अमोलिक रत्नत्रय। जिसके रत्नत्रय की कीमत नहीं। ऐसे शुद्धात्मा की श्रद्धा, उस शुद्धात्मा का ज्ञान, शुद्धात्मा का आचरणरूप चारित्र। जिसकी अमोलिक रत्नत्रय, उस रत्नत्रय की कीमत ही कोई अमोल... अमोल... अमोल... रत्नत्रय, उससे पूर्ण हैं।

और मिथ्यात्व विषय-कषायादिकरूप समस्त विभावरूप जल के प्रवेश से रहित... इससे सहित। जहाज का वर्णन करना है न? जहाज में जैसे रत्न भरकर व्यापारी जाये, वैसे यह सिद्ध का व्यापारी आत्मा अपने अनन्त गुण की पर्याय से भरपूर जहाज लेकर जाता है। और मिथ्यात्व विषय-कषाय आदि विभावरूप जल। पुण्य-पाप के भाव, वे विभावरूपी जल, उनके प्रवेश से रहित। उस जहाज में उनका प्रवेश नहीं। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें। मिथ्यात्व, विषय-कषाय का व्यय और ऐसे गुण का उत्पाद। वह उनके प्रवेश रहित करके बात की।

शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ... भगवान पूर्णानन्द शुद्ध, जिसकी शक्ति के स्वभाव का अचिंत्य अनन्त माहात्म्य, ऐसा शुद्धात्मा, उसकी अन्तर में एकाग्रता, उससे उत्पन्न हुआ **सहजानन्दरूप सुखामृत...** यहाँ तो अभी संसार के दुःख कैसे? यह उससे उलटे, ऐसा वर्णन करना है। कि **सहजानन्दरूप सुखामृत...** स्वाभाविक आनन्दरूप सुख का अमृत। **उससे विपरीत जो नरकादि दुःख...** कहो, स्वर्ग के दुःख, स्वर्ग के दुःख भी इस सहजानन्दरूप सुखामृत से विपरीत है। समझ में आया? कहो, सेठियाओं का सुख, नारकी का दुःख और देव का सुख, वह सब दुःख है। किससे दुःख? कि जो आत्मा के सहजानन्द से उत्पन्न हुआ सुख अमृत, उससे चारों गति का सब दुःख विपरीत है।

मुमुक्षु : सुख हो तो मिले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख है ही नहीं न, मिले कहाँ से ? धूल में ? कहाँ है सुख ? ऐई ! मुफ्त का मान बैठा है। होय परन्तु गाँव में सब कहे, यह सुखी है, ऐसा कहे, लो ! दो व्यक्ति पति और पत्नी, कुछ नहीं। बड़े बँगले तीन और कितनी ही आमदनी आवे और मोटरें घुमावे।

मुमुक्षु : उसमें सुख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और दूसरा कुछ कहता है। वह इसके हाथ में कहाँ है अब अभी ? जड़ के हाथ में है वह। जड़ का होना हो, वह होता है, उसमें वह क्या करे ? वह उसके अधिकार की बात है ?

यहाँ कहते हैं कि **नारकादि दुःख...** आहाहा ! यह अरबोंपति के परिणाम के दुःख। आत्मा निर्मल दर्शन-ज्ञानस्वरूप, ऐसा भगवान आत्मा, उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ वीतरागी सुखामृत सुख, उससे चार गति के दुःख विपरीत हैं। आहाहा ! स्वाभाविक आनन्द से चार गति के (दुःख विपरीत हैं)। यह राजा हो, सेठिया हो या देव हों। वैमानिक के बड़े देव, हों ! परन्तु उनके परिणाम में आकुलता और राग-द्वेष का ही उन्हें दुःख है। ऐसे दुःख ... क्षारजल। यह समुद्र होता है न ? यह लवण समुद्र खारा उसमें तिरे न ? इसी प्रकार ऐसा जो क्षारजल दुःख से भरपूर चार गति का भाव, वह क्षारजल से भरपूर भाव है। **उनकर पूर्ण...** संसार दुःख से पूर्ण भरपूर है।

इस संसाररूपी समुद्र... लो ! **तरने का उपाय...** यह तो भविष्य की बात करते हैं न ? सब भगवान ऐसे संसार के दुःख भरे हुए हैं, उन्हें तिर जायेंगे। उनका नाश करके परमानन्द की प्राप्ति करेंगे। उत्पाद-व्यय और ध्रुव के साथ-साथ वस्तु का स्वरूप है वह साथ ही वर्णन करते हैं। कोई एकान्त मान ले कि, ऐसा का ऐसा आत्मा ध्रुव ही है, आत्मा क्षणिक ही है, ऐसा नहीं। ऐसे संसाररूपी समुद्र, जो दुःखरूपी क्षार से भरपूर है, आत्मा के आनन्द से, पर्याय के आनन्द से उल्टी दशा, ऐसे दुःखरूप क्षार से पूरा संसार सुलगा, जला—झुलस रहा है।

मुमुक्षु : नमक के सिवाय दूसरा खारा लगता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नमक के सिवाय खारा (लगता नहीं)। नमक में कहाँ खारा

कहते हैं? नमक भी कहाँ कहते हैं? तुम मीठा कहते हो, यह लोग नमक कहते हैं। तुम्हारी भाषा में नमक कहते हैं। नमक को खारा कहे, तुम फिर मीठे को खारा कहो। था कब? वह तो खारी चीज़ जड़ है। यह दुःखरूपी क्षार।

मुमुक्षु : भावखार....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान-दर्शन के स्वभाव से भरपूर पदार्थ। यहाँ मुख्य ज्ञान-दर्शन वर्णन किया है न? उसके अन्दर आनन्द प्रगट होता है, ऐसा बताते हैं। ऐसे स्वभाव से तत्त्व, उसके अन्तर्मुख की एकाग्रता द्वारा उत्पन्न हुआ अरागी-वीतरागी सहजानन्द सुखामृतस्वरूप सुख, उससे विपरीत चार गति के दुःख से भरपूर क्षार, वह समुद्र है। आहाहा! समझ में आया?

उसे **तरने का उपाय जो परमसमाधिरूप जहाज...** है। देखो! वह पाठ है न? दूसरी गाथा है न? '**परम-समाहि भजंत**' चौथा पद है। परमसमाधि को भजेंगे। भजेंगे, सेवा करेंगे। यह श्रेणिक राजा आदि अनन्त जीव, शुद्धात्मा की परमसमाधिरूप... पर्याय की बात है, हों! यह। पर्याय में परम समाधि, परम शान्ति, परम वीतरागता, परम अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, उसरूप जहाज। उसे यहाँ जहाज कहा है। **उसको सेवते हुए...** वह अनन्त सिद्ध परमानन्द के सुख को सेवन करते हुए, अपने ही परमानन्द की पर्याय को सेवन करते हुए और **उसके आधार से चलते हुए...** वे अपने अतीन्द्रिय आनन्द के आधार से चलेंगे, किसी के आधार से नहीं। समझ में आया? दो शब्द हैं, हों! संस्कृत में। समझ में आया?

उसके आधार से चलते हुए... दो बातें ली। एक तो स्वयं के आनन्द को सेवन करेंगे और उसके ही आधार से वे परिणमेंगे। परिणमन, उसके आधार से ही रहेंगे। उन्हें दूसरा कोई आधार नहीं। आनन्द का आधार, अतीन्द्रिय आनन्द का आधार। समझ में आया? ऐसा कि, वहाँ रहेंगे न सिद्ध में? लोक का आधार है या नहीं वहाँ? नहीं। वह तो अतीन्द्रिय अपने आनन्द का ही आधार उन्हें है, ऐसा निश्चय सिद्ध करते हैं। **अनन्त सिद्ध होंगे।** ओहो! अनन्त परमात्मा भविष्य में होंगे।

इस व्याख्यान का यह भावार्थ हुआ कि जो शिवमय अनुपम ज्ञानमय शुद्धात्मस्वरूप है, वही उपादेय है। लो! तीन शब्द कहे थे न? पूर्णानन्दरूपी पर्याय जो शिवस्वरूप है और दूसरा क्या कहा? निरुपम है। जिसे उपमा नहीं। चार गति में किसकी (उपमा देना)? चक्रवर्ती जैसे सुख कहना? जुगलिया जैसा कहना? किसके जैसा कहना? कोई उपमा नहीं होती। उनका सुख उनके जैसा। उन सिद्ध का सुख सिद्ध जैसा। ऐसी कोई दूसरी उपमा नहीं कि उसके साथ तुलना करके मिलान करे, उसे समझ में आये कि, यह सिद्ध का सुख है। ऐसा निरुपम। और ज्ञान, केवलज्ञानमय परमात्मा होंगे। शुद्धात्मस्वरूप, वही उपादेय है। लो! वही आत्मा को आदरणीय है। वह अन्तर स्वरूप शुद्ध, वही आदरणीय है। अथवा ऐसी पर्याय प्रगट करने के लिये उसे आदरणीय कहा जाता है। यह तो पर्याय की बात है न? क्या कहा? पहले शुद्धात्मा को आदरणीय कहा था। वापस ऐसी पर्याय को प्राप्त, वह पर्याय आदरणीय है। समझ में आया? **ज्ञानमय शुद्धात्मस्वरूप है, वही उपादेय है।** ऐसी निर्मल पर्यायवाले आत्मा, वे आदरणीय है, प्रगट करनेयोग्य वह है। दो श्लोक हुए। उनमें वह नमस्कार नहीं कहा। नमस्कार के नय उसमें घटित किये हैं।

मुमुक्षु : पहले में आया, वह सर्वत्र लागू करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब तीसरे में दूसरा कहेंगे। वर्तमान को दूसरा कहेंगे। उसमें अशुद्ध निश्चयनय है और इसमें कहेंगे दूसरा। तीसरा है न? यह तीसरा श्लोक है न? दूसरा श्लोक हो गया।

★ ★ ★

गाथा - ३

अब तीसरे में '**पारमार्थिकसिद्धभक्त्या नमस्कारोमि**' ऐसा कहेंगे। वर्तमान भगवान है न? उन्हें इस प्रकार से नमस्कार लेते हैं। अभी आयेगा, अब आयेगा। अभी तो यह श्लोक (चलता है)। भूतकाल के तीर्थंकरों को नमस्कार किया, भविष्य के को किया, अब वर्तमान विराजते हैं, उन्हें करते हैं। महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान आदि तीर्थंकर मनुष्य देह में, पाँच सौ धनुष्य का देह, करोड़ पूर्व का आयुष्य, केवलज्ञानमय,

चार कर्म को अपनी समाधि की अग्नि द्वारा कर्म को होम करते हुए विराजते हैं। भाई! कर्म-काण्ड अभी बाकी है। ऐसा बतलाना है न? ऐसा बतलाना है। कर्म को होम करते हैं। चार अघातिकर्म बाकी है न? अभी अरिहन्त पद में हैं। सिद्ध आठ कर्मरहित हैं। सिद्ध को कोई कर्म नहीं होते। अरिहन्त को तो चार कर्म बाकी हैं, ऐसा वापस साथ ही बतलाना है। उन्हें सिद्धगण कहा जाता है। वे भी सिद्ध के झुण्ड हैं, ऐसा कहते हैं। ओहो! समझ में आया? कहा है या नहीं?

सिद्धगण। अभी जो सिद्धगण हैं। वे सिद्ध के झुण्ड हैं अभी महाविदेहक्षेत्र में। सिद्ध अर्थात् अरिहन्त को सिद्ध का झुण्ड कहा। टोला कहते हैं, समझे? टोला अर्थात् समूह। गाय, भैंस का समूह नहीं निकलता बड़ा? हमारे काठियावाड़ में (कहे)। हजारों गायों का समूह निकला। यह बड़ा सिद्ध का समूह है, समूह। तीसरी गाथा। पाठ में ऐसा ही है न? देखो! **'अथानन्तरं परमसमाध्यग्निना कर्मेन्धहोमं कुर्वाणान्'** उसका उपोद्घात यह है। क्योंकि भगवान विराजते हैं न अभी? और चार अघाति कर्म (बाकी है)। आत्मा का ध्यान तो सदा ही आत्मा का अनुभव ही है आनन्द। उसके द्वारा नाश करते हुए विराजते हैं।

मुमुक्षु : केवली....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली-फेवली उनका कुछ नहीं। उन्हें जानना है कहाँ? सुनना है कहाँ? .... दोनों केवली हों। तीर्थंकर के समय में दोनों केवली होते हैं।

(३) ते हउँ वंदउँ सिद्ध-गण अच्छहिँ जे वि हवंत।
परम-समाहि-महग्गिएँ कम्मिंघणई हुणंत॥३॥

लो! पाठ में है, देखो! **आगे परमसमाधिरूप अग्नि से कर्मरूप ईंधन का होम करते हुए...** वर्तमान लेना है न भगवान को? आहाहा! अभी यह विवाद उठावे, इसलिए यह स्पष्ट करते हैं। कि भाई! अरिहन्तपद होने पर भी अभी चार कर्म निमित्तरूप से बाकी है। उन्हें जलाते हैं तो आगे शुद्धि की वृद्धि होती है। अरिहन्त को, सर्वज्ञ को भी ऐसा है। समझ में आया? पर्याय पर्याय का विवेक बताते हैं। परमसमाधिरूप अग्नि से कर्मरूप ईंधन **होम करते हुए वर्तमानकाल में महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धरस्वामी आदि तिष्ठते हैं, उनको नमस्कार करता हूँ।**

वर्तमान में तीर्थंकर हो, महाविदेहक्षेत्र में बीस तीर्थंकर और लाखों केवली विराजते हैं। वे सब सिद्ध के टोला हैं, सिद्ध के समूह हैं। आहाहा! सेठी! यह तो अपना घर एक देखे तो आहा... हो गया, लो! यह तो अनन्त सिद्ध गये, अनन्त होंगे और अनेक विराजते हैं। वर्तमान विराजते हैं, वर्तमान विराजते हैं। जम्बूद्वीप है उसमें यह भरत है, यह महाविदेह है। वहाँ विराजते हैं, है जम्बूद्वीप का भाग। सीमन्धर भगवान वहाँ विराजते हैं और बाकी दूसरे चार यहाँ हैं, चार दूसरे घातकी में और चार दूसरे अर्ध पुष्कर में। आठ-आठ। आठ-आठ वहाँ हैं। सोलह और चार यह, बीस।

मैं उन सिद्ध समूहों को नमस्कार करता हूँ, जो वर्तमान समय में विराज रहे हैं... 'भवन्तः तिष्ठन्तिः' आहाहा! यहाँ तो अभी जैन में जन्मे, उन्हें अभी तीर्थंकर कहाँ रहते होंगे? तीर्थंकरपद कैसे मिला? सिद्धपद कैसे मिला? और उनकी पर्याय में क्या है? और वे वर्तमान कहाँ हैं? भूत में कहाँ हुए और भविष्य में कैसे होंगे? इसकी खबर भी नहीं होती और (माने) हम जैन हैं।

मुमुक्षु : नवकार गिने।

पूज्य गुरुदेवश्री : नवकार गिना, नवकार गिने। नोकार ऐसा है न? भान नहीं होता। क्या अरिहन्त है, क्या सिद्ध है, क्या आत्मा की दशा है? समझ में आया? सीमन्धर भगवान की आज्ञा नहीं लेते? जादवजीभाई! सामायिक में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। लेते हैं वे। जब सामायिक करे न? वे लोग मूर्ति को मानते नहीं, इसलिए सीमन्धर भगवान के सामने... जय भगवान। सामायिक की आज्ञा। लेते हैं या नहीं? नवजीवनभाई! लेते थे?

क्या करते हुए? देखो! अभी अरिहन्त वर्तमान सिद्ध के समूह भी कुछ करते हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं। ले, उन्हें क्या करना (बाकी है)? जो सिद्ध हो गये, वे तो कृतकृत्य हैं। यह सिद्ध हैं परन्तु अभी चार कर्म नाश करने का अन्दर पुरुषार्थ, अन्दर समाधि में लीनता है। पुरुषार्थ करना, वह नहीं, सहज समाधि से वीतरागी आनन्द का अनुभव है। उसमें सहज कर्म टलते जाते हैं। समय-समय में कर्म टलते जाते हैं। देखो! **क्या करते**

हुए? परमसमाधिरूप महा अग्निकर... परम समाधि आत्मा की शान्ति। ऐसे शान्ति करूँ, ऐसा नहीं, हों! यह शान्ति चलती ही है उनको। वीतरागी केवलज्ञानमय शान्ति। ऐसी अग्नि से **कर्मरूप ईंधन को भस्म करते हुए।** देखो! कितना सिद्ध करते हैं? कोई यह शास्त्र को कहते हैं कि इसे वेदान्त के साथ मिलान है। परन्तु इसमें देख तो सही एक-एक गाथा में! एक-एक गाथा में वीतराग ने कहे हुए तत्त्व के साथ सन्धि करके बात करते हैं। समझ में आया? ऐसा पढ़कर कितने ही (ऐसा मान बैठते हैं कि) बस, एक है और वेदान्त है और ढींकणा है और फींकणा है, ऐसा करके... एक आत्मा है, ऐसा आवे न अन्दर? परन्तु एक अर्थात् जाति से एक। ऐसे तो पाँच-सात अधिकार हैं, बहुत स्पष्ट। **कर्मरूप ईंधन को 'जुह्वन्तः' भस्म करते हुए।** लो! चार कर्म बाकी (है, ऐसा) सिद्ध करते हैं, अरिहन्तरूप से सिद्धपद तो प्राप्त इस प्रकार से हुआ है। अब उन्हें चार कर्म बाकी हैं, उन्हें होम करते हुए विराजमान हैं। वे भविष्य में सिद्ध होंगे। बहुत अरबों वर्ष के बाद होंगे। अभी तो अरबों वर्ष रहनेवाले हैं। मुनिसुव्रत भगवान यहाँ हुए, तब के वे स्वयं भगवान होकर रहे हैं, केवलज्ञान पाकर। अरबों वर्ष गये और अरबों (वर्ष रहेंगे)। आगामी चौबीसी के बारहवें, तेरहवें तीर्थंकर यहाँ होंगे, तब मोक्ष पधारेंगे। समझ में आया? अब विशेष व्याख्यान है।

उन सिद्धों को मैं वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञानरूप परमार्थ सिद्धभक्तिकर नमस्कार करता हूँ। देखो! आया। भाई! वह यह कहा। उसमें अशुद्धनय और असद्भूत व्यवहारनय लिया था। दूसरे में समुच्चय रखा था। इसमें स्पष्टीकरण किया है। भगवान ऐसे विराजते हैं न। वह भी परम समाधि की अग्नि से कर्मरूपी ईंधन को जलाते हैं। तो कहते हैं कि, मैं भी उनको नमस्कार करता हूँ। **वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदन...** मेरा जो रागरहित ज्ञान—स्वसंवेदन ज्ञान का ज्ञान। **परमार्थ सिद्धभक्ति...** देखो! व्यवहार सिद्धभक्ति, ऐसा नहीं। आता है न उसमें आठवें में, नहीं? निर्जरा, निर्जरा में आठ, वह सिद्धभक्ति कही, वह अपनी सिद्धभक्ति। समकित के आठ आचार। सभी सन्त, आचार्य, दिगम्बर मुनियों ने तो एक प्रकार से ही बात कही है। दूसरी, तीसरी ढंग (कही), परन्तु वस्तु का एक प्रवाह। अनादि जो प्रवाह है, उस प्रवाह से अनुभव किया और उस प्रवाह से कथन किया।

अब ऐसे जैन के घर की खबर नहीं होती और दूसरे को देखने जाये। अमरचन्दभाई! चारों ओर... देखने जाये। इसने ऐसा किया, जो उसमें यह है। धूल में भी नहीं, सुन न! यह मार्ग है, हों! वे लोग भी ऐसा कहते हैं, हों! इसके जैसा कहते हैं। उसके जैसा और ऐसा, और ऐसा कितने ही कहते हैं। इसलिए आचार्य महाराज ने प्रत्येक गाथा में तीर्थंकर का स्पष्टीकरण किया। भूत, वर्तमान और भावि। और वर्तमान तीर्थंकर को कर्म बाकी है, ऐसा भी सिद्ध किया। उन भगवान को मैं वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानरूप अन्तर **परमार्थ सिद्धभक्तिकर नमस्कार करता हूँ।** लो! ओहोहो! देखो! प्रमोद कितना है! ऐसे वर्तमान विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में भगवान, उन्हें मैं वर्तमान मेरी निर्विकल्प शान्ति से नमस्कार करता हूँ, लो! देखो! अनन्त ज्ञान सम्पन्न परमात्मा वर्तमान विराजते हैं, उन्हें मैं मेरे वर्तमान स्वसंवेदनज्ञान, मैं भी मेरे ज्ञान में, वर्तमान ज्ञान में एकाकार होकर मेरे आत्मा को नमस्कार करूँ, इसका नाम सिद्धभक्ति और नमस्कार किया कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सिद्धोहं....

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्धोहं, सिद्धोहं करे? सिद्धोहं... सिद्धोहं तो विकल्प है। यहाँ तो मैं एक वर्तमान भगवान विराजते हैं, इसलिए मैं वर्तमान मेरे आत्मा में परमार्थ रागरहित शुद्ध स्वभाव में एकाग्रतारूप मेरे आत्मारूपी सिद्ध की भक्ति, वह सिद्धों की भक्ति कही जाती है। ऐसा कहते हैं। लो! आहाहा!

मुमुक्षु : परमार्थ अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमार्थ अर्थात् सच्ची।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, परमार्थ। परम अर्थ अर्थात् परमार्थ अपना। परमार्थ अर्थात् यथार्थरूप से, निश्चयरूप से, वास्तव में। परमार्थ अर्थात् परम पदार्थ, ऐसा मेरा आत्मा, उसे परमार्थ अर्थात् वास्तव में उसे नमस्कार करता हूँ। समझ में आया? यह लोग परमार्थ... परमार्थ कहते हैं, वह परमार्थ नहीं, हों!

मुमुक्षु : दूसरे लोगों का भला करना, वह परमार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परमार्थ था कब ? कौन भला कर सकता है ? मुफ्त का... अभिमान करे अज्ञानी। यह तो परमपदार्थ ऐसा मेरा आत्मा ज्ञानरूप परमार्थ सिद्ध भक्ति। पर्याय में निर्विकल्प भक्ति। इसका नाम सच्ची कहो, परमार्थ कहो, वास्तव में कहो या निश्चय भक्ति कहो। समझ में आया ? ओहोहो ! आचार्यों ने भी काम किया है न ! ऐसा करे प्रत्येक गाथा में भाव बदले और वापस जो वस्तुस्थिति है, उसे वहाँ खड़ी करते हैं, दूसरे प्रकार से, तीसरे प्रकार से, इस प्रकार से।

कैसे हैं वे ? अब वर्तमान समय में पंच महाविदेहक्षेत्रों में... देखो ! यह सिद्ध किया वापस। पंच महाविदेहक्षेत्र है। यह तेरा भरत ही अकेला है, इतना नहीं। और सब क्षेत्र में व्यापक एक, ऐसा नहीं। प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न आत्मायें विराजमान हैं। महाविदेहक्षेत्र है। एक महाविदेह जम्बूद्वीप में, दो महाविदेह घातकीखण्ड में, दो महाविदेह अर्धपुष्करद्वीप में, ढाईद्वीप है मनुष्य के। मनुष्यक्षेत्र ढाई द्वीप। पैंतालीस लाख योजन में मनुष्य क्षेत्र है। एक योजन दो हजार कोस का। ऐसे पैंतालीस लाख योजन में ही मनुष्य है। बाकी असंख्य द्वीप, समुद्र में मात्र पशु हैं। समझ में आया ? उन पशुओं में भी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पाँचवें गुणस्थानवाले असंख्य हैं। ढाई द्वीप के बाहर पशु, असंख्य। आत्मज्ञानी और पंचम गुणस्थानवाले, शान्तिवाले। आहाहा !

वर्तमान समय में पंच महाविदेहक्षेत्रों... सिद्ध किया। **श्री सीमन्धरस्वामी आदि विराजमान हैं।** आहाहा ! अभी तो कितनों को तो सीमन्धर है या नहीं, क्षेत्र है या नहीं, कुछ (खबर नहीं होती)। सब बातें। अरिहन्त होंगे, पहले हो गये होंगे और ऐसा हो गये होंगे। अभी तो कोई लगते नहीं। और वेशधारी बैठे-बैठे ऐसी बातें करे। समझ में आया ? **श्री सीमन्धरस्वामी...** पाठ में भी ऐसा है, हों ! **श्री सीमन्धरस्वामी...** पाठ में लिखा है श्रीमन्धरस्वामी, ऐसा लिखा है। भाई ! पाठ में टीका ऐसी है। श्री सीमन्धरस्वामी उसमें और श्रीमंधरस्वामी। श्री सीमन्धरस्वामी ऐसा लेते हैं।

श्री सीमन्धरस्वामी आदि विराजमान हैं। सीमं अर्थात् अपने स्वरूप की अनन्त ज्ञान आदि पर्याय मर्यादा, वह प्रगट हो गयी है। उस सीम के धारक हैं। अपनी पर्याय में कितनी ज्ञान-दर्शन-आनन्द की पर्याय जितनी मर्यादावाली हो, वह प्रगट हो गयी है। सीमन्धर अपनी पर्याय में सीमन्—मर्यादा अनन्त ज्ञान के धारक सीमन्धर भगवान हैं।

आहाहा! अरे! इनकी श्रद्धा में कितना जोर है! अनन्त सिद्ध हो गये, अनन्त होंगे। तीन काल को ज्ञान में लिया। उन सब सिद्धों को पृथक्-पृथक् भूतवाले और भविष्यवाले और वर्तमान को, देखो! अब और मुनियों को कहेंगे, और वापस प्रत्येक के स्वभाव को वन्दन करेंगे। ओहोहो! आस्था... आस्था... आस्था... अटूट।

क्या करते हुए? वीतराग परमसामायिकचारित्र की भावना कर संयुक्त जो निर्दोष परमात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेद रत्नत्रय उसमयी निर्विकल्प समाधिरूप अग्नि में कर्मरूप ईंधन को होम करते हुए तिष्ठ रहे हैं। वे वर्तमान भगवान महाविदेहक्षेत्र में क्या करते हैं? कि, वीतराग परमसमता। सामायिक अर्थात् समता। परमसमता सामायिक, देखो! उन्हें—केवली को भी परमसामायिक ली। केवली को परमसामायिक। सामायिक अर्थात् समता, वीतरागभाव। वीतराग परमसामायिक ऐसी चारित्र की भावनाकर, आनन्द अनुभवकर संयुक्त-सहित हैं, उस चारित्रसहित हैं। लो! तेरहवें गुणस्थान में भी ऐसा चारित्र संयुक्त। जो निर्दोष परमात्मा, उसकी यथार्थ श्रद्धा और आचरणरूप **अभेद रत्नत्रय उसमयी निर्विकल्प समाधिरूप...** ऐसी निर्विकल्प समाधि आनन्द की शान्ति से उसरूपी से **अग्नि में कर्मरूप ईंधन को होम करते...** हैं। क्षण-क्षण में अनन्त रजकण जल जाते हैं अर्थात् कर्मरूप छूटकर अकर्मरूप धारण करते हैं। आहाहा! वह तो कहे, नीचे और आत्मा और आत्मा का अनुभव? दो? दो नहीं। यहाँ तो (कहते हैं), सुन न! केवलज्ञान हुआ तो भी अभी पर्याय में कर्म का निमित्त सम्बन्ध था, वह समाधिरूप से जल जाता है। कर्म जलता जाता है, क्षण-क्षण में घटता जाता है। केवली को भी क्षण-क्षण में शुद्धि बढ़ती जाती है। केवलज्ञान, केवलदर्शन बढ़ता नहीं, वह तो वह है, ऐसा है। परन्तु परिणामिकभाव में थोड़ा अभी उदय का जितना अशुद्ध भाव है, वह क्षण-क्षण में टलता जाता है। ओहोहो! ऐसा द्रव्य, गुण और पर्याय का स्वरूप! परन्तु इस प्रकार से न हो तो दूसरे प्रकार से किसी प्रकार वस्तु हो नहीं सकती। समझ में आया?

जब तक अरिहन्त पद में है, वाणी है, तब तक कर्म का सम्बन्ध है और इससे क्षण-क्षण में कर्म छूटते जाते हैं, शुद्धि बढ़ती जाती है, पर्याय पर्याय का स्वरूप निर्मल होता जाता है। आहाहा! यह ज्ञान-दर्शन हुए, वे इतने के इतने रहते हैं। कथन पद्धति

आचार्यों की कोई गजब शैली! यह वस्तु के छह द्रव्य, गुण, पर्याय को और इस प्रकार से वस्तु की स्थिति को अंश-अंश बढ़े, उन्हें पूर्ण हो गया केवलज्ञान से तो भी अभी आंशिक शुद्धि बढ़ती है, कर्म गलते हैं। ऐसा जो कोई द्रव्य-पर्याय का स्वभाव, उसे सिद्ध करते हुए, वन्दन करते जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसमें कहाँ खबर थी अरिहन्त क्या करे और क्या करे? ऐसे का ऐसा अरिहन्त भगवान करो, बहियाँ करो लिखकर भगवान के नाम की और फलाने के नाम की। देखो! **तिष्ठ रहे हैं।** है न? **'अच्छहिँ'** है न **'अच्छहिँ'**? **'अच्छहिँ'**। देखो! **'सिद्धगण अच्छहिँ'** सिद्धगण बैठे हैं। ओहो! कहाँ रहे हैं? कि, महाविदेहक्षेत्र में रहे। महाविदेहक्षेत्र में तो अरिहन्त कहलाते हैं। अब सुन न! वे अरिहन्तरूपी सिद्ध। वे तो मुनि भी सिद्ध हैं, मोक्ष है। एक अपेक्षा है न अभी आगे। समझ में आया? आहाहा! उनके ज्ञान की एक समय की पर्याय कितने सिद्धों को लक्ष्य में लेने की सामर्थ्यवाली है! ऐसे तीन काल के सिद्ध सिद्धरूप पर्याय को प्राप्त हुए, होंगे और हैं। इनकी ज्ञानपर्याय कितना स्वीकार करके विकासरूप ज्ञानपर्याय से परिणम रही है! आहाहा! समझ में आया? यह नमस्कार करनेवाले की बात है।

इस कथन में शुद्धात्मद्रव्य की प्राप्ति के उपायभूत निर्विकल्प समाधि उपादेय (आदरनेयोग्य) है,... लो! आहाहा! योगफल वापस भावार्थ। पहले कहा था न शब्दार्थ करना, शब्दार्थ का फिर मतार्थ, नयार्थ। किस नय का वाक्य है यह? पर को वन्दन हो, वह व्यवहार वन्दन है, निश्चय अपना, ऐसे स्व-पर की यह अपेक्षा उसे (नयार्थ कहते हैं)। नय का अर्थ करना, मतार्थ करना। किस मतवाले इससे विरुद्ध कहते हैं, इस मत का निषेध। आगमार्थ—सर्वज्ञ परमात्मा ने सिद्धान्त में यह बात साबित की है। और उसका अन्त में तात्पर्य। तात्पर्य। अब तात्पर्य क्या? भावार्थ क्या? यह प्रत्येक गाथा में उसका भावार्थ कहते आते हैं। **निर्विकल्प समाधि उपादेय (आदरनेयोग्य) है, यह भावार्थ हुआ।** लो! अपना आत्मा शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाव से है, उसकी भावना से उत्पन्न हुई शान्ति, वही अंगीकार करने अथवा प्रगट करनेयोग्य है। चौथी गाथा।

★ ★ ★

गाथा - ४

आगे जो महामुनि होकर शुद्धात्मस्वरूप को पाकर सम्यग्ज्ञान के बल से कर्मों का क्षयकर सिद्ध हुए निर्वाण में बस रहे हैं, उनको मैं वन्दता हूँ। 'ते पुणु वंदउँ सिद्धगण जे णिव्वाणि वसंति।'

निर्वाण में बसते हैं। भाषा देखो! समझ में आया? उसमें ऐसा था कि '**अच्छहिँ**'। महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान विचरते हैं, ऐसा कहा था। समझ में आया? (दूसरी गाथा में ऐसा लिया), '**होसहिँ**' '**होसहिँ सिवमय-णिरूवम-णाणमय**' ऐसा कहा। ओहोहो!

(४) ते पुणु वंदउँ सिद्ध-गण जे णिव्वाणि वसंति।
णाणिं तिहुयणि गरुया वि भव-सायरि ण पडंति ॥४॥

देखो! यह वापस एक नया शब्द डाला। **आगे जो महामुनि होकर शुद्धात्मस्वरूप को पाके सम्यग्ज्ञान के बल से कर्मों का क्षयकर सिद्ध हुए निर्वाण में बस रहे हैं, उनको मैं वन्दता हूँ। 'फिर मैं उन सिद्धों को वन्दता हूँ, जो मोक्ष में तिष्ठ रहे हैं।** लो! वर्तमान निर्वाण में विराजमान हैं, अपनी पूर्ण पर्याय में विराजमान हैं। **कैसे हैं वे? ज्ञान से तीन लोक में गुरु हैं,...** वे सिद्ध भगवान ज्ञान से तीन लोक के गुरु हैं, बड़े हैं, पूज्य हैं, तीन लोक को पूज्य हैं। उनका ज्ञान केवलज्ञानमय पूर्ण त्रिकाल—तीन लोक जानने का परिणम गया है। दोनों कहेंगे, हों! व्यवहार और निश्चय। वह इतना वहाँ... समझ में आया? तीन लोक के गुरु **तो भी संसार-समुद्र में नहीं पड़ते हैं।** ऐसे महात्मा, तथापि वापस कहीं संसार में आते नहीं। ऐसा कि, महान शक्ति प्रगटी तो फिर वापस संसार भी ले तो क्या दिक्कत हो उस शक्ति से? नहीं। ओहो! नीचे जहाँ स्वरूप की दृष्टि हुई, उस दृष्टि से वापस गिरता नहीं, वहाँ और पूर्णानन्द हुआ, वह वापस गिरे, यह हो नहीं सकता। कहो, समझ में आया?

कितने ही अज्ञानी कहते हैं न? वहाँ गये और वे वापस अवतरित होते हैं। क्या है श्लोक? 'यदा यदा... पवित्राणाय साधु नाम विनाशाय' सब मिथ्या बात है। वह तो सहज आत्मा की उन्नति में चढ़ा हुआ आत्मा, एक तीर्थंकर जैसा या उसका आत्मा अपनी उन्नति क्रम में चढ़ा हुआ, लोक की योग्यता के काल में उसका अवतार हो,

इसलिए उससे वह तिरने का निमित्त होता है। बाकी भगवान ऊपर से उतरकर प्राण रक्षा करे, अवतार करे, यह बात तीन काल में खोटी और झूठी है। वे वस्तु को समझे नहीं, विपरीत मान्यता है। इसलिए यह सब बात करते हैं। ऐसे तो सब बहुत गप्प मारनेवाले निकलते हैं आत्मा के नाम से। समझ में आया?

और क्या कहते हैं? भाई! गुरु हो तो नीचे आवे वापस। आते हैं, इसलिए नीचे आवे तो। बहुत वजनदार चीज़ है न वजनदार? तो नीचे पानी में गिरे, इसी प्रकार यह बड़े गुरु (भारी) हैं तो और नीचे संसार में आवे। तो कहते हैं, नहीं। ऐसे गुरु (भारी) नहीं। वह तो गुण से गुरु—बड़े हैं, ज्ञान में बड़े हैं, जानने में बड़े हैं। जितने निर्वाण में बसते सिद्ध हैं, उनकी एक-एक सिद्ध की एक-एक पर्याय केवलज्ञान की, अनन्त सिद्धों को जाने, ऐसी उनकी पर्याय है, अनन्त केवलियों को जाने, ऐसी उनकी पर्याय। ओहोहो! यह सिद्ध करते हैं। सिद्ध का केवलज्ञान, वहाँ और केवलज्ञान रहता होगा? यहाँ तो हो, परन्तु वहाँ भी? परन्तु कहाँ चला जाये? अपनी दशा कहाँ जाये?

कहते हैं, **तो भी संसार-समुद्र में नहीं पड़ते हैं।'ऊर्ध्वं विशेषः'।** अब फिर कुछ विशेष कहेंगे। है न? ऊर्ध्वं शब्द पड़ा है अन्दर। ऊर्ध्वं आता है न? अब फिर। **जो भारी होता है, वह गुरुतर होता है,...** जो लोहे का भार हो न, वह भार बहुत हो। वह नीचे गिरे। **और जल में डूब जाता है, वे भगवान त्रैलोक्य में गुरु हैं,...** समझ में आया? **परन्तु भव-सागर में नहीं पड़ते हैं। उन सिद्धों को मैं वन्दता हूँ,...** ऐसे सिद्ध भगवान को मैं वन्दन करता हूँ। **तीर्थंकर परमदेव, तथा भरत, सगर, राघव, पाण्डवादिक...** सब आ गये। कौन? एक तीर्थंकर परमदेव। वापस दूसरे लिये। भरत चक्रवर्ती, सगर चक्रवर्ती, राघव—राम और पाण्डव **पूर्वकाल में वीतराग निर्विकल्प...** देखो! पूर्वकाल में रागरहित वीतराग निर्विकल्प इकट्ठे-इकट्ठे भगवान आये, उन मुनियों को भी।

स्वसंवेदनज्ञान के बल से... महामुनि अलग किये न उन्हें? समझ में आया? **स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** वे सब पूर्वकाल में हुए, वे वीतरागी परम निर्मल पर्याय के बल द्वारा **निजशुद्धात्मस्वरूप पाकर,...** अपने निज स्वरूप को प्राप्त हुए। **कर्मों का क्षयकर,...** कहो, समझ में आया? **परमसमाधानरूप निर्वाणपद में विराज रहे हैं...** देखो! परम समाधानरूप। परम समाधान वीतरागपना वर्तता है उन्हें। पूरी दुनिया में

कोई फेरफार हो, उनको माननेवाले-पूजनेवालों में कुछ फेरफार हो, तो वहाँ विकल्प में कुछ फेरफार हो, ऐसा है नहीं। परम समाधान, परम समाधान। देखो न! टोडरमलजी ने नहीं लिया? सिद्ध क्यों राग नहीं करते? क्यों ... नहीं करते? ऐसा सब बहुत वर्णन किया है।

परमसमाधानरूप निर्वाणपद में विराज रहे हैं, उनको मेरा नमस्कार होवे... अब अन्दर में तो भरा, अर्थ में थोड़ा रह गया है। लोकालोक प्रकाश केवलज्ञान स्वसंवेदन त्रिभुवन गुरु हैं। ऐसे लोकालोक के प्रकाशवाले केवलज्ञान स्वसंवेदनरूपी गुरु है। **'त्रैलोक्यालोकनपरमात्मस्वरूपनिश्चयव्यवहारपदपदार्थव्यवहारनयकेवलज्ञानप्रकाशेन समाहितस्वस्वरूपभूते निर्वाणपदे तिष्ठन्ति'** इतना अर्थ इसमें रह गया है। वास्तव में तो त्रिलोक अवलोकन। तीन काल और तीन लोक का अवलोकन... परमात्मस्वरूप ऐसा। उसका निश्चय और व्यवहार पद, पदार्थ व्यवहार नय से। पर को जाने व्यवहार से, अपने को जाने निश्चय से। देखो! दोनों डाला इतना थोड़ा। अपने स्वरूप को जाने, वह निश्चय कहलाता है; पर को जाने, (वह) व्यवहार कहलाता है। इसका स्पष्टीकरण बाद में लेंगे, हों! यह पाँचवीं में लेंगे, पाँचवीं में लेंगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ। वहाँ नहीं। यह तो समुच्चय बात है, सब।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वे तो जितने होंगे, वे कर्म का नाश करके होंगे, इतनी बात। कर्म का नाश होकर होंगे, सिद्ध होंगे। जितने भूतकाल के जीव वे सब हो गये, वे सब वीतराग निर्विकल्प समाधि से कर्म का क्षय किया। कर्म का क्षय करके गये न सब? कर्म ... आठों ही कर्म का क्षय करके। आठों ही कर्म की यहाँ बात है न अभी? उन अरिहन्त की वर्तमान चार (कर्म) की बात थी। यह तो सब कर्म का क्षय करके, भरत चक्रवर्ती, राघव-राम, पाण्डव निर्वाण को प्राप्त हुए। उनका ज्ञान निश्चय से तो अपने अवलोकन परम परमात्मा अपना स्वरूप निश्चय से अपना। व्यवहार से परपदार्थ का ज्ञान। ऐसा केवलज्ञान '**प्रकाशेन**' ऐसे केवलज्ञानसहित समाधि में विराजते

हैं। समाधान में विराजते हैं, ऐसा कहते हैं। बहुत स्पष्टीकरण पाँचवीं में आयेगा। पर को जानते हुए तन्मय नहीं होते, इसलिए यहाँ व्यवहार से जाना, ऐसा कहा गया है। यह स्पष्टीकरण पाँचवीं में करेंगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब इकट्ठे एकसाथ लिये। पहले समुच्चय तीर्थंकर आदि लिये, यह महामुनि आदि लिये। तीर्थंकर आदि महा मुनि हुए न सब? तीर्थंकर पद बिना। भरत, पाण्डव, राम, वे तीर्थंकर नहीं थे। इसलिए उन सबको इकट्ठे एकसाथ लिये। समझ में आया? '**भेगा**' समझते हैं? साथ में। कोई-कोई भाषा में (अन्तर पड़ता है)। यह तो सरल हो जाये धीरे-धीरे। यहाँ के तुम वासी हो गये तो अभ्यास करना पड़ेगा। मकान बनाया है न यहाँ तुमने? मकान बनाया न यहाँ गुजरात में तुमने? कहो, समझ में आया?

निश्चय, व्यवहार पद पदार्थ। यहाँ व्यवहार के स्थान में व्यवहाररूप से जाना पर को और निश्चय से अपने को। ऐसा केवलज्ञान, ऐसा कहते हैं। ऐसे केवलज्ञानमय में '**प्रकाशेन समाहितस्वस्वरूपभूते**' वह केवलज्ञान वापस अपना स्वरूप है। पर को जाने, इसलिए कहीं पर का स्वरूप है, ऐसा नहीं। '**निर्वाणपदे तिष्ठन्ति**' आहाहा! वहाँ वे लोकालोक को जानते हुए तिष्ठते हैं, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान अर्थात् आत्मा की एक समय की पर्याय पूर्ण प्रगट की। लोकालोक को जानते हुए विराजते हैं। ओहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बात मात्र... है वहाँ। यहाँ स्थिर है, इसलिए वहाँ नाश हो जाता है। कर्म पककर टूट गया अर्थात् कि उस विपाक में ऐसा ही आया। खिर गया। जैसे पत्ता होता है न? डण्ठल... डण्ठल। यह आम। केरी को क्या कहते हैं? आम। उसका है न दण्डल? फट जाता है न? डींटयुं। हमारे काठियावाड़ में (डींटडी कहते हैं)। क्योंकि उस आम का सामने का भाग पक जाये तो खिर जाता है। उसी प्रकार यहाँ आत्मा का ध्यान करने से कर्म खिर जाने के योग्य थे, वे खिर गये, रजकण छूट जाये, उसका नाम ... क्षय आता है न? निर्जरा में आता है, निर्जरा में आता है श्लोक। वे पक

गये। यहाँ पाक हो गया तेरे ज्ञान का, वहाँ पककर खिर गये, जा। यह तो एक निमित्त से बात की, कर्म थे इतनी बात सिद्ध की। चार गाथा हुई।

★ ★ ★

गाथा - ५

'अतः ऊर्ध्वं' लो! जो यहाँ आया। अब **यद्यपि व्यवहारनयेन मुक्तिशिलायां तिष्ठन्ति शुद्धात्मनः हि सिद्धास्तथापि निश्चयनयेन शुद्धात्मस्वरूपे तिष्ठन्तीति कथयति—**

(५) ते पुणु वंदउँ सिद्ध-गण जे अप्पाणि वसंत।
लोयालोउ वि सयलु इहु अच्छहिँ विमलु णियंत॥५॥

आगे यद्यपि वे सिद्ध परमात्मा व्यवहारनयकर लोकालोक को देखते हुए... देखो! वे सिद्ध भगवान। आहाहा! यह उनकी पर्याय का स्वभाव है। पूर्ण पर्याय हुई, उसमें बाकी क्या रहा जानने का? स्व और पर सब पूरा ज्ञात हो। अकेला आत्मा, आत्मा करे, ऐसा नहीं। उस आत्मा में वह लोकालोक के ज्ञान की पर्याय हुई, तब उसे आत्मा कहा जाता है। तब उसे पूरा आत्मा कहा जाता है। उसका स्वभाव-शक्ति में स्व-पर को पूर्ण जानने का, ऐसी एक-एक द्रव्य की शक्ति ऐसी पर्याय में पूर्ण हो गयी। लोकालोक को जानना, वह अपना एक समय की पर्यायवाला आत्मा, उसे आत्मा कहा जाता है। उसे लोकालोक का ज्ञान निकाल डाले तो उसकी पर्याय पूरी न रही। एक समय की पर्याय में अपने त्रिकाल द्रव्य, गुण और पर्याय दूसरे के द्रव्य, गुण और पर्याय सब जानने की एक समय की पर्याय। एक पर्याय इतनी न माने, उसने आत्मा माना नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो परमात्मप्रकाश है। लसलसते लड्डू तैयार किये हुए ऐसे। बिना दाँत का मनुष्य खाये।

मुमुक्षु : हलुवा झरझरता हलुवा....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ हलुवा... हलुवा। यह तो लसलसता कहलाता है, हमारी काठियावाड़ी भाषा में। लसत... लसत आता है या नहीं? ऐई! लसत ज्ञान। आता है। यह सब शब्द शास्त्र में हैं, हों! हमारी काठियावाड़ी भाषा में गर्म-गर्म हलुवा आवे न हलुवा? लसलसता गर्म-गर्म थोड़ा मुख में लगे, ऐसा है, ऐसा करके खाने का कहे

लोगों को। मनुष्य बीमार हो न। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, ...! खाने जैसी—अनुभव करने जैसी—चीज़ यह है। आहाहा! सिद्ध भगवान की पर्याय लोकालोक को जाने, तथापि लोकालोक में तन्मय नहीं, इसलिए उसे व्यवहार से कहा, और अपनी पर्याय को स्वयं सीधा जानता है, इसलिए निश्चय कहा। तन्मय होकर जाने, इसलिए निश्चय कहा। यह स्पष्टीकरण करेंगे।

मोक्ष में तिष्ठ रहे हैं,... वहाँ भी अभी उपाधि लोकालोक को जानने की—कितने ही ऐसा कहते हैं। सुन तो सही! उपाधि क्या, वस्तु का स्वरूप है। यहाँ हमको एक पाँच दस घर को देखते हैं और विचारते हैं तो हमको बड़ा बोझा लगता है। यह लोकालोक को (जाने)? सुन न, तुझे भान नहीं होता। ज्ञान की पर्याय जहाँ स्वभावरूप से हो गयी। स्वभाव में जहाँ अटकने का विषय जो था, वह छूट गया। पूर्ण स्वभाव हो गया है। उसे क्या न जाने? तथापि कोई उपयोग पर में रखे तो जाने, ऐसा नहीं। वह तो अपनी पर्याय का परिणमन का सामर्थ्य जितना था, वह प्रगट हो गया। उसमें लोकालोक ज्ञात होता है, ऐसा पर्याय का स्वभाव है, ऐसा सिद्ध करते हैं। इससे कोई विरुद्ध कहता हो, तो वह आत्मा को समझता नहीं, सिद्ध को समझता नहीं, पाँच पद को समझता नहीं, भगवान की आज्ञा को समझता नहीं। समझ में आया? इसके लिये तो चार यह बात सिद्ध करने जाते हैं। मुफ्त की बात नहीं करते एक-एक गाथा में। भिन्न-भिन्न प्रकार से द्रव्यानुयोग का जो स्वरूप है, द्रव्य का अनुसरण कर गुण, पर्याय आदि जिस प्रकार से जिस जगह जहाँ हो, उसे उस प्रकार से समाहित कर देते हैं। आहाहा! अमरचन्दभाई! आहाहा! कहो, भगवानलालभाई! णमो अरिहंताणं। मैं तो सीमन्धर भगवान को वन्दन करता हूँ। कौन है 'सीमन्धर' भगवान? लो!

लोक के शिखर ऊपर... हों! वापस देखो! **'वसंत। लोयालोउ वि सयलु इहु अच्छहिँ विमलु णियंत' तो भी शुद्ध निश्चयनयकर अपने स्वरूप में ही स्थित हैं,...** लोकालोक जानते हैं, इसलिए पर स्वरूप में स्थित हैं, ऐसा नहीं। ऐसी अपनी जो पर्याय निर्मल हो गयी, उसमें वे विराजते हैं, उसमें वह ज्ञात होता है। इसलिए वास्तव में लोकालोक जानने पर लोकालोक में रहे हैं, ऐसा नहीं। अपनी निर्मल पर्याय में रहे हैं। इसकी विशेष बात करेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १३, गुरुवार, दिनांक २३-९-१९६५
गाथा - ५ से ७, प्रवचन - ५

शब्दार्थ। **मैं फिर उन सिद्धों के समूह को वन्दता हूँ...** देखो! चार गाथा में लिया और इस पाँचवीं में लेंगे और अभी छठवीं में लेंगे और सातवीं में लेंगे। यहाँ परमात्मा सिद्ध कैसे होते हैं, उनका स्वरूप है। अकेला परमात्मा... परमात्मा कहे कि मोक्ष हो गया, मोक्ष हो गया, यह दूसरा क्या? उसे और पर्याय क्या और उसे लोकालोक का जानना क्या? वे स्वरूप में स्थित हैं। वे पर को जानने पर भी पर में स्थित नहीं। यह सब उनका स्वरूप जैसा है, वैसा वर्णन करते हैं। अज्ञानी एकान्त माननेवाले इस प्रकार से परमात्मा को जानते नहीं।

मैं फिर उन सिद्धों के समूह को वन्दता हूँ... पाँचवीं (गाथा)। **जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में तिष्ठते हुए...** देखो! निश्चय से—वास्तविक तो अपने स्वरूप में ही परमात्मा वहाँ विराजे, सिद्ध हुए वे। **व्यवहारनयकर समस्त लोक-अलोक को संशय रहित प्रत्यक्ष देखते हुए ठहर रहे हैं।** अर्थात् अपने स्वरूप को निश्चय से जानते हैं। पर को जानना, वह व्यवहार है। व्यवहार अर्थात् कि जानते हैं, परन्तु पर में तन्मय नहीं होते। सिद्ध भी पर को लोकालोक को जानते हैं। जानना ... रहा नहीं। लोकालोक को जानना और उपाधि क्या, ऐसा क्या? अकेला आत्मा... आत्मा? उस आत्मा में उस लोकालोक का ज्ञान अपनी पर्याय में आ जाता है। इसलिए यहाँ कहते हैं कि संशय रहित **लोक-अलोक को प्रत्यक्ष देखते हुए...** सिद्ध परमात्मा मोक्ष में विराजते हैं। अपनी आत्मपर्याय में, आत्मनिवास में विराजते हैं।

विशेष। **मैं कर्मों के क्षय के निमित्त...** देखो! कर्मों के क्षय में निमित्त, पाप कर्म का क्षय होता है न उस विकल्प से? स्वरूप में स्थिर होने से सब कर्मों का क्षय होता है। **कर्मों के क्षय के निमित्त फिर उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ, जो निश्चयनयकर अपने स्वरूप में स्थित हैं,...** अपने स्वरूप को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के आराधन

द्वारा, अन्तर स्वरूप के अभेद रत्नत्रय के आराधन से जो मोक्षपर्याय प्राप्त हुई, वह निश्चयकर अपने स्वरूप में स्थित है वहाँ। समझ में आया? वहाँ ऊपर कहना कि मुक्ति शिला के ऊपर लोक में रहते हैं, वह सब व्यवहार; अपने स्वरूप में रहते हैं, यह निश्चय।

और व्यवहारनयकर सब लोकालोक को निःसन्देहपने से प्रत्यक्ष देखते हैं,... नहीं देखते, ऐसा नहीं। व्यवहार से देखते हैं, उसका अर्थ कि तन्मय नहीं। परन्तु लोकालोक अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, अनन्त उनके गुण और पर्याय, सबको सिद्ध भगवान—मोक्ष पधारे हुए परमात्मपर्याय सबको जानते हैं। **परन्तु पदार्थों में तन्मयी नहीं है,...** पदार्थ चले गये नहीं कहीं जगत में। केवलज्ञान हो गया तो पदार्थ-बदार्थ कुछ नहीं। पहले भासित होते थे वे खोटे हैं।

मुमुक्षु : पहले भासित....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले भासित होते थे, ऐसा कहे। जब तक भ्रमणा थी, तब तक। ज्ञान हो गया फिर समाप्त। फिर अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु, और अनन्त पदार्थ कैसे? ऐसा नहीं। अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त परमाणु हैं, उससे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश हैं। वह सब भगवान के ज्ञान में, सिद्ध में भी, मोक्ष की पर्याय में, केवलज्ञान की सूक्ष्म पर्याय में सब जानते हैं, निःसन्देह जानते हैं। लो!

तन्मयी नहीं है, अपने स्वरूप में तन्मयी है। एकाकार है। लोकालोक में एक हुए नहीं, एक तो अपने स्वरूप में हैं। अपनी जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्द आदि जो पर्याय, उसमें स्वयं एकत्वरूप से विराजमान हैं। पर से विभक्त हैं। परन्तु पर का ज्ञान निःसन्देहरूप से अपने में वर्तता है। कहो, समझ में आया? **जो परपदार्थों में तन्मयी हो, तो पर के सुख-दुःख से आप सुखी-दुःखी होवे,...** भगवान का ज्ञान नारकी को देखता है। अनन्त दुःखी, महा दुःखी नारकी को सिद्धपद में भगवान देखते हैं, परन्तु कहीं तन्मय नहीं। तन्मय हो तो उसके दुःख को भोगना पड़े। जाने सही। नारकी के दुःख, निगोद के अनन्त दुःख, अनन्त-अनन्त जीवों की जो अपरमार्थ विकारीदशा, उन सबको भगवान जानते हैं। परन्तु उस विकार की पर्याय का उन्हें अनुभव, अनुभव नहीं होता।

जाने (कि) यह अग्नि है, लो! वह ज्ञान को जाने? वह ज्ञान कहीं अग्नि में एकाकार हो गया है? उस अग्नि को ज्ञान वेदता नहीं। ज्ञान जाने कि यह अग्नि है। ज्ञान ज्ञान को जाने, ज्ञान अग्नि को जाने। दोनों ज्ञान अपना है। अग्नि को जानते हुए ज्ञान कहीं अग्नि के साथ तन्मय नहीं। इसलिए उसे वेदन भी नहीं। अग्नि उष्ण है, लाल है, ..., उग्र है, ऐसा ज्ञान ज्ञान में आवे। उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान। परन्तु उसमें स्पर्शकर उसे जाने, ऐसा नहीं। तब तो उसका दुःख हो। इसी प्रकार लोकालोक के पदार्थों को भगवान भिन्न रहकर जानते हैं। समझ में आया?

पर के सुख-दुःख से आप सुखी-दुःखी होवे, ऐसा उनमें कदाचित् नहीं है। व्यवहारनयकर स्थूलसूक्ष्म सबको केवलज्ञानकर प्रत्यक्ष निःसन्देह जानते हैं... व्यवहार से अर्थात् उनमें तन्मय हुए बिना। व्यवहार से अर्थात् परवस्तु में एकमेक हुए बिना **स्थूलसूक्ष्म सबको केवलज्ञानकर प्रत्यक्ष निःसन्देह जानते हैं...** इसमें सूक्ष्म और स्थूल उसे लागू किया है। वहाँ सूक्ष्म पर्याय केवलज्ञान। समझ में आया? **किसी पदार्थ से राग-द्वेष नहीं है।** तीन काल-तीन लोक लोकालोक जानने पर भी परमात्मा सिद्ध जो हुए, उन्हें किसी के प्रति राग-द्वेष नहीं।

यदि राग के हेतु से किसी को जाने, तो वे राग-द्वेषमयी होवें, यह बड़ा दूषण है,... यदि राग-द्वेष से लोकालोक को जाने। नारकी को। शत्रु, यह शत्रु इसे मारे, इसलिए द्वेष; यह भगवान का भगत है, इसलिए राग (करे), ऐसा है नहीं। जाने सब जाने। जिसकी पर्याय जैसी है, वहाँ उसे भगवान की पर्याय तीन काल-तीन लोक की एक समय में जाने।

इसलिए यह निश्चय हुआ कि निश्चयनयकर अपने स्वरूप में निवास करते हैं... लो! वास्तव में तो अपने स्वरूप में ही निवास है। पर में निवास नहीं। परन्तु पर सम्बन्धी का ज्ञान अपने में है। उसमें उस ज्ञान में स्वयं निवास करते हैं। **पर में नहीं, और अपनी ज्ञायकशक्तिकर सबको प्रत्यक्ष देखते हैं...** देखो! परन्तु अपनी ज्ञायक—जानने की शक्ति द्वारा लोकालोक को जानते हैं। पर के कारण से लोकालोक को जानते हैं, ऐसा नहीं। तथा लोकालोक को जानते हुए लोकालोक में एकाकार होते हैं, ऐसा नहीं। वे अपनी ज्ञायकशक्ति द्वारा लोकालोक को जानते हैं। देखो! ऐसी बात वास्तविक

आत्मा सर्वज्ञ ने देखा, उसमें होती है, अन्यत्र ऐसी बात हो नहीं सकती। समझ में आया ? आत्मा... आत्मा तो सब बातें करे, परन्तु वह आत्मा ऐसा समझे बिना, उसे आत्मा की सच्ची श्रद्धा होती नहीं। लो ! सिद्ध भगवान में भी इतना जाने ? अभी उन्हें जानना (रहे) ? पर्याय का स्वभाव है। देखो न ! कहा न ? ज्ञायकशक्ति, अपना ज्ञायकपर्याय का स्वभाव है। स्व के त्रिकाली गुणों को, द्रव्य को, पर्याय को और पर के तीन काल-तीन लोक को जाने, वह अपनी शक्ति द्वारा जानते हैं। **सबको प्रत्यक्ष देखते हैं, जानते हैं।**

जो निश्चयकर अपने स्वरूप में निवास कहा... यह अन्तिम सार। कहाँ रहते हैं, यह यहाँ पाँचवीं में सिद्ध किया। जाने लोकालोक को, तथापि बसते हैं निज स्वरूप में। ऐसे भगवान **निश्चयकर अपने स्वरूप में निवास कहा, इसलिए वह ही अपना स्वरूप ही आराधने योग्य है,...** ऐसा आत्मा वह सिद्ध समान ही यहाँ स्वरूप है। पर्याय में भले अल्पता हो, शक्तिरूप से सिद्धस्वरूप है। ऐसा ही आत्मा अन्तर दृष्टि करके अनुभव करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया ? ऐसा ही यह आत्मा शक्ति से लोकालोक को जाननेवाला है। ज्ञायकशक्ति से लोकालोक को जाननेवाला इसका स्वभाव है। पर में तन्मय हुए बिना, पर का सुख-दुःख वेदन किये बिना, परन्तु पर के सुख-दुःख को जाननेवाला ज्ञान अपने में शक्तिरूप है, ऐसे आत्मा का आराधन करना, वह उसका सार है। समझ में आया ? ऐसा आत्मा अपना है, ऐसा कहते हैं।

ज्ञायकशक्ति तो लोकालोक को जाने, तथापि उसमें तन्मय नहीं, पर के सुख-दुःख (वेदती) नहीं, तथापि ज्ञायकशक्ति द्वारा जाने बिना रहे नहीं। ऐसी यह ज्ञायकशक्ति। अब यह द्रव्य। यह पर्याय में था, ऐसा कहा। यह द्रव्य-गुण में ऐसी शक्ति पड़ी है, तीन काल-तीन लोक को आत्मा जाने, ऐसी यहाँ शक्ति है। ऐसी शक्तिवाले तत्त्व को अन्तर्मुख दृष्टि करके आराधना, सेवन करना, वह इस गाथा का सार है। कहो, समझ में आया ? लो ! पाँच गाथायें वन्दन की कही।

★ ★ ★

गाथा - ६

अब छठवीं गाथा। छठवीं (में) इसका स्वभाव वर्णन करते हैं। यह तो पर्याय का ज्ञान ऐसा लोकालोक का (करे) और वस्तु में स्व में और पर में जानते हुए बसे नहीं। अब यहाँ तो इसका स्वभाव वापस क्या है? अब द्रव्य का स्वभाव कैसा है वहाँ? (यह वर्णन करते हैं)।

आगे निरंजन, निराकार, निःशरीर सिद्धपरमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ—छठवीं।

(६) केवल-दंसण-णाणमय केवल-सुक्ख-सहाय।
जिणवर वंदउँ भत्तियए जेहिँ पयासिय भाव॥ ६॥

देखो! ऐसा सिद्धपद में है। **जो केवलदर्शन और केवलज्ञानमयी हैं,...** यह स्वभाव वर्णन किया, स्वभाव अब। समुच्चय सिद्धपद का वर्णन करके, उनके निवास का वर्णन करके वन्दन किया, अब उनके स्वभाव का ज्ञान करके वर्णन करते हैं।

कैसे हैं सिद्ध भगवान? वे यहाँ से मोक्ष पधारे, आत्मा की पूर्ण दशा की प्राप्ति की, वे निरंजन हैं। उन्हें अंजन / मैल नहीं। निराकार है। जड़ का आकार नहीं। अपना आकार है। जड़ का आकार सिद्ध को नहीं। सिद्ध को अपना आत्मा का आकार असंख्य प्रदेशी आकार है, अवगाहन है, व्यापक है। असंख्य प्रदेश वह उनका आकार है। ले, ऐसा कहाँ से? सिद्ध को आकार! निराकार (कहा वह) तो पर का आकार नहीं। जड़ का इन्द्रियग्राह्य, ऐसा आकार नहीं। अरूपी प्रभु असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण धामरूप, उन्हें आकृतिरूप व्यंजनपर्याय सिद्ध भगवान को होती है। व्यंजन अर्थात् आकृति। शरीर से भिन्न पड़ गये, परन्तु शरीर प्रमाण का आकार अरूपी घन रह गया। ऐसा उन्हें आकार होता है। निरंजन निराकार कहते हैं न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... है। इसलिए कहा न, व्यंजनपर्याय है उनकी। वह प्रदेशगुण के कारण से उसमें आकृति है उनकी। जो कोई सात हाथ (या) पाँच सौ धनुष जिस प्रमाण मोक्ष पधारे, वैसा ही उनका आत्मा का घनआकार ऐसा है वहाँ। जड़ का आकार

नहीं। नि:शरीर है। शरीर नहीं। **सिद्धपरमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ।** केवलज्ञान, केवलदर्शन।

जिनका केवलसुख ही स्वभाव है... देखो! अकेला अतीन्द्रिय आनन्द जिनका पर्याय में स्वभाव प्रगट हो गया, ऐसा जिनका—सिद्ध का स्वरूप है। और **जिन्होंने जीवादिक सकल पदार्थ प्रकाशित किये,...** लो! पहले जब उपदेश किये, पहले उपदेश जिनेश्वर ने किया, उसे समझकर मोक्ष प्राप्त हुए, वे स्वयं भी उपदेश करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। **प्रकाशित किये, उनको मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ।** ऐसे परमात्मा सिद्ध हुए, ऐसे भाववाले। परन्तु यह पहले ऐसे भावों को और पदार्थों को उन्होंने प्रकाशित किये थे। देखो! कितनी सन्धि करते हैं! पहले उनको जब अरिहन्तपद था, तब सब पदार्थों को जानते और प्रकाशित करते थे, जानते और प्रकाशित करते थे। यह सिद्ध में जाने और प्रकाशित करे नहीं अब। समझ में आया? कोई ऐसा कहे कि फिर पूर्ण सर्वज्ञ हुए और फिर उन्हें बोलना क्या, वाणी क्या, समझाना क्या? वह सब अन्दर होता है। केवलज्ञान, केवलदर्शन हुआ, तथापि छह द्रव्य, पदार्थ, सबका ज्ञान भगवान प्ररूपित करते हैं। उन्हें दूसरे समझकर केवलज्ञान पावे, वे भी प्ररूपित कर सिद्ध होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टयस्वरूप जो परमात्मतत्त्व है,... देखो! विशेष व्याख्या। केवलज्ञान आदि, केवलदर्शन, केवलसुख, केवलवीर्य, अनन्त चतुष्टयस्वरूप जो **परमात्मतत्त्व है, उसके...** अब सब यहाँ बात करते हैं पहले की। आत्मा ऐसा है। **उसके यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान और अनुभव,...** ऐसा जो आत्मा, उसका यथार्थ श्रद्धान, उसका ज्ञान, उसका आचरण। अनुभव अर्थात् आचरण। **इन स्वरूप अभेदरत्नत्रय वह जिनका स्वभाव है,...** समझ में आया? **और सुख-दुःख, जीवित-मरण, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र, सबमें समान भाव होने से उत्पन्न हुई वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि उसके कहनेवाले जिनराज के उपदेश को पाकर अनन्त चतुष्टयरूप हुए,...** देखो! क्या कहते हैं? सन्धि करते हैं, सन्धि करते हैं कि पूर्व में जो आत्मायें इस प्रकार से निर्विकल्प आत्मा की वीतराग पर्याय प्राप्त होकर केवल (ज्ञान) पाये, उसे कहनेवाले। वापस उन्होंने ऐसा कथन किया। अनन्त जो अरिहन्त हुए, उन्होंने जाना और कथन किया। वे

सिद्ध हुए। और दूसरे अरिहन्त हुए, उन्होंने जानकर कथन किया और वे सिद्ध हुए। समझ में आया ?

वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि उसके कहनेवाले जिनराज... वीतराग का ही ऐसा उपदेश होता है, ऐसा कहते हैं। वीतराग परमात्मा के अतिरिक्त ऐसा उपदेश किसी को तीन काल में हो सकता नहीं। किसी मार्ग में, अन्य में या दूसरे पंथ में। जिसे आत्मा एक वस्तु पूर्ण अन्तर (में) ज्ञात हुई, अनुभव हुआ, केवल (ज्ञान) हुआ और ऐसा ही उपदेश उन्होंने दिया। ऐसे जिनराज के उपदेश को पाकर दूसरे जीव अनन्त चतुष्टयरूप हुए। समझ में आया? दूसरे जीव भी अनन्त दर्शन आदि तत्त्व को प्राप्त हुए। **तथा जिन्होंने यथार्थ जीवादि पदार्थों का स्वरूप प्रकाशित किया...** वापस उन्होंने भी जीवादि पदार्थ का स्वरूप कहा। अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए, उन्होंने भी वापस जीवादि का स्वरूप कहा।

तथा जो कर्म का अभाव है, वह ही केवलज्ञानादि अनन्तगुणरूप मोक्ष... लो! कर्म का अभाव हुआ, परन्तु अन्दर का भाव? यहाँ भाव का वर्णन है न? कर्म का अभाव हुआ परन्तु अन्दर का भाव प्रगटरूप से पूर्ण हो गया। **केवलज्ञानादि अनन्तगुणरूप मोक्ष...** हुआ। अनन्तगुणरूप मोक्ष। **और जो शुद्धात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रय, वही हुआ मोक्षमार्ग...** दोनों को प्ररूपित किया, ऐसा कहते हैं। वे अरिहन्त सिद्ध हुए, अरिहन्तरूप से सिद्ध हुए। उन्होंने ऐसा मार्ग प्ररूपित किया और फिर अनन्त चतुष्टय अपने थे, (वे) सिद्धपद को प्राप्त हुए। ओहो! क्या कहते हैं? देखो! ऐसे भाव को प्राप्त सिद्ध पूर्व में अरिहन्तपद में अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हुई, उसे मोक्ष और मोक्ष का मार्ग भगवान ने कहा है। ऐसे परमेश्वर ने मोक्ष और मोक्ष का मार्ग कहा है, वह सच्चा है। समझ में आया?

शुद्धात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेदरत्नत्रय, वही हुआ मोक्षमार्ग... और पहले कहा, केवलज्ञान आदि अनन्त गुणरूप मोक्ष। **ऐसे मोक्ष और मोक्षमार्ग को भी प्रगट किया, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।** समझ में आया? यहाँ तो अरिहन्त के केवलज्ञान आदि पर्याय प्रगट हुई, उन्होंने ऐसा उपदेश किया, और दूसरों ने भी उनका उपदेश सुनकर ऐसे अनन्त चतुष्टय को प्राप्त हुए। और उन्होंने उपदेश करके

दूसरों ने प्राप्त किया, ऐसी परम्परा चलती जाती है। '**जो जाणदि अरहंतं**' सर्व अरिहन्तों ने उपदेश किया। देखो न! सन्धि करते हैं न! अनन्त तीर्थंकर पूर्व में जो हुए तीर्थंकर, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान करके क्षायिक समकित को प्राप्त हुए, राग-द्वेष का नाश करके यथाख्यातचारित्र को प्राप्त हुए, और उन सब अरिहन्तों ने ऐसा ही उपदेश दिया। उपदेश किया, यह सन्धि करते हैं कि अरिहन्त को केवलज्ञान होता है और वाणी नहीं होती, ऐसा नहीं। समझ में आया? वह वाणी खिर गई, उपदेश हो गया, पूर्ण सिद्धपद को प्राप्त हुए। उन सिद्ध में फिर यह केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि भाव रह गये। वाणी आदि निकल गयी। समझ में आया? यह तो वस्तु का ऐसा स्वभाव है। वन्दन की भक्ति में भी इतना विस्तार करके वर्णन करते हैं।

भाव जाने, वैसे कहे। इसमें है न, देखो न! '**पयासिय भाव**' '**जिणवर वंदउँ भत्तियए जेहिँ पयासिय भाव।**' जिसने सब भावों का प्रकाश किया है। आहाहा! अरे! जिनवर कौन है? जिनवर की कैसी भाषा की वर्णना होती है? और फिर वर्तमान पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर भी वाणी हो और भाव का उपदेश करे। निमित्तरूप से कहा जाता है। वाणी तो वाणी के कारण से निकलती है। समझ में आया? यदि सम्बन्ध न हो तो यह जगत समझे कैसे? कि भाई! वहाँ हो गया। पूर्ण हो, फिर उसे वाणी कैसी? बोले कैसा? बोलते नहीं। वाणी का ऐसा योग होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वाणी आवे ही ऐसी, ऐसा कहते हैं। अरिहन्त होने पर भी, केवलज्ञान होने पर भी निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से उन्हें वाणी का योग होता ही है। यह यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... नवकार गिने तो सुखी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन? धूल में गिने तो सुखी। क्या नवकार गिने? समझे बिना? नवकार, नवकार गिने तो सुखी हो। परन्तु अभी नवकार का स्वरूप क्या? अरिहन्त किसे कहना? सिद्ध किसे कहना? अरिहन्त की वाणी होती कैसी है? वह किसका उपदेश? यहाँ तो कहते हैं, अरिहन्त मोक्ष और मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं,

ऐसा कहा। जिनवर ने प्रकाशित किया, जिनवर ने आत्मा का मोक्षमार्ग और मोक्ष प्रकाशित किया। दोनों की प्ररूपणा भगवान ने की है। समझ में आया? अनन्त तीर्थंकर प्रवाह से चले आये, उन सबने पूर्व का उपदेश जो किया अरिहन्तों ने, उसे स्वयं समझकर अरिहन्तपद को प्राप्त हुए और वापस उपदेश किया। और दूसरे प्राप्त हुए, उन्होंने उपदेश किया, ऐसी परम्परा अनादि से चली आती है। अनादि वीतराग जैनशासन चला आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अनन्त काल रहेंगे, त्रिकाल रहेंगे। जगत है, वहाँ त्रिकाल शासन रहेगा। समझ में आया? वस्तु ऐसी है। आत्मा वीतरागी हुआ, पूर्णानन्द को प्राप्त हुआ, ऐसे प्राप्त अनन्त काल के हैं। कोई नये नहीं। हुए थे, वे मोक्ष गये... हुए वे मोक्ष गये... हुए वे मोक्ष गये... और नये होते हैं, वे मोक्ष में जाते हैं। वे उपदेश करके मोक्ष जाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और उनका ही मोक्ष और मोक्ष के मार्ग का प्ररूपण सच्चा है। दूसरे के शास्त्र—कथन सच्चे नहीं, ऐसा साथ में सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन अर्थात् वस्तु। जैनों में अर्थात् क्या? जैन अर्थात् मार्ग, आत्मा का स्वभाव। जो यह कहा जाता है ऐसा। अनन्त गुण जो रागरहित स्वरूप है, अनन्त गुण का पिण्ड जो है एक आत्मा, उसमें राग-द्वेष और अज्ञान (हो), उसे जीते वह जैन। वह तो वस्तु का स्वरूप है। ऐसा अन्यत्र कहीं अन्य में हो नहीं सकता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करुणा नहीं। करुणा कैसी और? भगवान को करुणा कैसी? उन्हें वाणी का ऐसा योग होता है कि (केवलज्ञान प्राप्त) करने के पश्चात् ही वाणी निकले और फिर सिद्ध हो जाये, ऐसा कहते हैं। और उनके उपदेश में मोक्ष और मोक्ष के मार्ग का ही उपदेश आवे। देखो न! उसमें फिर व्यवहार की दो बातें नहीं की। अकेली निश्चय की ही बात की है। देखो! यहाँ योगफल कहते हैं।

इस व्याख्यान में अरहन्तदेव के केवलज्ञानादि गुणस्वरूप जो शुद्धात्मस्वरूप है, वही आराधनेयोग्य है,... देखो ? यह मूल गुण स्वरूप की बात की है। पूर्ण केवलज्ञानादि ऐसे भाव प्रगट हुए, ऐसे ही भाव की प्रथम प्ररूपणा की। ऐसा जो भाव अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्वभाव, वही आदरणीय है। **अरहन्तदेव के केवलज्ञानादि गुणस्वरूप...** देखो ! ऐसा जो शुद्धात्मस्वरूप, वही सेवनयोग्य है। कितनी बात करते हैं, इसमें ! अरिहन्त होते हैं अर्थात् उन्हें वाणी का योग होता है, वह उपदेश होता है, दूसरे समझते हैं, वे वापस केवल (ज्ञान) पाते हैं, वे उपदेश करते हैं, और दूसरे समझते हैं, वे मोक्ष जाते हैं, अन्य समझकर फिर उपदेश करे, ऐसा अनादि से चला आता है। समझ में आया ? यह नया मार्ग नहीं। अनादि-अनन्त तीर्थंकर और जैनशासन में जिनवरों ने स्वरूप को पाकर, उपदेश करके मोक्ष पधारे। दूसरे समझकर ऐसा प्ररूपित करे, यह क्रम चला आता है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि यह जैन के साधु और जैन अर्थात् एक संकोच वाडा हो गया। विशाल कर डाले कि सब सच्चे, तो वह सच्चा। परन्तु सब सच्चे हों किसके ? सच्चा एक ही होता है। समझ में आया ? उसके लिये योगीन्द्रदेव ने वन्दन करने में इतनी गाथायें ली हैं। सात। सात गाथा, हों ! आठवीं से परमात्मस्वरूप का प्रश्न शुरु करेंगे। छह हुई न ?

★ ★ ★

गाथा - ७

अब तीन—आचार्य, उपाध्याय, साधु को वन्दन बाकी रहा, वह इसमें—सातवीं में करेंगे। ओहोहो !

आगे भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक... देखो ! जैन के आचार्य, जैन के उपाध्याय, जैन के साधु कैसे होते हैं ? कि भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक (होते हैं)। निश्चय स्वरूप के रत्नत्रय के आराधक और विकल्प शुभ व्यवहार होता है, उसके आराधक व्यवहार से कहे जाते हैं। दोनों साथ में हैं न ? प्रमाण का ज्ञान कराते हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु

छद्मस्थ हैं। छद्मस्थ हैं तो उन्हें निश्चय भी है, व्यवहार भी है, ऐसे दोनों साथ में ज्ञान कराते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आराधना, आराधना है न दोनों की? व्यवहार से ऐसा ही कहे न? निश्चय की आराधना है तो व्यवहार की आराधना का आरोप करके कथन है। निश्चय मोक्षमार्ग एक ही है, परन्तु निमित्त को मोक्षमार्ग कहा जाता है। इसी प्रकार आराधन तो निश्चय का एक ही है, परन्तु बीच में निमित्त विकल्प (आवे)। ऐसा ही सच्चा देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, सच्चे जिनेश्वर देव ने कहे हुए देव-गुरु और शास्त्र का प्रेम, भगवान ने कहे हुए महाव्रत के राग का विकल्प और भगवान ने कहे हुए शास्त्र का अभ्यास—ऐसा विकल्प आचार्य, उपाध्याय, साधु को महासन्त मुनि हुए, उन्हें ऐसा होता है और निश्चयस्वभाव का आराधन होता है। दोनों होते हैं, उन्हें यहाँ आचार्य, उपाध्याय, साधु कहते हैं। दुनिया के सब साधु, ऐसा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो थे ही कब? मिथ्यादृष्टि हैं सब। साधु कैसे? इसीलिए तो यह स्पष्टीकरण करते हैं यहाँ। लो! सातवीं है न? बड़ी लम्बी है परन्तु।

७) जे परमप्पु णियंति मुणि परम-समाहि धरेवि।
परमाणंदह कारणिण तिण्णि वि ते वि णवेवि॥७॥

ओहोहो! **जो मुनि परमसमाधि को धारण करके...** जो सन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु तीनों, हों! ऐसे जैन के साधु, उन्हें साधु, जैन के आचार्य, उन्हें आचार्य, जैन के उपाध्याय, उन्हें उपाध्याय (कहते हैं)। इनके अतिरिक्त आचार्य, उपाध्याय, साधु तीन काल में दूसरे हो नहीं सकते। समझ में आया? वे जैन के अर्थात् वह वस्तु भगवान ने कही, तत्प्रमाण पूर्णानन्द आत्मा का परिणमन करके, श्रद्धा-ज्ञान करके रमे, उन्हें आचार्य, उपाध्याय और साधु कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोंच में क्या? धूल में है? ले, यह सेठ भी ठीक है। एक-

एक रखते हैं अन्दर से। यह लोंच करावे, इसलिए साधु नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्दर आत्मा में से वृत्ति का लोंच कर डाला है। यह लोंच कहते हैं न? वह नहीं। वह तो धूल अब जड़ की क्रिया है। उसे कौन करे? इसने कभी की नहीं।

यहाँ तो उस प्रकार का उसे छह आवश्यक आदि का विकल्प हो, सामायिक, चौबीसंथो वन्दन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, ऐसा शुभराग हो, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग हो, सच्चे महाव्रत भगवान ने कहे, वैसा विकल्प आचार्य, उपाध्याय, साधु को छह काय की दया का विकल्प होता है। समझ में आया? ऐसा व्यवहार होता है और निश्चय में स्व आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता का निश्चय होता है। दोनों का ज्ञान कराते हैं। ऐसे हों, उन्हें आचार्य, उपाध्याय और साधु कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। विकल्प भी है। यहाँ तो छद्मस्थ की बात ली है न? केवल (ज्ञान) हो गया, वह तो पहली छह गाथाओं में कहा। परमात्मा, उनका स्वभाव, उनका उपदेश सब बात उसमें ले ली है। पूरा जैनशासन का स्वरूप परमेष्ठी का क्या? कथन क्या? उपदेश क्या? वह सब ले लिया। ऐसी शैली है कथन पद्धति, दिगम्बर आचार्यों की पद्धति कोई अलौकिक, अलौकिक है!! पूरे जैनशासन का अभिप्राय भरा है अन्दर। समझ में आया? उनकी पर्याय और उसमें तीन काल-तीन लोक को जाने और फिर भी बसे अपने में, पर में नहीं। परवस्तु है, उसे जाने, तथापि तन्मय नहीं। यह वस्तु! समझ में आया? लो!

परमसमाधि से उत्पन्न... देखो! देखते हैं। **धारण करके सम्यग्ज्ञानकर परमात्मा को देखते हैं।** अपने स्वरूप को देखते हैं। देखो! आचार्य, उपाध्याय, साधु ये तीन छद्मस्थ हैं, हों! यह पंच परमेष्ठी में अरिहन्त, सिद्ध की व्याख्या हो गयी। उन्हें पहिचानकर वन्दन किया। ऐसे द्रव्य हों, ऐसा गुण हो, ऐसी पर्याय हो और अरिहन्त हों, वहाँ तक उसे मोक्ष और मोक्षमार्ग का कथन-उपदेश हो। ऐसा पहिचानकर वन्दन किया है। अब **सम्यग्ज्ञानकर परमात्मा को देखते हैं।** देखो! शान्ति से आत्मा का पूर्ण जो स्वभाव है अन्तर वस्तु। उसे वर्तमान वीतराग पर्याय द्वारा, उसके साथ सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मा को

अन्तर में देखते हैं। उन्हें आचार्य, उपाध्याय और साधु कहते हैं। ऐसा आत्मा, वह सर्वज्ञ ने कहा, परमेश्वर ने देखा और परमेश्वर ने प्रगट किया।

ऐसा आत्मा अन्दर में **देखते हैं। किसलिए ? रागादि विकल्प रहित परमसमाधि से उत्पन्न हुए परमसुख के रस का अनुभव करने के लिये...** दूसरा कोई कारण नहीं। अपने रागादि विकल्परहित परम शान्ति का उत्पन्न होना, परम आनन्द के रस के अनुभव के लिये आत्मा को देखते हैं। समझ में आया ? अतीन्द्रिय आनन्द के रस के लिये आत्मा को देखते हैं। अतीन्द्रिय आनन्दरस अन्दर पड़ा है, उसका ज्ञान लिया और साथ में आनन्द लिया। दोनों लिये। आहाहा! विकल्प रहित, पुण्य-पाप के विकल्प रहित। व्यवहार कहा, हों! व्यवहाररत्नत्रय कहेंगे। तथापि उस व्यवहार से रहित, परमसमाधि से उत्पन्न, परम आनन्द ऐसा सुखरस, उसका **अनुभव करने के लिये उन तीनों आचार्य, उपाध्याय, साधुओं को भी मैं नमस्कार करके परमात्मप्रकाश का व्याख्यान करता हूँ।** आहाहा! पंच परमेष्ठी को साथ में खड़े रखा है। भगवान! मेरे साथ पधारो... पधारो। मैं परमात्मप्रकाश लिखनेवाला हूँ। ऐसे, हों! पहिचानकर अरिहन्त को, सिद्ध को, उनके भाव को, उनके निवास को, क्षेत्र को, निश्चयक्षेत्र अपने में, परक्षेत्र ऊपर, निश्चय जानना अपने में, पर जानना लोकालोक का, वह सब स्वरूप जैसा है, वैसा उसे जानकर, उसे परमेष्ठी का बहुत मान, बहुत भक्ति, बहुत विनय से प्रभु! वन्दन करता हूँ और अब मैं परमात्मप्रकाश शुरु करता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

विशेष। **अनुपचरित अर्थात् जो उपचरित नहीं है, इसी से अनादि संबंध...** क्या कहते हैं ? कर्म और नोकर्म का सम्बन्ध। वस्तु आत्मा है अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी वर्तमान पर्याय में—अवस्था में कर्म, नोकर्म का निमित्तरूप से सम्बन्ध है। कैसा सम्बन्ध है वह ? अनुपचरित। सम्बन्ध कहा न ? ऐसे नजदीक है न ? कर्म। कैसा है ? कि उपचरित नहीं। कुछ नहीं, ऐसा नहीं। ऐसे नजदीक सम्बन्ध है। कर्म का, रजकण का, अनन्त परमाणु का निमित्तरूप से सम्बन्ध है। **इसी से अनादि संबंध है,...** अनुपचरित अनादि सम्बन्ध है। अनुपचरित अर्थात् उपचार नहीं, दूर नहीं। नजदीक में आत्मा के साथ कर्म के रजकण का अनन्त परमाणु से बनी हुई प्रकृति, ऐसे अनन्त आठ कर्म के रजकण जो हैं, उनका अनादि सम्बन्ध जीव को है।

परन्तु असद्भूत... देखो! भाषा। अपनी पर्याय में नहीं। ऐसे हैं। इसलिए सम्बन्ध है तथापि असद्भूत है, मिथ्या है। यहाँ अन्दर में आ नहीं गया। समझ में आया? यह असद्भूत की व्याख्या ही मिथ्या की है इन्होंने। लो! दौलतरामजी ने। अभी असद्भूत का ऐसा अर्थ बदल डालते हैं। ये मिथ्या (कहते हैं)। वास्तव में सम्बन्ध है ही नहीं। ऐसे निमित्तरूप से (एक) क्षेत्रावगाह में है, अपनी पर्याय के अंश के अस्तित्व में वह है ही नहीं। इसलिए उसे **असद्भूत (मिथ्या) है, ऐसा व्यवहारनयकर द्रव्यकर्म, नोकर्म का सम्बन्ध होता है,...** समझ में आया? दोनों इकट्ठा लिया है।

अनुपचरित असद्भूत व्यवहार सम्बन्ध, द्रव्यकर्म, नोकर्म। यहाँ तो कहना है कि ऐसा सम्बन्ध, उससे रहित। सम्बन्ध, उससे वस्तु रहित है, ऐसा वापस। समझ में आया? यह व्यवहार अनुपचार से सहित, निश्चय से रहित। भगवान आत्मा ऐसे अनन्त-अनन्त गुण से विराजमान उसकी पर्याय में, वर्तमान कर्म का अनुपचार रूप से सम्बन्ध, नजदीक सम्बन्ध अनादि से है, वह मिथ्या सम्बन्ध है। वस्तुरूप से देखो तो उसमें वह सम्बन्ध नहीं। कहो, एक ओर सम्बन्ध है तथा और नहीं। कहो, ...भाई!

उससे रहित... एक बात हुई। समझ में आया? बहुत बात करेंगे, हों! वह **चिदानन्दचिद्रूप एक अखण्डस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व है, वही सत्य है।** ऐसा बतलाना है यहाँ तो। अखण्ड चिदानन्द ज्ञानानन्द चिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव, ऐसा शुद्धात्मतत्त्व, वही सत्य है। उसमें सम्बन्ध कहना, वह व्यवहार से (कहा जाता है), निश्चय से सम्बन्ध नहीं है।

अब (कहते हैं), **अशुद्ध निश्चयनयकर रागादि का सम्बन्ध है,...** आत्मा की वर्तमान पर्याय में पुण्य-पाप, राग-द्वेष, दया-दान के विकल्प अशुद्धनिश्चय से है। क्योंकि, मलिन अर्थात् अशुद्ध। निश्चय अर्थात् स्वपर्याय। इससे है। परमार्थ से उससे रहित है। समझ में आया? कहो, यह सहित, यह रहित, यहाँ सहित, यह रहित ऐसा दोनों का ज्ञान कराते हैं। ऐसी वस्तु की स्थिति है। ऐसा कहते हैं कि उसे अशुद्ध राग-द्वेष पर्याय में है ही नहीं। नहीं तो फिर टालना कहाँ रहा? नहीं तो फिर मोक्ष हो गया। है। समझ में आया? वह असद्भूत व्यवहारनय से कहा था, परद्रव्य है इसलिए। और यह तो स्वद्रव्य में, पर्याय में अभी अशुद्ध-मलिन पर्याय निश्चय से स्व-पर्याय में है।

रागादि का सम्बन्ध है,... तथापि उससे रहित है। वस्तु उससे रहित है। अखण्ड ज्ञायकभाव, उससे रहित है। पर्याय में सम्बन्ध है। स्वभाव की दृष्टि से देखे तो उसमें रहित है। ओहोहो! निश्चय और व्यवहार दो में विरोध है, देखो! व्यवहार से कहे, है, निश्चय से कहे, नहीं। दो नय है तो दो के विषय में अन्तर है।

तथा मतिज्ञानादि विभावगुण के सम्बन्ध से रहित... देखो! और आत्मा की पर्याय में मति-श्रुतज्ञान विभाव पर्याय (के साथ) उसका अशुद्धनिश्चय से सम्बन्ध है। तथापि परमार्थ से सम्बन्ध रहित है। उस मतिज्ञान के विकभाव रहित द्रव्यस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? विभावगुण कहा न विभाव? चिदानन्द चिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व में वह नहीं। पर्याय में है, वस्तु में नहीं।

तीन बोल लिये। कर्म लिये, नोकर्म लिये, असद्भूत से सम्बन्ध है, वस्तुरूप से अन्दर नहीं। अशुद्धनिश्चय से रागादि है, वस्तुरूप से नहीं। मतिज्ञान की पर्याय अब ली, हों! उघाड़। परन्तु अभी अधूरा अपूर्ण है, ऐसी पर्याय है, स्वभाव में नहीं। आहाहा! देखो! वह शैली है यह। जयसेनाचार्य की शैली है न? भाई! वह शैली है। इस मतिज्ञान को विभावगुण कहा जाता है, यह शैली है। नियमसार में भी आता है। नियमसार में आता है। द्रव्यसंग्रह में, समयसार में आता है। यह शैली है। ऐसा बताना है कि अपूर्ण जो मति-श्रुत है, वह विभाव है। नियमसार में चार ज्ञान को विभाव कहा है न? मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय विभावपर्याय है, चार विभावगुण है। एक स्वभाव तो केवलज्ञान ही है। सेठी! भगवान आत्मा का स्वभाव अन्दर और पर्याय, वह केवलज्ञान, वही उसका वास्तविक स्वभाव है। चार ज्ञान की पर्याय—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, वह विभाव है, अपूर्ण है, निकल जाती है, कायम टिके ऐसी नहीं, इसलिए विशेष विभाव गिनकर, उसे अशुद्धनिश्चय का विषय गिना है। स्वभाव में वह है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : क्रम ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। क्रम पड़े भले, परन्तु वह द्रव्य में नहीं।

मुमुक्षु : होते हुए भी नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होते हुए भी नहीं है। वस्तु में नहीं। जहाँ दृष्टि देनी है उसमें

नहीं, पर्याय में है। पर्याय में है, कहा न? अशुद्ध (निश्चय से) है। समझ में आया? देखो!

अशुद्ध निश्चयनयकर रागादि का सम्बन्ध है, उससे तथा मति-ज्ञानादि विभावगुण के सम्बन्ध से रहित और नर-नारकादि चतुर्गतिरूप विभावपर्यायों से रहित... समय-समय की पर्याय में, संसार में है। नरक का उदय, मनुष्य का उदय ऐसी विभाव पर्याय, वस्तु के स्वभाव में देखें तो वे हैं नहीं। कितने बोल लिये! ज्ञान कराते हैं। मूल तो इसमें से कुछ आडा-टेढ़ा (समझे तो) द्रव्य का और पर्याय का उसे स्वभाव का भान नहीं। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से कल्पित करे तो उसे वस्तु की खबर नहीं। इसलिए वस्तु की पर्याय और वस्तु की त्रिकालता—दोनों जैसा है, वैसा साथ में ज्ञान कराते हैं। चार गति के विभावपर्याय से रहित। कितने बोल लिये? सेठी! कितना याद रहे?

मुमुक्षु : जितना याद करनेयोग्य हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्य है। भाषा ऐसी है। योग्य है।

पहले ऐसे कहा था कि यह आत्मा है। यह वस्तु कैसी है? चिदानन्द चिद्रूप, चिदानन्द चिद्रूप, ज्ञानानन्द ज्ञानरूप, एक अखण्ड स्वभाव वस्तु ऐसा शुद्धात्मतत्त्व, वह परम सत्य और वह दृष्टि का विषय है। तथापि उसकी वर्तमान पर्याय में—वर्तमान अवस्था में कर्म और नोकर्म का अनुपचार से सम्बन्ध व्यवहार से असद्भूत से सम्बन्ध है, वास्तव में अन्तर वस्तु में वह है नहीं। फिर अशुद्ध निश्चय अर्थात् विकारी पर्याय राग-द्वेष और दया-दान उसकी पर्याय में है, परन्तु वह अशुद्ध है। है, नहीं है—ऐसा नहीं। वे अशुद्ध हैं, वह निश्चयनय अर्थात् उसकी पर्याय है। वस्तु की दृष्टि अखण्ड ज्ञायकस्वभाव में वह नहीं। व्यवहार और निश्चय, व्यवहार और निश्चय दोनों का बराबर ज्ञान कराते हैं।

छद्मस्थ हो तब तक उसमें मति-श्रुत आदि चार ज्ञान की पर्याय है। विभावगुण पर्याय जिसे कहा। है तो वह पर्याय, हों! विभावगुण कहा न उसे? विभावगुण कहा है वह। अपूर्ण पर्याय है न? केवलज्ञान, वह पूर्ण स्वभाव है। इस अपेक्षा से चार ज्ञान की पर्याय है। पर्याय में है। वस्तु अखण्ड ज्ञायक की दृष्टि में वह नहीं। जहाँ अखण्ड

ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करनी है, उसमें वह नहीं। पर्याय में है। सेठी! कभी किस प्रकार से वहाँ वाँचन भी नहीं किया होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बँगला में क्या था? धूल, सुलग गया देखो न! वह सब बँगले कितने हैं? बँगला कहा तो उसके घर में रहा। यहाँ तो नजदीक की बात है। यहाँ साथ का साथ रहे, उसकी बात की थोड़ी। साथ-साथ रहे उसकी बात करनी है, वह दूर रहे, उसका क्या काम है यहाँ? वह तो सब साथ ही है जहाँ हो वहाँ, ऐसा कहते हैं। स्त्री, पुत्र, बँगला तो कहीं पड़े रहे। परन्तु जहाँ आत्मा जाये वहाँ अखण्ड ज्ञायकस्वरूप है आत्मा और उसकी पर्याय में कर्म का, नोकर्म का सम्बन्ध है, विभावरूप पर्याय मति आदि है, रागादि पर्याय है, नरकादि गति की किसी गति की पर्याय है। समझ में आया या नहीं?

मुमुक्षु : साथ ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ साथ में था? धूल साथ में है। राग अशुद्ध कहा न? अशुद्ध निश्चयनय से राग साथ में है। नेमिदासभाई! बँगला है यहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? तुम्हारा डाला। यहाँ तो जो बोल उसकी पर्याय के सम्बन्ध में व्यवहार से या निश्चय से हो, उसकी बात करके, आत्मा के त्रिकाली अखण्ड ज्ञायकस्वरूप की दृष्टि में वह नहीं। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, पर्याय से शुद्ध है... शुद्ध है... शुद्ध है... रहने दो, शुद्ध-अशुद्ध विचार करना रहने दो। अरे! सुन तो सही। अशुद्ध का निर्णय अशुद्ध है, ऐसा यदि ज्ञान नहीं करे तो यह द्रव्य शुद्ध है, उस ओर ढलना कैसे होगा तेरा? और अन्दर शुद्ध अखण्ड ज्ञायक में ढला, तथापि यह चार पर्याय का उसे ज्ञान वर्तता है। सम्यग्दृष्टि को इन चार का ज्ञान वर्तता है। असद्भूत व्यवहारनय से कर्म का सम्बन्ध, अशुद्धनिश्चय से राग का सम्बन्ध और विभाव चार ज्ञान की पर्याय की अपूर्णता का पर्याय में सम्बन्ध, और चार गति में से किसी भी एक गति का वर्तमान उदय का सम्बन्ध (है, उसका ज्ञान वर्तता है)। गति में है परन्तु गति

की पर्याय में नहीं? वस्तु में नहीं। समझ में आया? क्या कहा? यह चार साथ के साथ रखते हैं, ऐसा कहते हैं। लो! कहा?

'**यच्चिदानन्दैकस्वभावं शुद्धात्मतत्त्वं तदेव भूतार्थं**' देखो! '**परमार्थरूपसमयसार-शब्दवाच्यं सर्वप्रकारोपादेयभूतं**' डाला वापस देखो! यह। क्या कहा? संस्कृत में बहुत सार है। इसमें विस्तार नहीं किया। कहते हैं, ऐसा जो चिदानन्द चिद्रूप पर्याय में ऐसा होने पर भी ज्ञानानन्द चिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व, वही भूतार्थ है। सत् अर्थात् भूतार्थ है, ऐसा कहना है। '**भूतार्थं**' है, भाई! है न अन्दर? यह भूतार्थ अर्थात् यह सत्य है। वह है पर्याय में, परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से असत् है, व्यवहार की अपेक्षा से सत् है। व्यवहार की अपेक्षा से चारों सत्य है। कर्म का सम्बन्ध, राग, विभाव पर्याय और नरक आदि की गति। है, नहीं है—ऐसा नहीं कि कुछ नहीं। व्यवहार से है, निश्चय से नहीं। निश्चय से वास्तविक भूतार्थ त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव, वह भूतार्थ है। भूत-अर्थ अर्थात् विद्यमान पदार्थ, सत्य। समझ में आया?

उसी को परमार्थरूप समयसार कहना चाहिए। लो! उसे परमार्थरूप भगवान आत्मा एक स्वभाव, त्रिकाल चिदानन्दस्वरूप, एकरूप भूतार्थ जो दृष्टि का विषय, जिसे (समयसार) ग्यारहवीं गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' ऐसा भूतार्थ सत्यार्थ प्रभु, त्रिकाल सत्यार्थ वस्तु, उसका अन्तर आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसे पर्याय का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। पर्याय का ज्ञान होता है, उसके आश्रय से दर्शन नहीं होता। व्यवहार का ज्ञान होता है। समझ में आया?

ऐसा भूतार्थ भगवान! लो! भूतार्थ भूत—विद्यमान पदार्थ। अखण्ड अनन्त गुण का पिण्ड चिद्रूप, अनन्त स्वभाववाला, यह चार प्रकार की पर्याय से अथवा सम्बन्ध से रहित, उसे परमार्थरूप से समयसार कहना चाहिए। उसे परमार्थ आत्मा कहा जाता है। समयसार अर्थात् उसे परमार्थ आत्मा कहा जाता है। यह गति का उदय, रागादि व्यवहार से आत्मा कहे जाते हैं। अरे! चार ज्ञान की पर्याय व्यवहार से आत्मा कही जाती है।

मुमुक्षु : छोड़ देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चार ज्ञान की पर्याय छोड़नेयोग्य है। एक समय की पर्याय है। वह व्यवहार आत्मा है, निश्चय आत्मा नहीं। वह अभूतार्थ है। भूतार्थ तो त्रिकाल चिदानन्दस्वभाव, वह भूतार्थ—परमार्थ आत्मा है। वह आश्रय करनेयोग्य है। आहाहा!

वही सब प्रकार आराधने योग्य है। लो! वही सब प्रकार से आराधनेयोग्य '**सर्वप्रकारोपादेयभूतं तस्माच्च यदन्यत्तद्धेयमिति।**' देखो! यह नारकी का उदय या मनुष्य का उदय, मनुष्यगति का उदय छोड़नेयोग्य है। मति की चार ज्ञान की पर्याय छोड़नेयोग्य है। कहो, रागादि छोड़नेयोग्य है। सम्बन्ध तो छोड़नेयोग्य है ही। व्यवहारसम्बन्ध। वापस कितना ज्ञान कराते हैं शैली में! समझ में आया?

परमात्मा निर्यंति। मुनि ऐसे परमात्मा को देखते हैं। परम समाधि धरकर, परम वीतरागी पर्याय द्वारा। '**परमाणंदह कारणिण**' परमानन्द के अनुभव के कारण से '**तिण्णि वि त्रीनप्याचार्योपाध्यायसाधून्**' ऐसे आचार्य, उपाध्याय को नमस्कार करता हूँ। ओहोहो! बहुत संक्षिप्त शब्दों में बहुत भरा है, हों! समयसार में भरा है, वैसा भरा है। बहुत भरा है।

जो आचार्य, उपाध्याय, साधु, अपना परमात्म अखण्ड भूतार्थ ज्ञायक समयसार परमात्मा, उसे अन्तर में वीतरागी समाधि द्वारा देखते हैं, वह अपने को देखते हैं, वे परम आनन्द के अनुभव के कारण से देखते हैं। ऐसे आचार्य, उपाध्याय और साधु को मैं नमस्कार करता हूँ। समझ में आया? देखो! यह जैन के साधु, आचार्य, उपाध्याय ऐसे होते हैं। जैन भी ऐसे ही होते हैं, इसके बिना कोई सच्चे आचार्य, उपाध्याय, साधु नहीं हो सकते। जादवजीभाई! वाड़ा में जन्मे। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं। किसे कहना आचार्य? किसे कहना उपाध्याय? और किसे कहना साधु? उसकी पहिचान दी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आत्मा के पाट पर है। ऐसे आत्मा के पाट पर, उसकी बात है यहाँ। यह कहते हैं बात सच्ची। यह अस्सी के पाट पर है, छियानवें के पाट पर है,... भगवान फिर छियानवें के पाट पर। और पाट कब था वहाँ? आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में भूतार्थ अनन्त चिदानन्दस्वभाव से भरपूर एकरूप स्वरूप, वह भूतार्थ है। ऐसा परमात्मा जो अन्तर के सम्यग्ज्ञान द्वारा देखता है, देखो! यह पर्याय हुई, उसके द्वारा देखता है, त्रिकाल द्रव्य की श्रद्धा करता है और परम शान्ति द्वारा अन्तर में आनन्द का अनुभव करता है। ऐसी दशावन्त को आचार्य, उपाध्याय और साधु कहा जाता है। आहाहा! वस्त्र छोड़ दिये, नग्न (हो गये), उसकी बात नहीं ली यहाँ। वह व्यवहार ज्ञान करायेंगे विकल्प का, व्यवहार का। समझ में आया? परन्तु ऐसा ही व्यवहार होता है। जो सच्चे वीतराग के स्वरूप को तत्त्व को जाननेवाले का निश्चय ऐसा होता है तो उसके साथ व्यवहार का विकल्प इसी प्रकार का होता है। यह बात साथ में बतलायेंगे। उसे साथ में विकल्प ऐसा ही होता है। पंच महाव्रत का, सच्चे अरिहन्त देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की भक्ति का, ऐसा उसे भाव व्यवहार से होता है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु यहाँ निश्चय आराधते हैं, इसलिए व्यवहार को भी आराधे, ऐसा इकट्ठा प्रमाणज्ञान कराने के लिये कहा गया है। समझ में आया?

ओहो! इतनी सात गाथाओं में पंच परमेष्ठी की पहिचान करायी। उनके द्रव्य की, उनके गुण की, प्रगट हुई पर्याय की। अरिहन्त में, सिद्ध में प्रगट हुई पर्याय, उसकी कितनी सामर्थ्य, व्यवहार क्या, निश्चय क्या, उन्हें व्यवहार-निश्चय क्या? लोकालोक को जानना, उसे व्यवहार कहना, तन्मय नहीं है इसलिए। अपनी पर्याय को निश्चय कहना, स्व में बसना वह निश्चय, पर में लोक के अग्र में बसना कहना, वह व्यवहार। ऐसी स्थिति में उसका वर्णन किया है। समझ में आया? वास्तविक सत्य का व्यवहार और सत्य क्या है, दोनों का उसमें ज्ञान कराते हैं। योगीन्द्रदेव...! ओहोहो!

वही सब प्रकार आराधनेयोग्य है। उससे जुदी जो परवस्तु है, वह सब त्याज्य है। ऐसी दृढ़ प्रतीति चंचलता रहित निर्मल अवगाढ़ परम श्रद्धा है, उसको सम्यक्त्व कहते हैं,... अब आचार्य की व्याख्या करते हैं। पाँच आचार का पालन करे, वे आचार्य कैसे होते हैं? कि, इस प्रकार से एक वस्तु पूर्णानन्द है, अखण्ड गुण का पिण्ड है, उसकी पर्याय में ऐसे चार प्रकार हैं, निमित्त सम्बन्ध है, ऐसा है। इसका ज्ञान करके ऐसे आत्मा की दृढ़ प्रतीति। ऐसे आत्मा की, हों! ऐसा लोक कहे, वह आत्मा नहीं। ऐसा आत्मा भगवान ने कहा ऐसा। उसकी चंचलता रहित निर्मल अवगाढ़ परम श्रद्धा, निर्मल

परम अवगाढ़ निश्चय श्रद्धा, उसको समकित कहते हैं। लो, उसे समकित कहते हैं।

उसका जो आचरण अर्थात् उस स्वरूप परिणमन वह दर्शनाचार... लो! यह निर्मलरूप से निरतिचार सम्यग्दर्शन का परिणमन (हो), उसे दर्शनाचार कहते हैं। उन आचार्य को ऐसा दर्शनाचार होता है। जो कोई सच्चे आचार्य हों, जैन के अर्थात् वस्तु के तत्त्व के, एक स्वरूप भगवान परमेश्वर ने अनन्त गुण का पिण्ड देखा, ऐसे आत्मा की अन्दर श्रद्धा (हो) और यह चार प्रकार आदि कहा, उसका ज्ञान वर्ते, उसकी पूर्ण श्रद्धा वर्ते, ऐसे चंचलता रहित श्रद्धान, उसरूप से जिसका परिणमन हो गया है। प्रतीति का परिणमन, निश्चय सम्यक्त्व का परिणमन, रुचि का परिणमन, पर्याय उसरूप से परिणम गयी है। सम्यग्दर्शन की पर्याय परिणम गयी पर्याय में। ऐसे आचार्य को दर्शनाचार हो, उन्हें आचार्य कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

और उसी निजस्वरूप में संशय-विमोह-विभ्रम-रहित... देखो! अपना जो निज स्वरूप, चिदानन्द चिद्रूप, एक अखण्ड स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व, उसमें **संशय-विमोह-विभ्रम-रहित...** कैसा आत्मा होगा? यह सर्वज्ञ ने कहा ऐसा पूर्ण आत्मा होगा? या दूसरे प्रकार से एकरूप आत्मा होगा? ऐसा जिसे संशय हो नहीं, विमोह हो नहीं। विमोह अर्थात् कुछ होगा... कुछ होगा... कुछ समझ में नहीं आता। उन्हें ऐसा नहीं होता। विभ्रम अर्थात् विपरीत नहीं होता। उनके ज्ञान में तीन प्रकार के दोषरहित सम्यग्ज्ञान होता है। ऐसा सम्यग्ज्ञान आचार्य को होता है। वे **स्वसंवेदनज्ञानरूप ग्राहकबुद्धि...** उस स्वसंवेदनज्ञानरूप अनुभव की बुद्धि **वह सम्यग्ज्ञान हुआ, उसका जो आचरण अर्थात् उसरूप परिणमन वह ज्ञानाचार है,...** आचार्य को ऐसा होता है, उन्हें आचार्य कहा जाता है। दो बोल कहे, अब विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १४, शुक्रवार, दिनांक-२४-०९-१९६५
गाथा-७, प्रवचन-६

गाथा चलती है न? उसमें यह परमात्मप्रकाश है। आचार्य और उपाध्याय और साधु की स्थिति क्या है, ऐसा पहिचानकर प्रभाकर भट्ट उन्हें नमस्कार करता है। पहले अरिहन्त और सिद्ध का स्वरूप बतलाकर, पहिचान करके नमस्कार किया। अब सच्चे आचार्य, उपाध्याय, साधु कैसे होते हैं? उन्हें पहिचानकर नमस्कार करना, वह वास्तविक नमस्कार कहलाता है।

अब आचार्य की व्याख्या चलती है अपने तो। णमो लोए सव्व आईरियाणं की व्याख्या चलती है। देखो! यहाँ दर्शन से फिर से लेते हैं, देखो! पहले क्या लिया? देखो! कि यह आत्मा है वस्तु अनन्त गुणरूप, स्वरूपरूप, एक स्वभावरूप आत्मा। इसे कर्म का सम्बन्ध है, व्यवहार से असद्भूत व्यवहारनय से। वस्तु स्वभाव की दृष्टि से वह सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् व्यवहार भी बतलाया, कर्म का सम्बन्ध है, ऐसा बतलाया और वस्तु के स्वभावदृष्टि से उस सम्बन्धरहित है। पश्चात् आत्मा की पर्याय में राग का सम्बन्ध है। पुण्य और पाप, दया, दान, शुभाशुभभाव, उसका वर्तमान पर्याय में अशुद्ध निश्चयनय से सम्बन्ध है। वस्तु की अन्तर्दृष्टि से देखने पर वस्तु को उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। इसलिए दो दो का एक का ज्ञान कराया और एक को उपादेय बनाया। समझ में आया? फिर चार ज्ञान की पर्याय। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय है। तथापि वह विभावगुण है। इसलिए होने पर भी वह हेय है और एक शुद्ध द्रव्यस्वभाव अखण्ड... है न अन्तिम? वह विभावपर्याय रहित चिदानन्द चिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव शुद्धात्म तत्त्व, वह अभूतार्थ है, सत्यार्थ है, सत्य यह है। वह है सही व्यवहार से सच्चा। परन्तु परमार्थ सच्चा शुद्धात्म ज्ञायकभाव अनन्त गुणरूप एक स्वभाव, ऐसा शुद्धात्मा वही उपादेय और अंगीकार करनेयोग्य है। ऐसी श्रद्धा निश्चय सम्यग्दर्शन कही जाती है।

चार गति कही। देखो! सर्वज्ञ ने देखा हुआ तत्त्व व्यवहार और निश्चय दोनों का

साथ में ज्ञान कराकर, उपादेय क्या है, यह बताते हैं। चार गति है। एक समय में चार गति होती है। परन्तु उस गति का विभावभाव हेय है। है अवश्य, हेय है। अकेला समयसार भूतार्थ ज्ञायक स्वभाव एकरूप स्वभाव, अनन्त गुण का एकरूप स्वभाव, वह शुद्धात्मा भूतार्थ। उसके सन्मुख, उसकी दृष्टि करके निश्चय सम्यक्त्व प्रगट करना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, समझ में आया ?

वही सब प्रकार आराधनेयोग्य है। आत्मा है। **उससे भिन्न जो परवस्तु है, वह सब त्याज्य है।** चार बोल कहे ये। गति, मतिज्ञान आदि विभावगुण, रागादि अशुद्ध पर्याय और कर्म का सम्बन्ध, ये चारों हेय है। दृष्टि में से इन्हें छोड़नेयोग्य है। एक शुद्ध चैतन्य द्रव्य अनन्त गुण स्वभावरूप एक है। **ऐसी दृढ़ प्रतीति...** उसकी अन्तर में निश्चय प्रतीति, **चंचलता रहित...** अस्ति से दृढ़ प्रतीति (कहा), चंचलतारहित, दोषरहित **निर्मल अवगाढ़ परम श्रद्धा है, उसको सम्यक्त्व कहते हैं,...** देखो! आचार्य को ऐसा समकित होता है। नहीं तो वे आचार्य नहीं कहे जाते। कहो, समझ में आया इसमें ?

उसको जो आचरण अर्थात् उस स्वरूप परिणमन वह दर्शनाचार... यह प्रतीति का परिणमन जो साथ में होना, उसका नाम दर्शनाचार आचार्य भगवन्तों को होता है। समझ में आया ? **और उसी निजस्वरूप में...** भूतार्थ जो वस्तु एक स्वरूप है, इन चार को हेय करके एक स्वरूप स्वभाव भूतार्थ, परमार्थ समयसार है, उसके स्वरूप में **संशय-विमोह-विभ्रम-रहित...** उस स्वरूप में संशय नहीं। कुछ होगा, ऐसा अनध्यवसाय नहीं और विभ्रम अर्थात् विपरीतता नहीं। उसमें चार बोल रहित श्रद्धा कही थी। इसमें **संशय-विमोह-विभ्रम-रहित जो स्वसंवेदनज्ञानरूप ग्राहकबुद्धि...** भगवान आत्मा ज्ञान से अन्तर ज्ञान द्वारा वेदन में आये, ज्ञात हो, अनुभव में आये, ऐसी जो ज्ञान की ग्राहक सम्यग्ज्ञान बुद्धि, उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। इन आचार्य भगवन्त को ऐसा सम्यग्ज्ञान होता है।

उसका जो आचरण अर्थात् उसरूप परिणमन... इस सम्यग्ज्ञान का परिणमन ही पर्यायरूप परिणमन ही हो गया। इसका नाम आचार्य का ज्ञानाचार भाव कहने में आता है। कहो, सेठी! यह आचार्य ऐसे (होते हैं)। यह कभी निर्णय नहीं किया था। यह

बराबर है, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! अपने कल यहाँ तक आया था, लो! समझ में आया? यह तो फिर से दो आचार थोड़े इकट्ठे लिये।

अब तीसरा आचार्य का आचार, तीसरा चारित्राचार कैसा होता है? **उसी शुद्ध स्वरूप में...** जो पहले कहा था, यह '**तत्रैव**' शब्द पड़ा है न? भाई! अन्दर। '**तत्रैव**' '**तत्रैव**'—'**तत्र एव**'**।** जो शुद्ध द्रव्य ज्ञायकभाव अनन्त गुण स्वभावरूप एकरूप, ऐसा जो भगवान आत्मा '**तत्रैव**' अर्थात् **उसी शुद्ध स्वरूप में शुभ-अशुभ समस्त संकल्प-विकल्प रहित...** देखो! कहो, किसे होगा यह? आठवें में होगा यह? यहाँ तो अभी आचार्य की बात करते हैं कि आचार्य ऐसे होते हैं। समझ में आया? और यह आचार्य उपदेश करे तो ऐसा करेंगे। उपाध्याय उपदेश करेंगे न? तब उपदेश ऐसा करेंगे, उस समय की स्थिति का वर्णन है। समझ में आया?

शुद्ध स्वरूप में शुभ-अशुभ समस्त संकल्प रहित जो नित्यानन्दमय निजरस का आस्वाद,... नित्यानन्द अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा, उसका आनन्दमय निज रस, उसका आस्वाद, उसका स्वाद, उसका **निश्चल अनुभव, वह सम्यक्चारित्र है,...** इसका नाम सच्चा चारित्र। अमरचन्दभाई! आहाहा! यह तो बात भी अभी सुनी न हो कि चारित्र कैसा होता है? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं। जाओ! यह सेठिया जैसे भी समझे बिना जय नारायण करते हैं सबको। मोतीरामजी! बराबर है? गृहस्थ व्यक्ति सेठिया, दस-दस पुत्र। उसको बेचारे को ऐसा कि ओहो! सेठिया ने देखो मन्दिर बनवाया। और यह हमको मानते हैं तो हम कुछ होंगे तब मानते होंगे या नहीं?

मुमुक्षु : उसकी अपेक्षा तो अच्छे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छे किसके? कहते हैं, भगवान! ऊपर कहा था यह, हों! यह समयसार एकरूप चिदानन्द एक अखण्ड स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व। उसके अन्दर में, उसके ऊपर एकाग्र होकर निश्चय आस्वाद, आनन्द का आस्वाद का अनुभव, उसका आचरण अर्थात् परिणमन, वह चारित्राचार है। यहाँ तो आनन्द का परिणमन, उसे चारित्राचार कहा, भाई!

मुमुक्षु : सीधे सीधा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सीधी बात। और पंच महाव्रत व्यवहारनय नहीं परन्तु निश्चय। और चारित्र निश्चय अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवन में आत्मा के आनन्द का उग्र आस्वाद लेना, उसे चारित्राचार कहने में आता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह आनन्द निश्चल अनुभव निज रस का निजानन्द का। शुभाशुभ विकल्परहित कहा है। शुभभाव का आनन्द, ऐसा नहीं कहा। यहाँ तो अभी अब छठवें गुणस्थान में शुभभाव होता है, उसमें उसे चारित्र होता है। कौन जाने क्या करते हैं?

मुमुक्षु : गृहस्थ से तो अच्छे है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थ से अच्छे किसके? बिगड़ा हुआ दूध मोळी छाछ से भी गया-बीता है। समझ में आया? छाछ होती है न? मट्ठा। बिगड़ा हुआ दूध, बिगड़ा हुआ। बिगड़ा हुआ दूध तो मोळी छाछ से भी गया-बीता है। मोळा मट्ठा हो तो रोटी भी खायी जाती है। बिगड़े हुए दूध में (खायी जाती है)?

मुमुक्षु : रस अधिक अच्छा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार डालेगा, उगल डालेगा, सब निकाल डालेगा। समझ में आया? यह तो अच्छे ही हैं, ऐसा कहते हैं। मुझसे अच्छे हैं न! यह बड़े आचार्य, ऐसा मानता है अज्ञानी।

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! क्या? देखो न! व्याख्या। प्रभाकर भट्ट इस प्रकार पहिचानकर पंच परमेष्ठी को नमस्कार करता है। यह आठवीं गाथा में लेंगे। समझ में आया? कि इस प्रकार पहिचानकर प्रभाकर भट्ट नमस्कार करके योगीन्द्रदेव से पूछेगा, प्रभु! हमको अनन्त संसार (में) भटकते थे (वह) अब बन्द कैसे हो, ऐसा उपाय हमें बताओ। समझ में आया? लो! यह चारित्राचार। नित्यानन्दमय शुभाशुभ विकल्परहित निज रस का आस्वाद, निश्चल अनुभव का नाम सम्यक्चारित्र, उसका आचरण / परिणमन वह चारित्राचार है।

अब तप, तप। यह आचार्य का चौथा तपाचार। पहला दर्शनाचार, दूसरा ज्ञानाचार, तीसरा चारित्राचार, चौथा तपाचार। **उसी परमानन्दस्वरूप में...** देखो! यह परमानन्दस्वरूप जो भूतार्थ ज्ञायकभाव, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड—दल, उसमें... समझ में आया?

परद्रव्य की इच्छा का निरोधकर... विकल्पमात्र का उत्पन्न होना अटककर। सहज आनन्दरूप स्वाभाविक अतीन्द्रिय आनन्दरूप तपश्चरणस्वरूप। **सहज आनन्दरूप तपश्चरणस्वरूप...** जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का सहज अनुभव होता है, उसे तपस्या कहा जाता है। कहो, मोतीरामजी! रेत के ग्रास नहीं, आनन्द के ग्रास हैं। देखो न! **सहज आनन्दरूप तपश्चरणस्वरूप...** अर्थात् यह तपस्या। शोभालालभाई!

मुमुक्षु : आनन्द की धारा बढ़ती जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। बढ़ती जाये। हमारे सेठ ठीक कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर में भरा है, वह बढ़ता जाये। अन्दर में आनन्द (उग्ररूप से वेदन में आये), तब उसे तपस्या कहा जाता है। बाकी लंघन है, लंघन... लंघन। लंघन कहते हैं न? क्या कहते हैं?

देखो! **सहज आनन्दरूप तपश्चरणस्वरूप...** समझ में आया? लो! **'सुखरसास्वादस्थिरानुभवनं च सम्यक्चारित्रं तत्राचरणं परिणमनं चारित्राचारः, तत्रैव परद्रव्येच्छानिरोधेन सहजानन्दैकरूपेण प्रतपनं तपश्चरणं'** उसका परिणमन, उसे तपश्चरण आचार—तपाचार उसे कहते हैं। आहाहा! यह आचार्य को ऐसे पाँच निश्चय आचार होते हैं। फिर व्यवहार कहेंगे। निश्चय सहित हो तो उसे व्यवहार कहते हैं। **उसी शुद्धात्मस्वरूप में... उसी...** अर्थात् **'तत्रैव'** जो भूतार्थ आत्मा एक समय में अखण्ड चिदानन्द स्वभाव, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान, उसका आचरण, उसका तप प्रतपन।

शुद्धात्मस्वरूप में अपनी शक्ति को प्रकटकर आचरण परिणमन वह वीर्याचार है। पुरुषार्थ, स्वभाव में उग्र पुरुषार्थ करके शुद्धात्मस्वरूप में वीर्य का स्फुरण होना, पुरुषार्थ का स्फुरण, इसका नाम वीर्याचार कहा जाता है। राग का विकल्प, वह सब व्यवहार में जाता है। निमित्त की बात यहाँ है नहीं। **उसी शुद्धात्मस्वरूप में...** अपनी शक्ति को प्रगट करके, लो! पुरुषार्थ से अनन्त आनन्द आदि शक्ति को प्रगट करके। अनन्त गुण की शुद्धता को पुरुषार्थ द्वारा प्रगट करके, आचरणरूप परिणमन होना, उसका नाम वीर्याचार है। **यह निश्चय पंचाचार का लक्षण कहा।** लो! यह सच्चे पंच आचार का स्वरूप कहा, लक्षण कहा। ऐसे पाँच निश्चय हो तो उसे आचार्य कहा जाता है। वरना आचार्य कहने में नहीं आता। समझ में आया?

अब व्यवहार का लक्षण कहते हैं... व्यवहार साथ में होता है। ऐसे आचार्य को निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपाचार, वीर्याचार में साथ में व्यवहार का विकल्प, राग का विकल्प, व्यवहार कैसा होता है व्यवहार उसका, उसका यहाँ ज्ञान कराते हैं। **निःशंकित को आदि लेकर अष्ट अंगरूप बाह्यदर्शनाचार,...** समकित के व्यवहार आचार वीतराग मार्ग में निःशंकता, अन्य धर्म की इच्छा का अभाव, आदि आठ आचार। निःशंक, निःकांक्ष, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य (और) प्रभावना ये आठ आचार होते हैं। निश्चय समकित तो कहा—अपने स्वरूप में अन्तर निश्चल चंचलतारहित परम दृढ़ प्रतीति, उसका परिणमन, वह निश्चय समकित। व्यवहार समकित, उसमें विकल्प ऐसा उसको होता है। भगवान सर्वज्ञ ने कहे हुए मार्ग में उसे शंका नहीं होती, अन्यमति आदि की इच्छा नहीं होती, ग्लानि नहीं होती, पूर्ण कब होगा, ऐसा द्वेष नहीं होता। समझ में आया? उलझन नहीं होती, मूंझवण को क्या कहते हैं? उलझन—घबराहट। कहाँ होगा? कैसा होगा? ऐसा नहीं होता। अमूढदृष्टि होती है। उपगूहन—अपने धर्म की वृद्धि करता हो और दोष को छिपाता हो। स्थितिकरण—स्वरूप में व्यवहार से स्थिर करता हो। वात्सल्य—धर्म के प्रति, धर्मी के प्रति प्रेम रखता हो और प्रभावना शुभभाव की हो। उसे समकित के आठ व्यवहार आचार कहे जाते हैं। कहो, समझ में आया?

देखो! यह सर्वज्ञ ने कहे हुए मार्ग में निःशंकता आदि व्यवहार होता है। अपने स्वरूप में निःशंक आदि का परिणमन, वह निश्चय है। बाहर में वीतराग सर्वज्ञ ने कहा हुआ मार्ग, इसमें निःशंक (होता है)। अन्यमति में कहा हुआ (मार्ग हो), उसमें बिल्कुल इच्छा नहीं होती। ऐसे आठ आचार व्यवहार से विकल्प हो, उसे व्यवहार समकित के आचार कहे जाते हैं। कहो, समझ में आया?

अब, व्यवहार ज्ञानाचार। निश्चय ज्ञानाचार तो अन्तर स्वरूप में स्वस्वरूप की ग्राह्य बुद्धि स्वसंवेदन बुद्धि, वह निश्चयज्ञान। उसके साथ व्यवहार ज्ञान का विकल्प ऐसा होता है। **शब्द शुद्ध, अर्थ शुद्ध, उभय शुद्ध...** ज्ञान का व्यवहार है न? काल में पढ़ना, विनय से पढ़ना, जिससे समझा हो, उसे गुप्त नहीं रखना, कोई धर्म पाता हो, उसे

अन्तराय नहीं करना। ऐसे आठ प्रकार के बाह्य ज्ञानाचार। कहो, समझ में आया? उसके आठ प्रकार के बाह्य आचार हैं वे ज्ञानाचार। देखो! '**कालविनयाद्यष्टभेदा**' अन्दर संस्कृत में है। संक्षिप्त किया है। काल में पढ़ना, विनय से पढ़ना, शुद्धि से पढ़ना, बहुमान से पढ़ना, कोई पढ़ता हो उसे अन्तराय करना नहीं, असातना करना नहीं—इत्यादि सम्यग्ज्ञान के आठ आचार, निश्चय ज्ञानाचार के काल में उसे ऐसा भाव होता है।

अब, व्यवहारचारित्र। निश्चयचारित्र तो कहा था कि अन्दर निजानन्द के आस्वाद का अनुभव, वह निश्चयचारित्र है। व्यवहारचारित्र, पंच महाव्रत, शुभराग। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। शुभराग है। **पंच समिति...** विकल्प। ईर्या, भाषा, ऐषणा (आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापन) आदि। **तीन गुप्तिरूप व्यवहार चारित्राचार...** तेरह कहे—पाँच (महाव्रत), पाँच (समिति)=दस और तीन (गुप्ति)=तेरह। व्यवहार तेरह प्रकार के चारित्र आचार का विकल्प, उसे व्यवहारचारित्र कहा जाता है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। उसे परम्परा मोक्ष का कारण कहेंगे। समझ में आया? यह व्यवहारचारित्र कहा।

(अब) व्यवहारतप। **अनशनादि बारह तपरूप तपाचार...** यह अनशन, ऊनोदर आदि बारह तप है न? उसका भाव होना, विकल्प उठना, उसे व्यवहार तपाचार कहते हैं। **अपनी शक्ति प्रगट कर मुनिव्रत का आचरण, वह व्यवहार वीर्याचार...** अट्ठाईस मूलगुण का पालन, शक्ति प्रमाण बराबर करके, व्यवहार मुनिव्रत का आचरण, यह व्यवहार वीर्याचार। लो! पाँच हो गये व्यवहार, पाँच हो गये निश्चय। **यह व्यवहार पंचाचार परम्पराय मोक्ष का कारण है,... 'पारंपर्येण साधक...'** संस्कृत में ऐसा शब्द है। निमित्त है न? निमित्त अर्थात् उसे छोड़कर स्थिर होगा। समझ में आया? अहो! स्वभाव के आश्रय से जो हुए पाँच आचार, वही निश्चय मोक्ष का साधक है। परन्तु यह व्यवहार को परम्परा साधक कहा जाता है। निमित्त है। व्यवहार से निमित्त अनुकूल गिनकर ऐसा ही भाव, उसे पाँच आचार का होता है, दूसरा अन्यमतियों ने कल्पित (व्यवहार) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि उसे होते नहीं, अर्थात् उसे व्यवहार को—निमित्त को परम्परा मोक्ष का साधक कहा गया है। कहो, समझ में आया?

अब, वे आचार्य कैसे होते हैं? देखो! विशिष्टता अब। दो बातें कीं। **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मतत्त्व उसका यथार्थ श्रद्धान,...** आचार्य जैन के अर्थात् वास्तविक तत्त्व के। जैन के आचार्य अर्थात् वास्तविक आचार्य। कैसे होते हैं? कि **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मतत्त्व...** पूरा पदार्थ—निर्मल ज्ञान, दर्शन स्वभाववाला आत्मा। **उसका यथार्थ श्रद्धान,...** यह पहले कहा था, उसके पाँच लेंगे। यहाँ तो प्ररूपणा करेंगे। पालन करे और पालन करावे। यथार्थ सम्यग्दर्शन, **यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, आचरण तथा परद्रव्य की इच्छा का निरोध (तप) और निजशक्ति का प्रगट करना, ऐसा यह निश्चय पंचाचार साक्षात् मुक्ति का कारण है।** देखो! वह परम्परा कहा था न ऊपर? उसके साथ में लिया। साक्षात् तो वह मुक्ति का कारण है। वह तो बीच में निमित्त है, परम्परा आरोप देकर कहा जाता है। अरे! शास्त्रों को भी देखते नहीं कि आचार्य क्या कहते हैं, उनका हृदय क्या है?

ऐसे निश्चय व्यवहाररूप पंचाचारों को... व्यवहार नहीं चाहिए बीच में। है इसमें? प्रकाशित हो गया है? व्यवहार नहीं चाहिए। व्यवहार नहीं। निकाल दिया है। है न यहाँ? निकाल दिया है न? देखो न! '**वीतरागनिर्विकल्पसमाधिं स्वयमाचरन्त्यन्या-नाचारयन्तीति भवन्त्याचार्या...**' ऐसा है। व्यवहार की बात नहीं। व्यवहार बतलाया। वह निश्चय पंचाचारों को, ऐसा लेना। व्यवहार निकाल डालो बीच में शून्य। है? सेठी! कहाँ है? व्यवहार नहीं चाहिए। व्यवहार को रखना अन्दर। **ऐसे निश्चय पंचाचारों को आप आचरें और दूसरों को आचरवावें ऐसे आचार्यों को मैं वन्दता हूँ।** ऐसे पाँच को आचरण करे और आचरण करावे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हुआ? आचरण करावे उसमें, भाई! कि उसे कथनवाला आचार्य लिया है। दूसरे को कहे न? ऐसा मार्ग है, ऐसा कहे न? तब वह कौन से गुणस्थान में होता है? आठवें गुणस्थान में होता है? सातवें में होता है यह? पाँच आचार आचरण करे और आचरण करावे। आचरण करावे, इसका अर्थ कि कहे कि यह आचरण करो, ऐसा आचरण करो। यह छठे गुणस्थानवाले के निश्चय और व्यवहार का वर्णन यहाँ किया है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान! तेरे मार्ग की रीति क्या है? अरे! निर्विकल्प निरावरण निर्लेप भगवान आत्मा की अन्तर निर्विकल्प दृष्टि हुए बिना मार्ग की शुरुआत कहाँ से होगी? आहाहा! उसके ज्ञान बिना सच्चा ज्ञान कहाँ से होगा? और उसमें रमणता बिना चारित्र का आनन्द कहाँ से होगा? और शुद्ध की इच्छा के आनन्द की वृद्धि बिना उस इच्छा का निरोध का आनन्द कैसे होगा? और अन्दर वीर्य का पूर्ण अनन्त शुद्ध गुण का सामर्थ्य रस के रूप में वीर्याचार, इसके बिना आचार्य की स्थिति कहाँ से होगी? ऐसे **पंचाचार को आप आचरें और दूसरों को आचरवावें...** आचरवावे अर्थात्? ध्यान में बैठा हो, उसे आचरवाते होंगे?

मुमुक्षु : उपदेश देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश देते हैं। यह तुम्हारे सब कितने ही इनकार करते हैं। यह भी पूर्व के हों, वे कहाँ जाये?

मुमुक्षु : व्यवहार निकाल डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। व्यवहार निकाल डालना। पाठ में व्यवहार है ही नहीं। व्यवहार का ज्ञान कराया। आचरण ऐसे आराधन पहले साधारण रीति से कहा। यहाँ निकलवा दिया। नहीं, टीका में नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। नहीं निश्चय पंचाचार। **आप आचरें...** देखो न! पाठ है। '**स्वयमाचरन्त्यन्यानाचारयन्तीति...**' दूसरे को आचरवावे इतनी बात है। समझ में आया? '**निर्विकल्पसमाधिं स्वयमाचरन्त्य...**' देखो! यह व्यवहार कहा जाता है। पहले कहा न? ज्ञान कराया है, ज्ञान कराया है। लो! ऐसे आचार्य को मैं वन्दन करता हूँ। प्रभाकर भट्ट कहता है कि ऐसे आचार्यों को मैं वन्दन करता हूँ। समझ में आया? देखो! यह आचार्य।

अब उपाध्याय। जैन के सच्चे उपाध्याय कौन? णमो लोए सव्व उवज्झायाणं। यह णमो लोए सव्व साहूणं है न? यह 'णमो लोए सव्व' पाँचों में आता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व

उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं—ऐसे पाँचों। अन्त में शब्द आता है, वह पाँचों में ले लेना। समझ में आया? परन्तु कहाँ? यह ऐसे हों वे। सर्व उपाध्याय अर्थात् दूसरे सब उपाध्याय नाम धराते हों और स्थापनावाले और द्रव्य, वह नहीं।

उपाध्याय कैसे हैं? कि पंचास्तिकाय, देखो! पाँच अस्तिकाय को वे मानते हैं। पाँच अस्तिकाय। काल के अतिरिक्त पाँच अस्ति। जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय—ये पाँच। पाँच वस्तु को माने उपाध्याय। सच्चे उपाध्याय जैन के हों वे इस अनुसार मानते हैं। यह पाँच अस्तिकाय जो जगत में हैं, उन्हें न माने, वह समकिती नहीं परन्तु वह मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया?

पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ हैं, उनमें निज शुद्ध जीवास्तिकाय... यह उपादेय स्वयं प्ररूपित करे। समझ में आया? उपाध्याय का कथन ऊपर का वजन है न? उसमें आचरण के ऊपर का है। आचार्य अर्थात् आचरे, उपाध्याय अर्थात् उपदेश। उपाध्याय (उसमें) कथन की पद्धति (की) मुख्यता है। सच्चे-सत्य उपाध्याय किसे कहना? कि जो पाँच अस्तिकाय में... माने पाँच अस्तिकाय, परन्तु उसमें **आप शुद्धात्मा हैं, वही उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) है, अन्य सब त्यागनेयोग्य हैं, ऐसा उपदेश करते हैं,...** ऐसा उपदेश करते हैं। समझ में आया? यह आत्मा अन्दर देह से भिन्न शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है। यह एक ही अखण्डानन्द भगवान अन्तर में आदरनेयोग्य है, ऐसा जो उपाध्याय माने और प्ररूपित करे, (वह सच्चा उपाध्याय है)। समझ में आया?

उपाध्याय उसे कहते हैं, उपदेशक उसे कहते हैं, सच्चे उपदेशक उपाध्याय मुनि उसे कहते हैं कि जगत में पाँच अस्तिकाय के पदार्थ भगवान केवली ने देखे, ऐसे हैं, ऐसा माने। मानकर निज आत्मा शुद्ध भगवान आत्मा है, सच्चिदानन्दस्वरूप परमानन्द की मूर्ति आत्मा अन्दर है, वही अन्तर में आदरनेयोग्य है, ग्रहण करनेयोग्य है, अनुभव करनेयोग्य है। ऐसा जगत को कहते हैं। स्वयं अनुभव करते हैं, जगत को कहते हैं, उन्हें सच्चा उपाध्याय—उपदेशक कहा जाता है। कहो, अमरचन्दभाई! यह तो बात कुछ नहीं, ... यह आत्मा, करो विकल्प। परन्तु क्या विकल्प घटावे? विकल्प घटावे तब दूसरी चीज़ है न? राग है, राग का विषय है, विषय परद्रव्य है। यह पाँच अस्तिकाय

राग-विकल्प का विषय है। परन्तु उसमें से निर्विकल्प एक आत्मा (उपादेय करे)। ऐसा मानकर, जानकर। समझ में आया? आहाहा! निज शुद्ध जीवास्ति, वापस, हों! भगवान शुद्ध हो गये, उनका नहीं यहाँ।

यहाँ परमात्मा निज शुद्ध परमानन्द की मूर्ति भगवान आत्मा अन्तर में है। अतीन्द्रिय आनन्द का रस स्वभाव भरपूर भगवान आत्मा है। निज (आत्मा), उसकी इसे खबर नहीं। मैं कौन हूँ, उसकी इसे खबर नहीं होती। मैं तो यह एक बनिया हूँ, और यह व्यापारी हूँ और यह रागी हूँ और धूल हूँ और गतिवाला हूँ। कहते हैं कि, तुझे तेरे आत्मा की खबर नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

और जगत में छह द्रव्य हैं। देखो! अब काल मिलाया। पाँच अस्तिकाय में काल नहीं था और काल मिलाकर छह द्रव्य जगत में भगवान ने देखे हैं, (ऐसा सिद्ध किया)। छह वस्तुएँ हैं। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, (एक) अधर्मास्ति, एक आकाश (ऐसे) छह द्रव्य अनादि-अनन्त हैं। क्या कहा? समझ में आया? यह निज शुद्ध जीवास्तिकाय, निज शुद्ध जीवद्रव्य। पहले में पाँच अस्तिकाय में निज शुद्ध जीवास्तिकाय (था) और इसमें निज शुद्ध जीवद्रव्य (कहा है)। छह द्रव्य में छह द्रव्य है। मानना, व्यवहार से जानना। निश्चय में आत्मा भगवान निज शुद्ध जीवद्रव्य। समझ में आया? वही आदरणीय है। वही आदरणीय अन्दर अंगीकार कर। बाकी सब छोड़नेयोग्य है। दया, दान के विकल्प, गति-फति सब छोड़नेयोग्य है, वे आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसा उपाध्याय करे और प्ररूपित करे। समझ में आया?

सप्त तत्त्व... सात तत्त्व है न? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। यह सात तत्त्व हैं। परन्तु निज शुद्ध जीवतत्त्व आदरणीय है। देखो! संवर, निर्जरा और मोक्ष भी आदरणीय नहीं। सेठी! आहाहा! दया, दान के विकल्प तो शुभ हैं, वह आदरनेयोग्य नहीं, परन्तु संवर-निर्जरा-मोक्ष की निर्मल पर्याय है। द्रव्यस्वरूप जो शुद्ध अखण्डानन्द भगवान, पूर्ण पूर्ण परमात्मा निज स्वरूप, वही अन्तर अंगीकार करनेयोग्य है। ओहोहो! कहो, नेमिदासभाई! देखो! वापस दो-दो बातें करते जाते हैं इकट्ठी। वह है अवश्य। उसका ज्ञान हो उसे। आदरणीय एक ही होता है।

नौ पदार्थ हैं,... पुण्य-पाप मिलाये। नौ पदार्थ हैं—जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। परन्तु नौ पदार्थ में निज शुद्ध जीव पदार्थ, देखो! नौ पदार्थ में पुण्य आदरणीय नहीं और संवर-निर्जरा-मोक्ष भी आदरणीय नहीं। वह पर्याय है, हेय है। ओहोहो! ऐसा उपाध्याय प्ररूपित करते हैं। मोतीरामजी!

मुमुक्षु : प्रतिमा का कब प्ररूपित करेंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिमा का कब प्ररूपित करेंगे? प्रतिमा का आ गया बीच में। प्रतिमा हो, उसका विकल्प ज्ञान करावे। अरे! उसे आत्मा परमात्मस्वरूप अन्दर है, (उसकी) खबर नहीं होती। अनन्त काल का अनजाना मूढ़। मूर्खता से भटकता हुआ चौरासी के अवतार में गोते खा-खाकर मर गया। समझ में आया? यह राजा हुआ हो तो मूढ़ है और सेठिया हुआ हो तो मूढ़ है और देव हुआ हो तो मूढ़ है। शोभालालभाई! आहाहा!

यह भगवान आत्मा अन्तर में वस्तु है या नहीं, वस्तु? तो वस्तु में कोई स्वभाव शक्ति का सत्त्व है या नहीं? तो कितनी शक्ति का इसका फिर इसे विचार करके (अनुभव करना)। अनन्त शक्तियाँ हैं। एक, दो, तीन, ऐसा नहीं, अनन्त। वस्तु है तो उसे शक्ति होती है अर्थात् स्वभाव होता है, अर्थात् गुण होते हैं, अर्थात् सामर्थ्य होता है। ऐसे अनन्त गुण का एक तत्त्व, ऐसा एक स्वभाव भगवान, वही धर्मी जीव को अन्तर में आदरनेयोग्य है। आहाहा! ऐसा उपाध्याय प्ररूपणा करते हैं। दूसरी प्ररूपणा करे, वह उपाध्याय नहीं। अमरचन्दभाई! आहाहा! मन्त्रीजी! कैसी बात है? आहाहा! पुण्य से धर्म मनावे, पुण्य से लाभ मनावे, पुण्य को आदरणीय मनावे, वे उपाध्याय नहीं, वे उपदेशक नहीं, वे साधु नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग संसार है, उसे मोक्षमार्ग बतावे। समझ में आया? यह वे शोर मचाये, लो! इसे संसार (कहा)। परन्तु सुन न! जितना राग है, उतना बन्धन है। हो भले। होता है, जाननेयोग्य है न व्यवहार से आराधनेयोग्य ऐसा भी कहा जाता है। पंचाचार व्यवहार। परन्तु उसका फल तो पुण्यबन्ध है।

भगवान अन्तर आत्मा... कोई भी मनुष्य ऐसा विचार करे कि एक मैं हूँ या नहीं? और फिर भगवान और केवली। परन्तु यह है या नहीं आत्मा? तो है वह है, वह क्या है? है वह कुछ है या नहीं उसमें? परन्तु क्या? जैसे गुड़ है। गुड़ है या नहीं? है। तो क्या है? तो यह मिठास है। मिठास का पिण्ड है, दल सफेद है, कोमल इत्यादि-इत्यादि। इसी प्रकार आत्मा है। तो है वह क्या है? ज्ञान है, दर्शन है, आनन्द है, शान्ति है, वीर्य है, ऐसे अनन्त-अनन्त शक्ति का पिण्ड आत्मा है। कभी भगवान का नाम भी सुना नहीं कि भगवान कैसे होते हैं? और आत्मा कैसा होता है? समझ में आया? आहाहा!

देखो! यह निज शुद्ध जीव पदार्थ नौ में एक ही आत्मा आदरणीय है। कितनी बात रख दी है! नौ तत्त्व है सही। जीव और जड़ दो तथा यह पर्याय—अवस्था। शुभ-अशुभ, दो होकर आस्रव, बन्ध; संवर, निर्जरा, मोक्ष। तो भी होने पर भी, है अवश्य। एक जीव पदार्थ भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ एकरूप स्वभाव अन्तर वस्तु, वही आदरणीय है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कैसी स्पष्ट बात है!

ऐसा मनुष्यपना मिला, उसमें यह कुछ नहीं करे और मरकर चला जायेगा। चौरासी के अवतार में अनन्त काल से गोते खाता है और खायेगा। उसमें आत्मा क्या चीज़ है, उसकी कीमत नहीं करे, तो दूसरे की कीमत जायेगी नहीं, दूसरे की कीमत टलेगी नहीं। इसकी कीमत हो तो दूसरे की कीमत रहेगी नहीं। आहाहा! शुभभाव की कीमत नहीं रहेगी। अरे! मोक्ष की पर्याय की कीमत नहीं। पूरा द्रव्य है, उसमें और कीमत इसकी कहाँ करना? उसकी करना या इसकी करना? ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा! जिसमें से मोक्ष पर्याय अनन्त-अनन्त चली आती है, प्रवाह। ऐसा द्रव्य स्वभाव! ऊपर कहा था न? समझ में आया? एक चिदानन्द चिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव शुद्धातमतत्त्व वही सच्चा है, भूतार्थ है, वही परम सत्य है। आहाहा!

व्यक्त है वस्तु, वस्तु... वस्तु वह फिर व्यक्त और अव्यक्त कैसी? वस्तु है, है, प्रगट है। वस्तु और अप्रगट होगी? अप्रगट का अर्थ अभाव हो जाये। परन्तु कहाँ वह क्या वस्तु है? किसे खबर है? कुछ सुना नहीं, विचार में लिया नहीं। बड़ा महान पदार्थ

प्रभु! यह आत्मा अखण्डानन्द भगवान एक स्वभावी पदार्थ, अनन्त गुण तथापि एक स्वभावी द्रव्य लेना है न? चिदानन्द चिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव, देखो न भाषा! द्रव्य एक अखण्ड स्वरूप। उसका ज्ञान अखण्ड, दर्शन अखण्ड, आनन्द अखण्ड, शान्ति अखण्ड। ऐसे अनन्त गुण का एकरूप भगवान, वही अन्तर्मुख में ग्रहण करनेयोग्य है, आदरनेयोग्य है, सेवनयोग्य है और आराधना योग्य है। यह भाई! कैसी (बात)? बाहर की होवे तो, भाई! लाओ, सेवा कर दें। दो घड़ी कोई पूजा कर डाले, भगवान के पास जाकर चलो सेवा (कर आयें)। यह नहीं। यह तो पुण्य भाव है। यह तो शुभभाव, पुण्यभाव है; यह धर्म नहीं। आहाहा! जादवजीभाई!

सच्चे उपाध्याय। उपाध्याय अर्थात् जिनके निकट ज्ञान करना हो और जो सत्य की बात करे, वे कैसे होते हैं? कि अन्तर में निश्चय पाँच आचार तो पालते हों। समझ में आया? और ऐसे तत्त्व का उन्हें सब ज्ञान हो। निश्चय में उनका आत्मा ही आदरणीय ऐसा अनुभव करते हों और प्ररूपणा में भी यही बात आती हो। आहाहा! समझ में आया? ऐसा लगे न, वह स्वयं इतना बड़ा परन्तु ऐसा मानो क्या कहते हैं यह? कहाँ है परन्तु यह? एक थे न? वकील थे। धोया हुआ मूला जैसा इतना बड़ा, महिमा करते हो तो गया कहाँ? भगवानजी वकील थे।

मुमुक्षु : नाम भगवान।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम 'भगवान' था उनका। ऐसी महिमा करते हो, ऐसा आत्मा... आत्मा। परन्तु धोये हुए मूला जैसा गया कहाँ? है सब, परन्तु तुझे भान नहीं। जहाँ है वहाँ नजर करना नहीं। नजर करना नहीं और और कहाँ है? परन्तु कहाँ है, किन्तु आँख उघाड़ तो खबर पड़े या उसके बिना? अन्तर के चैतन्य के नेत्र खोलकर अन्तर ज्योति अनन्त गुण की राशि भगवान विराजता है। स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप ही स्वयं है। आहाहा! समझ में आया?

यह सब है, ऐसा जानकर, हों! अकेला-अकेला आत्मा करे, ऐसा नहीं। उसका कारण कि '**पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु...**' उसका एक समय की ज्ञान की पर्याय में जानने की और श्रद्धा करने की उसकी सामर्थ्य है। परन्तु वह परलक्ष्यी

सामर्थ्य इतना नहीं। पूरा द्रव्य एक समय में अखण्ड ज्ञायक चिदानन्द एक स्वभाव, उसकी अन्तर में आदरणीय दृष्टि, अनुभव दृष्टि, स्थिरता दृष्टि, आचरण दृश्टि, आचरण भाव, उसे आचरते हुए सन्त जगत को यह आचरने का कहे, यह आचरने का कहे, उसका उपदेश दे। आहाहा! (वर्तमान में तो) पूरी पद्धति बदल गयी, मन्त्रीजी! पद्धति बदल गयी। यह करो, व्रत पालो, भक्ति करो, तप करो, अपवास करो, सोलह भथ्थु करो। हाँ? करने करने का।

यह भगवान आत्मा महान स्वरूप है अन्दर। उसकी अन्तर में दृष्टि, ज्ञान और रमणता करना, यही करने का है, दूसरा करने का क्या था? बाकी तो जड़ की-शरीर की क्रिया होनेवाली हो वह होती है, राग की मन्दता भी उस काल में होती है। परन्तु वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। अबन्धस्वभावी दृष्टि में आये बिना अबन्ध परिणाम प्रगट नहीं होते। यह तो बन्धभाव है, हेय है। अभी तो शुभभाव ही हो पड़ा है सर्वत्र। धर्मध्यान वह, संवर-निर्जरा वह। ओहोहो!

ऐसे अर्थ करने लगे। अरे! भगवान, बापू! बहुत कठिन पड़ेगा। यह आत्मा को ऐसे सत्यमार्ग के सामने विरोध में ऐसा अवरोध करता है न! कठिन काम है। ओहोहो! कौन जाने कौन होगा अन्दर में? घर में कोई हीरा अच्छा हो तो चारों ओर से जाँचते हैं। कैसे होगा? प्रकाश... प्रकाश। हीरा की कीमत किसलिए की लोगों ने? कि एक तो टिकाऊ बहुत। टिकाऊ। टिके... टिके... बहुत न? टिके समझे? लम्बे काल रहे। टिके। और थोड़े मिले और प्रकाश करते हैं। उसकी इसे कीमत है। दूसरी कीमत किसकी है उसमें? तब यह टिके, ऐसा तत्त्व तो यह त्रिकाली तत्त्व ज्ञायक सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। और जिसका ज्ञानप्रकाश स्वभाव है, उसे जो किसी को ही अन्दर दुर्लभता से पा सकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तैरता है। यह पाँच हजार व्यक्ति कहाँ, लोग कहाँ थे वे? आत्मा को तैरता तब कहलाये। लो! ऐसा कि हाथ में हीरा हो तो दूसरा जाने तो सही कि यह हीरा है। तेरा क्या भला हुआ? हीरा उसमें पड़ा और मर जाये। हाय... हाय!

देखो न! अभी नहीं कहा भगवानभाई का? कहते हैं कि वह मारी तो ऐसे सब घुस गये थे। छर्रा-छर्रा। छूटे न गोली? छर्रा। उसकी दाह होती है। वह तो एक मिनिट में समाप्त हो जाये। उसमें भड़का उसका। जगजीवनभाई के बहुत परिचित थे, पहिचानवाले थे। नहीं? हाँ, मैंने कहा था। अभी नहीं थे अपने गत वर्ष तुम मिलने नहीं गये थे स्टेशन पर? स्टेशन पर मिलने गये थे। खबर है या नहीं? उसे सबको पहिचान सही न, बड़े लोगों के साथ बहुत पहिचान उसकी। हम गये थे। बलवन्तभाई निकले हैं। गत वर्ष थे न कुण्डला, तब? तो कहलवाया है जगजीवनभाई को कि मिलने आना। गये थे मिलने। वे भाई आये थे कुण्डलावाले। वे बलवन्तभाई आत्मा अन्दर है। अनन्त वीर्य का धीन भगवान, अनन्त ज्ञान और दर्शन का आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा है। उसे अन्दर में मिलने जाये एकाग्र होकर, उसका नाम धर्म कहा जाता है। आहाहा! कठिन बातें परन्तु, भाई!

मुमुक्षु : .... नकली वस्तु माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : नकली माने। वे सूरत के आते हैं न हीरा? कैसे कहलाते हैं? क्या कहलाते हैं? अर्टीफिशियल। अर्टीफिशियल को सच्चे में खतौनी कर डाले। आहाहा! चैतन्य हीरा भगवान! देह के परमाणु-मिट्टी से भिन्न। मरते हुए भी ऐसा कहते हैं या नहीं? यह देह छूट तो कहे, भाई! जीव गया। ऐसा कहते हैं कि शरीर गया साथ में? शरीर तो यह पड़ा रहा। जीव गया। परन्तु क्या जीव गया अन्दर? क्या था जीव में? अरूपी परन्तु है क्या वह? भगवान जाने कुछ होगा वा-बा, पवन-बवन। वह नहीं। श्वास तो जड़, मिट्टी, धूल है। अन्दर चिदानन्दमूर्ति ज्ञान का घन आनन्दकन्द सच्चिदानन्द अखण्ड स्वभावी वस्तु वह है। वह कभी इसने दृष्टि में, श्रद्धा में लिया नहीं। कहो, समझ में आया?

देखो! यह उपाध्याय इसमें से यह बताते हैं। पंचास्तिकाय में से शुद्ध जीवास्तिकाय; षट् द्रव्य में से निज शुद्ध जीवद्रव्य; सप्त तत्त्व में से निज शुद्ध जीवतत्त्व और नौ पदार्थों में से शुद्ध पदार्थ (बताते हैं)। **जो आप शुद्धात्मा है, वही उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) है, अन्य सब त्यागनेयोग्य हैं,...** देखो! श्रद्धा में सब छोड़नेयोग्य है। वह चार ज्ञान की

पर्याय प्रगट हो, वह भी छोड़नेयोग्य है। **ऐसा उपदेश करते हैं...** है ? ऐसा उपदेश करते हैं। अमरचन्दभाई! आहाहा! यह तो उपदेश ही उल्टे हो गये। आचार्य कहाँ रहे और उपाध्याय कहाँ रहे ? खोखा रहे नाम। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... संग कहना किसे ?

यहाँ तो कहते हैं, उपाध्याय सच्चे सन्त, मुनि, उपदेशक जिन्हें भगवान के कहे हुए पदार्थों का ज्ञान और निज स्वभाव भगवान आत्मा का आदरणीय भाव, ऐसा जो कथन जगत के समक्ष करते हैं, उन्हें उपाध्याय और उन्हें साधु, सन्त कहा जाता है। वरना इससे उल्टा कहे, वे साधु-सन्त नहीं हैं। वे सब गड़बड़िया चार गति में भटकनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो! यह श्लोक। प्रभाकर भट्ट पहिचानकर वन्दन करने के बाद प्रश्न करेगा।

ऐसा उपदेश करते हैं, तथा... देखो! दूसरी बात। वह उपाध्याय कैसा उपदेश करते हैं ? **तथा शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक्श्रद्धान...** यह शुद्ध... उन चार में से लिया था न? भाई! पंचास्तिकाय, द्रव्य, तत्त्व और पदार्थ उनमें से लिया था। अब शुद्ध स्वभाव का सम्यक्श्रद्धान, उस मोक्षमार्ग का वर्णन करते हैं। उपाध्याय कैसा मोक्षमार्ग वर्णन करते हैं ? कैसा मोक्षमार्ग कहते हैं ? निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? भगवान आत्मा शुद्ध है। वर्तमान पुण्य-पाप के मैल भाव हैं, उनके पीछे रहा हुआ पूरा तत्त्व, पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वे मैल हैं। उनके पीछे भगवान **शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेद रत्नत्रय है,...** यह अभेद रत्नत्रय, जिस रत्नत्रय से मोक्ष मिलता है।

वही निश्चयमोक्षमार्ग है, ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं,... देखो! अमरचन्दभाई! ऐसा उपदेश शिष्य को दे, उसे उपाध्याय कहा जाता है। वह श्रोता को उपदेश ऐसा करे कि यह भगवान शुद्धस्वरूप परमात्मा, जिसमें अन्तर्दृष्टि करके स्थिर होनेयोग्य है। ऐसा शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र जो अभेद रत्नत्रय, अभेद स्वभाव के साथ अभेद होते हैं न तीन? ऐसा अभेद निश्चयरत्नत्रय वह निश्चयमोक्ष (मार्ग है)। देखो! अभेदरत्नत्रय

कहो, या निश्चयमोक्षमार्ग कहो, भेदरत्नत्रय कहो या व्यवहार कहो। आहाहा! गजब बात, भाई! वाडा में बैठे, उन्होंने कितनों ने तो सुना भी न हो। कैसे आचार्य और कैसे उपाध्याय और कैसा उनका उपदेश होता है? ऐई! जमुभाई! अहो!

ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं, ऐसे उपाध्यायों को मैं नमस्कार करता हूँ,... प्रभाकर भट्ट कहता है, ऐसे उपाध्याय को मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी कोई कथनपद्धति सन्तों की कि जिसमें पूरे जैनदर्शन का व्यवहार भी समाहित हो जाता है और आदरणीय क्या, यह भी बताते हैं। आहाहा! परमात्मप्रकाश भी एक...

मुमुक्षु : परमात्मा का प्रकाश....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आत्मा परमात्मा का स्वरूप ही है अन्दर। यह जो द्रव्य स्वभाव जो परमात्मस्वरूप, परमस्वरूप भगवान आत्मा की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसका आचरणरूप अभेद आचरण, यह रत्नत्रय, वही सच्चा मोक्ष का मार्ग है। ऐसा उपाध्याय कहते हैं, वे सच्चे हैं। इससे विरुद्ध कहें वे खोटे हैं। समझ में आया?

अरे! अपने को छोड़कर बात। यहाँ अपने को आदरकर फिर दूसरी बात। स्वयं भगवान पूर्णानन्द का नाथ अखण्ड ज्ञायकस्वभाव से भरपूर प्रभु, अनन्त-अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य, वही सत्य, वही भूतार्थ, वह सत्य का साहिबा, ऐसा भगवान निज स्वरूप ही एक श्रद्धा करनेयोग्य है, जाननेयोग्य है, आचरनेयोग्य है, रमनेयोग्य है, वेदन करनेयोग्य है। ऐसा अभेदरत्नत्रय का मार्ग उपाध्याय शिष्यों को कहते हैं। देखो! यह शिष्य भी उसे सुनते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसे वे शिष्य इनकार नहीं करते कि नहीं... नहीं... नहीं... नहीं... ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता। तो वह शिष्य ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? उपाध्याय ऐसा निश्चय मोक्षमार्ग अभेद रत्नत्रय कहते हैं। शिष्यों को कहते हैं। शिष्यों को कहते हैं, इसका अर्थ कि वह विनय से सुनता है। ऐसा निश्चय... निश्चय... निश्चय... नहीं परन्तु व्यवहार लाओ, ऐसा नहीं। ऐ कमलचन्दजी! क्या हो? समझ में आया? वाडा में ऐसी बात तो नोंच डाला है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव का मार्ग, उसमें रहनेवालों ने भी फेरफार (कर डाला है)। वाडा में रहे हुए। आहाहा!

यह तो सिंह का मार्ग है। भेड़ में सिंह गया, भेड़ में सिंह गया। दूसरे सिंह ने चिल्लाहट मचायी तो दूसरे दुम दबाकर भागे, सिंह नहीं गया। ऐ... तू कैसे खड़ा रहा? कि मुझे कुछ त्रास नहीं हुआ। समझ न कि तू मेरी जाति का है! इसी प्रकार भगवान ने दिव्यध्वनि में गर्जना की, तू परमात्मा मेरी जाति का, मेरी नात का, मेरे स्वरूप से है, ऐसा तू अन्दर में है। सुननेवाला जगता है कि आहाहा! मैं यही हूँ। यह पुण्य-पाप और संयोग में रहता हूँ, वह मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो! उपदेश आया न, इसलिए आया। उपदेश आया—गर्जना। उपाध्याय की ऐसी गर्जना! अभेदरत्नत्रय मोक्षमार्ग। हे शिष्य! सुन। वह इनकार नहीं करता, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पात्र बिना वस्तु नहीं टिकती।

ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं,... कि नहीं... नहीं... नहीं... नहीं। साधारण लोगों को ऐसा नहीं कहना। अमुक को नहीं कहना। अरे! सुन न! साधारण अर्थात् कि भगवान आत्मा है। एक क्षण में फाट... फाट... (उग्र) पुरुषार्थ करके केवलज्ञान ले, ऐसा यह है। आहाहा! नहीं... नहीं, नहीं कर सकता, नहीं कर सकता। तू शोर मचाता है भिखारी की भाँति। समझ में आया? चैतन्य के सरोवर भगवान अनन्त गुण का सागर है। उसमें क्षण में केवलज्ञान पूर्ण पर्याय होने की सामर्थ्यवाला है। उसे ऐसा कहना कि, ऐसा नहीं... ऐसा नहीं... ऐसा नहीं। (उसमें) उसका अनादर होता है। समझ में आया? देखो न! यहाँ भी ब्रह्मदेव ने टीका भी कैसी की है! आचार्य ऐसे होते हैं, उन्हें पहिचानकर करते हैं, आता है न, प्रवचनसार में? मैं ज्ञान—दर्शनस्वरूपी आत्मा। मैं अरिहन्त को नमस्कार करता हूँ। अरिहन्त कैसे? कि ऐसे। यह शैली सब ली है। शैली सब आचार्यों की (ऐसी अलौकिक है)। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे उपाध्यायों को मैं नमस्कार करता हूँ और शुद्ध एक ज्ञानस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व की आराधनारूप... साधु की बात करते हैं। शुद्ध ज्ञान भगवान, शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव अन्तर। ऐसा शुद्धात्मतत्त्व, शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव। शुद्ध, बुद्ध है न शब्द में? बुद्ध का अर्थ ज्ञान किया। शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व। उसकी

आराधना में **वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो साधते हैं,...** देखो! अन्तर में **वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो साधते हैं, उन साधुओं को मैं वन्दता हूँ।** उसे साधु कहा जाता है।

मुमुक्षु : व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की बात भी नहीं की। अन्तर अखण्डानन्द प्रभु शुद्धात्मा कैसा? कि शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव। शुद्ध, बुद्ध एक स्वभाव। शुद्ध, बुद्ध। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव, बस। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव, ऐसा भगवान, वही आराधे। आराधनारूप, आराधनारूप। **वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो साधते हैं, उन साधुओं को मैं वन्दता हूँ।** कहो, समझ में आया? **वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो आचरते हैं,...** वे आचार्य, वे आचार्य। ऐसे निर्विकल्प समाधि को कहें, वे उपाध्याय और **साधते हैं, वे ही साधु हैं।** वे साधु। तीन के ले लिये तीन। आहाहा!

अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये ही पंच परमेष्ठी वन्दनेयोग्य हैं, ऐसा भावार्थ है। लो! यह पाँच परमेष्ठी इस प्रकार वन्दन करनेयोग्य है, यह भावार्थ किया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल २, रविवार, दिनांक २६-९-१९६५
गाथा - ८, ९, प्रवचन - ७

परमात्मप्रकाश, सातवीं गाथा पूरी हुई। देखो! क्या कहा अन्तिम सार? सातवीं गाथा का सार भावार्थ। जो **अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ये ही पंच परमेष्ठी वन्दने योग्य हैं, ऐसा भावार्थ है।** यह जो पाँच परमेष्ठी का स्वरूप कहा, वे पाँच परमेष्ठी वन्दन करने के लिये कहा है। ऐसे जो पाँच परमेष्ठी आदरणीय और वन्दनयोग्य हैं। पाठ में बहुत विस्तार किया है।

ऐसे पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने की मुख्यता से श्री योगीन्द्राचार्य ने परमात्मप्रकाश के प्रथम महाधिकार में प्रथम स्थल में सात दोहों से प्रभाकर भट्ट नामक अपने शिष्य को पंच परमेष्ठी की भक्ति का उपदेश दिया। ऐसे पाँच परमेष्ठी होते हैं, वे भक्ति करनेयोग्य हैं और वे वन्दन करनेयोग्य हैं।

★ ★ ★

गाथा - ८

अब प्रभाकर भट्ट पूर्वरीति से पंच परमेष्ठी को नमस्कार कर और श्री योगीन्दुदेव गुरु को नमस्कार कर श्रीगुरु से विनती करता है—लो! अभी शुरुआत है तो विनती करता है। परमात्मप्रकाश।

८) भाविं पणविवि पंच-गुरु सिरि-जोइंदु-जिणाउ।
भट्टपहायरि विण्णविउ विमलु करेविणु भाउ॥८॥

भावों की शुद्धता कर... प्रभाकर भट्ट अन्दर जिज्ञासा से भाव की शुद्धता, निर्मलता करके पंच परमेष्ठी को नमस्कार करता है। पूर्ण निर्विकल्प समाधि को प्राप्त, ऐसे अरिहन्त और सिद्ध; आचार्य, उपाध्याय और साधु निर्विकल्प समाधि को साधते हैं। ऐसे **पंच परमेष्ठियों को नमस्कारकर प्रभाकर भट्ट अपने परिणामों को निर्मल**

करके श्री योगीन्द्रजिनः श्री योगीन्द्रिदेव से... ऐसा जिन का अर्थ किया। **शुद्धात्म तत्त्व के जानने के लिये महाभक्तिकर विनती करते हैं।** देखो! शुद्धात्म तत्त्व की समझने की धगश हुई है। दूसरी कोई बात नहीं। यह आत्मा शुद्ध कौन है? उसे मुझे जानना है। दूसरी एक भी बात नहीं। शुद्धात्मतत्त्व को जानने के लिये महाभक्ति से विनती करता है।

शिष्य विनती करता है, प्रभु! यह आत्मा शुद्ध कौन है यह ? कि जो अनन्त काल में उसका अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव आया नहीं, अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति हुई नहीं, यह वह शुद्धात्मा है कैसा? सेठी! प्रश्न यह है। धर्म को समझनेवाले के प्रश्न में यह प्रश्न मुख्य है। कि मैं यह शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा, अनन्त काल में मैंने उसका अनुभव किया नहीं, आनन्द का स्वाद लिया नहीं। जाना नहीं, अर्थात् आनन्द का स्वाद मैंने लिया नहीं। वह शुद्धात्मा कैसा है कि जिसे जानने से जन्म-मरण मिटे और आत्मा के आनन्द की शान्ति का अनुभव हो। लो! यह शिष्य का प्रश्न है। ऐसा (शिष्य) होना चाहिए और ऐसी उसे दरकार होनी चाहिए। दूसरी लाख बात की बात छोड़कर, यह आत्मा शुद्ध किसे कहते हो आप? सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने देखा और आप मुनि हो, योगीन्द्र आचार्य को कहते हैं, आप अनुभव करते हो तो वह शुद्धात्मा है कैसा? ऐसी बहुत विनती करते हुए भक्ति से इस प्रश्न को गुरु के समझ रखा है। हमको पैसा कैसे मिले? ऐसा डोरा-धागा कुछ है? पैसा मिले, राग मिले, पद मिले, ऐसा नहीं पूछा। ऐसा पूछनेवाला तो अज्ञानी अनादि काल के हैं। अब उसमें नया क्या पूछा? समझ में आया? हम पुण्य बाँधते हैं, उसमें से स्वर्ग मिले, ऐसा पूछा नहीं।

भगवान आत्मा परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर केवलज्ञानी, क्या है? कैसे देखा? कैसे ज्ञात हो? यह बात अनन्त काल में मैंने जानी नहीं। यह जानी नहीं, बाकी सब अनन्त बार पुण्य-पाप, परिणाम आदि चार गति भटकने का अनन्त बार किया। ...उसे प्रश्न में ऐसी जिज्ञासा की पात्रता उठी वापस, ऐसा! उसने ऐसा पूछा कि प्रभु! यह आत्मा क्या? अनन्त काल में यही मैंने जाना नहीं, बाकी सब करके मर गया। यह कहेंगे, देखो! आठवें का तो अभी प्रश्न क्या? नौवाँ है, देखो!

★ ★ ★

गाथा - ९

९) गउ संसारि वसंताहँ सामिय कालु अणंतु।
परमई किं पि ण पत्तु सुहु दुक्खु जि पत्तु महंतु॥९॥

शिष्य परमात्मा सन्त मुनि के पास जैन परमेश्वर के साधनवाले ऐसे आत्मा के सन्त, मुनि, मुनि आचार्य हैं, आत्मा के ध्यान में मस्त हैं, ऐसे सन्त को यह जीव प्रभाकर प्रश्न करे, ऐसा करके शिष्य, जिसे जन्म-मरण का अन्त लाना हो और जिसे आत्मा प्राप्ति करनी हो, वह कैसा होता है ? कि उसका आत्मा को जानने का भाव होता है। समझ में आया ? और वही अनन्त काल में जाना नहीं।

हे स्वामी... देखो! महा मुनि सन्त हैं योगीन्द्रदेव, दिगम्बर सन्त मुनि महन्त जंगलवासी। उन्हें कहते हैं, हे नाथ! **इस संसार में रहते हुए...** ऐसा करके क्या सिद्ध किया ? प्रभु! मैं अनन्त काल में परिभ्रमण में रहा हूँ। हूँ तो आत्मा, परन्तु इस संसार में भ्रमते हैं, रहते हुए अनन्त काल गया, प्रभु! अनन्त काल गया। **हमारा अनन्त काल बीत गया...** अनन्त... अनन्त.... अनन्त... पुद्गलपरावर्तन। आहाहा! अनन्त-अनन्त चौबीसी एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में जाती हैं, ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन प्रभु! इस संसार में बीत गये। **लेकिन...** परन्तु **मैंने कुछ भी सुख नहीं पाया,...** लो! यह प्रश्न।

मुझे आत्मा का आनन्द ऐसा सुख एक समय भी प्राप्त नहीं हुआ। देखो! यह उसकी जिज्ञासा! आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द, जो सम्यग्दर्शन में ही प्रगट हो सकता है। देखो! वहाँ पूछा है यह। आठवें (गुणस्थान) में आनन्द प्रगट होता है, ऐसा नहीं। पहले सम्यग्दर्शन हो गया और आनन्द बाद में प्रगटे आठवें में, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! पहला ही प्रश्न (करता है), प्रभु! आत्मा का आनन्द अर्थात् कि आत्मा का सम्यग्दर्शन ऐसा आत्मा का आनन्द मैंने (चखा नहीं)। अनन्त काल में चौरासी के अनन्त अवतार (किये उसमें), अनन्त बार जैन साधु भी अनन्त बार हो चुका। समझ में आया ? दिगम्बर मुनि अनन्त बार मिथ्यादृष्टि रखकर (भटका)। स्वरूप का आत्मा के आनन्द का अनुभव, प्रभु! एक समय भी प्राप्त नहीं हुआ।

नहीं पाया... देखो! इतनी तो यह स्वीकारोक्ति अपनी समझण में देता है। यह

आत्मा का आनन्द अर्थात् स्वयं सुखदशा, भगवान! अनन्त काल में हमको प्राप्त नहीं हुई। **उल्टा महान दुःख ही पाया है।** उल्टा अनादि-अनन्त संसार का कोई भव दुःखरहित है नहीं। दुःख, दुःख और दुःख। पाप किये तो भी दुःख और पुण्य किये तो भी दुःख। दोनों दुःख को ही प्राप्त हुआ हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह भगवान आत्मा, वे पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभभावरहित क्या चीज़ है? उसका मैंने आनन्द, सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं हुआ। उल्टा-उल्टा पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव और आकुलता का प्रभु! मैंने दुःख भोगा है। कहो, समझ में आया? कहाँ इसमें दुःख लगता है परन्तु? देवशीभाई! सुख नहीं? यह मकान मिले अकेला, दो व्यक्ति रहे, सूखड़ी खाये, लड्डू बनाये। ऐई! मलूकचन्दभाई! दुःख है? कहाँ दुःख है? ऐसे मोटर में घूमता है, ऐसे लड़के लहर करे, बापूजी, बापूजी करे, वहाँ कितना हो जाये? कहते हैं कि, भाई! वह परपदार्थ के लक्ष्यवाला भाव ही तुझे आकुलता और दुःखरूप है। वह तुझे खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। यह पूछनेवाला ही ऐसा पूछता है, प्रभु! मैंने मेरे आत्मा के स्वभाव के सन्मुख कभी देखा नहीं।

वह कौन है? चीज़ क्या है? सच्चिदानन्द मूर्ति आत्मा। वस्तु है तो उसके कोई गुण और शक्ति है या नहीं? तो उन गुणों में अतीन्द्रिय आनन्द की शान्ति आत्मा में पड़ी है। उस शान्ति के समक्ष मैंने कभी देखा नहीं। मुझे शान्ति की, सुख की प्राप्ति अनन्त काल में हुई नहीं, प्रभु! ऐसा प्रभाकर भट्ट पुकार करता है। परन्तु उल्टा दुःख (पाया हूँ)। सुख नहीं तो दुःख (भोगा है)। जहाँ-जहाँ मैंने परपदार्थ के सन्मुख देखा फिर सधन हो, निर्धन हो, देव हो, नारकी हो, सुन्दर शरीर हो या नारकी का शरीर हो, परन्तु सामने परपदार्थ की मेरी भावना फिर शुभ या अशुभ हो, दोनों दुःखरूप हैं। मैंने तो अनादि काल में परसन्मुख के दुःख ही भोगे, प्रभु! आहाहा! कहो, नटुभाई! सच्ची बात होगी यह? दुःख होंगे? कहाँ उसमें दुःख लगता है? दुःख लगे तो रोना चाहिए। ...भाई! रोवे क्या? परन्तु वह रोता है अन्दर भान कहाँ है उसे?

आत्मा आनन्द की मूर्ति है। प्रभु सच्चिदानन्द अनाकुल शान्त, उसकी उल्टी परद्रव्य के प्रति जितनी वृत्तियाँ हैं, वे सब दुःखरूप हैं, उनमें कहीं शान्ति की गन्ध नहीं। बराबर होगा यह? यह कमाने का भाव दुःखरूप, पढ़ने का भाव दुःखरूप, वकालत का

भाव दु:खरूप, डॉक्टर का भाव दु:खरूप, वकालत का... वकालत तो आ गया। परन्तु यह रामजीभाई पहले याद आये फिर और वे आये। लोहे का व्यापार दु:खरूप भाव। ये संसार के पठन ये क्या होंगे? दु:खरूप होंगे? अरे! शास्त्र के पठन शास्त्र के सम्मुख देखे, वह भी दु:खरूप, ऐसा कहते हैं। देवशीभाई! आहाहा!

अरे! मैं एक आत्मा और मुझे मेरे सुख की प्राप्ति नहीं और उल्टा मुझे इन चार गति के दु:खों में मैंने चारों ओर चक्कर खाये, मार खायी, मुग्घमों के दु:ख की मार खायी, ऐसी प्रकार करते हैं। आहाहा! परन्तु यदि दु:ख लगा है उसे, हों! रतिभाई! आहाहा! परन्तु शरीर निरोगी है न? कहाँ दु:ख है अभी तुझे? परन्तु भाई! शरीर है, वह तो परवस्तु है। वह मुझे ठीक है, यह मान्यता ही दु:खरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे अन्दर खलबलाहट हो गयी है कि यह मुझे दु:ख होता है, प्रभु! यह अनादि मैंने बहुत दु:ख भोगे। यह आकुलता, आकुलता... कहीं ऐसे फिर से ठिकाने आया नहीं मैं। यह वह आत्मा कैसा है? कि, (उसे) जानकर मुझे सुख हो? कहो, समझ में आया? लो!

कहते हैं, **उल्टा महान दु:ख ही पाया है।** वहाँ विशेष। **निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है,...** देखो! सुख की व्याख्या की, सुख नहीं पाया, इसकी व्याख्या की। हे नाथ! मैं अनन्त काल में मेरी शान्ति और मेरा सुख मैं पाया नहीं। कैसा सुख? कि निज शुद्धात्मा। यह परमात्मा स्वयं शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। समझ में आया? अरे! जिसमें अकेला अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति पड़ी है। ऐसा निज शुद्धात्मा मेरा यह आत्मा, उसकी भावना, उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ। देखो! उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ वीतराग परम आनन्द समरसी भाव। रागरहित परम शान्त, परम शान्त, परम आनन्द ऐसा समताभाव, उसका जो सुख। **उसरूप जो आनन्दामृत...** उसरूप जो... यह सुख की व्याख्या की। मैं सुख नहीं पाया, कहा न? '**सामिय कालु अणंतु। परमइँ किं पि ण पत्तु सुहु**' यह सुख की व्याख्या की।

आनन्दामृत भगवान आत्मा, निज शुद्धात्मा परमानन्दमूर्ति प्रभु के सामने अर्थात् एकाग्र होकर, उत्पन्न हुआ। देखो! वह आनन्द शक्तिरूप से तो था, परन्तु उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ आनन्द, मेरी दशा का आनन्द। कैसा? कि जिसमें रागरहित आनन्द, परम आनन्द, समतारूप आनन्द **उस रूप जो आनन्दामृत...** यह सुख की व्याख्या।

उससे विपरीत, नरकादि दुःखरूप क्षार (खारे) जल से पूर्ण (भरा हुआ)... उसमें मैं भटका। ऐसे आनन्द को मैं पाया नहीं। देखो! उससे विपरीत नरक, मनुष्य, देव और पशु चारों गति ली है। यह सेठिया पाँच-पच्चीस करोड़ के आसामी दुःखी... दुःखी.... दुःखी है, ऐसा कहते हैं। प्रभु! मैं तो दुःखी था वहाँ, हों! आहाहा! बराबर होगा इसमें? शशीभाई! पैसेवाले दुःखी, निर्धन दुःखी, सधन दुःखी, निरोगी दुःखी, सरोगी दुःखी, बांझ दुःखी, पुत्रवाला दुःखी, इज्जतवाला दुःखी, बेइज्जतवाला दुःखी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....प्रभु! यह नरक का, मनुष्य का, ढ़ोर का और देव का भव, जिसमें अकेले दुःख ही हैं। जहाँ आत्मा का आनन्द नहीं। आत्मा प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति सच्चिदानन्द आत्मा, सत् चिदानन्द, सत्... सत्... सत् स्वरूप में भरा हुआ आनन्द। ऐसा आनन्दामृत, उससे चार गति के सब दुःख हैं उल्टे। बराबर होगा? धर्मचन्दभाई! लोग कहे न कि 'पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख घर में चार पुत्र, तीसरा सुख वह सुकुल की नारी, चौथा सुख कोठी में अनाज।' यहाँ तो कहते हैं, चारों ओर का लक्ष्य है, वह चारों ओर का आश्रय, वह दुःख है। आहाहा! सेठी! बराबर होगा? महेन्द्रभाई जैसे पुत्र मिले तो भी दुःख होगा? परन्तु यह पिताजी साहेब, पिताजी साहेब कहे, कितनी बात है ऐसी अन्दर, कितनी बात, लो! चिट्ठी आवे न, तो कितना लिखे। पिताजी वहाँ शान्ति से रहो। मेरी चिन्ता नहीं करना। कितने ही तो ऐसा भी लिखे कि, हमारी चिन्ता करना। तुम वहीं के वहीं पड़े हो तो। वे लिखे और, नहीं नहीं। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जितना भगवान आत्मा अपने स्वसन्मुख की दृष्टि नहीं की और जितना परपदार्थ की ओर की दृष्टि में रहा, वह सब दुःख है। चाहे तो राज में हो, सेठ में हो, निरोगी में हो। बादशाही है, ऐसा कहते हैं न कितने ही तो? अभी कैसा है?

बादशाही है। यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! मुझे कहीं बादशाही नहीं थी, हों! मैं बड़ा राजा हुआ, सेठ हुआ, नौवें ग्रैवेयक का, नौवें ग्रैवेयक का देव हुआ। नौवाँ ग्रैवेयक है, (वहाँ) बड़ा देव हुआ। भगवान! यह **नरकादि दुःखरूप क्षार (खारे) जल से पूर्ण (भरा हुआ),...** भरपूर समुद्र, उसे मैंने अनुभव किया है। यह आनन्दामृत कहा था। एक बोल हुआ।

अजर अमर पद से उल्टा जन्म जरा (बुढ़ापा) मरणरूपी जलचरों के समूह से भरा हुआ,... यह संसार की व्याख्या करते हैं। अजर अमर। आत्मा तो अजर और अमर है, जिसमें जीर्णता नहीं और मृत्यु नहीं। भगवान आत्मा अजर है—जरा नहीं और मरण नहीं। भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव धातु अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु में जरा नहीं—वृद्धावस्था नहीं, उसमें मरण नहीं। ऐसे पद से विपरीत यह जन्म और बुढ़ापा। अमर के सामने जन्म और अजर के सामने बुढ़ापा और मरणरूपी जलचर। जिसमें मरणरूपी जलचर, यह तीनों। समूह से भरा हुआ संसार है। प्रभु! इन चार गति के दुःखों में यह भरा हुआ है। वहाँ कहीं आनन्द और शान्ति नहीं है।

अनाकुलतास्वरूप निश्चय सुख से विपरीत,... अनाकुल भगवान आत्मा का सुख अन्दर अनाकुल-आकुलतारहित शान्ति। उससे उल्टा। **अनेक प्रकार आधि व्याधि दुःखरूपी बडवानल की...** कहो, आधि—मन के विकल्प-विकल्प; व्याधि—शरीर की, आधि दुःखरूपी बडवानल की शिखा से प्रज्वलित संसार है। चौरासी के अवतार में संसार सुलग रहा है। आहाहा! सेठिया लो, चक्रवर्ती राजा लो, चारों ओर कलेजे में कषाय की अग्नि सुलगती है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कषाय की अग्नि, भट्टी सुलगती है, कहते हैं। रतिभाई! ऐसी पुकार करते हैं कि देखो! यह आकुलता जल रही है पूरी। चार गति में, हों! वह कहीं अनाकुलता के सन्मुख मैंने देखा नहीं कि वह क्या चीज़ है? वह प्रभु! मुझे सुनाओ, ऐसा करके विनती करता है।

प्रज्वलित वीतराग निर्विकल्प समाधिकर रहित,... क्या (कहते हैं)? **महान संकल्प विकल्पों के जलरूपी कल्लोलों की मालाओंकर विराजमान,...** यह संसार। विराजमान है न? शोभित है न? आत्मा का जो निर्विकल्प शान्ति स्वभाव, उससे उल्टा महान संकल्प-विकल्प, पुण्य और पाप। संकल्प और विकल्प, शुभ और अशुभभाव

ऐसा जाल, ऐसे कल्लोल उसमें उठते हैं। ऐसी कल्लोल की माला, देखो! माला-माला। पानी में ऐसे कल्लोल उठे न एक के बाद एक। उसी प्रकार यह पुण्य और पाप, पुण्य और पाप, पुण्य और पाप। शुभ और अशुभ की कल्लोलें उठी संसार में। चौरासी के अवतार में शुभ और अशुभ के, संकल्प और विकल्प की कल्लोलें, उनसे शोभित संसार है।

ऐसे संसाररूपी समुद्र में रहते हुए मुझे, हे स्वामी... देखो! ऐसे संसार में। पहिचाना संसार को। ऐसे संसार में रहते हुए, हे प्रभु! मुझे **अनन्त काल बीत गया।** आहाहा! समझ में आया? **इस संसार में एकेन्द्रिय...** पहले तो एकेद्रिय जीव। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में, प्रभु! अनन्त बार रहा। जिसे लोग जीव भी नहीं मानते। पृथ्वी के जीव यह खान की पृथ्वी है न! देखो न! यह जीथरी की पत्थर की खान नहीं? उसमें अन्दर एकेन्द्रिय जीव है। पृथ्वी के, जल के। यह पानी-जल की एक बूँद होती है, उसमें असंख्य जीव हैं। अग्नि, यह दियासलाई का तिनका सुलगता है, (उसमें) एक तिनके में असंख्य जीव हैं। वायु। वनस्पति। यह देखो! नीम के एक पत्ते में असंख्य जीव हैं। आलू के एक टुकड़े में अनन्त जीव हैं। वहाँ प्रभु! मैं अनन्त काल भटका, ऐसा कहते हैं। यह पूर्व का इतिहास खड़ा करते हैं। प्रभु! मैंने वहाँ अनन्त भव किये, हों! मैंने एकेन्द्रिय के भव किये, उसमें से मुश्किल से निकला दोइन्द्रिय हुआ। यह ईयळ-ईयळ। एकेन्द्रिय को एक शरीर ही होता है। यह ईयळ को शरीर और जीभ, मुख दो होते हैं। यह वहाँ से निकलकर त्रीन्द्रिय हुआ। नाक बढ़ा नाक। वहाँ से चौइन्द्रिय (हुआ तो) आँख बढ़ी।

ऐसे **स्वरूप विकलत्रय पर्याय पाना दुर्लभ (कठिन) है...** एकेन्द्रिय में से आ पाना दुर्लभ है, ऐसा कहते हैं। यह वह भी मिला। **विकलत्रय से पंचेन्द्रिय....** दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय में से पंचेन्द्रिय होना, उसमें भी संज्ञी होना—मनवाला (वह तो अति दुर्लभ है)। क्या कहते हैं? ओहोहो! कहाँ कहाँ प्रभु मैं भटका? **छह पर्याप्तियों की सम्पूर्णता (पर्याप्त) होना दुर्लभ है,...** संज्ञी हुआ मनवाला, परन्तु मर गया अपर्याप्ति से माता के गर्भ में कि यह तिर्यंच आदि। **उसमें भी मनुष्य होना अत्यन्त दुर्लभ...** उसमें भी मनुष्य का भव अनन्त काल में महा दुर्लभ है। **उसमें (भी) आर्यक्षेत्र दुर्लभ,...** ओहो!

यह अनार्य क्षेत्र में देखो न! है कुछ? परलोक की पड़ी है कुछ? मारो... मारो... मारो... मारो... ... कहाँ मरकर जाना, इसकी उसे कहाँ (परवाह है)। आर्यक्षेत्र मिलना भी दुर्लभ।

उसमें से उत्तम कुल पाना दुर्लभ,... आर्यक्षेत्र में उत्तम कुल मिलना। आर्यक्षेत्र हो और वह वापस मांसाहारी में जन्मे, हल्के भील जैसे। यह **उत्तम कुल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण पाना कठिन है,...** है न यह? तीन लिये। उस हल्के कुल में जन्मे। माँस खाये, कुछ नहीं मिलता। आहाहा! **उसमें भी सुन्दर रूप...** इस सुन्दररूप का अर्थ शरीर की आकृति ठीक (हो) इतना। **समस्त पाँचों इन्द्रियों की प्रवीणता,...** उसमें भी पाँच इन्द्रिय की अखण्डता हो। या आँख फूट गयी हो, या कान बहरा हो, और या ऐसा हो तो सुनने का मिले नहीं। यह दुर्लभ में दुर्लभ वस्तु (मिली हो), उसमें भी प्रवीण इन्द्रियाँ मिलकर लम्बा आयुष्य न हो। जन्मा और मर गया, दो-पाँच वर्ष में मर गया। क्या धर्म और कुछ है? मनुष्य के अवतार में जैन कुल में जन्मा। लो! पाँच वर्ष का, दो वर्ष का होकर मर गया। उसे कुछ है? आहाहा! लम्बा आयुष्य मिले परन्तु बल न मिले शरीर में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह शरीर अर्थात् प्राण है न? ... यह शरीर निरोग होना। बल तो मिला। मन, वचन और काया, प्राण आदि। परन्तु शरीर निरोग रहना। रोग हो तो पूरा दिन उसी और उसी में फँसा करे। यह करूँ और यह करूँ, कुछ चैन नहीं। भाई! ऐसा है न, कफ अवरोधक है और नींद नहीं आती और यह नहीं आता।

यह **जैनधर्म इनका उत्तरोत्तर मिलना कठिन है।** निरोगपना मिलने पर भी वीतराग का मार्ग परमात्मा परमेश्वर, तीर्थंकरदेव ने कहा मार्ग, वह मिलना महा-महा दुर्लभ है। **कभी इतनी वस्तुओं की भी प्राप्ति हो जावे,...** वाड़ा सम्प्रदाय (मिल जाये), ऐसा। कुछ वापस अच्छी, श्रेष्ठ बुद्धि मिलना मुश्किल है। जैन सम्प्रदाय में जन्म मिला परन्तु बुद्धि का ठिकाना नहीं होता। तो वह भी महा सच्ची बुद्धि, श्रेष्ठ बुद्धि मिलना दुर्लभ है। उसमें सच्चे धर्म का श्रवण, उसमें भी वीतराग ने कहे हुए सत्य धर्म का श्रवण महा दुर्लभ है। सच्चा धर्म श्रवण में ही नहीं मिले, वहाँ क्या करे? कहो, भगवानभाई! सच्ची बात है

न ? सच्चा धर्म क्या है ? वीतराग के वाड़ा में जन्मा। परन्तु क्या वीतरागदर्शन को कहना है (उसकी खबर नहीं होती)। तू पर का कर्ता नहीं, रागरहित क्या है ? उसका तो भान नहीं होता, कान में श्रवण नहीं मिलता। यह कब करे ?

श्रेष्ठ धर्म-श्रवण... भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर देवाधिदेव, उन्होंने कहा हुआ आत्मा का धर्म, ऐसा सुनना भी अनन्त काल में मिलना मुश्किल-दुर्लभ है। कहो, उसमें—स्त्री-पुत्र मिलना दुर्लभ है, ऐसा नहीं कहा इसमें, हों! कहीं। जयन्तीभाई! मुफ्त का हैरान होकर मर जाता है। यह एक हुआ और एक मर गया। ... मर जाये तो रोवे। एक मरे और रोवे, दूसरा मरे और रोवे, कितनों को रोयेगा परन्तु ? 'रोनेवाला नहीं रे रहनेवाले रे...' किसे रोयेगा तू भी अब ? तू कहाँ रहनेवाला था यहाँ ?

कहते हैं कि यह वीतराग का धर्म कान में पड़ना, ऐसी प्रवृत्ति में से महा-महा मुश्किल है। इसमें भी वापस श्रवण हुआ, (वह) ग्रहण (न कर सके)। सुनने का मिले परन्तु पकड़ नहीं सकता, ऐसा कहते हैं बहुत से। कहते हैं या नहीं, ऐसा ? कहते हैं कुछ परन्तु पकड़ में नहीं आता। परन्तु वस्तु—ऐसा मार्ग वीतराग का पकड़ में नहीं आये तब तुझे क्या लाभ हो ? समझ में आया ? यह क्या कहते हैं ? आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, वह पर का कुछ कर नहीं सकता, और रागादि ही अन्दर हों, वह धर्म नहीं, यह क्या कहते हैं, कुछ पकड़ में नहीं आता। ऐसा है या नहीं ? कहते हैं, धर्म श्रवण के पश्चात् धर्म का ग्रहण। वह ग्रहण करना, धारना। ग्रहण करना अभी तो, हों! यह ऐसा कहना चाहते हैं, वह ग्रहण करना भी महा दुर्लभ है। बराबर है या नहीं ?

मुमुक्षु : दो शब्द पकड़ में आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो शब्द पकड़ में आये, लो! ....

यहाँ तो कहते हैं, धर्म का ग्रहण (होना)। भगवान सर्वज्ञ प्रभु, आत्मा का रागरहित स्वभाव धर्म कहते हैं, वह क्या कहते हैं, कुछ समझ में नहीं आता। लो! यह दया, दान, व्रत पालना, वह पुण्य है। धर्म उससे अलग चीज़ है। यह क्या कहते हैं कुछ ऐसा, सिर काम नहीं करता। बराबर है या नहीं ? धर्म का ग्रहण, क्या कहते हैं यह बुद्धि में आना कठिन है।

पहला तो श्रवण तो दुर्लभ है। बुद्धि में प्रविष्ट होना कि यह ऐसा कहते हैं और आये होने पर भी टिका रहना मुश्किल है। ऐसा धारण किया सही कि कुछ लगता है इसमें। घर में जाये तो कुछ नहीं मिलता, बाहर निकले तो थोथा। धारणा में कुछ रहे नहीं। ग्रहण के पश्चात् धारण महा दुर्लभ है। धारण किसका? यह क्या कहते हैं इतना धारना, हों! अभी समकित की बात बाद में। यह क्या कहते हैं, यह वह ऐसा मार्ग? इसी प्रकार आत्मा निर्विकल्प समाधिस्वरूप है और क्या यह वह कुछ? निर्विकल्प समाधि (जैसा) तो कोई शब्द सुना न हो।

(संवत्) १९८० के वर्ष में एक बार भाई! स्वरूप समझो स्वरूप, ऐसी बात आयी थी बोटाद में। कहा भाई! स्वरूप समझो। तब कहे, यह कहाँ से ऐसा निकाला? स्वरूप, स्वरूप? एक गोपाणी थे, शिवलाल गोपाणी के काका, नहीं? एक गोपाणी थे न? वे कहे, यह कहाँ से निकाला? १९८० की बात है। ४१ वर्ष हुए। १९८० के वर्ष में कहा, भाई! पाँच पद का स्वरूप समझो। ऐसा का ऐसा णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं (बोल जाओ) यह नहीं चलता। अरिहन्त किसे कहना? सिद्ध किसे कहना? स्वरूप कहाँ से (निकाला)? अपने कभी (सुना नहीं)। अभी तक स्वरूप... स्वरूप कोई नहीं कहता था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भोले मनुष्य। कुछ खबर नहीं होती वीतराग का मार्ग क्या, परमेश्वर क्या कहते हैं?

कहते हैं कि एक तो ग्रहण, सुनना मुश्किल, उसमें ग्रहण मुश्किल, उसमें बात को धार रखना कि, बात तो यह कहते हैं कुछ। राग और विकल्प उठता है, वह विकार है, उससे रहित अन्दर स्वभाव पूरा भरा है, उसकी अन्दर पहिचान करो। ऐसी बात धार रखना, वह भी महा दुर्लभ है। कहो, सच्ची बात है या नहीं? बाहर जाये तो झटक (डाले), कुछ याद रहे नहीं। क्या सुनकर आये? कुछ खबर है? कुछ कहते थे।

मुमुक्षु : अच्छा, अच्छा कहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अच्छा क्या? कुछ याद रहता नहीं। और कितने ही ऐसा

कहे, हृदय में है परन्तु होंठ पर आता नहीं। और ऐसा कहे। ऐसा कहकर बचाव करे। हो नहीं धारणा कुछ धूल में भी वह। हृदय में तो है परन्तु होंठ पर आता नहीं। यह बातें करे और सुनते हैं और यह सब बोलते हैं उसमें से।

मुमुक्षु : कहा नहीं जा सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा नहीं जा सकता। परन्तु कुछ तो कहे कि, ऐसा कुछ है। भाषा तोतली-बोतली भी कुछ आवे या नहीं? यदि धारणा में आया हो, कि भाई! भगवान तीर्थंकरदेव परमेश्वर, भगवान आत्मा चैतन्य वीतराग स्वरूप से कहते हैं। वह वीतरागस्वरूप आत्मा का है। उसे पुण्य-पाप के रागरहित अन्तर की अनुभवदृष्टि करना, उसे भगवान धर्म कहते हैं। ऐसा इसे धारणा में तो, पकड़ में तो आना चाहिए। समझ में आया?

और पश्चात् **श्रद्धान...** उसकी श्रद्धा बैठना महादुर्लभ है। रुचि होना कि यह मार्ग ऐसा है। सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा, इसलिए ऐसा नहीं, परन्तु वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। ऐसा भगवान तो जानते हैं और ऐसा कहते हैं और ऐसी वस्तु है। इस प्रकार अन्तर में समझणकर, सुनकर, ग्रहणकर, धारकर, रुचि में यह बात बैठ जाना महादुर्लभ है। समझ में आया?

पश्चात् **संयम...** दुर्लभ है। इन्द्रियों का दमन होना। श्रद्धा के बाद। परन्तु श्रद्धा के बाद इन्द्रियों का (दमन), और **विषय-सुखों से निवृत्ति,...** विषय सुख में फिर प्रेम रहता नहीं। वह भी एक दुर्लभ है। उसमें भी **क्रोधादि कषायों का अभाव होना अत्यन्त दुर्लभ है,...** समझ में आया? ऐसे परम्परा एक के बाद एक सब दुर्लभ चीज़ है।

और इन सबों से उत्कृष्ट शुद्धात्म भावनारूप वीतरागी निर्विकल्प समाधि का होना,... उसमें भी सर्वोत्कृष्ट भगवान आत्मा परमानन्द की खान है। आत्मा परम अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है अन्दर। उसकी भावना—उसमें एकाग्रता (होना)। ऐसी वीतराग निर्विकल्प, रागरहित अभेद,... समझ में आया? शान्ति का होना, शान्ति—अविकारी वीतरागी शान्ति... शान्ति... शान्ति। पर्याय में प्रगट होना महादुर्लभ है। कहो, समझ में आया? यह प्रभाकर भट्ट कहता है कि ऐसा एक के बाद एक महादुर्लभ है, उसमें यह प्राप्त करना तो महादुर्लभ है।

क्योंकि उस समाधि के शत्रु जो मिथ्यात्व,... देखो! यहाँ से लिया है। समझ में आया? उसका स्पष्टीकरण किया है। मिथ्यात्व है न? देखो! अन्दर। '**वीतरागनिर्विकल्प-समाधिबोधिप्रतिपक्षभूतानां मिथ्यात्वविषयकषायादिविभावपरिणामानां**' इसमें अन्तिम लाईन है। यहाँ तो दूसरा कहना है कि वह प्रभाकर भट्ट अथवा योगीन्द्रदेव आचार्य ऐसा कहना चाहते हैं कि इस आत्मा में, आत्मा में इन शुभ-अशुभभाव से रहित आत्मा की शान्ति, सम्यग्दर्शन की शान्ति, जिसे समाधि कहते हैं, ऐसी जो समाधि, उसका शत्रु तो मिथ्यात्व है। ऐसा कोई कहे कि भाई! समाधि तो बहुत ऊँचा हो, उसका वैरी राग है। ऐसा यहाँ नहीं लिया, भाई! आत्मा में सम्यग्दर्शन। ऐसे रुचिरूप से भले हो, परन्तु सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अन्दर कि जो आत्मा अनाकुल आनन्द की मूर्ति है, उसकी अन्तर में अनुभव दृष्टि होकर जो शान्ति, अविकारी सुख प्रगट होना, उसका वैरी मिथ्यात्वभाव है। जहाँ मिथ्यात्वभाव है, वहाँ आत्मा की शान्ति होती नहीं। समझ में आया?

देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ, मैं पर की दया पाल सकता हूँ, मैं पर को मार सकता हूँ, पर से मुझे कुछ सहायता मिल सकती है, मेरे पापभाव में भी मुझे ठीक पड़ता है, मेरे पुण्यभाव में भी मुझे कुछ हित लगता है—ऐसा जो मिथ्यात्व, वह आत्मा की शान्ति का वैरी है। समाधि, समाधि कहो या शान्ति कहो, समझ में आया? यह चौथे गुणस्थान से लेकर बात है, हों! इसलिए यहाँ यह 'मिथ्यात्व' शब्द पड़ा है। समझ में आया? मिथ्यात्व का नाश होने पर—करने पर वस्तु शुद्ध अखण्ड आनन्द का अनाकुल आत्मा स्वरूप है, उसकी अन्तर दृष्टि होने पर अनाकुल आनन्द की, शान्ति, समाधि का वेदन होता है, उसका वैरी मिथ्यात्व है, प्रभु! उस मिथ्यात्व के कारण यह मेरा वेदन हुआ नहीं। ऐसा पूछता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब से अपनी योग्यता से खबर पड़ने लगी। कहो, समझ में आया? आहाहा!

मिथ्यात्व, विषय,... पर विषय के ऊपर लक्ष्य, **कषाय, क्रोध, मान आदि विभाव परिणाम हैं,...** आत्मा की शान्ति, उसके वैरी यह मिथ्या अभिप्राय, राग-द्वेष के परिणाम हैं। समझ में आया? **उनकी प्रबलता है।** उनकी प्रबलता अनादि काल की,

उल्टी मान्यता, विपरीत अभिप्राय। वास्तविक पुण्य-पाप मलिन हैं, भगवान निर्मलानन्द हैं, शरीर आदि अजीव भिन्न तत्त्व हैं, उनके कार्य भिन्न-भिन्न हैं—ऐसी जो मान्यता से विरुद्ध मिथ्यात्व की मान्यता, उसकी प्रबलता जगत में अनादि से वर्तती है। कहो, समझ में आया?

इसलिए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति नहीं होती... विपरीत अभिप्राय और कषाय के कारण आत्मा के शुद्ध स्वभाव का सम्यग्दर्शन, स्व का ज्ञान और स्व का चारित्र, उसकी प्राप्ति उनके प्रबलपने के कारण से होती नहीं। मिथ्यात्व के प्रबल परिणाम से कषाय की प्रबलता है। **और इनका पाना ही बोधि है,...** उन्हें—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करना, वही बोधि है, वह बोधि है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा पूरी चीज़ है न वस्तु? पदार्थ। अब एक गुड़ हो तो कितने गुण हों उसमें? गुड़ में कितने गुण? मीठा हो, सफेद हो, कोमल हो, गजब हो इत्यादि-इत्यादि होती है या नहीं शक्तियाँ? वह वस्तु है, उसी प्रकार भगवान आत्मा महान पदार्थ है। जो दूसरे पदार्थ को भी जाननेवाला और स्वीकार करनेवाला, वह कितना महान है! उसमें अनन्त-अनन्त गुण भगवान ने देखे और देखे और हैं। ऐसे गुणों की विपरीतता से मिथ्यात्वभाव से, प्रभु! (मैं) इस सम्यग्दर्शन बोधि को प्राप्त नहीं हुआ। समझ में आया? मेरे स्वरूप की (अर्थात्) शुद्ध चैतन्यपदार्थ भगवान आत्मा की अन्तर्मुख दृष्टि होना, उसका ज्ञान और उसकी लीनता होना, इन तीन की प्राप्ति को यहाँ बोधि की प्राप्ति कहते हैं।

उस बोधि का जो निर्विषयपने से धारण वही समाधि है। यह निर्विषय शब्द है न वहाँ निर्विघ्न चाहिए। सुधारा, पहले वाँचा था तब। उसका निर्विघ्न अर्थात् जो आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति अन्दर में अपूर्व अनन्त काल में नहीं प्रगट हुए, (वे) प्रगट हुए, उसे बोधि कहा जाता है और उसकी उस धारा से मृत्यु से आराधक होकर, मृत्यु से आराधक होकर साथ में लेकर जाये, निर्विघ्नरूप से धारण और समाधि होकर लेकर जाये, उसे यहाँ समाधि कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यहाँ प्राप्ति की अब.....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वापस ठेठ अखण्ड रखे, तब लेकर जाये न! मृत्यु तक

उसकी शान्ति की समाधि की आराधना, सेवन। ऐसे आनन्द का सेवन, शान्ति का सेवन। देह छूटे तो भी अन्दर शान्ति के आनन्द के अनुभव से देह छूटे तो वह श्रद्धा, ज्ञान की प्राप्ति हुई, वह लम्बे काल रहे और समाधि को दे और आगामी भव तक भी केवलज्ञान को प्राप्त करने तक वह काम करे। कहो, समझ में आया?

इस तरह बोधि समाधि का लक्षण सब जगह जानना चाहिए... बोधि और समाधि की व्याख्या यह। उसमें नहीं आता? 'समाहिवर मुत्तं दिंतु'। परन्तु यह समाधि। समाधि के अर्थ की खबर नहीं किसी को। भगवानभाई! 'एवं मई अभिथुआ, विहुय रयमला' शब्द के (अर्थ की) कुछ खबर नहीं होती। विहा रोई मळया (ऐसा कहे)। एक व्यक्ति को विवाद चलता था। दशा और विशा (श्रीमाली) को। विहा रोई मळया। परन्तु यहाँ लोगस्स में विहा रोई मळया, कहाँ से आया? .... ऐसा और एक व्यक्ति कहे। यह तो 'एवं मई अभिथुआ।' ऐसे तो 'विहुय रयमला' (अर्थात्) विहुय (अर्थात्) टाले हैं जिन्होंने कर्म और राग-द्वेष के भाव। ऐसा भगवान आत्मा परमात्मा तीर्थंकर को पहिचानकर स्तुति करते हैं। उसमें 'समाहिवर मुत्तं दिंत्तु' (अर्थात्) हे प्रभु! मुझे मेरा आरोग्य बोहि लाभं। आता है न? 'आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तं दिंत्तु'। आरोग्य अर्थात् आत्मा का पुण्य-पाप के भावरहित स्वरूप, वह निरोग और आरोग्य है, उसकी मुझे प्राप्ति हुई, उसकी मुझे बोधि हुई 'समाहिवर मुत्तं दित्तुं' मुझे शान्ति... शान्ति... शान्ति... निर्विकल्प वीतरागता मृत्यु तक रहो, आगामी भव तक केवलज्ञान प्राप्त करे तब तक रहो। आहाहा! ऐसा इसका अर्थ है, अर्थ की खबर नहीं होती। पहाड़े बोलता जाये। जयन्तीभाई! गडिया को क्या कहते हैं (हिन्दी में)? पहाड़ा... पहाड़ा। आहाहा! पहाड़ा-पहाड़ा। पाठ। पाठ को रटे। क्या कहते हैं, कुछ खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : भगवान ने कहा वह सच्चा।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या भगवान (ने) कहा? उसके भाव समझे बिना भगवान क्या कहते हैं, उसकी कहाँ से खबर पड़ी? ज्ञान में भान बिना भगवान कहे वह सच्चा आया कहाँ से? कहो।

कहते हैं, **इस तरह बोधि समाधि का लक्षण सब जगह जानना चाहिए। इस बोधि समाधि का मुझमें अभाव है,...** यह शिष्य कहता है, प्रभु! ऐसे भान है उसे। ऐसी

बोधि और ऐसी समाधि का, प्रभु! मुझे अभाव है, हों! तो अब यह बोधि-समाधि कैसे प्राप्त हो, वह मुझे कहो। आहाहा! **इस बोधि समाधि का मुझमें अभाव है,...** ऐसा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और ऐसी जो समाधि अर्थात् अखण्ड निर्विघ्नरूप से आराधन होकर जाना, प्रभु! मुझमें अभाव है।

इसलिए संसार-समुद्र भटकते हुए... भगवान! चौरासी के अवतार में भटकते-भटकते **मैंने वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया,...** देखो! यह चौरासी के अवतार में वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया। चौथा गुणस्थान नहीं पाया, ऐसा कहा है यहाँ। आहाहा! सम्यक् आत्मा का भान गृहस्थाश्रम में सम्यग्दर्शन होने पर, रागरहित परमानन्द की शान्ति का अनुभव हो, उसे समकित कहते हैं। ऐसा नहीं कि यह देव-गुरु-शास्त्र सच्चे, (उनको) हम मानते हैं, भगवान सच्चे (मानते हैं), ऐसा नहीं। ऐसा तो अनन्त बार माना। उसमें कुछ भला नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : धम्मो मंगल मुख्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या धम्मो मंगल मुख्य है? धर्म किसे कहना, मंगल किसे कहना, भान नहीं होता शब्दों में। उसके भाव में क्या भरा है अन्दर आत्मा में? यह बात तो भाई! अभी ऐसा सब फेरफार हो गया है। इसलिए तो यह पुकारते हैं तब से देखो न! योगीन्द्रदेव के निकट। प्रभु! इस संसार के चौरासी के अवतार अनेक-अनेक करके जिन दीक्षा भी अनन्त बार ली। परन्तु आत्मा का सम्यग्दर्शन क्या स्वरूप (का) वह दीक्षा में भी समझा नहीं। पुण्य की क्रिया थी, पुण्य बाँधा, स्वर्ग में गया, चार गति में भटका। समझ में आया?

मैंने वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया, किन्तु उस सुख से विपरीत (उल्टा) आकुलता के उत्पन्न करनेवाला नाना प्रकार का शरीर का तथा मन का दुःख ही चारों गतियों में भ्रमण करते हुए पाया। चार गति में तो मन और शरीर के दुःख ही पाये। शरीर में रोग आवे तो उसका दुःख अन्दर, न हो तो तब मन की कल्पना के दुःख। पुण्य-पाप की आकुलता के दुःख। जहाँ हो वहाँ प्रभु! मैंने दुःख भोगा है, हों! ओहो! मैं नौवें ग्रैवेयक में गया परन्तु मैंने दुःख भोगा है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। पंच महाव्रत पालन किये, दया पालन की, व्रत पालन किये, भक्तियाँ की, शुभराग में दुःख था, उसके

पीछे आत्मा कौन, उसके भान बिना, सम्यग्दर्शन बिना वह सब दुःख ही था, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अनेक प्रकार के शरीर का... शारीरिक और मानसिक दुःख भोगे।

इस संसार-सागर में भ्रमण करते मनुष्य देह आदि का पाना बहुत दुर्लभ है, परन्तु उसको पाकर कभी प्रमादी (आलसी) नहीं होना चाहिए। जैनशासन का सम्यग्ज्ञान पाकर, ऐसी अपूर्व बात अन्तर में सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके इसे प्रमाद नहीं करना चाहिए। इसे उस रत्न को सम्हाल रखना चाहिए। आहाहा! जैन परमेश्वर ने कहा हुआ वीतरागी आत्मा का स्वभाव, उसकी जो ज्ञान और श्रद्धा मिली, उसमें प्रमाद नहीं करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। है न वह श्लोक है अन्दर? '**इत्यतिंदुर्लभरूपां बोधिं लब्ध्वा यदि प्रमादी स्यात्। संसृतिभीमारण्ये भ्रमति वराको**' भिखारी होकर, यह भगवान के शासन में सम्यग्ज्ञान में न्याय सम्यक् श्रद्धा मिली, उसे यदि नहीं सम्हाले तो भिखारी चार गति में भटकेगा। यह दुनिया के कारण से... परन्तु यह दुनिया ऐसा नहीं मानती, दुनिया हमको ऐसा कहती है। दुनिया तो दुनिया के घर में रहेगी, ले। समझ में आया?

वीतराग परमात्मा ने कहा हुआ आत्मा, जो पुण्य-पाप के विकल्प के रागरहित है, उसका ज्ञान, श्रद्धा प्राप्त करके इसे आलस्य नहीं करना, प्रमाद नहीं करना। उस प्रमाद में इस बात को गँवाना नहीं। दुनिया की दरकार से कि दुनिया को क्या होगा? दुनिया मुझे ऐसा मानेगी, पहले दुनिया कहती थी कि ऐसा है, और दुनिया क्या मानती है? भगवान क्या कहते हैं? यह बीच में विरोध होगा। दुनिया का छोड़ दे तू। तेरा मार्ग जो वीतरागस्वरूप की दृष्टि और ज्ञान, उसे प्रमाद में-आलस्य में गोपना नहीं, नाश करना नहीं। क्या कहते हैं, समझ में आया? ऐसी जो अपूर्व दृष्टि और ज्ञान मिले, उन्हें दुनिया के साथ तू मिलाने जायेगा तो नहीं मिलेंगे। दुनिया के साथ उनका मेल नहीं खायेगा। तो दुनिया के साथ जहाँ-तहाँ भटककर उसमें कुछ होगा दूसरा? यह सब तो मानते नहीं—ऐसा करके तेरी बात को खोटा करना नहीं और उसे गँवाना नहीं, आराधन करना। दुनिया में ईर्ष्या करनेवाले बहुत निकलेंगे। आता है न नियमसार में? आहाहा! सुन्दर मार्ग की ईर्ष्या करनेवाले निकलेंगे, निन्दा करनेवाले निकलेंगे, भाई! परन्तु तेरी पूँजी सम्हालना। वे चोर मिलेंगे परन्तु पूँजी रखना। भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु पैसे रखे न वृद्ध ने? ... रहने के थे।

मुमुक्षु : युक्ति शोध निकाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : युक्ति शोध निकाली। उसके पिता नारण सेठ थे (वे) पहले से पैसेवाले व्यक्ति। नागनेश यह उनके बापू नारणभाई, वे उगाही डाले चारों ओर पाँच, पच्चीस हजार की उगाही में निकले। उसमें एक बार चोर निकले। नारण सेठ निकले हैं, इसलिए कहीं उगाही लेकर दो, पाँच हजार होंगे या पन्द्रह सौ, दो हजार होंगे कुछ। दो हजार थे। नारण सेठ निकले। चोर को खबर (पड़ी)। इनके पिताजी की बात है। परन्तु वस्त्र ऐसे सब पुराने लोग ऐसे रखते और ऊपरी वस्त्र मैले, सिर पर बाँधने का मैला और ऐसा सब रखते। उसमें वह निकला। नारण सेठ चलकर आते थे। खबर पड़ी कि यह चोर है। ऐ... बापू! दूर रहना। उसको (लगा)। यह नारण सेठ नहीं। जाओ। दो हजार रुपये लेकर चले गये घर में। चोर लुटेरे आवे तो ध्यान रखना, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह इनके पिता की बात चलती है, हों! देखो! छोटालाल नारण, उनके पुत्र मलूकचन्द और उनके पुत्र पूनमचन्द... पुत्र के पास दो करोड़ रुपये हैं। उसके पास थोड़े थे। तीस, पैंतीस, चालीस हजार कहलाते थे उस समय। यह तो ५०-६० वर्ष (पहले) की बात है। खबर है न सब सुनी है न हम तो तुरन्त आये थे न। (संवत्) १९७१ में नाग्नेश आये थे। १९७० के वर्ष में दीक्षा और १९७१ के वर्ष में आये थे। तब से हमको सब खबर है।

मुमुक्षु : घोड़े के ऊपर जाते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाते होंगे। घोड़े के ऊपर जाते थे। वह जाते थे। परन्तु उसको ऐसा कहा, दूर रहना। (चोर को लगा), यह तो और दूसरे हैं। यहाँ कहते हैं तो दुनिया के लुटेरे मिलेंगे। तुझे वीतराग मार्ग के जो श्रद्धा और ज्ञान हुए, उन्हें बनाये रखना। लुटाना नहीं, प्रमाद करना नहीं। सेठी! प्रमादी नहीं होना।

जो प्रमादी हो जाते हैं, वे संसाररूपी वन में अनन्त काल भटकते हैं। ऐसा ही दूसरे ग्रन्थों में भी कहा है—'इत्यतिदुर्लभरूपां' इसका अभिप्राय ऐसा है कि यह

महान दुर्लभ जो जैनशास्त्र का ज्ञान है,... वीतराग परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त होना, वह अनन्त काल में महादुर्लभ है। समझ में आया? ऐसे तो सब बहुत पढ़े हुए और बातें-बातें करे, वे सब खोटी, गप्प-गप्प मारे। आत्मा ज्ञान वस्तु जैनशास्त्र, वीतराग कहते हैं, ऐसा यह आत्मा, उसका रागरहित, पुण्य-पापरहित का ज्ञान, उसकी श्रद्धा, उसका अनुभव, ऐसा जैनशास्त्र का वह ज्ञान महादुर्लभ है, महादुर्लभ। समझ में आया? अन्य में तो नहीं, परन्तु जैन के वाड़ा में भी ठिकाना नहीं। इसलिए कहते हैं कि उसकी वीतरागी बात, सर्वज्ञ परमात्मा का कहा हुआ ज्ञान महा दुर्लभ है, महान दुर्लभ है, ऐसा कहते हैं।

उसको पाके जो जीव प्रमादी हो जाता है, वह रंक पुरुष... देखो! रंक '**वराको**' कहा था न? '**वराक**' '**वराक**' भिखारी! तुझे रत्न रखना आया नहीं। आहाहा! दुनिया के मान में और इज्जत और कीर्ति में (प्रसन्न होता है), यह तो कीर्ति बढ़ी। मर जायेगा अब उसमें। समझ में आया? 'लही भव्यता मोटुं मान, कोण अभव्य त्रिभुवन अपमान।' भगवान कहें कि यह जीव समकिती और भव्य है, फिर तुझे किसका मान चाहिए है? भगवान की दृष्टि में आया कि इसकी श्रद्धा मिथ्या है। अब तुझे किसका अपमान चाहिए है? आहाहा! समझ में आया? **रंक पुरुष बहुत काल तक संसाररूपी भयानक वन में भटकता है।**

सारांश वह हुआ, कि वीतराग परमानन्द सुख के न मिलने से... देखो! यह वापस अन्तिम बात ली। मेरा आनन्द प्रभु! मेरा आनन्द ऐसा सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन में जो आनन्द आवे, उसका नाम आनन्द और वह सुख सम्यग्दर्शन, ऐसा रागरहित आत्मा की श्रद्धा और समकित ज्ञान, **परमानन्द सुख के न मिलने से यह जीव संसाररूपी वन में भटक रहा है, इसलिए वीतराग परमानन्द सुख ही आदर करनेयोग्य है।** लो! यह इसका योगफल किया। सब छोड़कर भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसका अतीन्द्रिय आनन्द श्रद्धा, ज्ञान में प्रगट करके, वह आदरनेयोग्य है। बाकी कोई आदरनेयोग्य है नहीं। ऐसा इसे उपादेयरूप से आत्मा को जानना, अनुभव करना, वही आदर करनेयोग्य है। पुण्य-पाप आदि कोई आदर करनेयोग्य नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ३, सोमवार, दिनांक २७-९-१९६५
गाथा - १०, ११, प्रवचन - ८

यह परमात्मप्रकाश है। पहला अध्याय, दसवीं गाथा। प्रभाकर भट्ट अपना परमात्मस्वभाव समझने की अभिलाषावाला प्रश्न करता है।

★ ★ ★

गाथा - १०

आगे जिस परमात्म-स्वभाव के अलाभ में... यह परमात्मा अर्थात् अपना जो शुद्ध आनन्द और ज्ञायकस्वभाव, उसका अनादि से अलाभ अर्थात् कभी उसका लाभ हुआ नहीं। समझ में आया ? उसके अलाभ में **यह जीव अनादि काल से भटक रहा था,...** लो ! दूसरी चीज़ें अनन्त बार मिली। शरीर, सामग्री, स्वर्ग, पुण्य-पाप के भाव की सामग्री भी अनन्त बार मिली। भाव, भाव की सामग्री, हों! उसके फल की बाहर की बात है। परन्तु एक आत्मा अन्दर वस्तु केवलज्ञान का कन्द प्रभु, उसका मुझे, प्रभु ! अनादि से अलाभ है। लो ! दूसरे सबका लाभ होने पर भी वह सब दुःख है। समझ में आया ?

यह परमात्मस्वभाव, मेरा अन्दर ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शुद्धस्वभाव का मुझे अनादि से अलाभ है, मुझे उसका लाभ नहीं हुआ। देखो ! यह जिज्ञासु की धगश ! प्रभु ! मुझे मेरे आत्मस्वभाव के अलाभ के कारण, मैं संसार में भटक रहा हूँ। ऐसा शिष्य प्रश्न में पहला ऐसा ही भाव रखता है। समझ में आया ? प्रभु ! यह परमात्म मेरा अन्तर स्वभाव, जो अनादि वस्तु है, ऐसी स्वयं श्रद्धा करके कहता है, हों ! उसका मुझे अलाभ है। उसके कारण से **अनादि काल से भटक रहा था, उसी परमात्मस्वभाव का व्याख्यान प्रभाकरभट्ट सुनना चाहता है—** देखो ! दूसरा मुझे कुछ नहीं। यह आत्मा प्रभु ! पूर्ण क्या है ? आहाहा ! अरे ! जिसके विरह में चार गति के दुःख सहन किये। जिसके लाभ बिना

चौरासी के अवतार में अनन्त काल पिला, दबा, दुःखी हुआ, भगवान! आहाहा! मेरा आत्मस्वभाव परमात्मस्वभाव अन्दर वस्तुरूप से क्या है? उसके लाभ बिना मुझे दूसरे लाभ मिले, वे तो दुःख के लाभ मिले। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, प्रभु! यह परमात्मा का स्वभाव क्या है? यह निज परमात्मप्रकाश है न? अन्तर परमात्मस्वरूप से शुद्ध चिदानन्द वह वस्तु क्या है? कि जिसका मुझे अनन्त काल में विरह है, अलाभ है, वियोग है और इसके अतिरिक्त के विकारी भाव और फल का मुझे संयोग है, प्रभु! वह तो सब दुःखरूप है। आहाहा! देखो! यह शिष्य की जिज्ञासा में परमात्मा का धगशभाव! परमात्मा वह कौन है? प्रभु! जिसे देखने से आनन्द हो, जिसके मिलने से सुखदशा हो, जिसकी भेंट से भगवान की भेंट हो। आहाहा! समझ में आया? ऐसा परमात्मा क्या है यह?

प्रभाकरभट्ट सुनना चाहता है—यह सुनना चाहता है। मुझे दूसरी बात बाद में। मुझे यह चाहिए। यह क्या चीज़ है परन्तु यह? यह प्रश्न धर्मार्थी जीव का, मोक्ष के अभिलाषी जीव का, संसार के शुभ-अशुभभावों और उनको फलों का दुःखरूप लाभ उनसे जिसे रुचि हटी है और इस परमात्मस्वभाव की अन्तर रुचि हुई है। वह क्या चीज़ है, ऐसा विशेषरूप से गुरु के निकट वह लाभ लेना चाहता है। उसे सुनाओ, प्रभु! यह मुझे सुनाओ। यह क्या चीज़ है? कहो, समझ में आया इसमें?

१०) चउ-गइ-दुक्खहँ तत्ताहँ जो परमप्पउ कोइ।
चउ-गइ-दुक्ख-विणासयरु कहहु पसाएँ सो वि॥१०॥

स्वयं ने इतना तो अन्दर निर्णय किया है, और अब विशेष पूछता है। क्या? कि, यह **देवगति, मनुष्यगति, नरकगति, तिर्यंचगतियों के दुःखों से तप्तायमान संसारी जीवों के...** लोहे के तप्तायमान कढाही में जैसे चींटियाँ डाले और हड-हड जले। कीडी-कीडी। कीडी समझते हो? चींटियाँ। उन्हें लोहे के धगधगते तवे में, उसमें कोई चींटी पच्चीस, पचास, सौ, पाँच सौ (डाले वे हड हड जल जाये)। इसी प्रकार इन चौरासी की गतियों में, प्रभु! हम तप्तायमान, दुःखी हैं। आहाहा!

अरे! कहीं शरण देखना चाहे, वहाँ शरण क्या है, उसके ऊपर नजर जाती नहीं

और यहाँ नजर पहुँची, वहाँ पुण्य और पाप के फल तथा पुण्य-पाप के भाव। जहाँ मात्र दुःख और दुःख के पर्वत तप्तायमान, तप्तायमान। ज्वाजल्यमान अग्नि में सिकते हैं, प्रभु! आहाहा! यह आकुलता शुभ और अशुभभाव की, उस आकुलता में हम जले, सुलगे, तप रहे हैं। रतिभाई! देखो! यह प्रश्न तो देखो! परन्तु यह सब है न? यह शरीर है, लक्ष्मी है, यह स्त्री-पुत्र है। प्रभु! उसकी ओर का भाव तप्तायमान ज्वाजल्यमान अग्नि से सिके, ऐसा वह भाव है। आहाहा! समझ में आया?

यह कहते हैं, प्रभु! **चार गतियों के दुःखों का विनाश करनेवाला...** ऐसी जो तप्तायमान दुःख दशा है। ऐसे वस्तु एकओर शान्तरस का कन्द पड़ा रहा पूरा। कि जो यह आकुलता का नाश करनेवाला है। समझ में आया? मेरा प्रभु, मेरा प्रभु, आकुलता का नाश करनेवाला मेरी नजर में से चला गया। कहो, जमुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : .... सबको ऐसा ही होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे उसे ऐसा हो अन्दर से, ऐसा कहते हैं। 'क्षण रे न राचुं रे इस संसार में।' हे माता! ऐसे हजारों रानियाँ होती हैं। सुन्दर शरीर, राज के कुँवर। मणिरत्न के पटिये के बँगले होते हैं। माता! अब क्षण भी नहीं राचुं। 'क्षण रे राचुं नहीं रे इस संसार में' माता! यह संसार के दुःख, मुझे अब इनमें रुचि नहीं। दे आज्ञा। आज्ञा दे, माता! आहाहा! माता! अब दूसरी जननी नहीं करूँगा, ऐसी आज्ञा दे अब। यह कलंक शरीर धारण करना, अन्दर मन, वाणी का संयोग होना, और पुण्य-पाप की आकुलता के उन तप्तायमान दुःखों में ज्वाजल्यमान सुलगना, माता! उन्हें अब छोड़कर हमको शान्ति में जाना है अन्दर में।

वह परमात्मा कैसा है? प्रभाकर भट्ट कहता है, देखो! चार गति के दुःखों का विनाश करनेवाला। देखो! यहाँ दो बातें कीं। आहाहा! वह भगवान आत्मा ज्ञान, केवलज्ञान का पिण्ड अकेला है। समझ में आया? वह तो अकेला ज्ञान का, सत्त्व का रसकन्द है। वह आत्मा अर्थात् कि आत्मा वह तो वस्तु हुई, परन्तु शक्ति क्या? अर्थात् कि वह तो ज्ञान का अकेला रस स्वभाव पिण्ड-पिण्डला, आनन्द का मावा अकेला आत्मा है। प्रभु! परमात्मा चार गति के आकुलता के दुःख का नाश करनेवाला है। वह परमात्मा मुझे सुनाओ। ऐसा कहता है, लो! समझ में आया?

ऐसे पच्चीस-पच्चीस, तीस-तीस वर्ष के जवान राजकुमार, ऐसे रत्न के पिण्ड जैसे शरीर हों। कायर हो गये। माता! यह दु:ख अब सहे नहीं जाते। कौन से दु:ख? यह शरीर का पैर न चले, वह नहीं, हों! अभी चिल्लाहट करते थे न आये तब? उकता गये हैं इस शरीर से। अन्दर में आकुलता उत्पन्न होती है, वह दु:ख है। शरीर के कारण से नहीं। आहाहा! आकुलता के जले, सुलगे, (ऐसे मुझे), प्रभु! हमारा विश्राम भगवान परमात्मा अन्दर है। प्रभु! उसे हमको सुनाओ। ऐसी माँग अन्तर की धगश से की है। आहाहा! समझ में आया?

कैसा है वह? **चिदानन्द परमात्मा है,...** देखो! स्वयं का स्वयं पूछनेवाला पूछकर भाई! कहते हैं। आहाहा! भगवान! मुझे तो लगता है न कि यह आकुलता जो चार गति के दु:खों की आकुलता, हों! अन्दर विकार, विकार सुलगता है। विकल्प की ज्वाला उठकर शान्ति को रोकती है। ऐसी विकल्प की ज्वाला के पीछे भगवान, वह चिदानन्द परमात्मा है न! परमात्म शब्द का अर्थ करके यह ज्ञान और आनन्द दो लिये। यह ज्ञान का आनन्द, ज्ञान का आनन्द। ज्ञान जिसका शरीर और आनन्द जिसका रूप। ऐसा भगवान परमात्मा **उसको कृपा करके...** उसे हे महाराज! आप कृपा करके मुझे यह सुनाओ। आपकी मेहरबानी हो तो यह कहो। देखो! आहाहा! **कृपा करके हे श्रीगुरु, तुम कहो।** मैं सुनने को प्रभु! तैयार बैठा हूँ। प्रभु! मुझे वह सुनाओ। मुझे दूसरा कुछ सुनना नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? देखो! यह संसार के भय से उकताये हुए जीव और चिदानन्द परमात्मा को प्राप्त करने के कामी (इच्छुक) की ऐसी भूमिका होती है। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! हम तप्तायमान हैं, हों! जले-सुलगे हैं। आहाहा! यह चार गति के दु:खों का नाश करनेवाला यह, यह ... जो कोई। अर्थात् कि यह विकारी आकुलता को संयोग बिना की कोई चीज़ अन्दर है। ऐसा **चिदानन्द परमात्मा है, उसको...** आपकी कृपा से। देखो! भाषा वापस यह। प्रभु! मुझे कहो ही, ऐसा नहीं। मुझे मेहरबानी करो, कृपा करके सुनाओ मुझे। सुनाओ, ऐसा नहीं कहता। समझ में आया? सुनाओ, ऐसा प्रभु! कृपा करो आप। कृपा करके यह सुनाओ। आहाहा! समझ में आया?

जिसे आनन्द की भूख लगी है अन्दर की। अरे! आकुलता से पेट नहीं भराया।

दु:खी... दु:खी... दु:खी... देव में भी हम दु:खी, सेठिया में दु:खी, राज में दुखी, इतनी-इतनी सुविधा के ढ़ेर जिसे एक हुकम करे और इक्कीस तैयार हो। प्रभु! परन्तु वह दु:ख, हों! उसकी ओर के आकुलता की तड़फन वह दु:ख है। उस दु:ख के नाश का करनेवाला तो यह परमात्मा अन्दर है। समझ में आया?

आपके '**प्रसादेन**' हों! प्रभु! आपकी प्रसादीरूप से आप कृपारूप से यह सुनाओ, ऐसा माँगता हूँ। इतनी भूमिका पहली गाथा... परमात्मा को पूछनेवाले को कितनी शैली विनय की है! और कितनी धगश है! ऐसे वैगार की भाँति यह पढ़ गया और सुन गया और गया, (ऐसा नहीं)। यह तो अनन्त बार किया ऐसा। उसमें कुछ धूल मिली नहीं और कुछ हुआ नहीं। समझ में आया? ऐसे विनय से निर्मानरूप से अन्तर के स्वरूप की रुचि तो है। यह चिदानन्द भगवान है। यह आकुलता... अब मुझे विशेष सुनना है। यह वह कैसा उसका स्वरूप है? आहाहा!

श्रीगुरु, तुम कहो... '(कथय)' परन्तु '**प्रसादेन कथय**' हों! ऐसे कहो, ऐसा नहीं। उसका मुझे उत्तर दो, ऐसा नहीं। महाराज! मेहरबानी करो न! हमारे चिदानन्द भगवान अन्दर स्वरूप में क्या है? वह खजाना कैसा है? प्रभु! आपकी मेहरबानी हो तो वह बात मुझसे करो। आहाहा! यहाँ तो बाहर में लहर मारनी है, मान प्राप्त करने, इज्जत प्राप्त करने, कीर्ति प्राप्त करने, ऐसे प्राप्त करने, शास्त्र के बहाने भी इज्जत और कीर्ति प्राप्त करनी है, उसे कहाँ अन्दर आत्मा की पड़ी है? समझ में आया? आहाहा!

यह तो शास्त्र सुनने को माँगनेवाला ऐसी पुकार कर रहा है, मुझे प्रभु! कुछ नहीं चाहिए, हों! आपकी मेहरबानी हो तो उस परमात्मा का स्वभाव क्या है अन्दर? पूरा चैतन्य दल क्या है? पूरा सत्त्व परमात्मस्वरूप वस्तु है, वह क्या है? वह मैं सुनना चाहता हूँ। प्रभु! मुझे दूसरा कुछ सुनना नहीं। ऐसे पुण्य करके हम स्वर्ग में जायेंगे और फिर भगवान के पास जायेंगे, ऐसा कुछ चाहते नहीं। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थः—वह चिदानन्द शुद्ध स्वभाव परमात्मा,... कैसा है? चिदानन्द परमात्मा। यहाँ कहेंगे कि ऐसा परमात्मा आपके प्रसाद से सुनना चाहता हूँ, ऐसा कहेंगे। कैसा है वह परमात्मा? कि चिदानन्द। चिद् अर्थात् ज्ञान का, आनन्द का पिण्ड है, शुद्ध स्वभाव है, परमस्वरूप है।

आहार, भय, मैथुन, परिग्रह के भेदरूप संज्ञाओं को आदि लेकर... भगवान परमात्मा आहार की संज्ञारहित है। वह केवलज्ञान की संज्ञा, केवलज्ञान का पिण्ड है, ऐसा कहते हैं। यह संज्ञा नहीं, यह नहीं। आहाहा! ऐसे आहार की इच्छा की संज्ञा, उसके बिना का संज्ञ, संज्ञ—अकेला सम्यक् प्रकार ज्ञान का पिण्ड है। उसके सामने यह संज्ञा डाली जरा। ऐसे सम्यक् केवलज्ञान का पिण्ड है आत्मा, उसे यह आहारसंज्ञा, आहार की इच्छा, ... रुकना, गृद्धि, भय की संज्ञा, यह विषय, मैथुन की संज्ञा, परिग्रह की संज्ञा—यह भेदरूप संज्ञायें तो दुःखरूप हैं। उनसे भगवान आत्मा चार संज्ञारहित है। समझ में आया? लो! पहले से यह उठाया। समझ में आया? यह आहार ऐसा हो और इच्छा हो बस, ऐसे दूधपाक, पूड़ी और ऐसे मावा के जामुन और,... महाराज! प्रभु! यह संज्ञा है न! उसमें तो भगवान ज्ञान को दुःख होता है।

भगवान तो ज्ञानानन्द का अकेला पिण्ड है न! उसके सामने संज्ञा उठाई, भाई! ऐसे गुलांट (खायी)। आगे कहेंगे। भगवान! समझ में आया? अकेला केवल (ज्ञान) का पिण्ड है। यह बाद में कहेंगे। स्वसंवेदनज्ञान में... आगे कहेंगे। अकेला आत्मा। ऐसे जो रुका हुआ है, वह आत्मा नहीं। आहार की संज्ञा का विकल्प उठकर गृद्धि में रुका हुआ, प्रभु! वह आत्मा में है ही नहीं न! ऐसा आत्मा मुझे सुनना है। समझ में आया? भय की संज्ञारहित आत्मा, वह मुझे सुनना है। जिसमें भय ही नहीं, निर्भय पिण्ड में, निर्भय किले में पड़ा हुआ भगवान है। पूर्णानन्द का वज्र, पूर्णानन्द का वज्र अनादि-अनन्त ध्रुव, उसे भय कैसा? वह भय बिना का वज्र किला, निर्भय चैतन्यमूर्ति, वह मुझे सुनना है, प्रभु! समझ में आया?

विषय, भोग ऐसे इन्द्राणियों के विषय की वृत्तियाँ, संज्ञा में ज्ञान रुक जाये, अरे! यहाँ केवलज्ञान का पिण्ड भगवान (है, वह) वहाँ रुक जाये! उसके बिना की वह चीज़ है। समझ में आया? ऐसी परमात्म चीज़ मुझे सुननी है। यह चैतन्य हीरा मैंने कभी देखा, जाना, अनुभव किया नहीं। ऐसे चैतन्यहीरे को मुझे आप कहो। वह क्या है यह वह अन्दर? जिसकी महिमा वाणी में पूरी केवली के नहीं आती। वह भगवान मैथुन संज्ञारहित है। यह संयोगी चीज़ की मजे के रागरहित है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

परिग्रह... यह धूल के ढ़ेर, इन्द्रपद के और यह राज चक्रवर्तीपद के, उसकी जो परिग्रह की संज्ञा, हों! संज्ञा। उसमें 'यह ठीक' ऐसे रुक गया न! उस रुकी हुई चीज रहित चीज़ है वह। आहाहा! उसमें रुके ऐसी वह चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अग्नि का भड़का उठता हो और मनुष्य जैसे वहाँ से भागे। अग्नि का, तेजाब का भड़का सुलगता हो न, (वहाँ से) भागे। उसी प्रकार भगवान! यह पुण्य-पाप के आकुलता के भड़का सुलगते हैं, हों! नाथ! यह चार संज्ञा के भड़का सुलगते हैं। उनसे रहित मेरा स्वभाव भगवान परमात्मा मुझे सुनना है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? रतिभाई! अभी यह प्रश्न करनेवाले की इतनी भूमिका है। आहाहा!

आदि लेकर समस्त विभावों से रहित... पहली संज्ञा ही उठायी यहाँ। भगवान संज्ञ तो केवलज्ञान का पिण्ड है न! वह ऐसी संज्ञा से तो रहित है। इसलिए दूसरे-दूसरे विभाव, लाख-करोड़ असंख्य शुभाशुभ परिणाम, ऐसे विभावों से रहित और **वीतराग निर्विकल्प समाधि के बल से...** देखो! जहाँ रागरहित, अन्तर भगवान की भेंट करके, चिदानन्द की अन्तर नजरें डालकर, जो विकाररहित शान्ति के बल द्वारा **निज स्वभावकर उत्पन्न हुए परमानन्द...** परम आनन्द, पर्याय में, हों! **सुखामृतकर सन्तुष्ट हुआ है हृदय जिनका,...** आहाहा! **ऐसे निकट संसारी-जीवों के चतुर्गति का भ्रमण दूर करनेवाला है,...** आत्मा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भूख बहुत लगी हो और पकवान अच्छा, पोचा, ऊँचा मीठा होता हो। कितनी राह देखेगा वह? भूख लगी हो ऐसी। और लड़का हो छोटी उम्र का तो ऐसी भूख लगी हो। दूधपाक बनाया हो और ननिहाल का आमन्त्रण हो, परन्तु वहाँ दो बजे दूधपाक होगा। हाय... हाय! कब हो और कब जायें, कब हो और कब जायें।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, प्रभु! ऐसा भगवान कढायेलुं दूध आनन्द का पिण्ड पड़ा है अन्दर। जिसके आश्रय में होने से निर्विकल्प परमानन्द का सुख (उत्पन्न हो) ऐसा जो... समझ में आया? ऐसे सन्तुष्ट जिसका हृदय है, ऐसे आत्मायें **ऐसे निकट संसारी-जीवों के...** जिनका संसार का अन्त अब आया है। बस! ऐसे **चतुर्गति का भ्रमण दूर करनेवाला है,...** इस जीव को वह आत्मा ऐसे चार गति के दुःख का नाश करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? बहुत बात करते जाते हैं।

जन्म-जरा-मरणरूप दु:ख का नाशक है,... भगवान! वह परमात्मा तो जन्म-जरा-मरण के दु:ख का नाशक है। उत्पादक नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह यह सब विभाव कहे और जनम-मरण कहे, उनका तो उसमें अभाव है। उनका तो नाश करनेवाला है, उन्हें उत्पन्न करनेवाला वह परमात्मा स्वयं नहीं। पर्याय में खड़ा किया है, अज्ञान से पूरा संसार खड़ा कर दिया। समझ में आया?

वह परमात्मा निज स्वरूप परमसमाधि में लीन... देखो! एक तो ऐसे जीवों को संसार का नाश करनेवाला है और **वह परमात्मा निज स्वरूप परमसमाधि में लीन महामुनियों को निर्वाण का देनेवाला है,...** क्या कहा, समझ में आया? कैसा है भगवान अन्दर? कि जिसमें एकाकार होने से वीतरागी समाधि शान्ति प्रगट होती है और जिसके द्वारा चार गति के दु:ख का नाश करे, जिसे अन्दर में आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति से समाधि का सन्तोष प्रगट हुआ, उसके द्वारा चार गति का भ्रमण नाश करे, ऐसा वह आत्मा है। और महा मुनियों को तो अन्तर शान्ति की समाधि, वस्तु के अन्दर में पिण्ड भगवान के पिण्ड में पड़ा, एकाकार मुनि जिसके ध्यान में मस्त हुए, ऐसे महामुनियों को तो निर्वाण का देनेवाला है। वह तो तत्काल केवलज्ञान और मोक्ष का देनेवाला है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

निकट संसारी-जीवों के चतुर्गति का भ्रमण दूर करनेवाला है,... और मुनियों को तो निर्वाण देनेवाला है। समझ में आया? सेठी! बहुत ऊँघ जाता है। ध्यान रखे तो इसमें तो ऊंघ आवे ऐसा नहीं। उसे खबर नहीं पड़ती। समझ में आया? इसमें तो एक क्या है यह चीज़? आहाहा! कहते हैं कि **वही सब तरह ध्यान करने योग्य है,...** वही आत्मा। ऐसा आत्मा। कैसा? कि जो चार गति के भाव से रहित, संज्ञा से रहित, विभाव से रहित है। समझ में आया? और, आदि सब विभाव से रहित है। फिर निर्विकल्प समाधिवाले की (अन्दर) दृष्टि होकर जो शान्ति आयी, उससे वह चार गति के नाश का करनेवाला है। और जो महामुनि परमात्मस्वरूप का उग्र ध्यान करनेवाले हैं उसका, उसका ध्यान करनेवाले, वह ऐसा है कि निर्वाण का देनेवाला है। आहाहा! उस परमात्मा का ध्यान निर्विकल्प समाधि लगाना छोड़कर, चार गति के भ्रमण करनेवाला वह परमात्मा है। और सह परमात्मा मुनियों को विशेष स्थिरता से निर्वाण को देनेवाला है।

ऐसा वह परमात्मा द्रव्यस्वरूप भगवान, वह कौन है? प्रभु! बस। ऐई! धर्मचन्दजी! आहाहा! कितने प्रकार से बात करते हैं स्वयं भी उसमें वापस परमात्मा ऐसा का ऐसा साथ में कहते जाते हैं। अब विशेष स्पष्ट के लिये माँगता है। एकदम पुकार है, एकदम प्रपात-प्रपात करो। कैसा आत्मा है यह? एकदम सुनाओ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। शिष्य कहता है। शिष्य कहता है कि ऐसा जो आत्मा, वह कैसा है, यह मुझे बताओ। कहते तो जाते हैं, जैसा जीव है वैसा। आहाहा!

वही सब तरह ध्यान करने योग्य है, सो ऐसे परमात्मा का स्वरूप... सो ऐसे परमात्मा का स्वरूप। आहाहा! समझ में आया? **आपके प्रसाद से सुनना चाहता हूँ।** लो! स्वयं का स्वयं कहते जाता है कि परमात्मा ऐसा। परमात्मा में गये हैं न? यह तो ख्याल तो है कि परमात्मा ऐसे चार संज्ञायें और विभाव से रहित है। उसका आश्रय लेनेवाला इन चार गति के दुःखों का निर्विकल्प शान्ति से नाश करनेवाला वह है। महामुनियों को अन्दर आश्रय करनेवाला वह है। वह यहाँ परमात्मद्रव्य लेना है, हों! उसका जिसने उग्र ध्यान किया, उसे निर्वाण का देनेवाला है वह आत्मा। आहाहा! समझ में आया?

सुनना चाहता हूँ। कहते हैं, लो! ऐसा भगवान जो विभाव से रहित, जन्म-मरण के अभाव का करनेवाला और मुक्ति का देनेवाला। वह जन्म-मरण ऐसा लिया न यहाँ से, भाई! ऐसे जन्म-मरण का अभाव करनेवाला और निर्वाण का देनेवाला। विभावरहित स्वभाववाला, जन्म-मरण से रहित करनेवाला, निर्वाण का देनेवाला। आहाहा! कहो, समझ में आया? जन्म-मरण का व्यय करनेवाला, मुक्ति की पर्याय का उत्पाद करनेवाला, वह द्रव्य परमात्मा है। आहाहा! एक गाथा में कितना रखा!

इसलिए कृपाकर आप कहो। इस प्रकार प्रभाकर भट्ट ने श्री योगीन्द्रदेव से विनती की। अरे! मेरा नाथ, साहेबा परमात्मा कैसा है? अरे! जिसमें विभावमात्र की गन्ध नहीं और जन्म-मरण का अभाव करनेवाला और मोक्ष का देनेवाला... आहाहा! वह मेरा प्रभु परमात्मा अन्दर वस्तु कैसा है? प्रभु! मुझे बारम्बार सुनाओ। आप मेहरबानी

करके, कृपा करके सुनाओ। ऐसी विनती दसवीं गाथा से शुरु की। बहुत भक्ति से पंच परमेष्ठी का वन्दन पहिचानकर करके, उसे कराया कि देखो! ऐसे परमेष्ठी को वन्दन तेरे गुरु (और) देव कहलाते हैं। आहाहा! समझ में आया? तब अब प्रभाकर भट्ट को योगीन्द्रदेव कहते हैं।

इस कथन की मुख्यता से तीन दोहे हुए। आगे प्रभाकर भट्ट की विनती सुनकर श्रीयोगीन्द्रदेव तीन प्रकार की आत्मा का स्वरूप कहते हैं। विनती सुनकर कहते हैं। अर्थात् कि उसकी पात्रता देखकर यह बात निकलती है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आज दिवस भी तीज का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीज है। कहो, यहाँ तो सदा ही तीज ही है। भगवान जहाँ पूरा है, उसमें दूसरा बाकी कहाँ रहा है? आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ११

११) पुणु पुणु पणविवि पंच-गुरु भावेँ चित्ति धरेवि।
भट्टपहायर णिसुणि तुहुँ अप्पा तिविहु कहेवि (विँ)॥११॥

हे प्रभाकर भट्ट! **बारम्बार पंच परमेष्ठियों को नमस्कार कर...** आहाहा! जिसके प्रसाद से—पंच परमेष्ठी के प्रसाद से... ओहो! जहाँ मुक्ति का लाभ होता है। आता है न? महाअरिहन्त उस वीतरागी पर्याय को सदेह अनुभव करते हैं। वीतरागी पूर्णानन्द को अदेह से अकेले आत्मा से अनुभव करते हैं। वे सन्त अपने पंच आचार को निश्चय में ध्यान से अनुभव करके वेदते है। उपाध्याय भगवान पूर्णानन्द के समीप में पड़कर उस आत्मा के ध्यान में स्थित हैं और सन्त आत्मा के साधनेवाले स्वरूप की आराधना साधते हैं। इस सब अस्ति का स्वीकार करके, इस सब अस्ति का स्वीकार करके, इस अस्ति को मेरा वन्दन और नमस्कार है। समझ में आया? **बारम्बार पंच परमेष्ठियों को नमस्कार कर...** बारम्बार। श्रीमद् ने कहा न अन्त में, नहीं? अगणित। वन्दन हो अगणित। अन्त में वन्दन हो अगणित, यह चौथा पद है। वन्दन हो अगणित। अंक-फंक की यहाँ बात नहीं।

बारम्बार पंच परमेष्ठियों को नमस्कार कर... अहो! जिनके मुख में से परमागम झरे, ऐसे अरिहन्तों, जिन्होंने सिद्धपद को बतलाया और सिद्धपद प्राप्त है, उसे बतलाया। (जो) आचार्य और उपाध्याय (जो) परमात्मा को पहुँचने के नजदीक नगर, सिद्धपुर पाटन के निकट हो गये हैं वे, ऐसे पंच परमेष्ठियों को मैं वन्दन करता हूँ। समझ में आया? उनका मैं आदर करता हूँ। मुझे भी मोक्षरूपी पाटण में जाना है न! उन गये हुए का मैं आदर करता हूँ और ऐसा मेरा परमात्मा प्रभु! **निर्मल भावोंकर मन में...** देखो! पंच परमेष्ठी को मेरे परमात्मा की पर्याय में धारण करता हूँ। **मैं तीन प्रकार के आत्मा को...** आचार्य कहते हैं, हों! **कहता हूँ...** आचार्य कहते हैं कि मैं पंच परमेष्ठी को मेरे ज्ञान में धारण करता हूँ, मैं उन्हें वन्दन करता हूँ। यह स्वयं कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह शिष्य की (बात) थी। यह पंच परमेष्ठी की है। आहाहा! इस वीतरागी ज्ञान का झुकाव पूरा जिनके घर में पड़ा है, ऐसे पूर्णानन्द के नाथ अरिहन्त और सिद्ध तथा पूर्ण पहुँचने के अत्यन्त निकट में ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु, उन्हें प्रभाकर भट्ट ने तो वन्दन किया। यह कहते हैं कि मैं तुझे ऐसे पंच परमेष्ठियों को वन्दन करके अब आत्मा की बात कहूँगा। समझ में आया? आहाहा!

सो हे प्रभाकर भट्ट, तू निश्चय से सुन। '**निशृणु**' है न? तू आत्मा को सुन। तू आत्मा परमात्मा अन्दर कैसा है? सच्चिदानन्द निर्मलानन्द जो सिद्ध और अरिहन्तपने की पर्याय को प्राप्त हुए, ऐसा ही यह अन्दर में आत्मा कौन है, वह तुझे मैं सुनाता हूँ। '**निशृणु**' परन्तु उसे सुन। निश्चय से सुन कि जो सुना सार्थक हो। ऐसा आचार्य स्वयं भी अन्दर से प्रमोद में आये हुए हैं। मैं इस आत्मा की बात (करता हूँ)।

'**निशृणु**' ऐसा शब्द पड़ा है न? कहो, **प्रभाकरभट्ट...** '**निशृणु**' यह उपसर्ग रखकर विशेष कहा। निश्चय से सुन। 'नि' निश्चय से सुन। श्रुत, परिचिता कहा है न? तो बराबर सुन। सुना हुआ सार्थक हो जाये और परमात्मा प्रगटे, इस प्रकार से सुन, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! इस देह में भगवान विराजमान परमानन्द की मूर्ति, मैं तुझे सुनाऊँ परन्तु इस प्रकार से सुनना, हों! कि यह सुना हुआ सफल होकर फिर से सुनना नहीं पड़े। आहाहा! एक पद्धति शब्दों में कितना भरा है न पीछे! निश्चय से सुन,

हों! निश्चय से सुना, उसे परमात्मा का भान हुए बिना रहे नहीं और उसे फिर से सुनना पड़े नहीं। सुना, वह सुना एक बार। सुना प्रभु! तुझे सुना तूने कहा उस आत्मा को। समझ में आया? फिर से अब हमारे देह ही मिलेगी नहीं (तो) सुनने का कहाँ रहा? आहाहा! समझ में आया? प्रभाकर भट्ट को गुरु कहते हैं (कि) तू पूछता है, वही मैं कहूँगा, हों! परन्तु बराबर सुनना, हों! बराबर सुनना। तीन प्रकार किये पहले ही अब।

बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा के भेदकर आत्मा तीन तरह का है, सो हे प्रभाकर भट्ट! जैसे तूने मुझसे पूछा है,... देखो! तीन प्रकार करेंगे। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ साहेब चैतन्यप्रभु, वह विकार को, शरीर को 'मेरा' माने, वह बहिरात्मा, बहिर् आत्मा, मूढ़ आत्मा है। समझ में आया? और उस मूढ़ता को छोड़कर भगवान परमानन्द की मूर्ति सच्चिदानन्द शुद्ध स्वरूप अखण्डानन्द अनाकुल आनन्द का कन्द है, ऐसा भान होना, उसे अन्तरात्मा कहा जाता है। और वह आत्मा पूर्णानन्द की प्रगट पर्याय को जैसा पूर्ण है, वैसा अवस्था में प्रगटरूप से पर्यायरूप से प्राप्त हो, उसे परमात्मा कहते हैं। पर्याय के तीन प्रकार करके समझाते हैं कि वस्तु में यह परमात्मपना पूरा पड़ा है। आहाहा!

कहते हैं, **जैसे तूने मुझसे पूछा है,...** और क्या कहते हैं? तेरा प्रश्न, तेरा प्रश्न है न? भाई! ऐसे ही प्रश्न के करनेवाले पूर्व में बहुत धर्मात्मा हो गये हैं और उन्हें उत्तर देनेवाले महा तीर्थंकर, सर्वज्ञ, परमात्मा हो गये हैं, हों! मैं कहीं नया उत्तर देनेवाला और तू कहीं ऐसा नया सुननेवाला है, ऐसा नहीं। ऐसा जगत में धर्म के प्रवाह में चला आता है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे तूने मुझसे पूछा है, उसी तरह से भव्यों में महाश्रेष्ठ... उन भव्यों में महाश्रेष्ठ आत्मायें पूर्व में हुए, **भरत चक्रवर्ती...** आहाहा! छह खण्ड के राजा, छियानवें हजार देवियों जैसी रानियाँ। यह नहीं, प्रभु! मुझे कुछ दूसरा कहो बात में। ऐसा भरत ने ऋषभदेव भगवान से पूछा था, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उन छह खण्ड के अधिपति ने भी भगवान के निकट यह झंखना की थी। समझ में आया? यह नहीं, हों! यह नहीं, यह नहीं। जिसमें यह नहीं, वह कौन है? आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा यह छह खण्ड के राज वैभव और पुण्य-पाप के विकल्प, वे जिसमें नहीं, ऐसा प्रश्न भरत चक्रवर्ती ने

ऋषभदेव भगवान से पूछा था, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भरतचक्रवर्ती, सगरचक्रवर्ती,... उन्होंने अजितनाथ से प्रश्न पूछा था। दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ हुए हैं। पहले तीर्थंकर ने, हों! याद किया ठेठ तक की इस चौबीसी को। प्रभाकर भट्ट ने और इन्होंने इसमें से निकाला कि भाई! ऐसे प्रश्न के करनेवाले और उत्तर देनेवाले इस चौबीसी में पहले से शुरु है, चला आता है। ऐसे अनन्त चौबीसी में अनन्त प्रश्नकार ऐसे ही प्रश्नकार थे और उन्हें उत्तर देनेवाले महा तीर्थंकर, केवली, मुनि थे। यह सब अस्ति स्वीकार कराते जाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भव्यों में महाश्रेष्ठ भरतचक्रवर्ती, सगरचक्रवर्ती, रामचन्द्र... उन्होंने वहाँ... समझ में आया? देशभूषण, कुलभषण केवली को, सकलभूषण केवली को पूछा था। **रामचन्द्र, बलभद्र,...** महापुरुष जिन्हें तीन खण्ड का राज, ऐसे बाहर की विभूति (के कारण से) दुनिया ने परमेश्वर स्वीकार किया। ऐसी तो बाहर की विभूति! उन्होंने प्रश्न महाकेवलियों को पूछा। आहाहा! महाराज! इन सब चीजों रहित परमात्मा कैसा है? समझ में आया? जिसमें कुछ दूसरा है और जिसमें यह नहीं, ऐसा कौन है वह आत्मा? ऐसा रामचन्द्रजी, बलदेव जो तीन खण्ड के पुण्य के स्तम्भ! जिनका पुण्य बिछा, पुण्य बिछा, कम नहीं हो तीन खण्ड में, और चक्रवर्ती का पुण्य बिछा छह खण्ड में कम नहीं हो। ऐसे पुण्यशालियों ने तीर्थंकरों को और केवलियों को प्रश्न किये हैं, हों! कहो, समझ में आया?

पाण्डव,... महा योद्धा। पृथ्वी के महा योद्धा, शूरवीर! उन लोगों ने भी भगवान नेमिनाथ के निकट यह प्रश्न किया था, हों! आहाहा! समझ में आया? श्री नेमिनाथ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान के समीप में, वे पाण्डव योद्धा, जिनके युद्ध का वीर्य और शूरवीरता जिनकी तीन खण्ड में प्रसिद्ध है, उन्होंने भी भगवान के निकट यह प्रश्न किया था, हों! दूसरा कुछ नहीं। कहो, शशीभाई! आहाहा! प्रभु! इस देह में भगवान आत्मा, परमात्मा कहा जाता है, वह अन्दर कैसा है? जिसमें परमात्मा का परम स्वरूप ठसाठस ठोस वज्र की भाँति अन्दर भरा है, जिसमें से एक-एक परमात्मा समय-समय में आवे तो भी वज्र का पिण्ड कम नहीं हो, ऐसा भगवान कौन है वह यह? आहाहा! समझ में आया? एक-एक समय का पड़ (पर्याय) चला आवे ऐसे। कागज के पड हों

और जहाँ से पड चला आवे, परन्तु वहाँ कम हो गया। यहाँ तो कम हो नहीं, ऐसा यह है। पड चला आवे, उसी प्रकार भगवान यह परमात्मा जिसमें से परमात्मा की अनन्त-अनन्त पर्यायें चली आवे, ऐसा परमात्मा वज्ररूप दल, वह कौन है? भगवान! ऐसे प्रश्न पाण्डवों ने भी नेमिनाथ भगवान से पूछे थे। आहाहा! कितनी ऐसी त्रिकाल सिद्ध करते जाते हैं, हों! ऐसे साधक थे, उनके उत्तर देनेवाले केवली थे, यह सब अस्तित्व था। यह सब अस्तित्व नहीं था, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे काल—अच्छे काल में भी ऐसे प्रश्न करनेवाले और उत्तर देनेवाले भी उस समय थे।

पाण्डव तथा श्रेणिक आदि बड़े-बड़े राजा,... श्रेणिक ने भगवान से प्रश्न पूछे हैं। समझ में आया? हजारों मुकुटबंधी राजा का साहेबा, उसने भी भगवान से पूछा। प्रभु! यह परमात्मा कौन? वह यह नहीं, यह नहीं। समझ में आया इसमें? ऐई! यह शरीर अच्छा मिले और न मिले, ऐसा पूछा नहीं, ऐसा कहते हैं। शरीर सब अच्छे के ढ़ेर थे। नहीं, यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं। प्रभु! यह नहीं रे नहीं। जिसमें यह नहीं और जिसमें कुछ दूसरी जाति पड़ी है अन्दर। अनन्त-अनन्त शान्ति के रस के कुण्ड जिसमें पड़े हैं, वह भगवान आत्मा कौन है? ऐसे प्रश्न श्रेणिक ने भगवान महावीर से किये थे। ठेठ ऋषभ से लेकर एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागर की स्थिति सिद्ध की। आहाहा! इस चौबीसी में भी ऐसे तीर्थंकर, केवली, मुनि ठेठ महावीर तक ले गये और उनके पूछनेवाले भी यह साधक जीव ऐसे पूछते थे। वह सब सिद्ध है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह आचार्य महाराज कहते हैं, देखो न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें तृप्ति हुई नहीं, तब पूछते हैं। उनके लिये तो पहले मांडी। यह राजा और यह रानियाँ और यह राग और वे हीरा के सिंहासन थे। हीरा के सिंहासन! जिसके एक इतने हीरे का करोड़ रुपये। उस हीरे के सिंहासन और हीरा का यह क्या? टाईल्स नीचे। वह हीरा और माणेक में चारों ओर हीरा की टाईल्स और चारों ओर माणेक ऐसे घूमते हुए रचे हुए। एक-एक टाईल्स में अरबों-अरबों रुपये के माणेक लगे हुए। ऐसे पूरे बँगले। प्रभु! परन्तु उसमें शान्ति नहीं। यह तो दुःख के, दुःख के निमित्त हैं। यह आकुलता के निमित्त, प्रभु! वह आकुलता और वे जिसमें नहीं, ऐसी

चीज़ कौन है ? आहाहा! कहो, समझ में आया ? आहाहा! कहो, मलूकचन्दभाई! अब इसमें कहाँ पाँच-पाँच, दस लाख या बीस लाख या करोड़ और धूल रहती है इसमें ? आहाहा!

उन लोगों ने भी परमात्मा के निकट परमात्मा का पुकार किया है। प्रभु! मेरा परमात्मा कौन है इसमें ? समझ में आया ? **बड़े-बड़े राजा, जिनके भक्ति-भारकर नम्रीभूत मस्तक हो गये हैं,...** देखो, और! क्या कहते हैं ? ऐसे छह खण्ड के धनी, जिनकी सोलह हजार देव सेवा करे, छियानवें हजार जिनकी रानियाँ महादेवांगना जैसी पद्मिनीयाँ, जिनकी चुंदड़ी ओढ़ने में भंवर इतने घूमे कि जिसकी सुगन्ध में शरीर की सुगन्ध वस्त्र को छुए, उसे सूँघने हजारों भंवर घूमे। ऐसी छियानवें हजार रानियाँ। प्रभु! उस भरत चक्रवर्ती ने ऋषभेदव भगवान को ऐसा पूछा, हों! यह मस्तक झुकाकर, देखो! क्या कहते हैं ?

भक्ति-भारकर... भक्ति का भार बढ़ गया है, कहते हैं। नम्रता... नम्रता... नम्रता। हे नाथ! यह चार गति के दुःख का अभाव जिसमें (है) और दुःख का नाश करनेवाला ऐसा आत्मा, महामुनियों को निर्वाण का देनेवाला ऐसा आत्मा, सर्व संज्ञा और विभाव से रहित ऐसा परमात्मा, प्रभु! कौन है, वह मुझे सुनना है। परन्तु यह सब है न ? कहाँ है ? वह तो उनमें है। मुझमें नहीं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, **जिनके भक्ति-भारकर...** भार अर्थात् ? इतना विनय हुआ है कि, जिनके विनय की हद नहीं, ऐसा कहते हैं। विनय का, नम्रता का भार। नम्रता का भार अर्थात् ? विनय की उत्कृष्टता की नरमाई इतनी ऐसी। समझ में आया ? एक पिल्ला ऐसे छोटा बच्चा हो, कुत्ती की माँ ऐसे बड़ी, ऐसे दूध पिलाने जाये, वहाँ अन्दर सिर डालकर सब प्रकार से अनुकूलता चाहे उसकी माता को। जरा सा ऊँचा शरीर करे वह, दूध पीना हो इसलिए जरा शरीर ऊँचा करे या खड़ी हो जाये। इस प्रकार ऐसे उससे। हे नाथ! ऐसे नम्र... नम्र... नम्र... विनय... विनय... विनय... विनय... आहाहा!

भक्ति-भारकर... देखो! उन पंच परमेष्ठी को नमस्कार है। यहाँ स्वयं विनय से इस प्रकार से करते हैं। **मस्तक हो गये हैं...** नम्रीभूत मस्तक हो गया है। ऐसे झुक गया है, ऐसा नहीं। इतना विनय, इतना विनय कि ऐसे शरीर नम गया है। प्रश्न पूछते हुए

शरीर नम गया है। जिनके मुकुटों में अरबों की कीमत के हीरा और हार लटकते होते हैं और ऐसे... इस प्रकार से ऐसे प्रश्न पहले चक्रवर्ती राजाओं ने सन्तों को, तीर्थंकरों को पूछे थे। उन्होंने जो उत्तर दिये थे, तत्प्रमाण मैं तुझे दूँगा, ऐसा कहते हैं। मेरे घर की बात नहीं। अनादि महा सन्त, केवली, तीर्थंकर हुए। विशिष्टता क्या कहते हैं?

भक्ति-भारकर नम्रीभूत मस्तक हो गये हैं, महा विनयवाले परिवारसहित... सभी रानियों के निकट जहाँ ऐसे अधिपति मूछोंवाला ऐसे रखते, वे सब बैठी ऐसे... भगवान के निकट। परिवार के साथ पड़ा है, हों! सब। कितने ही ऐसे हों, स्त्री के निकट अपनी महिमा बतलानी हो और जहाँ महिमा बतलानी हो, जहाँ ठीक सी हिम्मत नहीं, वहाँ स्त्री को साथ में न ले जाये। अधिकरूप से रहा हो न उसके निकट? इसलिए जहाँ कहीं शिथिल जिसे दिखाई दे, वहाँ साथ में न ले जाये, अच्छा दिखाई दे वहाँ उसे ले जाये। यह तो पूरे परिवार को, हों! छियानवें हजार स्त्रियों का झुण्ड साथ में (हो)। ऐसे पिल्ले की भाँति भगवान (के निकट बैठे), प्रभु! अरे! परन्तु हमको छियानवें छियानवें हजार स्त्रियाँ चरण छूती हैं और सोलह-सोलह हजार देव खम्मा... खम्मा करे सेवा में। वह नहीं, हों! नहीं। यह मेरा नाथ परमात्मा केवलज्ञानी है, उसे मैं पूछता हूँ, वहाँ मैं उनका दासानुदास हूँ, मैं उनका सेवक उनके चरण की रज हूँ। समझ में आया?

कहते हैं, **महा विनयवाले परिवारसहित...** वापस पूरा परिवार भी ऐसे नम पड़ा है, हों! भगवान को ऐसे अन्दर। आहाहा! चक्रवर्ती पूछता है प्रभु को और सभी रानियाँ, पुत्र, पुत्रियाँ, दामाद। परिचार, हों! लाखों साथ में झुण्ड में (चले हों)। जिसे जिस प्रमाण हो, उस (प्रमाण)। **समोसरण में आके,...** वह समवसरण सिद्ध किया। भगवान की धर्मसभा में वे परिवारसहित आये। हाथियों में बैठकर झुण्ड, विशाल रथ और हाथी के साथ में वह परिवार समवसरण में भगवान के निकट आया। हे प्रभाकर भट्ट! उन्होंने ऐसे प्रश्न किये थे, हों! आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमदेव से... वीतराग सर्वज्ञ रागरहित अकेली ज्ञानपर्याय पूर्ण जिनकी प्रगट हो गयी है। जिनका भगवान अकेला पूरा खिल गया है। आहाहा! जिनका भगवान परमात्मा शक्तिरूप से था, वह पूर्ण ज्ञान और आनन्दरूप से प्रगट हो गया, ऐसे भगवान को **सर्व आगम का प्रश्नकर,...** यह एक शब्द रखा है। किसलिए यह (कहा)?

कि षट् द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ तत्त्व, सात पदार्थ—सात तत्त्व आदि हैं, उन सबके प्रश्न किये। अस्ति सहित। फिर अकेले आत्मा की बात, भाई! पूछते हैं। अकेला कोई आत्मा... आत्मा करते हों, तो ऐसा नहीं। समझ में आया? यह सब चक्रवर्तियों ने भगवान के निकट जाकर नम्रीभूत होकर सर्व आगम के प्रश्न (किये हैं)। है न? **'सर्वआगमप्रश्नानन्तरं'।** इसका अर्थ यह कि छह द्रव्य हैं, नौ पदार्थ हैं, सात तत्त्व हैं, पंचास्तिकाय है, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय है, उत्पाद-व्यय-ध्रुव इत्यादि है, उनके प्रश्न किये थे। क्योंकि, उनका अस्तित्व उन्हें सिद्ध था। अकेला आत्मा... आत्मा... ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? शशीभाई!

यह तो सन्तों की टीकायें और सन्त। ब्रह्मदेव, वे ब्रह्मचारी हों चाहे वह। परन्तु यह आचार्य के हृदय में ही इतना भरा हुआ है कि यह आत्मा का प्रश्न करनेवाले दूसरे सब छह द्रव्य, नौ तत्त्व को जानते, मानते हैं। मानते हैं, जानते हैं, नहीं छह द्रव्य और कुछ, अकेला-अकेला आत्मा—ऐसा नहीं। तो उसे आत्मा की या व्यवहार की भी खबर नहीं। **सर्व आगम का प्रश्नकर,...** देखो! सर्व आगम अर्थात् चारों अनुयोग में जिस प्रकार का वर्णन है, उस प्रकार की शैली थोड़ी-थोड़ी पूछकर ख्याल में सब ली हुई है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह जाना है। **उसके बाद सब तरह से ध्यान करनेयोग्य...** अब सब जाना परन्तु यह स्वयं ध्यान करनेयोग्य वस्तु क्या? वह तो जाननेयोग्य हुई। वस्तु है जगत में। **शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे।** लो! यह सब, सब जीव जो कहे उन भगवानों ने, मुनियों ने **शुद्धात्मा का ही...** शुद्ध आत्मा वस्तु अन्दर परमात्मा पूरा ऐसा कौन है? उसके प्रश्न पूछते थे। उसका इन्होंने उत्तर दिया, मैं भी दूँगा, ऐसा कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ४, मंगलवार, दिनांक २८-०९-१९६५
गाथा-११ से १२, प्रवचन-९

ग्यारहवीं गाथा चलती है। परमात्मप्रकाश, पहला भाग (अधिकार)।

यहाँ यह चलता है श्रेणिक राजा इत्यादि। भरत चक्रवर्ती से शुरु होकर भगवानों को, मुनियों को इन श्रोताओं ने यह प्रश्न किया कि भगवान! यह शुद्धात्मा यह क्या चीज़ है? शुद्धात्मा जिसे कहते हैं, प्रभु! वह क्या है? वे **शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे।** भगवान शुद्धात्मस्वरूप, कषाय अग्नि के अन्दर, जैसे बर्फ का शीतल स्वभाव है, अविकारी वीतराग आनन्द और शान्ति, ऐसा भरपूर भगवान शुद्धात्मा कौन है? भरत (आदि) चक्रवर्तियों ने और श्रेणिक राजा ने ऐसा प्रश्न भगवान से किया।

उसके उत्तर में भगवान कहते हैं, **उसके उत्तर में भगवन् ने यही कहा कि आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।** यह स्वयं न्याय से लिया है। क्योंकि आत्मा उपादेय है न? ऐसा अन्त में कहेंगे। अर्थात् यह भगवान के उत्तर में, मुनियों की आवाज में—प्ररूपणा में यह आया कि हे भाई! शुद्धात्मा ही (सार है)। शुद्धात्मा अर्थात् **आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।** देखो! भले कषाय हो, शरीर आदि हो, परन्तु जिस चीज़ में आनन्द और शान्ति पड़ी है, ऐसा भगवान आत्मा, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान होने पर पुण्य-पाप आदि उसमें नहीं है, ऐसा ज्ञान होता है, परन्तु वह सब आत्मज्ञान हुआ कहलाता है। समझ में आया? आत्मज्ञान। भगवान के चारों अनुयोगों में... देखो! आगम के प्रश्नोत्तर में यह सब आया था। उसमें यह भी आया था, उसमें से इन्होंने यह प्रश्न किया। भगवान **शुद्धात्मा का ही स्वरूप पूछते थे।** शिष्य। भगवान उसका उत्तर देते थे कि **आत्मज्ञान के समान दूसरा कोई सार नहीं है।**

भरतादि बड़े-बड़े श्रोताओं में से भरत चक्रवर्ती ने श्री ऋषभदेव भगवान से पूछा, सगर चक्रवर्ती ने श्री अजितनाथ से, पूछा रामचन्द्र बलभद्र ने देशभूषण-कुलभूषण केवली से तथा सकलभूषण केवली से,... पूछा। **पाण्डवों ने श्री नेमिनाथ**

भगवान से... पूछा। **और राजा श्रेणिक ने श्री महावीरस्वामी से पूछा।** लो! यह प्रश्न किया, प्रभु! मैं कौन? यह शुद्धात्मा कौन है? समझ में आया?

अब, वे श्रोता कैसे हैं कि जिन्होंने ऐसा प्रश्न किया? वे श्रोता कैसे हैं? **कैसे हैं ये श्रोता जिनको निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय की भावना प्रिय है,...** जिन्हें यह भगवान आत्मा, पूर्ण शान्त आनन्दरस स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति ऐसा निश्चय रत्नत्रय जिसे प्रिय है। समझ में आया? भगवान आत्मा, देखो! निश्चयरत्नत्रय प्रिय है अर्थात् निश्चयरत्नत्रय है। समझ में आया? पूरा शीतल अविकारी शान्तस्वभाव का पिण्ड प्रभु की एकाग्रता से उत्पन्न हुआ आनन्द, (यह) कहेंगे, उसे निश्चयरत्नत्रय की प्रियता है। स्वभाव शुद्ध पूर्ण, उसका आनन्द, उसका अनुभव हुआ है। ऐसे निश्चयरत्नत्रय की प्रियता है और... देखो! विशेष (कहते हैं)।

और व्यवहाररत्नत्रय की भावना प्रिय है,... और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का राग भी व्यवहार से प्रिय है। निश्चय से यह प्रिय है और व्यवहार से यह प्रिय है। समझ में आया? प्रिय ही है। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, जिसमें कषाय अग्नि को शान्त करने का, नाश करने का स्वभाव है, ऐसा भगवान केवलज्ञानमय कहेंगे अन्दर। '**णाणमउ**' बारह (गाथा में) कहेंगे। जो अकेला ज्ञानमय प्रभु है, अर्थात् कि उसमें विकार नहीं, अर्थात् ज्ञानमय है, आनन्दमय है, शान्तमय है, स्वच्छतामय है, यह सब इसमें आ जाता है। ऐसा जो भगवान आत्मा उसकी उसे भावना निश्चय से प्रिय है। व्यवहार से ऐसे विकल्प भी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के, ज्ञान के व्यवहार और व्यवहार दया-दान के, भक्ति के परिणाम भी होते हैं। तो उसे व्यवहार से प्रिय है, ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों... दोनों। एकाग्रता है न? राग में इतनी अस्थिरता है न? यहाँ वीतराग की स्थिरता है। निश्चयरत्नत्रय में वीतरागस्वरूप आत्मा की सन्मुखता की एकाग्रता है। राग में जरा परसन्मुख का विकल्प है, इतना अन्दर परिणमन है, इसलिए उसे इस अपेक्षा से एकाग्रता का आरोप दिया है।

परमात्मा की भावना से उत्पन्न... ओहो! भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु की अन्तर की एकाग्रता द्वारा **उत्पन्न वीतराग परमानन्दरूप अमृतरस के प्यासे हैं,...** अमृतरस के प्यासे हैं, तृषा लगी है। आहाहा! समझ में आया? जैसे तृषा लगी हो न, पानी को कैसे माँगे? उसमें मौसम्बी का पानी और बर्फ का पानी आवे तो ऐसे गटक-गटक पीता है। ऐसा यह कहते हैं, प्रभु! ये श्रोता ऐसे हैं। आहाहा! जिन्हें वीतराग परमानन्द अमृतरस, भगवान आत्मा वीतरागरस से भरपूर तत्त्व प्रभु, ऐसे आत्मा के अमृत के रस के पिपासु हैं। समझ में आया? यह रागरस और तृष्णा और भोगरस के पिपासु नहीं। आहाहा! छह खण्ड के धनी, छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में दिखाई दे। नहीं, नहीं, यह नहीं, यह नहीं। यह भोग के रस के पिपासु नहीं; यह आत्मा के अविकारी आनन्द रस के, अमृत के पिपासु हैं। कहो, समझ में आया?

और वीतराग निर्विकल्पसमाधिकर उत्पन्न हुआ... रागरहित आत्मा की शुद्धता की अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और लीनता द्वारा **उत्पन्न हुआ जो सुखरूपी अमृत...** यह वीतराग निर्विकल्प शान्ति से उत्पन्न हुआ **सुखरूपी अमृत उससे विपरीत...** मनुष्य, नारकी, देव, पशु। उनके दु:ख **उनसे भयभीत हैं।** आहाहा! समझ में आया?

जीवित जानवर को अग्नि की भट्टी में डाले। राजकुमार... ऐसे राजकुमार हो पच्चीस वर्ष का युवक, उसे ऐसे जमशेदपुर की भट्ठी में जीवित, लकड़ी जीवित डाले ऐसे डाले, और उस अग्नि का जिसे अन्दर भय है। आहाहा! इसी प्रकार चार गति और कषाय की आकुलता का जिसे भय है। अरे! यह द्रव्य यहाँ से छूटकर जायेगा कहाँ? यह वस्तु आकुलता है, उसमें और ऐसे अवतार अनन्त किये। ऐसी आकुलता के दु:ख से जिसे अन्तर में भय लगा है। जैसे अग्नि से ऐसे डरता है, उसी प्रकार ये आकुलता से डरे हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह विकल्प के जाल उठे, शुभ-अशुभ का जाल, ऐसा जो विकल्प का दु:ख, वह चार गति के दु:ख उसमें हैं। स्वर्ग में हो तो उस विकल्प के जाल में दु:ख है। वह उससे भयभीत है। अरे! यह आत्मा, ऐसे आकुलता के दु:ख अनन्त बार भोगे। अब उससे रहित मेरी चीज़ क्या है? उसे अन्तर पिपासा अमृत को पीने के लिये (और)

दु:ख से, आकुलता से (छूटने के लिये प्रश्न करता है)। दु:ख अर्थात् प्रतिकूलता, ऐसा नहीं है। दु:ख अर्थात् कि कषाय का विकारी भाव, उससे भय पाता है। यह कषाय आत्मा की शान्ति का लुटेरा है। समझ में आया? देखो! छह खण्ड के राज में दिखता है। यह है कहाँ? कहते हैं। यह चार गति के दु:ख के दु:ख से डरे हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सामग्रियाँ ऐसी सब। शरीर, स्त्रियाँ, कुटुम्ब-परिवार के ओर की जो कषाय की ज्वाला सुलगती है, उससे भयभीत हैं। समझ में आया? डर गये हैं। तीर्थंकर जैसे भी चार गति के दु:ख की आकुलता से डरे। उससे जो न डरे, वह तो महा सुभट कहलाता है। चौरासी के अवतार, अरे! कहाँ इसे सुख? कहीं इसे शान्ति की गन्ध नहीं मिलती। चारों ओर चौरासी के अवतार में दु:ख, दु:ख और दु:ख है। उससे जो भयभीत है। समझ में आया?

जिस तरह इन भव्य जीवों ने भगवन्त से पूछा,... ऐसे जीवों ने प्रश्न पूछा, उसका उत्तर भगवान ने दिया, ऐसी दो भूमिका स्थापित की। आहाहा! एक ऐसे शौक के खातिर, सुनने के खातिर, समझकर कुछ ज्ञान करके दूसरों को कहना और अपने को कुछ आता है, इस खातिर वे नहीं पूछते थे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पूछने की पद्धति में भी अन्तर होता है। पूछे तो अपने को कुछ आता है, ऐसा दूसरे को बतावे, या पूछे तो कुछ उसका जवाब दूसरा मिले तो उसे धारणा होती है। दूसरे की अपेक्षा विशेषपना है, वह नहीं... वह नहीं। प्रभु! इस आत्मा को आकुलता से छूटने का (भाव है, इसलिए पूछता है कि) आत्मा—भगवान आत्मा कौन है? कहते हैं। समझ में आया?

दुनिया के पास उसे सरल मार्ग नहीं लेना कि यह अच्छा है, हों! पूछनेवाला है, प्रश्न पूछता है, धर्म की भारी जिज्ञासावाला लगता है। समझ में आया? और वाँचता है, पढ़ता है, कितना प्रयत्न करता है! ऐसे दुनिया को दिखाने के लिये नहीं। दु:ख से उकता गया है, भय है। शरीर से नहीं (उकताया), हों! यहाँ। गति का भटकना, इस शान्तरस में से निकलकर इन विकल्पों में आना, वही दु:ख है। समझ में आया? ऐसे दु:ख से भयभीत हुए हैं। आहाहा!

ऐसे देखो तो छह खण्ड के राज, इन्द्राणी जैसी तो जहाँ घर में अप्सरायें और स्त्रियाँ। ऐसे मणिरत्न के महल (होते हैं)। अग्नि के भट्टी में जैसे बर्फ का शीतल पाँच मण का गोला पड़ा हो अन्दर, उसी प्रकार यह कषाय की-विकल्प की अग्नि के पीछे भगवान शान्तरस है। उसमें जाने के लिये यह आकुलता से भयभीत है। आहाहा! समझ में आया?

विशाल काला नाग देखे और जैसे भागे, सुने वहाँ भागे। ऐसे देखे, ऐसा करके। समझ में आया? वे कहते हैं नहीं थे कल? बाबूभाई कहते थे। वह ... नाग बैठा था दरवाजे पर। यह वह टोटा है न? टोटा नहीं? यह कुँआ के टोटा भरे हैं न उसमें? मकान नहीं उसे? .... उसे एक रखते हैं न? एक व्यक्ति वह है और एक रात्रि में है। वह कहे, भाई आये थे न.... वह कहे, ऐसे शैय्या में अंधेरा था, वह यह बड़ा नाग बैठा हुआ देखा। मैं तो शैय्या (बिस्तर) लेकर भागा। ऐसा जहाँ सुना वहाँ। बत्ती (प्रकाश) की वहाँ ऐसे बैठा हुआ। जंगल है न वहाँ तो एकदम। जंगल में तो ऐसे बैठा था। भागे अन्दर। शैय्या-बैय्या गोटो लेकर भागा। आहाहा!

इसी प्रकार पुण्य-पाप के विकारी आकुलता के दुःख सर्प जैसे हैं। धर्मात्मा उसके दुःख से भागे हैं। आहाहा! समझ में आया? वह रस लेने खड़े नहीं रहे। आहाहा! समझ में आया? यह पूर्व के पुण्य के कारण सामग्री मिली हो और पाप के कारण प्रतिकूलता (मिली हो), अन्तर में दोनों की आकुलता के दुःख से भगे हैं। कहो, समझ में आया? जिसमें आकुलता में जिसे कहीं रस रहा नहीं और रस रहा है, ऐसा आत्मा, उसकी भावना प्रिय है, ऐसे श्रोता ने प्रश्न किया और भगवान ने उत्तर दिया है। आहाहा! कैसी भूमिका स्थापित करते हैं? समझ में आया? आहाहा!

जिस तरह इन भव्य जीवों ने भगवन्त से पूछा,... ऐसे भव्य जीवों ने ऐसा भगवान से प्रश्न किया, नाथ! पूर्ण केवलज्ञानी परमात्मा है, सन्त आदि या मुनि आदि हों, उनसे पूछे, प्रभु! यह परमात्मा मेरा निज स्वरूप भगवान अन्दर, वह क्या है? विशेष प्रगट समझने के लिये, विशेष उग्रता—पुरुषार्थ के लिये, यह प्रश्न ऐसे श्रोताओं ने पूछे थे। आहाहा! अपने आत्मा में विशेष महिमा आकर स्थिर होने के लिये यह प्रश्न

थे। समझ में आया? **और भगवन्त ने तीन प्रकार आत्मा का स्वरूप कहा,...** आगे कहेंगे न? यह कहना है इसलिए।

भगवान ने आत्मा के तीन प्रकार के स्वरूप कहे, जब श्रोताओं ने ऐसा पूछा। ओहोहो! वह सभा, वे चक्रवर्ती, रानियाँ लेकर आया हो, वासुदेव, बलदेव भी हजारों रानियाँ लेकर आये हों, ऐसे बड़े आकाश के स्तम्भ जैसे पुण्यवाले दिखाई दें। यह कहते हैं कि उसे आकुलता के भाव से भयभीत हैं, हों! अन्दर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रस प्रभु! उसके हम पिपासु हैं। यह कहते नहीं, यहाँ तो आचार्य कहते हैं। वह इसका पिपासु है, ऐसा हम कहते हैं। ऐसे जीवों ने भगवान से पूछा, तो भगवान ने आत्मा के तीन प्रकार की बात की। समझ में आया?

भगवन्त ने तीन प्रकार आत्मा का स्वरूप कहा, वैसे ही मैं जिनवाणी के अनुसार तुझे कहता हूँ। देखो! सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी की पर्याय में ही यह तीन काल—तीन लोक ज्ञात हुए, उसमें आत्मा, बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा कैसा है, उसका ज्ञान भगवान के ज्ञान में था। भगवान ने इस आत्मा के तीन प्रकार का स्वरूप कहा। उसके अनुसार मैं भी तुझसे कहूँगा, कहते हैं। मेरे कल्पना की, घर की बात नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर, उन्होंने जो तीन काल, तीन लोक जाने, उसमें आत्मा की तीन अवस्थायें और आत्मद्रव्य, यह जाना और उन्होंने कहा ऐसी जिन—अनुसार, वाणी के अनुसार मैं तुझसे कहूँगा। समझ में आया?

अच्छा एक लड़का मर गया हो न, फिर जिसे नहीं कहते कि भाई! शोक का मुख है। ऐसा नहीं कहते? उसी प्रकार यह वैराग्य के जिसके मुख हैं, ऐसे भगवान को प्रश्न करते हैं। आहाहा! समझ में आया? बीस वर्ष का लड़का मर गया हो, दो वर्ष का विवाहित छोड़कर और इकलौता ही हो, अब आशा भी नयी न हो और उसे कोई लड़का भी न हो। वह शोक का मुख हो। शोक का अर्थात्? शोक... शोक... शोक... शोक...

यहाँ कहते हैं कि आकुलता के भाव में दुःख लगा है न! समझ में आया? जिसे वैराग्य मुख में-आत्मा में छा गया हो। उसको शोक का मुख है, इसका वैराग्य से (भरा

हुआ) है। प्रभु! आहाहा! हमारे आत्मा का निज स्वरूप, प्रभु कैसा है? तब कहते हैं, भाई! भगवान ने कहा, तत्प्रमाण मैं तुझे कहूँगा।

वैसे ही मैं जिनवाणी के अनुसार तुझे कहता हूँ। सारांश यह हुआ कि तीन प्रकार आत्मा के स्वरूपों से शुद्धात्मस्वरूप जो निज परमात्मा वही ग्रहण करनेयोग्य है। उसमें टीका में अन्तिम शब्द है न? अन्तरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा कहूँगा, परन्तु उसमें यह आत्मा जो निज स्वरूप है, वही अन्तर्दृष्टि करके स्थिर होनेयोग्य, वही उपादेय और आदरणीय है। समझ में आया? **जो मोक्ष का मूलकारण रत्नत्रय कहा है,...** वह भेदाभेद रत्नत्रय की भावना प्रिय है, ऐसा कहा न? तब भगवान ने भी भेदाभेद रत्नत्रय कहा है न? इसलिए उसे प्रिय है। भगवान ने कहा, वह मैं भी कहता हूँ—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? प्रश्नकार के भेदाभेद रत्नत्रय की प्रियता जो वर्णन की, तब उसे भी भगवान ने, सन्तों ने भेदाभेद रत्नत्रय कहा था। तो कहते हैं, **वह मैंने निश्चयव्यवहार दोनों तरह से कहा है,...** मैं भी इस प्रकार से कहता हूँ। समझ में आया?

मैंने... 'ब्रह्मदेव' कहते हैं, यह 'योगीन्द्रदेव' आचार्य कहते हैं। निश्चय, व्यवहार। क्योंकि श्रोता को निश्चय और व्यवहार, अभेदभेद रत्नत्रय प्रिय है। उसने सुना और कहाँ से उसने यह सुना हुआ जाना? सन्तों ने—केवलियों ने कहा हुआ। तो मैं भी उस प्रकार से तुझे कहता हूँ, ऐसा कहते हैं। **निश्चयव्यवहार दोनों तरह से कहा है, उसमें अपने स्वरूप का श्रद्धान...** भगवान आत्मा एकदम ज्ञान और आनन्द का स्वरूप जिसका पूर्ण है, उसकी जिसे अन्तर श्रद्धा, स्व शुद्ध स्वरूप की अन्तर श्रद्धा, **स्वरूप का ज्ञान...** स्व-रूप। अपना ज्ञानमय चिदानन्द प्रभु का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान। ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, स्वरूप का ज्ञान, निज परमात्मा का ज्ञान, यह निश्चय। यह निश्चय ज्ञान, वह अभेद ज्ञान। पहले स्वरूप श्रद्धा और निश्चय समकित या अभेद श्रद्धान **और स्वरूप का ही आचरण...** भगवान आत्मा अपनी दृष्टि, ज्ञान को करके ऐसे शुद्ध स्वरूप में ऊपर अन्तर रमे। ऊपर अर्थात् क्या? कि पर्याय से द्रव्य में रमे। वस्तु जो पूर्ण स्वभाव का पिण्ड शान्तरस का गर्भ, अकेला शान्त बर्फ जैसे शीतल (होता है),उसी प्रकार यह शान्तरस का पिण्ड, इसके ऊपर रमे, इसका नाम चारित्र और इसका नाम निश्चय आचरण कहा जाता है अथवा उसे अभेदचारित्र कहा जाता है।

क्योंकि वह पर्याय द्रव्य के साथ एक होती है। समझ में आया? आहाहा! अरे! **यह जो निश्चयरत्नत्रय है, इसी का दूसरा नाम अभेद भी है,...** ऊपर अभेद कहा था न? भेदाभेद रत्नत्रय प्रिय है। इसलिए कहा कि, अभेद और भेद प्रिय है। इसका अर्थ ही अभेद अर्थात् निश्चय, भेद अर्थात् व्यवहार।

और देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा,... सच्चे सर्वज्ञ परमात्मा। योगीन्द्रदेव कहते हैं अथवा जिस-जिस प्रश्नकार के उत्तर देनेवाले सन्त कहते हैं, कि भगवान आत्मा निज स्वरूप से पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी अन्तर की श्रद्धा, अन्तर्मुख का ज्ञान और अन्तर्मुख का आचरण, उसे सच्चा रत्नत्रय जो कि सच्चे रत्नत्रय के कीमत में मोक्ष मिलता है। इस सच्चे रत्नत्रय की कीमत देने से मोक्ष का मणि-माणेक मिलता है। उसे निश्चय कहते हैं, उसे अभेद कहते हैं, उसे सच्चा रत्नत्रय कहते हैं। कहो, समझ में आया? उसके साथ देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का एक विकल्प होता है। सच्चे सर्वज्ञ परमात्मा, सच्चे पूर्ण स्वरूप को साधनेवाले सन्त और अहिंसा धर्म, शास्त्र की श्रद्धा, उसका जो शुभ विकल्प, वह व्यवहार श्रद्धा है, भेदवाली श्रद्धा है, वह उपचारिक श्रद्धा है।

नव तत्त्वों की श्रद्धा... जीव-अजीव आदि बराबर (जाने हैं)। जीव अनन्त हैं, अजीव अनन्त हैं, पुण्य परिणाम है, पाप परिणाम है, ऐसे नौ के नौ भिन्न-भिन्न, उनके कार्य और भिन्न-भिन्न जिनका स्वरूप है, इस प्रकार से नौ की श्रद्धा करना, वह विकल्पवाली श्रद्धा है। वह राग श्रद्धा, रागरूप श्रद्धा, वह व्यवहार श्रद्धा कही जाती है।

आगम का ज्ञान और शास्त्र का ज्ञान। स्व का ज्ञान वह निश्चयज्ञान। आगमज्ञान, वह व्यवहार का ऐसा विकल्प होता है। शास्त्र के पढ़ने का ज्ञान वह विकल्प है। जिसे निश्चय हो, उसे ऐसा व्यवहार होता है। ऐसा आगम का ज्ञान, बराबर आगम का जैसा कहना है, नव तत्त्व, छह द्रव्य आदि, उसका उसे ज्ञान (होता है)। वह व्यवहार ज्ञान कहने में आता है। जो विकल्प है, जो भेद है, जो उपचार है अथवा खोटा रत्न है। उपचार कहो या खोटा कहो, उसमें क्या है? समझ में आया?

खोटा कीमती नहीं होता। खोटे को कीमत का आरोप दे, वह निश्चय के साथ में है इसलिए। समझ में आया? **तथा संयमभाव...** पाँच इन्द्रियों के दमन का शुभ विकल्प। समझ में आया? अथवा छह काय जीव को न मारना, ऐसा विकल्प, ऐसा

शुभ संयम व्यवहार होता है। यह व्यवहार आचरण कहो, भेदरूपी आचरण कहो, निमित्तरूप से आचरण कहो या उपचार आचरण कहो। **ये व्यवहाररत्नत्रय हैं,...** है, वापस ऐसा सिद्ध करना है न? क्योंकि उसको कहा था न भेदाभेद रत्नत्रय की भावना प्रिय है। तब है, वह प्रिय है न? समझ में आया? भगवान ने ऐसा कहा था, आचार्य कहते हैं, हम भी ऐसा ही कहते हैं। **इसी का नाम भेदरत्नत्रय है।** विकल्परूप, रागरूप, उपचाररूप भेदरत्नत्रय है, जिसका फल वास्तव में तो पुण्य है परन्तु निश्चयरत्नत्रय का फल मोक्ष है, ऐसा उसका आरोप देकर कहते हैं तो उसका फल मोक्ष है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया या नहीं?

आत्मा वस्तु का स्वभाव, उसकी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह एक ही मोक्ष का सच्चा मार्ग है। परन्तु साथ में ऐसा व्यवहार है, वह वास्तव में (मोक्षमार्ग) नहीं है। परन्तु ऐसे मोक्षमार्ग को साथ ऐसा विकल्प अनुकूल व्यवहार से गिनकर वह भी मोक्ष का कारण है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। है बन्ध का कारण। उसे व्यवहारनय कहता है कि वह व्यवहार, मोक्ष का कारण है। ऐसे दो प्रकार के भाव, धर्म आराधक जीव को होते हैं। समझ में आया?

विकल्प है या नहीं? यहाँ निर्विकल्प के साथ है तो आरोप देते हैं। आरोप करके कहते हैं न? निश्चय सच्चा है, वह साथ में खोटा है। परन्तु सच्चे के निश्चय की अपेक्षा से वह भी व्यवहार से सच्चा है, ऐसा आरोप किया जाता है। कठिन पड़े ऐसा है। क्या है?

यहाँ तो दोनों को रत्नत्रय कहना है न? यहाँ (जिसे) निश्चयरत्नत्रय है, इसलिए उसे (राग को) व्यवहाररत्नत्रय कहा। निमित्तरूप कहो, भेदरूप कहो, व्यवहाररूप कहो। यहाँ यह है, इसका आरोप करके उसे भी रत्नत्रय कहा और दोनों मोक्षमार्ग है, ऐसा कहने में आया। दो का कथन किया, उसमें दो आये। वास्तविक तो एक ही मोक्षमार्ग है। यह आज थोड़ा व्यवहार को स्थान मिला (ऐसा कहते हैं)।

मुमुक्षु : आज निश्चित करने के लिये स्थान मिला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो दोनों साथ में वर्णन करना है, तब उसका स्वरूप क्या

कहे? इसे रत्नत्रय कहा। यहाँ सच्चा रत्नत्रय है तो विकल्प को व्यवहार से रत्नत्रय कहा। यह निश्चय तो वह व्यवहार, यह सच्चा तो वह उपचार, यह वास्तविक तो वह खोटा, यह शुद्ध उपादान तो वह निमित्त। कहो, समझ में आया? आहाहा! निश्चय की अपेक्षा से खोटा, व्यवहार की अपेक्षा से व्यवहार सच्चा है। है सही न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपचार का अर्थ ही खोटा है। बिल्ली को सिंह कहना। उसमें क्या कि यह सिंह रहा। चित्राम में लिखा होता है न सिंह। यह सिंह। है सिंह? खोटा सिंह है। उपचार से कहने में आता है।

भेदरत्नत्रय तो साधन हैं... व्यवहार से। यह व्यवहार से रत्नत्रय, भेदरत्नत्रय व्यवहार से साधन है। क्योंकि उसका विषय पर है। क्या कहा? देव-गुरु लिये न? देखो न! देव-गुरु महाधर्म, नव तत्त्व और आगम का ज्ञान और संयम इन्द्रिय का दमन आदि परलक्ष्य से पर को ऐसे न मारना आदि, ऐसा जो व्यवहाररत्नत्रय है, वह राग है, उसका विषय पर है। निश्चयरत्नत्रय है, वह निर्विकार है, उसका विषय आत्मा है। आहाहा!

वह तो इस निश्चय की अपेक्षा से खोटा। खोटे की अपेक्षा से खोटा सच्चा है। वस्तु नहीं? वस्तु नहीं? खोटा रुपया नहीं? खोटा रुपया है या नहीं? परन्तु रुपया कहलाये न उसे? क्या कहलाये? खोटा रुपया, परन्तु रुपया कहलाये न? ऐसा।

मुमुक्षु : साधन कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा व्यवहार से साधन कहा।

मुमुक्षु : तो खोटे की व्याख्या करना आवे तो सच्चा आया कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : असत्यार्थनय से, व्यवहारनय से उसे साधन कहा। असत्यार्थनय से, व्यवहारनय से, झूठे नय से उसे साधन कहा। कहो, समझ में आया?

और अभेदरत्नत्रय साध्य हैं। आहाहा! भगवान आत्मा... अरे! विश्राम का स्थान जिसने कभी देखा नहीं, जाना नहीं, जाने हुए का अनुभव करने का प्रयत्न किया नहीं। रुचा नहीं... रुचा नहीं। जहाँ आगे स्थिर होने से शान्ति मिले और उस शान्ति का

महाधाम सत्ता आसन लगाने का (स्थान), ऐसी चीज़ क्या है, उसकी इसने अनन्त काल में कभी प्रीति भी की नहीं। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १२

आगे तीन प्रकार आत्मा को जानकर... अब बारहवीं गाथा। **बहिरात्मपना छोड़ स्वसंवेदन ज्ञानकर, तू परमात्मा का ध्यान कर, इसे कहते हैं—**

१२) अप्पा ति-विहु मुणेवि लहु मूढउ मेल्लहि भाउ।
मुणि सण्णाणें णाणमउ जो परमप्प-सहाउ।।१२।।

अन्वयार्थ :- हे प्रभाकर भट्ट! तू आत्मा को तीन प्रकार का जानकर... 'मूढं भावम् लघु मुञ्च' बहिरात्मस्वरूप भाव को शीघ्र ही छोड़,... यह पुण्य और पाप को अपना मानना, वह राग के विकल्पों को अपना मानना, वह बहिरात्मबुद्धि, मिथ्याबुद्धि, मूढबुद्धि है। शरीर, वाणी तो कहीं रह गये। खबर नहीं यहाँ से कहाँ जाना? कोई साथ में आवे, ऐसा है?

होगा कौन जाने किसे होता हो तो। कौवे आदि को श्राद्ध डाले, ऐसे को होता होगा? परभव में इस सब सामग्री का कुछ उपकार (होता है या नहीं?) इस भव में तो कुछ नहीं, पर वस्तु है, इसलिए कुछ उपकार नहीं होता। परन्तु इसके लिये मर गया, मरकर प्रयास करता है। लड़के लिये, स्त्री के लिये, शरीर के लिये, मकान के लिये, इज्जत के लिये मरकर प्रयास करता है। खबर है कि हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं। जाना है बड़े काल में अन्यत्र। यहाँ तो थोड़ा काल (रहना है)। अब इस सामग्री की सम्हाल में इसे यह सामग्री एक समय भी साथ में आनेवाली नहीं है। बराबर होगा? एक समय साथ में आयेगी? परन्तु...

मुमुक्षु : काम में....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे? धूल में काम आती है? दु:ख के लिये निमित्त होने में काम आती है। दु:ख के लिये निमित्त होने में काम आती है।

मुमुक्षु : अल्प ही है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अल्प नहीं, सब, सब दुःख ही है। अल्प को और कहाँ ? फिर महेन्द्रभाई जैसा लड़का हो तो उसके पिताजी कहे, थोड़ा दुःख है न इतना तो ? थोड़ा तो सुख है न इसमें ? कहो, आज्ञाकारी लड़के मिले ऐसे। पिताजी को यहाँ पचास हजार का मकान बना दे। रहो, निश्चिन्तता से रहो। अब तुम्हारे कुछ करने का नहीं है, जाओ। इतना तो सुख है या नहीं ? नहीं ? ले, यह इनकार करता है। ऐई ! सेठी ! सेठी भी इनकार करता है। वह दुःख ही है।

मुमुक्षु : सुख नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख नहीं और दुःख, दोनों में अन्तर होगा ? आहाहा !

एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग भी जिसके समीप में उसके क्षेत्र में यह चीज़ आयी नहीं। आयी है ? एक समयमात्र यह शरीर आत्मा की पर्याय में आया है ? एक समय। और एक समयमात्र यहाँ से निकलते साथ में एक समयमात्र आयेगा ? यह तो पर मिट्टी, धूल, परवस्तु और जगत के पदार्थ हैं। आहाहा ! परन्तु इसके लिये आत्मा को खोकर भी उन्हें अच्छे रखूँ। आत्मा को गलाकर भी उन्हें जीवित, टिकते रखूँ। आत्मा को पिघलाकर भी उन्हें टिकते रखूँ। मिथ्याश्रद्धा से इसकी... ऐसे रहो, इसका ... ऐसा रहो और इसका ... ऐसा रहो। मर गया उसकी भावना में। मोहनभाई ! अरे ! क्या होगा यह वह ? और एक समयमात्र जहाँ छूटा। खबर नहीं इसे कि यहाँ कितना रहना है ? जितने वर्ष, कितनों को पचास के ऊपर निकले, उन्हें इतना रहना है ? एक बात है। दृष्टान्त। यह सेठ को तो ८० हो गये। शरीर को, हों ! सेठ को अर्थात् आत्मा को नहीं। आहाहा ! कहाँ का तू, कहाँ का यह पिंजर ? यह शरीर ही जड़, मिट्टी, धूल के पदार्थ है। तू कहाँ है इसमें ? इसकी सम्हाल करना, यह कहीं सम्हालने से रहे ऐसा है ? आहाहा ! साथ में तो आता नहीं, ममता छूटती नहीं। साथ में आता नहीं, ममता छूटती नहीं। छोड़े बिना रहना नहीं अब।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। होता है, ऐसा मानता है कि इसे अच्छा रखूँ। इसके

लिये दु:ख में रहता है। अच्छा रखने से रहता नहीं, इसलिए दु:ख मानता है। यह मूढ़ता है, ऐसा कहते हैं। अच्छे-बुरे की व्याख्या क्या? वे तो परपदार्थ हैं। तेरी कोई कल्पना से वह रहे ऐसा है? और कल्पना लाख रखे, छूटने के काल में छूटे बिना रहे, ऐसा है? अभी छूटा ही पड़ा हुआ है। कहाँ घुस गया है आत्मा में वह? आहाहा! परन्तु मूढ़ अपना आत्मा...

यहाँ बहिरात्मा की व्याख्या चलती है। बहिर जितनी वस्तु है, वह उसकी नहीं, उसमें रहती नहीं, वह रखने से रहती नहीं, तो भी उसे अपना मानकर, अपने आत्मा की शान्ति, स्वभाव, अनादर खोकर उसे रखने को मिथ्या प्रयास करता है। वह तीन काल में इसके होते नहीं और कभी हुए नहीं। ऐसी मान्यतावाले कहे, मेरे इन्हें रखूँ। यह बहिरात्मा मूढ़ कहलाता है। '**मूढउ**' यहाँ शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! समझ में आया?

किसी प्रकार से जगत में मुझे कोई अच्छा कहे और बुरे की छाप है, वह जाये। इसके लिये विकल्प से प्रयत्न करता है। इसका अर्थ ही (यह कि) वह पर को ही अपना मानता है। आहाहा! वह बहिरात्मा पर को ही अपना मानता है। क्योंकि पर जो है, वह मुझे ठीक कहे न तो मुझे ठीक है। इसलिए वह पर को ही अपना मानता है। दूसरे मुझे ठीक कहें... आहाहा! गजब! बस, प्रसन्न... प्रसन्न। और वह अच्छा व्यक्ति कहलाये। तो उसे अच्छा व्यक्ति कहा जाये।

मुमुक्षु : वह अच्छा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसे ठीक कहा न, इसलिए वह अच्छा।

बात तो यह है। अरे! तुझे दुनिया जो परपदार्थ, उसकी पर्याय वह तुझे ठीक कहे, तो तुझे अच्छा-ठीक लगे और वे अच्छा न कहे तो ठीक न लगे। उसने पर को ही अपना माना है। समझ में आया? बहिरात्मबुद्धि, मूढबुद्धि है। आहाहा! बराबर होगा?

कहते हैं, **बहिरात्मस्वरूप भाव को...** हों! भाव का। है न? पाठ है न? '**मूढं भावम्**' ऐसा है। परवस्तु नहीं, परवस्तु मेरी है, उसे रखूँ, उसकी रक्षा करूँ और मुझे प्रतिकूल हो तो उसे दूर करूँ, ऐसा जो पर को (अपना मानता है), उसका अर्थ कि मैं दूर करूँ और रखूँ, इसका अर्थ ही पर को अपना माना कहलाता है। पर को अपना

माना है कि इसे दूर करूँ और इकट्ठा करूँ, ऐसा उसने माना है। समझ में आया? आहाहा!

अन्तरात्मा भगवान ज्ञानमय कहेंगे, देखो! यह पाठ में। '**स्वज्ञानेन ज्ञानमयं जान मन्यस्व...**' भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु में इस परचीज़ का तीनों काल अभाव है। तथापि उसे रखने को प्रयत्न करना और उसे ठीक पड़े, मेरा तो वह ठीक मुझे, ऐसा उसने पर को ही उसने माना है। और मेरी यह निन्दा करे न, उसके अस्तित्व को मैं उखाड़ डालूँ तो मुझे ठीक पड़े। इसका अर्थ ही यह है कि वह पर को ही अपना मानता है। समझ में आया?

यह बहिर् अर्थात् भगवान अन्तर्मुख चिदानन्दमूर्ति, ऐसा जिसे अपना ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान नहीं। स्वसंवेदनज्ञान, ज्ञानमय का स्वसंवेदनज्ञान। मैं तो ज्ञान आत्मा चैतन्य हूँ। पर्याय में विकास भले परमात्मा का न हो, परन्तु मैं स्वसंवेदन ज्ञान से, ज्ञानस्वरूप से वह मैं हूँ; दूसरी कोई चीज़ को फेरफार करना मैं चाहूँ तो मेरी कल्पना से उस चीज़ में फेरफार होता नहीं है। क्योंकि यह ज्ञान है, यह ज्ञान है। यह तो होता है, उससे जाननेवाला है। समझ में आया? होता है, उसे बदलनेवाला है—ऐसा नहीं है। बदल डाल तेरे भाव में से, बदल डाल तेरे भाव में से। क्या करना है तुझे? आहाहा! यह तीर्थंकरों ने बहिरात्मा का स्वरूप ऐसा वर्णन किया। ऐसा आचार्य कहते हैं कि मैं तेरे पास वर्णन करता हूँ। आहाहा! पाठ में क्या लिया?

'**लहु मूढउ मेल्लहि भाउ...**' शीघ्ररूप से मूढात्मा को मैल ऐसे भाव को। समझ में आया? बाहर की सुविधा से मुझे ठीक है और असुविधा से अठीक, उसने पर को ही अपना माना है। उसकी बुद्धि, बहिर्बुद्धि, बाह्य बुद्धि है। समझ में आया? यह नाम शरीर का, उसकी प्रसिद्धि से मुझे प्रसिद्धि (है, ऐसा माननेवाले) वह बहिरात्मा मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। शरीर के नाम की कोई निन्दा आदि करे और उसे ऐसा हो कि यह मेरी निन्दा करता है, उसका अर्थ कि शरीर के नाम से जो करे वह मुझे करता है। अर्थात् वह शरीर को ही अपना माना। आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यह कचरा निकालना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कचरा निकालने के लिये तो यह बात चलती है। आहाहा! ऐसे तो ग्यारह अंग और नौ पूर्व सीख गया। पढ़-पढ़कर रट गया। समझ में आया? और मुझे आया, ऐसा भी उसने मान लिया। अपने को सब आता है अब। हम तो बहुत सीख गये हैं, बहुत वर्ष से सीख गये हैं।

उसे ख्याल में है सब। ख्याल में है कि इस वस्तु में फेरफार हो तो मुझे ठीक पड़े और इसमें न हो तो मुझे ठीक न पड़े, यह ख्याल में है। समझ में आया? छोड़ बहिरात्मबुद्धि और परमात्मस्वभाव, अपना परमस्वभाव, परमस्वरूप स्वभाव अकेला ज्ञानमय प्रभु ज्ञानमय (उसे ग्रहण कर), ज्ञान (कहने से) शास्त्र का ज्ञान नहीं, यह ज्ञान नहीं। यह आत्मा जो ज्ञानमय वस्तु है, उसका '**स्वज्ञानेन**' देखो! स्वज्ञान में स्वसंवेदन का विस्तार करेंगे। यह '**स्वज्ञानेन**' है न? इसका विस्तार करेंगे।

स्वसंवेदनज्ञान से अन्तरात्मा होता हुआ... देखो! चौथे से बारह तक की यह व्याख्या। '**स्वज्ञानेन**' वह मिथ्यात्व की व्याख्या बहिरात्मा की और यह चौथे से बारहवें तक। समझ में आया? इसमें से निकालेंगे यह। पाठ इतना है। '**अन्तरात्मलक्षणवीतराग-निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन।**' पाठ में '**स्वज्ञानेन**' है। टीका में '**अन्तरात्मलक्षणवीतराग-निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन।**' यह वस्तु। वे कहे, नये शास्त्र बनाये। भाई! शास्त्र बनाये नहीं। यह तो शास्त्र में है, इस बात का विस्तार किया। नये शास्त्र किसलिये बनाये? पहले थे वे रखने थे न! लो! और एक ऐसा कहता है। कौन बनावे? बापू! कार्य कौन करे? उसके परमाणु की पर्याय में से जो विस्तार आनेवाला हो, वह आता है, होता है। उसमें नये शास्त्र कहाँ? नयी वाणी (कहाँ)? वाणी तो जो है वह है। कौन वाणी करे और कौन निकाल और कौन बोले? आहाहा! समझ में आया? वाणी मैं धीरे से कहूँ तो मैं कर सकता हूँ, जोर से करूँ तो कर सकता हूँ, उग्ररूप से जोर देकर करूँ और धीमे से (करूँ), सब कर सकता हूँ। यह मान्यता ही बहिरात्मा मूढ़ की है। आहाहा! भगवान के पास तो अकेला ज्ञान है। उसके पास इसका ऐसा करना, ऐसा उसके पास है? उसके द्रव्य-गुण में नहीं और पर्याय में भी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, वह **स्वसंवेदनज्ञान से अन्तरात्मा होता हुआ... 'मन्यस्व' जान।** क्या

जान ? **वह स्वभाव केवलज्ञानकर परिपूर्ण है।** अकेला ज्ञान शान्तरस, अकषायी ज्ञान वीतराग विकल्प रहित, बोलने की भाषा की तो गन्ध भी नहीं उसमें, परन्तु विकल्प करूँ, ऐसा नहीं करूँ, यह वस्तु में नहीं है। ऐसा अकेला ज्ञानमय अकषाय, विकाररहित, वीतरागस्वरूप, ज्ञानस्वरूप को प्राप्त कर, उसका साधन कर। बहिरात्मा को छोड़कर अन्तरात्मा द्वारा परमात्मा का साधन कर। समझ में आया ? अरे ! परन्तु इसमें किसका काम है ? समझ में आया ? कि यह दुनिया प्रसन्न हो या प्रसन्न न हो। अब दुनिया प्रसन्न-अप्रसन्न परद्रव्य है। इसकी पर्याय के साथ तुझे क्या सम्बन्ध है ?

मुमुक्षु : दुनिया कभी प्रसन्न हो, ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु प्रसन्न हो तो उसकी पर्याय में। उसकी पर्याय में ऐसा परिणमन (होता है), उसमें तुझे क्या ? तेरे परिणमन को क्या लाभ उसमें ? और प्रतिकूलता के परिणमन की वाणी जगत में हो, उसमें तेरी पर्याय को नुकसान क्या ? आहाहा ! समझ में आया ?

इसलिए कहा कि, '**स्वज्ञानेन**'। '**स्वज्ञानेन**' शब्द प्रयोग किया है, इसमें से इतना (निकाला कि) स्वसंवेदन अर्थात् आत्मा के ज्ञान द्वारा, केवलज्ञानकर परिपूर्ण उसे जान। पूरा आत्मा परिपूर्ण है, उसे जान और जानकर परमात्मा पूर्ण प्रगट करने का साधन अन्तरात्मपना प्रगट कर। आहाहा !

अनन्त काल में मुश्किल से मनुष्य हुआ। उसमें मुश्किल से इसे मनुष्यपने में संज्ञीपना मिला। उसमें कुछ इन्द्रियाँ (व्यवस्थित मिली)। उसमें से भागकर निकलने का काल इसे (मिला है), वहाँ चिपककर पड़ा उसमें ठीक से। समझ में आया ? उसमें से छूटकर निकलने का अवसर (आया)। उसमें से छूटना नहीं, उसे ही पकड़कर रखना है और उसे ही रखना है। ओहोहो ! विपरीतता वह भी कुछ (कम नहीं है)। बहिरात्मबुद्धि—बाहर को रखना, छोड़ना, प्रसन्न-खुशी करना। कहते हैं कि भाई ! यह मूढ़भाव छोड़ और ज्ञानमय भगवान जानने का देखने का स्वभाव तेरा है। बोलना भी कहाँ और विकल्प भी वहाँ कहाँ है ? समझ में आया ? ऐसी आत्मा की चीज़ को तू जान और वह तो अकेला ज्ञानमय भगवान है। समझ में आया ? उसमें बोलने का,

हिलने का, दूसरे को प्रसन्न (करने का), दूसरे से प्रसन्न होने का, कोई स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा!

जो वीतराग स्वसंवेदनकर परमात्मा जाना था, वही ध्यान करनेयोग्य है। क्या कहा? अन्तरात्मा की बात की। भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का (पुंज), ज्ञान जिसका रूप और स्वरूप है। शरीर जिसका रूप और स्वरूप, जिसमें तीन काल में नहीं है, वाणी का रूप और स्वरूप जिसमें नहीं है, पुण्य-पाप के विकल्पों के जवाब देने में यह विकल्प हो तो ऐसे दूँ, ऐसा विकल्प का स्वरूप और रूप जिसके स्वरूप में नहीं। वह तो कैसा है? वीतराग संवेदन परमात्मा है। वह ज्ञानमय भगवान, उसे रागरहित चैतन्य के भान द्वारा जाना था, वही ध्यान करने के योग्य है। उसमें बारम्बार एकाग्र होने योग्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया था, जो स्वसंवेदन अर्थात् अपनेकर अपने को अनुभवना... महाराज! आपने ऐसा कहा—अपनेकर अपने को—अपने से अपने को अनुभव करना। **इसमें वीतराग विशेषण क्यों कहा?** अपना जानना, इसमें वीतराग का विशेषण (लगाकर) वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान क्यों कहा? मात्र स्वसंवेदन कहना था। वीतराग स्वसंवेदन क्यों कहा? आत्मा भगवान ज्ञान की मूर्ति प्रभु, पुरुषाकार परमात्मा का स्वरूप स्वयं है, उसे अपने वीतरागी ज्ञान द्वारा जानना। आपने वीतराग शब्द बीच में क्यों डाला? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया है। **क्योंकि जो स्वसंवेदन ज्ञान होवेगा, वह रागरहित होवेगा ही।** शिष्य का प्रश्न है। इसका विशेष समाधान करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ५, बुधवार, दिनांक २९-०९-१९६५
गाथा-१२, प्रवचन-१०

परमात्मप्रकाश, पहले भाग (अधिकार) की १२वीं गाथा। यहाँ शिष्य का प्रश्न है। ऐसा आचार्य ने कहा कि आत्मा का स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आत्मा वस्तुस्वरूप से शुद्ध चिदानन्द की ज्योति, उसका स्व अर्थात् अपना वेदन। अकषाय भाव का सम्यग्ज्ञान के प्रकाश के साथ वीतरागी वेदन (होना), उसे स्वसंवेदन कहा जाता है। उसे धर्म की शुरुआत चौथे गुणस्थान से कहा जाता है।

तब शिष्य ने प्रश्न किया कि **वीतराग विशेषण क्यों कहा ? क्योंकि जो स्वसंवेदन ज्ञान होवेगा, वह तो रागरहित होवेगा ही।** समझ में आया ? शिष्य को इतना तो आशंका का भाव आया कि यह स्वसंवेदन आत्मा जो है, वह अपना स्वरूप शुद्ध, उसे अपने से—स्व से सं—प्रत्यक्ष वेदन करे, वह तो वीतरागभाववाला ही होता है। ऐसा तो शिष्य ने प्रश्न किया है। तथापि **वीतराग विशेषण क्यों कहा ?** समझ में आया ?

इसका समाधान श्रीगुरु ने किया कि विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है,... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप होने पर भी विषयों के, कषायों के परिणामों का स्व में वेदन होता है, उसे भी स्वसंवेदन कहने में आता है, परन्तु वह विषयों का, भोग का, राग का वेदन वह रागवाला है। समझ में आया ? आत्मा वीतरागी विज्ञानघन है। वह अपना विषय, ध्येय छोड़कर पाँच इन्द्रियों के विषय शुभाशुभ चाहे जो हो, उस ओर के पुण्य-पाप का विकार, वह राग है और उस राग का वेदन, वह स्वसंवेदन कहा जाता है। अपना वेदन है राग का, परन्तु वीतरागी वेदन नहीं। समझ में आया ? क्या फरमाया ? लो !

आत्मा विषय का वेदन करे, वह कहीं जड़ का वेदन नहीं, पर का नहीं। आत्मा आनन्दमूर्तिस्वरूप स्वविषय को छोड़कर, परविषय में शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि में जो रागादि को करके वेदन करता है, वह स्वसंवेदन है। अपना वेदन अर्थात् विकार

का वेदन है, वह कहीं जड़ का और पर का नहीं है। इसीलिए स्वसंवेदन में वीतरागता कहने का यह कारण है कि, यह स्वसंवेदन जो रागवाला है, वह वेदन यहाँ लेना नहीं है। समझ में आया इसमें?

आत्मा अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रस और अकषायस्वभाव, उसका वह प्रभु सागर—पूर्ण भरपूर है। उसका जो स्व, स्व अर्थात् अविकारी वीतरागीस्वभाव का। स्व-अपना, सं-प्रत्यक्ष, राग बिना आत्मा की शान्ति का, ज्ञान का वेदन हो, उसे यहाँ वीतरागी स्वसंवेदन कहने में आता है। समझ में आया? वह चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन से स्वसंवेदन वीतरागी वेदन प्रगट होता है। इसलिए स्वसंवेदन को वीतरागी वेदन कहने का आशय कि विषय के भोग को परसन्मुख के वेदन में स्वयं वेदता है तो राग को—विकार को और अपना वेदन है। अपना अर्थात् स्वरूप की बात यहाँ नहीं है। परन्तु विकार को वेदता है, उसमें अकेला राग है। इसलिए उस राग का वेदन, वह स्वसंवेदन वीतरागी नहीं हो सकता। समझ में आया इसमें? आहाहा!

ऐसा कहते हैं कि, अनन्त काल में इसमें कहीं पर को तो कभी वेदन किया नहीं। जड़ को, शरीर को, पैसे को, लड्डू, दाल, भात को वेदन किया नहीं। इसमें वेदन किया तो अपना ही भाव है। परन्तु वह अपना भाव वह राग और विकार और कषायवाला है। उसे इसने वेदन किया। उस रागवाली वेदना को पृथक् करने के लिये सम्यग्दृष्टि को वीतरागी स्वसंवेदन होता है, इसलिए स्वसंवेदन को वीतराग शब्द लागू करना पड़ा। ओहो! कहो, सेठी! यह तो पुराने व्यक्ति हैं, तो भी अभी इन्हें पूछना पड़ता है नया। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग के वेदन के समय...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का वेदन और राग का ही ज्ञान है, स्व का ज्ञान और स्व का वेदन नहीं। ठीक! अनादि वस्तु तो भगवान पूर्णानन्द से भरपूर तत्त्व वस्तु पदार्थ आत्मा है। उसका स्व-ज्ञान और स्व का वेदन तो वीतरागी ज्ञान और वीतरागी वेदन होता है। परन्तु पुण्य-पाप के भाव का वेदन और उसका ज्ञान, वह तो राग का ज्ञान और राग का वेदन है। समझ में आया इसमें? ऐई! जमुभाई! अब ऐसा सूक्ष्म। भीखाभाई! आहाहा!

वस्तु है या नहीं? एक गुड़ की इतनी बड़ी डली हो। समझ में आया? तो गुड़ का स्वाद आवे, वह गुड़ की मिठास का आता है या नहीं? या गुड़ के ऊपर कोई धूल का दल बाहर आ गया जरा। यह नहीं डालते उसमें? गुड बाँधे न जरा (उसमें) काली धूल डाले, साबुन डाले और उसमें कोई साबुन का भाग और जरा धूल का भाग रह गया, उसका स्वाद वह कहीं गुड़ का स्वाद है? समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और अनाकुल आनन्द का स्वरूप, उसमें जितने विकार पुण्य-पाप के, राग-द्वेष के होते हैं, वह धूल और साबुन का कोई टुकड़ा रह जाये उसमें—गुड़ में, हों! थोड़ा-थोड़ा डाले न? वह स्वाद दूसरा हो जाये। इसी प्रकार चैतन्य का स्वाद स्व का ज्ञान और स्व का स्वाद, वह वीतरागी ज्ञान और वीतरागी स्वाद है। आहाहा! क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप ही है, वीतराग अर्थात् अकषायस्वभाव का घन आत्मा है। आहाहा! अकषायस्वभाव का पिण्ड आत्मा भगवान है। उस आत्मा का अन्दर ज्ञान और आत्मा का वेदन (हो), वह स्व ज्ञान और स्व का शान्ति का वेदन है। उसे वीतरागी वेदन कहा जाता है और यह विषय का वेदन राग का, भोग का, विकल्प का, मान, यह कीर्ति, इस ओर का राग, इस राग का वेदन यह है अपना वेदन, परन्तु वह स्वभाव का नहीं; विकार का वेदन है। समझ में आया? आहाहा! उसमें कोई लड्डू और दाल-भात और रुपये का वेदन नहीं। क्या होगा? मूलचन्दभाई! नहीं?

एक तो यह घी महँगा मिले पाँच सौ रुपये का, रुपये का पाँच सेर होगा? रुपये का पाँच सेर तो पहले था। पाँच रुपये का सेर। कहो, अब उसका स्वाद कैसा आता होगा? स्वाद घी का आता होगा? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से पूर्ण स्वरूप है। वह तो केवलज्ञान का, केवल—अकेले ज्ञान का और अकेले वीतरागी अविकारी स्वभाव का कन्द-पिण्ड वस्तु आत्मा है। अब वह स्वयं पर का विषय करे तो कुछ पर को वेदता नहीं। वेदन के समय राग करता है, द्वेष करता है, विकल्प (करता है), उसे उसकी पर्याय में, अवस्था में अनुभव करता है। परन्तु यह विकारी वेदन है, वह दुःखरूप है और वह संसार है, ऐसे रागवाले वेदन को भिन्न करने के लिये स्वसंवेदन को वीतरागी वेदन कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? ओहोहो!

विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है,...

देखा ? उसका जानपना तो होता है। इस राग का, द्वेष का, यह अमुक है। **परन्तु रागभावकर दूषित है,...** ज्ञान तो होता है न ? ज्ञान कहाँ चला जाये ? यह राग का ज्ञान, द्वेष का ज्ञान, पुण्य का ज्ञान, पाप का ज्ञान, भोग का, वासना का ज्ञान। **वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है, परन्तु रागभावकर दूषित हैं, इसलिए निजरस का स्वाद नहीं है,...** इससे भगवान आत्मा अकेला जैसे... यह कोल्हापुर का गुड़ नहीं होता ? क्या कहलाता है वह ? रवा... रवा बड़ा। उसमें आधे नम्बर का गुड़ आता है कुछ। बहुत ऊँचा कहते हैं। नहीं ? आधे नम्बर का न ? ऊँचा आता है। वह तुम गये थे न ? रत्नगिरी। वे सब साथ में घूमते थे न, उन्हें खबर है न! सफेद वाचका जैसा ऐसा समझे न ? अधमण लिया था तो मोटर में चूहा खाने लगा। निकला नहीं उसमें से चूहा।

हाँ। वहाँ निकलकर पानी पी आवे। और वापस घुस जाये वहाँ गुड़ खाने। फिर फतेहपुर में निकाला। ऐसा ऊँचा सफेद (गुड़)। उसका स्वाद होगा न जीव को ? उसका ज्ञान है कि यह गुड़ है। यहाँ ज्ञान है परन्तु रागवाला ज्ञान है। समझ में आया ? ज्ञान में तो जो आवे उस वस्तु का ख्याल आवे या नहीं ? यह ज्ञान है, वह जानता है कि यह गुड़ है और उसमें राग होता है। उस राग का स्वाद लेता है, गुड़ का नहीं। ज्ञान वस्तु का है, स्वाद राग का है।

मुमुक्षु : गुड़....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका ? राग का गुड़ ऐसा कहाँ कहा ? गुड़ का ज्ञान कहा। यहाँ क्या कहा ?

उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है,... यह गुड़ है, यह दूधपाक है, यह स्त्री का माँस-शरीर है, ऐसा ज्ञान में आता है परन्तु उस ज्ञान में इकट्ठा राग है, विकार है, वह विकार दोषी का ज्ञान वह विकार का आस्वादन है। वह भले स्व का—अपने विकार का हो तो भी वह विकारवाला है। वह ज्ञान, ज्ञान नहीं कहलाता। जिसमें स्वज्ञान मिले नहीं और रागरहित हो नहीं, उसे ज्ञान नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, नेमिदासभाई! आहाहा! कैसे होंगे यह पोरबन्दर के भैंस के घी कुरिया ? मीठा तो लगता होगा या नहीं ? कि नहीं। उस वस्तु का (ज्ञान होता है)। परन्तु यह क्या लिखा है ? इसमें देखो न! यह वस्तु का ज्ञान है, ऐसा कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : जीव का ज्ञान है परन्तु मजा उसका है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मजा राग का है, ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐई! धरमचन्दभाई! आहाहा! है न? भाई ने बहुत सरस लिखा है। है न पुस्तक हाथ में कितनों को? तुम्हारे है? तुम्हारे कहाँ से आया?

मुमुक्षु : पुस्तक हाथ में है परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह क्या कहते हैं, इतना ख्याल में तो... नहीं ख्याल उसकी अपेक्षा ख्याल में आवे, इतना अलग तो पड़े न? ऐई! क्या कहा? क्या कहा?

शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया कि प्रभु! आप स्वसंवेदन को वीतरागभाव, वीतराग विशेषण क्यों लगाया? वीतराग स्वसंवेदन क्यों कहा आपने? क्योंकि जो कोई वेदन हो, वह तो आत्मा का ही वेदन है। समझ में आया? यह राग (होता है, वह) कहीं पर का वेदन नहीं। चाहे जिस चीज़ के काल में खड़ा हो, भले उस चीज़ का ज्ञान यहाँ होता हो अपने सम्बन्धी, इस ज्ञान में वह ज्ञात हो, यह गुड़ है, यह स्त्री है, यह दूधपाक है, यह पूड़ी है, यह इज्जत कहते हैं, मेरी महिमा करते हैं। समझ में आया? इसके ज्ञान में आवे, परन्तु स्वाद उन महिमा के शब्दों का नहीं, स्वाद उस पूड़ी और दाल-भात का नहीं, स्वाद राग का है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? भगवानजीभाई! आहाहा!

कहते हैं, यह समझते वाँचते नहीं, उसके प्रयोग में तो यह बात कहाँ से हो? परन्तु यह क्या कहते हैं, इस प्रकार से समझते नहीं। चौथे गुणस्थान में शुभभाव और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा (हो), वह समकित, जाओ। और शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान। यहाँ तो कहते हैं कि पर विषय का ज्ञान, देव-गुरु और शास्त्र, ऐसा ज्ञान होता है। भाई! ऐई! परन्तु उसकी श्रद्धा करता है, तब राग है, वह राग का वेदन है, वह स्वसंवेदन वीतरागी वेदन नहीं।

हाँ, ऐसा कहते हैं। वस्तु ली है या नहीं?

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र भी आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु पर में ऐसे देव-गुरु-शास्त्र यह है, ऐसा ज्ञान में आता है।

परन्तु उसके प्रति वह श्रद्धा करता है, वह राग है। उस राग का वेदन है, आत्मा के स्व का वीतरागी वेदन नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो परसम्बन्धी का राग है....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर आया वहाँ। गौशाला का मैं स्वामी हूँ वहाँ। और यह काका-काकी गाँव में कहलवाते हैं, हम बड़े सेठिया हैं। इन शब्दों का स्वाद तुझको नहीं है। समझ में आया? परन्तु यह बात ज्ञान में नहीं आती? ऐ... काका! ऐ... काका! करते-करते तुम्हारे घर में आवे। बेचारे घर में आवें, हों! अन्दर घुसे, अन्दर। वह पहले खड़े रहे दरवाजे के पास। इसलिए उनकी अनुकूलता देखे तो फिर अन्दर मुहल्ला में जाये। ऐ... काका! ऐ... काका! फिर ऐसा कहे, आओ, आओ। यह सब ज्ञान आता है या नहीं? ख्याल में आता है या नहीं? परन्तु ख्याल नहीं, वह राग है, उस राग का स्वाद है, उसकी महिमा का नहीं। नेमिदासभाई! बात उतारी है घर में ठीक न? आहाहा!

कहते हैं, भाई! वस्तु दो। एक स्वयं और एक दूसरी अनन्त वस्तुयें। देखो! अब अनन्त वस्तुओं में स्व स्वरूप का ज्ञान न करके परवस्तु की ओर के झुकाववाला ज्ञान, वह ज्ञान तो करता है कि यह शरीर है, यह वाणी है, यह देव है, यह प्रतिमा है, यह भगवान है, यह समवसरण है, यह है... यह है, यह पुत्र है, यह ज्ञान आता है, परन्तु उसके साथ राग आता है, परन्तु पर के लक्ष्य से राग हुए बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु : राग में तो खो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : खो गया। यह क्या कहते हैं तुम्हारे काका?

मुमुक्षु : उसमें से मुझे वापस खींचकर निकालना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसमें नहीं खो गया, मुफ्त का मानता है—ऐसा कहते हैं। ऐई! देवानुप्रिया! यह लड़के कहते हैं कि यह काका ऐसा क्यों बोलते हैं? खो कहाँ गया? यह रहे। नहीं? आहाहा!

कहते हैं, भाई! वस्तुएँ दो। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर भगवान आत्मा पदार्थ, अनन्त गुण का पिण्ड चैतन्यरस का कन्द तथा एक ओर पूरी दुनिया।

फिर देव–गुरु–शास्त्र हो या स्त्री, कुटुम्ब, व्यापार, धन्धा कोई भी वस्तु सामने हो। यहाँ ऐसा कहना है कि भगवान आत्मा अपना स्वस्वभाव, उसका ज्ञान करके जो वेदन करे, वह रागरहित ज्ञान और रागरहित वेदन होता है। यह चौथे गुणस्थान की भूमिका है। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म की प्रथम भूमिका यह है कि जो भगवान आत्मा वस्तु अतीन्द्रिय शान्त अनाकुल आनन्द का पिण्ड, रवो पूरा, उसका ज्ञान, उसका लक्ष्य, उसका ध्येय करने से जो उसका ज्ञान होता है, उसमें अनन्तानुबन्धी का राग और मिथ्यात्व का अभाव होकर ही वह ज्ञान होता है। इतना विकाररहित वीतरागी ज्ञान (होता है), उसे यहाँ स्वसंवेदन ज्ञान, धर्म का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, मोक्ष के कारणरूप ज्ञान उसे कहा जाता है। समझ में आया?

यह वीतरागपना विशेषण इसलिए दिया कि जीव अपने स्वभाव का ज्ञान छोड़कर अपनी अरागी परिणति को छोड़कर; छोड़कर अर्थात् उत्पन्न नहीं करके, ऐसे भगवान आत्मा पर के लक्ष्य से कोई भी ज्ञेय हो, उसे जानने का कार्य उस समय में है, इसलिए करता है, जानता है। जानते हुए उसे राग, द्वेष, वासना, रति, अरति आदि का विकार का उसे वेदन है। वह वास्तविक स्वसंवेदन नहीं कहलाता। ऐसा वेदन तो अनादि से निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक बहिरात्मा गया, उसे ऐसा वेदन है। वह कहीं अपूर्व वेदन नहीं है, वह अपूर्व ज्ञान नहीं है। समझ में आया?

जो **कि विषयों के आस्वादन से भी उन वस्तुओं के स्वरूप का जानपना होता है, परन्तु रागभावकर दूषित हैं, इसलिए निजरस का आस्वाद नहीं है,...** आहाहा! अरे! ऐसे मार्ग की सत्यता, प्रभु! इसे कान में पड़े नहीं, यह विचारने को कब प्रयत्न करे? और पर से हटकर उसका वेदन कब करे? उसे अध्धर से ही ऐसा का ऐसा मनवा ले (कि) यह माना, वह समकित। भाई! समकित की दूज उगी, उसे पूर्णिमा—केवलज्ञान होनेवाला है। ऐसी दूज बोधि–बीज है। इसलिए कहते हैं, **निजरस का आस्वाद नहीं है,...** अज्ञानी को पर के ज्ञान के काल में राग का वेदन है। उसे निज स्वभाव का आस्वाद और निज स्वभाव का ज्ञान नहीं है।

और वीतरागदशा में स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है,... देखो! परन्तु वीतराग

(अर्थात् कि) रागरहित जितने अंश में दशा हो, **स्वरूप का यथार्थ ज्ञान...** स्वरूप का यथार्थ ज्ञान अपना। **होता है, आकुलता रहित होता है।** समझ में आया? पश्चात् स्वरूप का, स्वरूप का ज्ञान हुआ, तब उसे वस्तु के पर स्वरूप का भी अन्दर ज्ञान यथार्थ हो गया। स्वस्वरूप ज्ञानानन्दस्वरूप का ज्ञान होने पर, रागरहित ज्ञान हुआ, इसलिए यह रागादि बाकी जो परवस्तु है, वह मुझमें नहीं, ऐसा ज्ञान भी उसके स्वरूप का भी यथार्थ (ज्ञान) उसमें आ गया। स्व-परप्रकाशक ज्ञान का सामर्थ्य इतना खिल गया। समझ में आया?

वीतरागदशा में... वीतरागदशा अर्थात् चौथे से लेकर, हों! **स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है, आकुलता रहित होता है। तथा स्वसंवेदनज्ञान प्रथम...** अब यह, अब यह। स्वसंवेदनज्ञान पहली दशा में, पहली दशा में—शुरुआत में, **चौथे पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थ के भी होता है,...** समझ में आया? यह स्वसंवेदनज्ञान पहली दशा में शुरुआत में समकिती और पाँचवें गुणस्थान में गृहस्थ को भी होता है। देखो! मुनिपने के अतिरिक्त दो यह लिये। कोई कहे कि, मुनि को ही ऐसा होता है, (तो ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : यह तो मुनि को इनकार करते हैं। आठवें गुणस्थान....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आठवें में... अरे! भगवान! क्या करता है? पूरा वीतरागमार्ग उथल-पुथल कर दिया है। अरे! इसकी पद्धति की प्रणालिका की प्ररूपणा बदल डाली। वस्तु तो उसकी बदल गयी है अन्दर। समझ में आया?

यह आत्मा चौथे, पाँचवें गुणस्थान में (हो), **ऐसा स्वसंवेदन गृहस्थ के भी होता है,...** यह चक्रवर्ती का राज हो, बलदेव का राज हो, इन्द्रपद का पद हो, उसमें भी जिसे जो चौथा, पाँचवाँ (गुणस्थान) हो, उसे भी यह स्वसंवेदनज्ञान होता है। **वहाँ पर सराग देखने में आता है,...** अब क्या कहते हैं? चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में) भी अभी राग देखने में आता है। चौथे में तीन कषाय, पाँचवें में दो कषाय—राग (होता है)। उस राग का निषेध करने को वहाँ वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान कहा जाता है।

फिर से। **स्वसंवेदनज्ञान प्रथम अवस्था में चौथे-पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थ**

के भी होता है, वहाँ पर सराग,... वहाँ पर, हों! वहाँ भी। बहिरात्मा के वेदन में तो राग है ही, वह तो मात्र राग का वेदन है, परन्तु चौथे-पाँचवें में भी राग है, अभी दिखता है। **देखने में आता है,...** देखने में आता है। समझ में आया? **इसलिए रागसहित अवस्था के निषेध के लिये...** यह चौथे, पाँचवें में भी राग दिखता है, तथापि उस राग के निषेध के लिये वीतरागी स्वसंवेदन कहा गया है। समझ में आया?

एक तो विषय के आस्वाद का राग ज्ञान, वह वीतरागी नहीं, रागवाला है, इसलिए उसका निषेध करने के लिये वीतराग विशेषण कहा और दूसरा चौथे, पाँचवें में अभी राग दिखता है। वह राग दिखता है, वह स्वसंवेदन नहीं, उसका ज्ञान है; परन्तु उससे रहित जितना स्व का ज्ञान होकर रागरहित वेदन (होता है), उसे स्वसंवेदन वीतराग वेदन कहने में आता है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? शब्द भी कैसे! देखो न! **स्वसंवेदनज्ञान वहाँ पर सराग देखने में आता है,...** राग है, राग का ज्ञान भी है। परन्तु उस राग का निषेध करने के लिये स्व का ज्ञान (होकर), रागरहित जितना वेदन हुआ, उसे वीतरागी स्वसंवेदन कहा जाता है। आहाहा! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ नहीं, बड़ा बादशाह है। चैतन्य का बादशाह स्वयं। मूढ़ कैसे कहा जाये इसे? मान बैठे, उसे क्या करना? समझ में आया?

चैतन्य का सूर्य जगमगाता हजार किरणें सूर्य उदित हो। यह तो अनन्त किरणों से खिला हुआ चैतन्य अन्दर स्थित है। ऐसा भगवान आत्मा चौथे, पाँचवें गुणस्थान में भी स्व का ज्ञान करके रागरहित जितनी दशा हुई है, वह वीतरागी स्वसंवेदन बताने को, उसे राग होता है, उसका निषेध करने को, वीतराग स्वसंवेदन कहा जाता है। समझ में आया?

दो प्रकार कहे। वीतराग विशेषण क्यों कहा? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया, इसके दो उत्तर दिये। एक तो पर का ज्ञान करके रागवाला वेदन (होता है), उसका निषेध करने के लिये यह कहा है। दूसरा, अपने स्वसंवेदन में भी अभी राग बाकी है। उस स्वसंवेदन काल के समय राग दिखता है। उस राग के निषेध के लिये स्वसंवेदन का

ज्ञान जितना रागरहित हुआ, वह वीतरागी ज्ञान है, ऐसा बतलाने के लिये 'वीतराग' विशेषण कहा गया है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें?

यह तो शशीभाई कहते थे, बाल के बीच-बीच में की बात चलती थी न अभी तक। परसों आये थे। परन्तु यह तो कहे, बाल-बाल में (तेल डाला जाता है)। बहुत दिमागवाला व्यक्ति है, हों! शशीभाई परसों आये थे, बहुत प्रसन्न होकर। ओहोहो! वह सवेरे तीज का व्याख्यान सुना न! यह तो बाल के बीच में तेल डालते हैं, ऐसा लोग कहते हैं। परन्तु वह तो बाल-बाल में (तेल डाला जाता है)। परन्तु जिसे बाल हो, उसे खबर पड़े या नहीं? बाल बिना का सिर होता है। खबर है या नहीं? उसे क्या कहा जाता है? गंजा। है न यह एक मनसुखभाई का पुत्र, नहीं? मनसुखभाई का बड़ा पुत्र गंजा। मनसुखभाई का पुत्र। मनसुख ताराचन्द, नहीं? डॉक्टर। गुजर गये न? उनके तीसरे नम्बर के लड़के को पहले से बाल नहीं, जन्म से नहीं, बाल ही नहीं। यहाँ एक बार आया था। दरवाजे के पास खड़ा था। भावनगर विवाह में आया था। मनसुख ताराचन्द, करोड़पति। तीसरे नम्बर का पुत्र। विवाह हो गया। पैसे है या नहीं? वह है न!

इसी प्रकार आत्मा की अनन्त लक्ष्मी अन्दर पड़ी है, उसकी लगन लगे, उसे परमात्मा मिले बिना रहते नहीं। समझ में आया? उसे राग-बाग होता नहीं। वह नहीं। राग बिना का ज्ञान बताने को वीतराग विशेषण कहा है। पाठ में तो '**अन्तरात्मलक्षण-वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन**' इतने शब्द हैं। यह उसका यह है न? अन्तिम लाईन। आहाहा! पहले के गृहस्थ भी ऐसे थे। समझ में आया? यह पण्डित है। (अभी तो) बहुत बदल गया।

ओहो! भगवान आत्मा पूरा पूर्णानन्द का नाथ! पूर्ण... पूर्ण अनन्त-अनन्त सुख का सागर प्रभु आत्मा है। अकेला गुड़ का रवा जहाँ चीरो वहाँ गुड़ ही निकले। उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और शान्तरस का (पिण्ड है)। जहाँ नजर डालो वहाँ उसकी शान्ति और ज्ञान ही उसका होता है। समझ में आया? चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में) राग देखने में आता है। समझ में आया? इस राग के निषेध के लिये **वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान, ऐसा कहा है।** कहो, बराबर है?

रागभाव है, वह कषायरूप है, इस कारण जबतक मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबन्धी कषाय है, तबतक तो बहिरात्मा है,... यहाँ तक तो अकेले राग और विकार का ही ज्ञान और विकार का वेदन है। समझ में आया? अथवा परपदार्थ का ज्ञान और विकार का वेदन है। उसे तो आत्मा का ज्ञान और आत्मा का वेदन जरा भी नहीं। समझ में आया? **उसके तो स्वसंवेदन ज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान सर्वथा ही नहीं है,...** किसे? जिसकी दृष्टि अकेले परपदार्थ की मान्यता पर है, उसे कषाय अनन्तानुबन्धी सहित है, उसे तो सम्यग्ज्ञान का एक भी अंश नहीं। ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा परन्तु सम्यग्ज्ञान नहीं। समझ में आया? ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा (परन्तु वह) सम्यग्ज्ञान नहीं, वह सम्यग्ज्ञान का लक्षण नहीं।

और चतुर्थ गुणस्थान में (अविरति) सम्यग्दृष्टि के... अब उन दो में चौथे गुणस्थान की बात लेते हैं। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि अविरति को **मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी के अभाव होने से सम्यग्ज्ञान तो हो गया,...** आत्मा का सम्यग्ज्ञान सच्चा ज्ञान हो गया। स्व-विषय ज्ञान में बनाकर और आत्मा कौन है, उसका ज्ञान हुआ। **परन्तु कषाय की तीन चौकड़ी बाकी रहने से...** कषाय की तीन चौकड़ी अभी राग में बाकी है। राग तीन प्रकार का बाकी है—अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन। **बाकी रहने से द्वितीया के चन्द्रमा के समान विशेष प्रकाश नहीं होता...** इसका अर्थ यह कि उसे द्वितीया के चन्द्रमा जैसा प्रकाश है, परन्तु उससे विशेष नहीं है। शब्द तो ऐसे हैं जानो। **द्वितीया के चन्द्रमा के समान विशेष प्रकाश नहीं...** अर्थात् कि दूज का चन्द्र बहुत प्रकाशवाला नहीं, ऐसा उसका प्रकाश है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दूज तुरन्त अस्त हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अस्त-फस्त की बात नहीं है। दूज अस्त होकर तीज उगती है, तीज अस्त होकर चौथ उगती है। उगती है, वह यहाँ लेने की बात है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि अविरति होने पर भी उसे आत्मा का सच्चा ज्ञान अन्तर्मुख का होता है। उसे इतने अंश में वीतराग ज्ञान कहा जाता है परन्तु

उसे तीन (प्रकार का) राग (बाकी) है, इसलिए दूज के चन्द्रमा का जो प्रकाश है, उतना प्रकाश है। इससे अधिक प्रकाश वीतरागी विज्ञान का प्रकाश, वीतरागी की जो प्रकाश की शान्त पूर्ण विशेष चाहिए, वह नहीं है। समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं कि, पहले गुणस्थान में तो कुछ सच्चा ज्ञान भी नहीं और कुछ वीतरागी अंश भी नहीं। वह तो अत्यन्त राग और कषाय का वेदन और पर का ज्ञान है। अब चौथे (गुणस्थान) में स्व का ज्ञान और अन्दर द्वितीया के चन्द्रमा जितना वीतरागी प्रकाश है। राग बिना के ज्ञान का (वेदन है)। पूर्ण वीतरागी आत्मा जो है, ऐसे आत्मा का राग के अंश बिना अनन्तानुबन्धी के अभाववाला, इतने राग बिना का ज्ञान और इतना उसका वीतरागी वेदन होता है। परन्तु दूज के चन्द्रमा का प्रकाश जैसे थोड़ा है, ऐसा उसे प्रकाश वीतरागी विज्ञान का थोड़ा है। विशेष पाँचवें, छठवें में चाहिए, ऐसा यहाँ नहीं है। समझ में आया? आहाहा! **और श्रावक के...** यह श्रावक। लो! भगवानजीभाई! यह श्रावक कहलाये अब। यह सब अभी तक श्रावक थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं वह।

श्रावक को अर्थात् कि पाँचवें गुणस्थानवाले को। क्यों पाँचवें गुणस्थान में क्या आया विशेष? कि **दो चौकड़ी का अभाव है,...** दूसरा अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय का भी पाँचवें गुणस्थान में, दर्शन प्रतिमा, पहली प्रतिमावाले को, उसका अभाव है। समझ में आया? क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार। अनन्तानुबन्धी, प्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय (संज्वलन) कषाय। **तीन चौकड़ी बाकी...** क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार। अप्रत्याख्यानावरणीय की बाकी चौथे में, प्रत्याख्यानावरणीय की बाकी, संज्वलन की बाकी है। पाँचवें गुणस्थान में दो (कषाय चौकड़ी) बाकी है। प्रत्याख्यान और संज्वलन के दो भाग बाकी हैं। दोनों। क्रोध, मान, माया, लोभ चारों के। दो के चार-चार। यह कहेंगे चौकड़ी और क्या वापस? मुफ्त में चला जाये नहीं।

श्रावक को पाँचवें गुणस्थान में दो चौकड़ी का अभाव है। अर्थात्? आत्मा का अन्तर स्वसंवेदनज्ञान का प्रकाश दो प्रकार के कषाय के अभाववाला वीतरागी प्रकाश

उसे हुआ है। चौथे गुणस्थानवाले की अपेक्षा उसका वीतरागभाव बढ़ गया है। चौथे गुणस्थानवाले की अपेक्षा पाँचवें गुणस्थान का वीतरागभाव (बढ़ गया है)। उसके एक कषाय, मिथ्यात्व का अभाव था, इसके दो कषाय का अभाव है। इतना वीतरागभाव बढ़ गया है। परन्तु दो चौकड़ी का अभाव है। **इसलिए रागभाव कुछ कम हुआ,...** समझ में आया? चौथेवाले की अपेक्षा उसका राग कुछ कम हुआ है। **वीतरागभाव बढ़ गया,...** देखो! वीतरागभाव चौथे (गुणस्थान में) तो है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रत्याख्यानावरणी... तुमको भी कहाँ कुछ खबर नहीं होती और क्या कहना तुमको? चार प्रकार के कषाय हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ और चार प्रकार हैं—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय, संज्वलन। कभी मजदूरी के कारण किया कब है यह निवृत्ति से? सच्ची बात है या नहीं? भाई! यह तुम्हारे भतीजे को पूछना है।

यह कषाय है। उसमें चौथे गुणस्थान में (क्रोध, मान, माया, लोभ की एक चौकड़ी का अभाव होता है)। पहले गुणस्थान में मिथ्याश्रद्धा—मिथ्यात्व और चार कषायें हैं। चार अर्थात्? अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणीय, प्रत्याख्यानावरणीय और संज्वलन। तथा एक-एक के वापस चार—क्रोध, मान, माया और लोभ। ऐसे सोलह प्रकार होते हैं। तब चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी की एक चौकड़ी गयी। अर्थात् उसके चार क्रोध, मान, माया, लोभ गये। इतना वीतरागभाव प्रगट हुआ। पाँचवें में अप्रत्याख्यानावरणीय की दूसरी चौकड़ी गयी। इसलिए दूसरे प्रकार के क्रोध, मान, माया, लोभ का अभाव हुआ, उतना वीतरागभाव पाँचवें गुणस्थान में बढ़ गया। आहाहा! समझ में आया इसमें?

रागभाव कुछ कम हुआ,... किससे कम हुआ? चौथे गुणस्थान से। सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अकेला जो पर विषय का ज्ञान और राग था, वह अकेला था, वह छूट गया। मिथ्यात्व छूटकर स्व का ज्ञान सम्यक् में हुआ, अनन्तानुबन्धी छूटकर स्वरूप के आचरण की स्थिरता हुई, इतना रागरहित भाव हुआ। पाँचवें गुणस्थान

में उससे अधिक वीतरागभाव बढ़ा, रागभाव घटा। देखो! यह पाँचवें गुणस्थान की पदवी! आहाहा! यह तो... ऐई! मोतीरामजी!

मुमुक्षु : प्रतिमा आयी कितने में?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिमा आयी पाँचवें में। परन्तु पाँचवें में वीतरागभाव बढ़े और वह विकल्प रहे, वह दो कषाय का विकल्प है। समझ में आया? जितना दो कषाय टलकर वीतरागभाव बढ़ा, उसे पाँचवाँ गुणस्थान कहा जाता है। आहाहा!

वीतरागमार्ग की... श्रीमद् कहते हैं न? कथनी घिस गयी। वीतरागभाव जो है, वह धर्म है। शुरुआत से वीतरागभाव वह धर्म, यह कथनी घिस गयी, ऐसा उन्होंने लिखा है। भाव तो नहीं परन्तु कथनी—प्ररूपणा घिस गयी है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ प्रभु, महा पदार्थ महा प्रभु का विषय करके ध्येय में लेकर एक कषाय और मिथ्यात्व का नाश हुआ, उतना तो वीतरागी अंश रहा, हुआ। तीन भले रह गये। पाँचवें (गुणस्थान में) दो कषाय गयी, उतना वीतरागभाव बढ़ गया, रागभाव घट गया। (चौथे में) वह तीन था, यह दो रह गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : बाहर में कुछ प्राप्ति है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में क्या दिखे? बाहर में पशु हो, मगरमच्छ हो। अन्दर में पाँचवाँ गुणस्थान होता है। बाहर में बड़ा राजा हो और मिथ्यादृष्टि हो, साधु हो और ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा हुआ हो और मिथ्यादृष्टि हो। बाहर की नहीं, अन्तर की वस्तु है। समझ में आया?

इस कारण स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ,... अपने को पकड़ने का ज्ञान भी वीतरागी विशेष हुआ न? ज्ञान तो था, परन्तु रागरहित हुआ, वह पकड़ने का विशेष (हुआ)। **स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ,...** ऐसा कहा, भाई! समझ में आया? वह राग इतना घटा है न, उतना स्व विषय को पकड़ने में बढ़ा है ऐसे। पकड़ने में बढ़ा है, ऐसे अन्दर। कहो, समझ में आया? इस अपेक्षा से, हों! उस स्व की लब्धि का उघाड़ इतना बढ़ा। रागरहित हुआ, वहाँ इतना पकड़ने में उसे प्रबलपना हुआ।

परन्तु दो चौकड़ी के रहने से मुनि के समान प्रकाश नहीं हुआ। मुनि को जो

प्रकाश चाहिए, वीतरागी स्वसंवेदन प्रकाश की बात है, हों! तीन कषाय के अभाव से ही मुनि को वीतरागी पर्याय से आत्मा का जो वेदन है, ऐसा वेदन श्रावक को नहीं। **मुनि के तीन चौकड़ी का अभाव है, इसलिए रागभाव तो निर्बल हो गया,...** मुनि हैं, उन्हें तीन चौकड़ी का अभाव है और राग तो बलरहित हो गया। परन्तु है सही। **वीतरागभाव प्रबल हुआ,...** उसको **स्वसंवेदन भी प्रबल हुआ...** कहा था न? इसे वीतरागभाव भी प्रबल, विशेष हो गया।

नहीं, फिर प्रबल हुआ कहा है न? वीतराग (भाव) बढ़ गया और स्वसंवेदन प्रबल हुआ, वह भी कहा था। पाँचवें में। **स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ, परन्तु दो चौकड़ी के रहने से मुनि के समान प्रकाश नहीं हुआ...** ऐसा यहाँ वापस वीतरागभाव प्रबल हुआ। छठवें में तीन कषाय का नाश करके स्वभाव का आश्रय इतना लिया है, इतना वीतरागभाव बढ़ गया है। समझ में आया? ऐसी बातें तो कभी सुनने को मिलती होगी। नहीं? छह काय की दया पालो, व्रत पालो, यह करो, वह करो। लो! परन्तु अब उसमें क्या करने का है? जो क्रिया वास्तविक क्या है, उसका भान ही नहीं होता और यह करो और यह करो। वह तो कर्ताबुद्धि—बहिरात्मबुद्धि है अनादि से। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा को वीतरागी प्रकाश पूरा प्रगट हुआ, तो चौथे से उसमें का वीतरागी विज्ञान प्रगट हुए बिना चौथा कैसे कहलाये? पाँचवें में वीतराग विज्ञान बढ़ गया, छठवें में वीतरागभाव प्रबल हुआ। ओहो! तीन कषाय का अभाव स्वरूप को पकड़ने को वीतरागता एकदम प्रबल हुई। **वहाँ पर स्वसंवेदनज्ञान का अधिक प्रकाश हुआ,...** देखो! **वीतरागभाव प्रबल हुआ...** उसमें **वीतरागभाव बढ़ गया...** कहा था। चौथे से पाँचवें में। यहाँ **स्वसंवेदनज्ञान का अधिक प्रकाश हुआ,...** वीतरागभाव प्रबल हुआ। **परन्तु चौथी चौकड़ी बाकी है,...** संज्वलन चौथा कषाय है न? चौकड़ी अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ। एक-एक को वापस चार-चार।

इसलिए छट्ठे गुणस्थानवाले मुनिराज सरागसंयमी हैं। देखो! वह राग बाकी है न? इस अपेक्षा से उसे सरागसंयमी कहा है। बाकी तो तीन कषाय का अभाव वीतराग परिणति अन्दर है। आहाहा! यहाँ तो छठवें की बात अभी लेते हैं न? **वीतरागसंयमी के**

जैसा प्रकाश नहीं है। देखो! जैसा रागरहित प्रकाश है, उतना छठवें में नहीं है। क्योंकि अभी राग बाकी है। समझ में आया? छठवें गुणस्थान में मुनि को पंच महाव्रत आदि के विकल्प, राग बाकी है; इसलिए उसे सरागसंयमी कहा जाता है। वह वीतराग संयमी जैसा प्रकाश नहीं है। ऐसा प्रकाश नहीं परन्तु वीतरागी प्रकाश बिल्कुल नहीं, ऐसा नहीं है। जैसा रागरहित अन्दर चैतन्य को प्रकाश, प्रकाश को वीतरागता से पकड़े आगे गुणस्थान में, ऐसा प्रकाश छठवें गुणस्थान में नहीं है। वापस इसका अर्थ (ऐसा करे) कि, वे वीतरागी जैसे हैं, ऐसा इसे नहीं है, इसलिए बिल्कुल वीतरागी ही नहीं (ऐसा नहीं)। तब तो चौथे से यहाँ बात ली है। वह गृहस्थ का है।

परन्तु यह कहेंगे न! अन्तरआत्मलक्षण वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान। इसका अर्थ कि चौथे से बारह (गुणस्थान)। यह तो इसमें पाठ है। व्याख्यान में चौथे से बारह, इस शब्द में से निकलकर स्पष्टीकरण किया है। यों ही नहीं किया है। समझ में आया?

वीतरागसंयमी के जैसा प्रकाश नहीं है। मुनि छठवें गुणस्थानवाले, हों! अन्दर स्व-विषय का ज्ञान है और तीन कषाय के अभाववाला वीतरागी प्रकाश प्रगट हुआ है। परन्तु जैसा ऊपर के गुणस्थान में वीतरागी प्रकाश संयमी को है, वैसा यहाँ नहीं। **सातवें गुणस्थान में चौथी चौकड़ी मन्द हो जाती है,...** मन्द, अब कहते हैं। उसमें छठवें में अभी पूरी थी। सातवें में मन्द हो जाती है। सातवें गुणस्थान में संज्वलन, जो चौथी कषाय, उसके चार भाग होते हैं—क्रोध, मान, माया, लोभ हैं, वे मन्द हो जाते हैं। **वहाँ पर आहार-विहार क्रिया नहीं होती,...** सातवें गुणस्थान में आहार-विहार का विकल्प नहीं, ऐसा कहते हैं। क्रिया तो जड़ की नहीं परन्तु उसे विकल्प नहीं। छठवें में हो, वह सातवें में नहीं होता। ओहोहो! **ध्यान में आरूढ़ रहते हैं,...** इतनी तो अन्दर एकाग्रता हो गई है कि उसे आहार-पानी का विकल्प नहीं होता।

सातवें से छठे गुणस्थान में आवे, तब वहाँ पर आहारादि क्रिया है,... सातवें से छठवें में आवे, तब उसे आहार के विकल्प का राग होता है। वह सातवें में मन्द था, वह यहाँ तीव्र है। समझ में आया? मन्द कहा था न वहाँ? मन्द है। यहाँ छठवें में तीव्र है। इतना आहार का, पानी का, विहार का-चलने का विकल्प है। **इसी प्रकार छठा-सातवाँ**

करते रहते हैं,... इसी प्रकार छठवें-सातवें में करते रहते हैं, लो! मुनि उसे कहते हैं। छठवाँ-सातवाँ... छठवाँ-सातवाँ... छठवाँ-सातवाँ हजारों बार झूला करते हैं। छठवें में हों तब तीन कषाय के अभाव का और चौथे कषाय के उदय का। सातवें में हो तब तीन कषाय के अभाव के साथ संज्वलन के मन्दता का, इतना मन्दता का राग घटकर वीतरागता बढ़ गयी है। सातवें में कषाय की मन्दता है, इसलिए वीतरागता बढ़ गयी है। इसलिए वहाँ आहार और पानी लेने का विकल्प उसे नहीं है। नीचे उतरे तो और वापस राग तीव्र होता है, तब तीन कषाय का अभाव है परन्तु कषाय की तीव्रता, संज्वलन की तीव्रता है, संज्वलन की तीव्रता है, है उसकी मन्दता सातवें में थी, उसकी तीव्रता है। समझ में आया? गजब बात की है, भाई! **वहाँ पर अन्तर्मुहूर्तकाल है।** लो! समझ में आया? सातवें गुणस्थान में भी अन्तर्मुहूर्त ही काल रहते हैं। थोड़े काल रहते हैं, हों! यह छठवें-सातवें में होकर....

यह मुहूर्त के अन्दर। मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी का मुहूर्त। उसके अन्दर। उसके बहुत भंग, बहुत भंग हैं। यहाँ तो अन्तर्मुहूर्त शब्द रखा है। मुहूर्त दो घड़ी का एक कहलाता है न? दो घड़ी का मुहूर्त। उसके अन्दर, अन्दर में बहुत भाग फिर छोटा... छोटा... छोटा... यहाँ तो सातवें गुणस्थान की बात लेनी है।

आठवें गुणस्थान में चौथी चौकड़ी अत्यन्त मन्द हो जाती है,... सातवें में मन्द थी, आठवें गुणस्थान में अत्यन्त मन्द हो जाती है। **वहाँ रागभाव की अत्यन्त क्षीणता होती है,...** रागभाव आठवें में बहुत क्षीण हो जाता है। **वीतरागभाव पुष्ट होता है,...** लो! आठवें में वीतरागभाव पुष्ट होता है। वीतरागभाव पुष्ट होता है, वीतरागभाव ही अकेला आया, ऐसा नहीं। समझ में आया? आठवें में वीतरागता है और नीचे अकेली सरागता है, ऐसा नहीं। वीतराग तब आठवें में आवे। नीचे तो सब सराग ही है। यहाँ तो कहते हैं कि वीतरागभाव जितना सातवें में था, उससे आठवें में अधिक पुष्टता को प्राप्त होता है। बस, इतनी बात है। संज्वलन का अत्यन्त मन्द भाव हुआ था... स्वभाव सन्मुख वीतरागी ज्ञान को... है तो वह ध्यान में। आठवें वाला तो ध्यान में होता है। परन्तु वीतरागभाव वहाँ विशेष पुष्ट हुआ है। शुद्ध की स्थिति की धारा बढ़ी है। उसे श्रेणी कहा जाता है।

स्वसंवेदनज्ञान का विशेष प्रकाश होता है,... लो! स्वसंवेदन अर्थात् अपने को पकड़ने के वेदने का विशेष प्रकाश। यहाँ बारह अंग का और ग्यारह अंग का ज्ञान विशेष उघड़ गया है, ऐसी यहाँ बात नहीं लेना है। **स्वसंवेदनज्ञान का विशेष प्रकाश होता है,...** ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा को अन्दर पकड़ने की एकाग्रता हुई है, उसमें बहुत निर्मलता बढ़ गयी है। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो चौथे से लेकर बारह तक ले जायेंगे। अन्तरात्मा की व्याख्या करते हैं न यह? कहो, इसीलिए तो कहते हैं, '**अन्तरात्मलक्षण-वीतरागनिर्विकल्प-स्वसंवेदनज्ञानेन।**' अन्तरात्मा की व्याख्या की है। चौथे में वीतरागी निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान, पाँचवें में वीतरागी निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान करते-करते बारहवें तक पूरा होता है। फिर उसका फल है केवलज्ञान।

श्रेणी माँडने से शुक्लध्यान उत्पन्न होता है। लो! इस आठवें से शुद्धता की वृद्धि हुई, इसलिए शुक्लध्यान—आत्मा का उज्ज्वल ध्यान (होता है)। राग बहुत घट गया, इसलिए निर्मल पर्याय द्रव्य में एकाकार हुई। **श्रेणी के दो भेद हैं,...** इस शुद्धता की श्रेणी के दो प्रकार। **एक क्षपक, दूसरी उपशम,...** एक क्षय करता हुआ स्थिरता पावे, एक उपशम करता हुआ स्थिरता पावे। **क्षपकश्रेणीवाले तो उसी भव में केवलज्ञान पाकर मुक्त हो जाते हैं,...** लो! आठवें से जो क्षपक है, स्वरूप की स्थिरता बिल्कुल क्षायिकभाव से शुरु हुई है, वह तो उसी भव में केवलज्ञान होकर मुक्त हो जाते हैं। समझ में आया?

और उपशमवाले आठवें, नवमें, दसवें से ग्यारहवाँ स्पर्शकर... उपशमवाला जो आठवें में जाये, उपशमश्रेणी स्थिर होकर, किसी को क्षायिक समकित भी हो और किसी को उपशम हो। समझ में आया? वह **आठवें, नवमें, दसवें से ग्यारहवाँ स्पर्शकर...** वह ग्यारहवें में जाये। **पीछे पड़ जाते हैं,...** उपशमवाले की अवधि इतनी। वापस गिर जाये। **सो कुछ एक भव भी धारण करते हैं, तथा...** सो कुछेक भव। सो कुछ अर्थात् कितने ही। सो कुछ अर्थात् कितने ही भव धारण करे, ऐसा। कौन? उपशमवाला।

तथा क्षपकवाले आठवें से नवमें गुणस्थान में प्राप्त होते हैं,... क्षपक शुद्धता की उग्रता बढ़ी है, वह तो आठवें से नौवें में और वहाँ से (पूर्णता पाता है)। **वहाँ कषायों**

का सर्वथा नाश होता है,... गुणस्थान में प्राप्त होते हैं, वहाँ कषायों का सर्वथा नाश होता है, एक संज्वलनलोभ रह जाता है, अन्य सबका अभाव होने से वीतरागभाव अति प्रबल हो जाता है,... नवमें, नवमीं भूमिका—गुणस्थान। **इसलिए स्वसंवेदनज्ञान का बहुत ज्यादा प्रकाश होता है,...** स्वसंवेदन ज्ञान का बहुत अधिक प्रकाश होता है। वह वीतरागता बढ़ी, उतना प्रकाश बढ़ा, ऐसा। **परन्तु एक संज्वलनलोभ बाकी रहने से वहाँ सरागचारित्र ही कहा जाता है।** देखो! उसको सरागसंयमी कहा, यहाँ सरागचारित्र कहने में आता है। रागसहित है न थोड़ा। **दसवें गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ भी नहीं रहता,...** सूक्ष्म लोभ रहता है परन्तु अन्त में नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। **तब मोह की अट्ठाईस प्रकृतियों के नष्ट हो जाने से वीतरागचारित्र की सिद्धि हो जाती है।** दसवें में थोड़ा लोभ रहता है।

दसवें से बारहवें में जाते हैं, ग्यारहवें गुणस्थान का स्पर्श नहीं करते,... कौन? क्षपकवाले। **वहाँ निर्मोह वीतरागी के शुक्लध्यान का दूसरा पाया (भेद) प्रगट होता है, यथाख्यातचारित्र हो जाता है। बारहवें के अन्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय इन तीनों का विनाश कर डाला,...** विनाश कर डाला। देखा? विनाश हो जाता है। **मोह का नाश पहले ही हो चुका था,...** मोह का नाश तो पहले हुआ था। **तब चारों घातिकर्मों के नष्ट हो जाने से तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान प्रगट होता है,...** वर्तमान वह वस्तु नहीं, इसलिए बहुत संक्षिप्त करके वर्णन किया है। चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें का स्पष्टीकरण अधिक है। **वहाँ पर ही शुद्ध परमात्मा होता है,...** वहाँ पूर्ण परमात्मा तेरहवें गुणस्थान में होते हैं। **अर्थात् उसके ज्ञान का पूर्ण प्रकाश हो जाता है, निःकषाय है।**

अब यह अन्तिम शब्द था न? कि '**अन्तरात्मलक्षणवीतरागनिर्विकल्प-स्वसंवेदनज्ञानेन**' अथवा पाठ क्या था? देखो! '**मुणि सण्णाणेँ णाणमउ जो परमप्प-सहाउ**' '**सण्णाणेँ**' शब्द पड़ा है न? '**सण्णाणेँ**' का अर्थ '**स्वज्ञानेन**' किया है, हों! '**स्वज्ञानेन**' किया है। संस्कृत। वह '**सण्णाणेँ**' शब्द है न? उसका '**स्वज्ञानेन**' ऐसा (पाठ) किया है। उसकी यह व्याख्या है, यह '**सण्णाणेँ**' शब्द की यह सब व्याख्या है। उसकी टीका यह है '**अन्तरात्मलक्षणवीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन जानीहि**' '**मन्यस्व**' है न? यह। उसकी यह व्याख्या की इतनी सब, लो!

चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक तो अन्तरात्मा है,... यह सब बारहवें तक अन्तरात्मा की व्याख्या की है। स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान। **उसके गुणस्थान प्रति चढ़ती हुई शुद्धता है,...** पाँचवें में शुद्धता बढ़ी, छठवें गुणस्थान, गुणस्थान बढ़ती जाती है। **और पूर्ण शुद्धता परमात्मा के है,...** लो! केवली को पूरा हुआ। **यह सारांश समझना।** अन्तरात्मा की व्याख्या बहुत सरस हुई। चौथे से बारहवें तक पाठ में **'सण्णाणैं मन्यस्व' 'सण्णाणैं मन्यस्व'** अन्तरात्मा की यह सब व्याख्या टीका में संक्षिप्त करके, इसका ही विस्तार यह किया हुआ है। घर का कुछ नहीं है, हों! ऐसा कहते हैं, घर का डाला है। पाठ में है, **'मुणि सण्णाणैं णाणमउ'** है न! और ज्ञानमय का अर्थ ही पाठ में किया **'ज्ञानमयं केवलज्ञानेन निर्वृत्तमिति'** अकेला आत्मा। उसका वेदन शुरु होकर चौथे और बारहवें में अन्तरात्मा का पूरा हुआ। अन्तरात्मा की अपेक्षा से पूरा, पूर्ण प्रकाश तेरहवें में पूरा हुआ है। ऐसी स्थिति को अन्तरात्मा कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ६, गुरुवार, दिनांक ३०-९-१९६५
गाथा - १३ से १५, प्रवचन - ११

गाथा - १३

परमात्मप्रकाश पहला भाग चलता है। उसकी १३वीं गाथा है। देखो!

१३) मूढु वियक्खणु बंभु परु अप्पा ति-विहु हवेइ।
देहु जि अप्पा जो मुणइ सो जणु मूढु हवेइ॥ १३॥

तीन प्रकार के आत्मा के भेद हैं,... पर्याय के पर्याय में तीन प्रकार के भेद हैं। आत्मा जो द्रव्यवस्तु है, वह तो अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि शुद्ध स्वभाव का पिण्ड है। वह द्रव्य-वस्तु है। उसकी पर्याय के तीन भेद हैं। एक बहिरात्मा, एक अन्तरात्मा और एक परमात्मा। कहते हैं, तीन प्रकार के आत्मा के भेद हैं, वह पर्याय के भेद दिखाने हैं। समझ में आया? **उनमें से प्रथम बहिरात्मा का लक्षण कहते हैं :** बहिरात्मा किसे कहते हैं? जिसको अनादि अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु की दृष्टि हुई नहीं और अपने अन्तर स्वरूप से बाह्य शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप के विकारी भाव (हैं, उसमें अपनत्व करता है)।

वह **मिथ्यात्व रागादिरूप परिणत हुआ...** विकार मैं हूँ, शरीर मैं हूँ। क्यों? कि अपना एक समय में पूर्ण अस्तित्व जो शुद्ध चिदानन्द है, वह तो दृष्टि में आया नहीं। उस दृष्टि में पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, व्रतादि भक्ति का परिणाम ही मैं हूँ, ऐसा मिथ्यात्वभाव और **रागादिरूप परिणत...** अकेले मिथ्या भ्रम और राग में परिणत होता है, उसे बहिरात्मा कहते हैं। वह बराबर समझते नहीं। हिन्दी (में प्रवचन करने के लिये) विनती की थी। मद्रास। समझ में आया?

यह आत्मा है न, आत्मा, वह तो एक समय में वस्तुरूप से देखो तो पूर्ण शुद्ध अनन्त आनन्दकन्द आनन्दघन, शुद्ध बुद्ध है। शुद्ध अर्थात् निर्मल और बुद्ध अर्थात् मात्र

ज्ञान का पिण्ड आत्मा है। वह द्रव्य, वह वस्तु है। उस वस्तु में तीन प्रकार की पर्याय होती है। पर्याय अर्थात् अवस्था, पर्याय अर्थात् हालत। उसमें एक पर्याय ऐसी है कि वह **मिथ्यात्व रागादिरूप परिणत हुआ बहिरात्मा...** है। अपना शुद्ध चिदानन्दस्वरूप की मौजूदगी में, परमशान्त आनन्दरस पड़ा है, ऐसे अस्तित्व की जिसे दृष्टि नहीं है, और पुण्य-पाप, विकार राग-द्वेष, शरीर आदि उतना और वही मैं हूँ, ऐसे अस्तित्व की, ऐसे विद्यमानता की जिसकी दृष्टि है, वह मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप परिणत अर्थात् पर्याय में आकुलतारूप उसकी पर्याय हुई है। ऐसे आत्मा को बहिरात्मा कहते हैं।

बहिरात्मा अर्थात् मिथ्यादृष्टि, स्वरूप का अनजान और स्वरूप में नहीं है, ऐसी विकारदशा और शरीर आदि को अपना (मानता है), उसकी क्रिया वह मेरी क्रिया है, ऐसे मानता है, उसे बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि कहने में आया है। वह बहिरात्मा विकार का साधक है। समझ में आया? द्रव्य का साधक नहीं, परमात्म-पूर्ण-पर्याय का साधक नहीं। क्योंकि जो दृष्टि में आया, पुण्य और पाप आदि विकार जो त्रिकाल अनाकुल स्वभाव से विपरीत है, वही परिणाम मैं हूँ, (ऐसा मानता है)। और उसका लक्ष्य लम्बा जाता है तो शरीर, वाणी, मन की जो पर्याय होती है, वह मेरे से होती है। और जो मेरे से हुई ऐसा माने, उसे अपना माने बिना, वह मेरे-से होती है, ऐसा मान सके नहीं। समझ में आया? वह बहिरात्मा, अधर्म-आत्मा है। अधर्म-आत्मा, बहिरात्मा, वस्तु के स्वरूप से बाह्य वस्तु (कि) जो अन्दर में नहीं है, उसे अपना मानने की दृष्टिवन्त भ्रमणा और राग-द्वेष की अवस्थारूप परिणमता है, उसे यहाँ बहिरात्मा, अधर्म-आत्मा, संसार-आत्मा कहते हैं। कहो, जमुभाई! यह तो समझ में आये ऐसा है। ये हिन्दी ऐसी कोई (कठिन) नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं?

दूसरा अन्तरात्मा। इस अन्तरात्मा की व्याख्या में '**विचक्षण**' शब्द का प्रयोग किया है। जो स्वरूप का साधक है, परमात्मा का साधक है, उसे धर्मी को यहाँ '**विचक्षण**' कहने में आया है। '**विचक्षण**' की व्याख्या—**वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानरूप परिणमन करता हुआ अन्तरात्मा...** यह आत्मा जो ज्ञानानन्द शुद्ध स्वरूप पूर्णानन्द है,

वही मैं हूँ—ऐसे अनुभव में अपने स्वभाव की दृष्टि करके, जो अनाकुलता शान्ति का अंश, शान्ति का अंश प्रगट किया है, उसमें स्थित है, उसे धर्मात्मा—अन्तरात्मा—विचक्षण—कहने में आता है। समझ में आया?

आत्मा वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान (रूप परिणमता है, ऐसे) अन्तरात्मा की बात चलती है, हाँ! चौथे (गुणस्थान) से बारहवें (तक)। वस्तु शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति जो आत्मा है, उसकी निर्विकल्प दृष्टि करके, अरागी अनन्तानुबन्धी आदि का अभाव होकर, जितनी शान्ति समाधि-उत्पन्न हुई है, शान्ति कहो या समाधि कहो, इतनी शान्ति में जो स्थित है और पूर्ण शान्तिस्वरूप आत्मा की दृष्टि में पड़ा है, उसे यहाँ विचक्षण—धर्मात्मा—अन्तरात्मा—द्रव्य का साधक अथवा पूर्ण परमात्मदशा का साधक कहने में आता है। बराबर है? ओहोहो! विचक्षण (कहा)। पहले मूढ़ कहा, उसके सामने लिया विचक्षण। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञान की ज्योत, चैतन्य शान्तिसमाधि की मूर्ति है, उसकी दृष्टि नहीं करके, पुण्य-पाप विकार और वह मेरा कर्तव्य, वही मुझस्वरूप है—ऐसी मान्यतावन्त बहिरात्मा, मूढ़ आत्मा, अविचक्षण आत्मा, संसारसाधक आत्मा कहने में आता है। साधक तो रखा। सेठी! विकार संसार है, उसे साधता है। संसार की व्याख्या क्या? पुण्य-पाप, विकार, भ्रमादि संसार उदयभाव है, वह विकार मेरा है, उसे साधता है, वही संसार साधनेवाला मूढ़ अविचक्षण बहिरात्मा अधर्मी कहने में आता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

उसके सामने विचक्षण लिया। मूढ़ के सामने विचक्षण (लिया)। जो सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग देवाधिदेव उन्होंने जो आत्मा देखा है, वह तो पुण्य-पाप के विकल्प के आस्रव से रहित, कर्म से रहित देखा है। ऐसा जो अन्तरात्मा अपनी निर्मल पर्याय से भगवान आत्मा की अन्तर दृष्टि करके अपनी शान्ति में स्थित है और सम्यग्दर्शन में अपने पूर्ण आत्मा की प्रतीत की है, ऐसे आत्मा को राग मेरा है, पुण्य मेरा है, वह उसमें नहीं आता। मेरा शुद्ध भगवान परमानन्द समाधि शान्तस्वरूप मेरा स्वरूप है, उसकी दृष्टि करके उसमें शान्त, समाधि निर्विकल्प आंशिक वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई है। समझ में आया? उसका परिणमन करता हुआ, ऐसी निर्विकल्प वीतरागी पर्याय

श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति की अवस्था करता हुआ, परमात्मा पूर्ण स्वरूप का साधक होता हुआ, उसे अन्तरात्मा कहते हैं। कहो, समझ में आता है?

अब परमात्मा। पहले पर्याय परिणत हुआ, ऐसे कहा ना? पहले में ऐसा कहा था कि **मिथ्यात्व रागादिरूप परिणत हुआ...** यहाँ कहा, **स्वसंवेदनज्ञानरूप परिणमन करता हुआ...** समझ में आया? ओहोहो! वस्तु एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण जो द्रव्यस्वरूप वस्तु, शुद्ध चिदानन्द आनन्द है। वह आस्रव, कर्म, शरीर से रहित है। उसको सहित विकारसहित, शरीरसहित मात्र मानना, वह बहिरात्मा मूढ़ है और राग और शरीर मेरे में नहीं, मैं तो पूर्ण आनन्द और ज्ञान का कन्द हूँ, ऐसी अनुभवदृष्टि करके आत्मा को शुद्ध वीतरागी जानना और वीतरागी अंशरूप परिणमन करना, उसका नाम अन्तरात्मा परिणमन करनेवाला कहने में आया है। ओहोहो! गजब बात। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अकेला।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला अर्थात्?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए कहा न, राग और विकारमात्र ही मैं हूँ। विकार और शरीरमात्र मैं हूँ, वह मिथ्यात्व है और राग और शरीर बिना का मात्र शुद्ध चैतन्य हूँ, वह सम्यक्त्व है। समझ में आया? भारी बात, भाई! जगत सत्य बात समझने के योग्य नहीं, इसलिए सत्य श्रवण होना मुश्किल पड़ता है। आहाहा! यह तो सादी भाषा में समझ में आये ऐसी बात है... चन्दजी! इसमें बहुत पण्डिताई की जरूरत पड़े, ऐसी बात नहीं है।

मुमुक्षु : पण्डिताई किसको कहें?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे पण्डित कहते हैं। उसमें लिखा है न? वह पण्डित है। उसे ही पण्डित लिया है। अन्तरात्मा में कहेंगे। १४वीं गाथा में आयेगा। देखो! '**कः पण्डितो विवेकी**'। संस्कृत में है। वही पण्डित है, दूसरा पण्डित क्या है? समझ में आया? सुजानमलजी! क्या कहा? आहाहा!

भगवान वस्तु पूर्ण आनन्द और पूर्ण केवलज्ञानमय मात्र वस्तु है, जो रागमय,

शरीरमय, कर्ममय नहीं। ऐसी चीज़ का शुद्ध श्रद्धा–ज्ञानरूप, शान्तिरूप परिणमन होना। पर्याय लेनी है न? परिणमन होना, पर्याय में निर्मलता का होना और निर्मलानन्द भगवान को अपनी प्रतीति में लिया तो पर्याय में निर्मलता का परिणमन होना, उसका नाम विचक्षण, अमूढ़, परमात्मा का साधक अन्तरात्मा कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

अब, '**ब्रह्मा परः**' तीसरी पर्याय। पर्याय पर्याय। आहाहा! बहुत (अलौकिक) बात। परमात्मप्रकाश ने तो परमात्मा (बना दिया)। परमात्मा द्रव्य से तो है, अनुभव दृष्टि कर तो तेरी परमात्मा होने की तैयारी हो गई। वह परमात्मा का साधक है, राग का साधक नहीं, विकार का साधक नहीं। धर्मी अन्तरदृष्टि में विकार का साधक नहीं। वह पर्याय में पूर्णानन्द परमात्मा की पर्याय ग्रहण करनेवाला, उत्पन्न करनेवाला साधक है। उत्पन्न करनेवाला साधक है। बीच में गुजराती आ जाता है, देखिये! समझ में आता है?

तीसरा। '**ब्रह्मा परः**'। **शुद्ध बुद्ध स्वभाव परमात्मा अर्थात् रागादि रहित, अनन्त ज्ञानादि सहित,...** अन्तरात्मा में भावकर्म थे तो सही, किन्तु अपनी दृष्टि में भावकर्मरहित, विकाररहित, कर्मरहित, शरीररहित और अनन्त गुणसहित, वर्तमान में परिणमन में सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूप आचरण समाधि का परिणमन है, उसका नाम अन्तरात्मा धर्मात्मा कहते हैं। और परमात्मा शुद्ध बुद्ध। शुद्ध अर्थात् बिल्कुल निर्मल, बुद्ध अर्थात् मात्र ज्ञान की पर्यायरूप, स्वभावरूप, रागादिरहित है। वर्तमान में रागादिरहित है, हों! रागादिरहित परिणमन **अनन्त ज्ञानादि सहित...** अनन्त ज्ञानादि वर्तमान पर्याय में सहित। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसी पर्यायसहित। भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरहित। भाव, द्रव्यकर्म और नोकर्म। भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्म, ऐसे लेना।

वर्तमान में भावकर्मरहित परिणमन हो गया है। अन्तरात्मा में भावकर्म, द्रव्यकर्म का निमित्तरूप से सम्बन्ध है। वह कहेंगे, बाद में १४वीं गाथा में कहेंगे। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो अब सम्बन्ध ही नहीं है। बहिरात्मा को मात्र विकार, कर्म और शरीर का सम्बन्ध है। उतना सम्बन्ध वही मैं हूँ, वह बहिरात्म बुद्धि है। अन्तरात्मा राग और कर्म का निमित्तरूप से असद्भूत आदि से सम्बन्ध होनेपर भी, मेरा स्वरूप शुद्ध

अखण्ड आनन्द ज्ञायकरूप परिणमन है, वही मैं हूँ। रागादि है तो सही, सर्वथा अभाव नहीं हुआ, परन्तु दृष्टि में परिणमन में रागरहित परिणमन शुरु हो गया। समझ में आया? उसे धर्मात्मा अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि से लेकर बारहवें गुणस्थानवाले को अन्तरात्मा कहते हैं। देखो! यह बात सर्वज्ञ के अलावा और उसके अनुभवी के अलावा यह बात और कहीं हो सकती नहीं।

वस्तु। उसकी तीन पर्याय। एक पर्याय में बिल्कुल विकार है। एक पर्याय में विकाररहित परिणमन होने पर भी विकार का सम्बन्ध अशुद्ध निश्चयनय व्यवहार से है। एक पर्याय में अशुद्ध निश्चय, और असद्भूत व्यवहार का सम्बन्ध भी नहीं है। ऐसी परमात्मा की निर्मल पर्यायरूप परिणमन करनेवाले को परमात्मा साक्षात् व्यक्तिरूप से कहते हैं। व्यक्तिरूप अर्थात् प्रगटरूप। आहाहा! समझ में आता है?

जो शुद्ध बुद्ध स्वभाव परमात्मा... शुद्ध का अर्थ किया। शुद्ध अर्थ किया कि रागादि रहित। और बुद्ध का अर्थ किया अनन्त ज्ञानादिसहित। समझ में आया? परमेश्वर परमात्मा अरिहन्त भगवान परमात्मा उसे कहते हैं कि जिसमें मात्र शुद्धता है। बिल्कुल रागरहित शुद्धता पूर्ण प्रगट हुई हो। अशुद्धतारहित कहा परन्तु वस्तु किससे सहित है? रागादिरहित शुद्ध अनन्त ज्ञानादिसहित। अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसी पर्याय का परिणमन हो गया है, उसको परमात्मा केवलज्ञानी प्रभु शक्तिरूप द्रव्य है, वह व्यक्तिरूप हुआ, प्रगटरूप हुआ, उसे पर्याय में परमात्मा कहते हैं। कहो, समझ में आता है? आहाहा!

इस प्रकार आत्मा तीन तरह का है,... क्या नाम है तुम्हारा?

मुमुक्षु : सूरजमल।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा। राजस्थानी। ...इस तीन तरह का आत्मा कहने में आया। इसमें तो सादी भाषा, सरल बात है, उसमें कोई संस्कृत, व्याकरण ही, दिमाग की जरूरत पड़े, ऐसी बात नहीं है। शशीभाई! आहाहा! **अर्थात् बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा ये तीन भेद हैं।** उसकी पर्याय के—अवस्था के—हालत के। वस्तु तो वस्तुरूप त्रिकाल है ही। **इनमें से जो देह को ही आत्मा मानता है,...** देखो! अब थोड़ा स्पष्टीकरण

करते हैं। मूढ़ कहा था न? मूढ़। मूढ़ अर्थात्? मूढ़ का अर्थ क्या? जो अपना शुद्ध द्रव्यस्वभाव है, उसे अन्तर में मानता नहीं, उसकी दृष्टि देह पर ही है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप कार्मण देह है। यह शरीर भी देह है। अपने को वही मानता है और उसी के लिये उसका सर्व साधकपना है। वही साधना करता है। विकार की साधना, देह की क्रिया का साधन मैं करूँ, ऐसी साधना करनेवाला (बहिरात्मा है)। समझ में आया? ओहोहो! कहो, ये नये अवतार में ऐसा सुनने मिल रहा है। वे कहते हैं, (मेरा) नया अवतार हुआ है। आहाहा!

देह को ही आत्मा मानता है,... देह क्यों लिया? एक ओर भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघन, एक ओर देह। यहाँ (आत्मा की ओर) दृष्टि नहीं है तो इस ओर दृष्टि है देह पर। देह पर दृष्टि है तो उसको विकार पर दृष्टि है ही। विकार, वही मैं और शरीर, वही मैं। क्योंकि निर्विकारी शुद्ध बुद्ध जो स्वरूप है, उसकी दृष्टि तो हुई नहीं, दृष्टि की नहीं। शुद्ध विरुद्ध विकार और बुद्ध विरुद्ध ज्ञान अचेतन शरीररहित। समझ में आया? शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा रागादि रहित। बुद्ध अर्थात् केवलज्ञानसहित। ऐसी दृष्टि तो अनुभव में, सम्यक् में आयी नहीं तो शुद्धरहित राग और ज्ञानरहित अचेतन शरीर की दृष्टि हुई। विकार मैं, अचेतन शरीर मैं, कर्म मैं, ये सब मैं (हूँ)। यहाँ से लेकर सब मैं (दृष्टि है)। मैं की व्याख्या वह मेरा कार्य है। उसका अर्थ यही कि मैं उसरूप परिणमता हूँ तो मेरा स्वभाव भी उसरूप परिणमन करनेवाला है। तो मैं विकारमय हूँ, ऐसा माननेवाला बहिरात्मा कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

वह वीतरागनिर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृत को नहीं पाता हुआ मूर्ख है, अज्ञानी है। ओहो! देखो! देह को आत्मा समझता है, उतनी बात कही। अचेतन को चेतन माना। राग-द्वेष भी अचेतन है। समझ में आया? पुण्य-पाप का भाव होता है न, वह भी अचेतन है। ज्ञान के प्रकाश का अंश उसमें नहीं है। ऐसे देह और विकार को अपना माना। अपना माना, उसका अर्थ वह मेरा कार्य है और मैं वह करता हूँ, उसका अर्थ हुआ कि वही मैं हूँ। उसके पास क्या नहीं है? **वह वीतरागनिर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृत को नहीं पाता हुआ मूर्ख है,...** यह मूढ़ की व्याख्या कही। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा रागरहित शुद्ध, अभेद शान्ति। ऐसे उत्पन्न हुआ परमानन्द सुखामृत। परम अमृतस्वरूप आत्मा की आनन्ददशा को नहीं पाता हुआ, नहीं प्राप्त हुआ, मूर्ख है। देखो! बहिरात्मा की व्याख्या। आहाहा! उसके सामने अन्तरात्मा की लेनी है। वह आयेगी, बाद में १४वीं गाथा में। '**परम-समाहि-परिट्ठियउ**' उसके सामने यह शब्द है। समझ में आया? इसमें तो यही (शब्द है), शुद्ध बुद्ध भाव। '**वीतरागनिर्विकल्पसमाधि-संजात।**' मिथ्यादृष्टि में बहिरात्मा का क्या लक्षण है? कि, वह आत्मा शुद्ध-बुद्ध वीतराग और ज्ञानमय वस्तु है, उसके अनुभव में उत्पन्न होनेवाला परम शान्त समाधि, आनन्द है, उससे वह रहित है और मात्र विकारसहित है। उसको बहिरात्मा मूढ़, मूर्ख कहने में आया है। ओहोहो! ग्यारह अंग पढ़ा हो, नौ पूर्व पढ़ा हो, फिर भी मूर्ख है। सूरजमलजी! उसमें सूर्य नहीं आया। चैतन्य का सूर्य आया नहीं। पुण्य और पाप, विकार, शरीर में प्रकाश नहीं आया। आहाहा! बहुत स्पष्ट किया है। पाठ में ही कितना भरा है! '**मूढु वियक्खणु बंभु।**' ओहोहो! समझ में आया?

कहते हैं, बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि मूर्ख क्यों कहा? अधर्म-आत्मा क्यों कहा? उसको भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप परमानन्द है—उसकी समाधि-शान्ति का अंश भी उत्पन्न हुआ नहीं। निर्विकल्प शान्ति आंशिक रूप से अनुभव में आनी चाहिए, उसका उसमें अभाव है। मात्र असमाधि का अनुभव करनेवाला है, इसलिए उसे मूर्ख, अज्ञानी, मूढ़ कहने में आया है। ओहोहो! कल (एक लेख) आया है, केवलज्ञान आदि हो तब आस्रवरहित होता है। यहाँ तो कहते हैं, आठ कर्मसहित हूँ, विकारसहित हूँ, मात्र उसी से सहित हूँ। असद्भूतनय से कर्मसहित, अशुद्धनय से रागसहित, परन्तु शुद्ध निश्चयनय से उससे रहित हूँ। ऐसी आत्मा की अनुभव-दृष्टि समाधि की शान्ति आये बिना, उसको धर्मी और साधक कहने में आता नहीं। कहो, समझ में आया? धर्मचन्दजी!

यह वस्तु ऐसी है कि पूरी बात ही मूल परम्परा, सत्य की पूरी परम्परा टूट गयी। पूरा मार्ग, भगवान पूरा है। जिसे विशेष जानपने की जरूरत नहीं है, जिसे पूर्व में राग की मन्दता होती है अवश्य, परन्तु उसके स्वरूप के अनुभव में उसकी आवश्कता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? बहुत ज्ञान का क्षयोपशम है तो आत्मा प्राप्त होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! और बहुत कषाय की मन्दता की क्रिया करता है तो उसे सम्यग्दर्शन

होगा, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? मात्र भगवान आत्मा पूर्णानन्द का स्वामी-नाथ, उसकी दृष्टि का विरह और निर्विकल्प शान्ति जो अन्दर में है (वह प्रगट नहीं है)। क्योंकि वस्तु निर्विकल्प शान्ति का मूर्त स्वरूप है। पूरा स्वरूप ही आत्मा है। उसमें से प्रगटरूप से विकाररहित श्रद्धा और विकाररहित शान्ति, ऐसी समाधि प्रगट हुए बिना उसने लाख शास्त्र पढ़े हो... समझ में आया? मुनिव्रत, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण का पालन करता हो तो भी उसे मूर्ख और अज्ञानी कहते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

इन तीन प्रकार के आत्माओं में से बहिरात्मा तो त्याज्य ही है... पर्याय में— अवस्था में तीन प्रकार कहे ना? बहिरात्मा—अधर्मबुद्धि—राग मेरा, शरीर मेरा, उसकी क्रिया में जो पड़ा है, राग का साधक है। जहाँ-तहाँ राग की प्राप्त करना है, राग प्राप्त करना है, मान पाना है, इज्जत पाना है, वह राग प्राप्त करना है। एक राग का ही साधक है। वह तो बहिरात्मा है, मूढ़ है, उसको तो दृष्टि में से छोड़नेयोग्य है। समझ में आया?

इसी अपेक्षा यद्यपि अन्तरात्मा अर्थात् सम्यग्दृष्टि वह उपादेय है,... किस अपेक्षा से? बहिरात्मा की अपेक्षा। अपना स्वरूप शुद्ध चिदानन्दमूर्ति के अनुभव में शान्ति और समाधि का अंश प्रगट हुआ है, वही बहिरात्मा की अपेक्षा अन्तरात्मा की पर्याय उपादेय है, ऐसा कहने में आता है। **तो भी सब तरह से उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) जो परमात्मा...** पूर्णानन्द। रागादिरहित और केवलज्ञानसहित। अकेला भगवान रागादिरहित और केवलज्ञान, आनन्दसहित। ऐसा परमात्मा सब ओर से प्रगट करनेयोग्य की अपेक्षा उपादेय है। परमात्मा उपादेय है, समझ में आया? उत्पन्न करनेयोग्य है।

परमात्मा उसकी अपेक्षा वह अन्तरात्मा हेय ही है,... परमात्मा की पर्याय की अपेक्षा से अन्तरात्मा हेय है। बहिरात्मा की अपेक्षा से अन्तरात्मा उपादेय है। कहो, समझ में आया? आहाहा! अरे! उसने सब कुछ बहुत किया। नौवीं ग्रैवेयक भी गया। ओहोहो! समझ में आया? नव पूर्व का क्षयोपशम ज्ञान हुआ। शून्य है। मींडा समझते हो? शून्य... शून्य। और अट्ठाईस मूलगुण का पालन, राग की मन्दता की, शून्य है। स्वभाव की दृष्टि बिना राग और बाह्य ज्ञान मेरी चीज़ में नहीं है। परसत्तावलम्बी जो ज्ञान है, वह मेरे स्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा अपना स्वरूप, शुद्ध

स्वरूप बहिरात्मा की पर्याय की अपेक्षा से अन्तरात्मा की पर्याय उपादेय (करनेयोग्य), अंगीकार करने (योग्य है), ऐसा कहने में आया है। वास्तव में पूर्ण परमात्मदशा प्रगट करने की अपेक्षा से अन्तरात्मा हेय कहने में आया है। अपूर्ण निर्मल पर्याय, पूर्ण पर्याय प्रगट करने की अपेक्षा से हेय कही है, छोड़नेयोग्य कहा है।

शुद्ध परमात्मा ही ध्यान करनेयोग्य है,... शुद्ध पूर्ण परमात्मा की पर्याय प्रगट करनेयोग्य, ध्यान करनेयोग्य है। **ऐसा जानना।** कहो, समझ में आया? अब १४वीं (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - १४

अब परमसमाधि में स्थित,... देखो! परमसमाधि शब्द का प्रयोग किया है। चौथे से लेकर बारहवें (गुणस्थान) तक। परमसमाधि अर्थात् अज्ञानी जो समाधि मानते हैं अज्ञानी की, वह नहीं। अन्तरात्मा की दृष्टि करके शान्ति का अंश प्रगट किया, उसका नाम परमसमाधि है। जो वीतराग आत्मा परमात्मा, पूर्ण पूर्ण पूर्ण स्वभाव समाधि शान्तस्वरूप से, वीतरागभाव से पड़ा है, उसकी प्रतीति अनुभवज्ञान में हुई, उसकी शान्ति अन्तर में आयी, उसको यहाँ परमसमाधि का अनुभव करके समाधि हुई, उसे परमसमाधि (कही है)। अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व के अभाव में भी परमसमाधि कहने में आती है। आहाहा! अरे!

यहाँ परम '**परम-समाहि-परिट्ठियउ**'। '**परिट्ठियउ**'। परम समाधि और '**परिट्ठियउ**'। (कहा है)। उसका अर्थ भगवान आत्मा परमशान्त वीतरागस्वरूप अर्थात् परमसमाधि। उसमें स्थिर हुआ, इसलिए उसकी पर्याय को परमसमाधि, परि-समस्त प्रकार से स्थिर हुआ है। चंचल या अस्थिर नहीं है। ऐसे आत्मस्वरूप की दृष्टि करके स्वरूप में दृष्टि के अनुभव में पर्याय में स्थिर हुआ है, उसे परमसमाधि में स्थित ऐसा अन्तरात्मा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

देह से भिन्न ज्ञानमयी (उपयोगमयी) आत्मा को जो जानता है,... जो चैतन्य

ज्ञानस्वरूप भगवान, उसको जानता है, ऐसा कहा। इतने शास्त्र जानता है या आचारांग जानता है या सूयगडांग जानता है या समयसार जानता है, (ऐसा नहीं कहा)। समयसार यह आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानमयी—उपयोगमयी समयसार–आत्मा। उसे जो जानता है।

मुमुक्षु : ज्ञानमयी और उपयोगमय में क्या फर्क है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानमीय कहो या उपयोगमय कहो, सब एकार्थ है। उसका अर्थ किया। ज्ञानमयी अर्थात् क्या? उपयोगस्वरूप। ज्ञानमय अभेद। शुद्ध उपयोगस्वरूप ही आत्मा है। चैतन्य उपयोगस्वरूप ही आत्मा है। बस, उसका ज्ञान (जिसे है, उसे) विचक्षण और अन्तरात्मा कहते हैं। आहाहा! १४ (गाथा)। आयी न?

१४) देह विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ।
परम-समाहि-परिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ॥१४॥

इसे पण्डित कहा। भले ही कुछ पढ़ा न हो, ग्यारह अंग, नव पूर्व कुछ नहीं पढ़ा हो। प्रश्न के उत्तर देना आता नहीं हो, प्रश्न करना आये नहीं। उत्तर देना आये नहीं। आहाहा! अज्ञानी की महिमा उसमें है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

पण्डित उसे कहते हैं कि जो ज्ञानमय वस्तु ज्ञानमय परमात्मा निज स्वरूप है, उसका अनुभव करके शान्तिमय वेदन हुआ है, वही पण्डित, वही विवेकी है। पण्डित का प्रमाण कोई शास्त्र के जानपने पर नहीं है। क्योंकि शास्त्र का जानपना वह आत्मा नहीं है, वह आत्मा नहीं है। ओहोहो! यहाँ तो थोड़े शास्त्र के बोल का ज्ञान हो तो उसे ऐसा हो जाये कि ओहोहो! मुझे तो बहुत आता है, बहुत जान लिया, अब सुनने में और ध्यान देने की जरूरत नहीं है। बहुत आता है, अपने तो सब जानते हैं। सेठी! इतना तो जिसे अन्दर में अभिमान वर्तता हो। अभिमान का घूटन चलता हो, हों! समझ में आया? आहा!

बोलना कहाँ आत्मा में था? क्या बोलना था? क्या बोले? कौन विकल्प करे? उसमें तो है ही नहीं। आहाहा! रागादि, द्वेषादि, वाणी आदि है नहीं। है तो मात्र ज्ञानमय स्वरूप है, आनन्दमय है। बस, वह ज्ञान का स्वरूप का ज्ञान किया, वही पण्डित कहने

में आता है। आहाहा! इसमें बाहर में बहुत प्रसिद्धि नहीं हो सकती, हों! ऐई! सेठी! बाह्य में प्रसिद्धि बहुत हो, तब वह जाननेवाला कहलाये, होशियार कहलाये, ज्ञानी कहलाये, ऐसा लोग मानते हैं कि बाह्य में कुछ है। बाहर में तो कुछ दिखता नहीं। मूढ़ को बाहर में क्या दिखे? समझ में आया? क्या चीज़ है, उसकी अज्ञानी मूढ़ को कहाँ खबर है? बाहर में ऐसा दिखाई दे कि बाहर में बोले, जवाब देना आये, ऐसा कुछ करना आये (तो लोगों को लगे कि), कोई बड़े विद्वान लगते हैं।

मुमुक्षु : चमत्कार को नमस्कार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चमत्कार है या ये चमत्कार है?

यहाँ तो कहते हैं, बहुत सरस बात ली है! ओहोहो! यहाँ तो देह से भिन्न भगवान ज्ञानमय का ज्ञान किया, बस, वह आत्मा को जानता है, वही अन्तरात्मा है, पण्डित और विवेकी है। सब आ गया। अल्प काल में केवलज्ञान लेगा, अब क्या बाकी रहेगा? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित की पण्डित जाने, हमें खबर नहीं। जिसका हो उसे कहे न। पण्डित का शब्दार्थ क्या? ऐसा पूछते हैं। विचक्षण अर्थात् पण्डित, यहाँ कहा है। विचक्षण की व्याख्या पण्डित की है। विचक्षण अर्थात् विशेष विवेकी। राग, विकार और शरीर से भिन्न अपने ज्ञानमय आत्मा को जाने, वह पण्डित है। वह पण्डित, वह विचक्षण, वह अन्तरात्मा, वह धर्मात्मा, वह मोक्ष का साधक जीव है। आहाहा! समझ में आाय? लोग चिल्लाते हैं। सनावद का कुछ लेख आया है। पढ़ना। सनावद के सेठ है तो इन्हें पढ़ना चाहिए न। कितनी जिम्मेदारी है इनकी। अरे! भगवान! बापू! तुझे खबर नहीं। जिसके घर का पता नहीं, उस घर की बातें करता है! समझ में आया?

जो पुरुष परमात्मा को शरीर से जुदा... देखो! शरीर अर्थात् शरीर और विकार दोनों शरीर में आ जाते हैं। **'ज्ञानमयं' केवलज्ञानकर पूर्ण...** देखो! समझ में आया? **'ज्ञानमयं केवलज्ञानेन निर्वृत्तं परमात्मनं'** संस्कृत है। अकेला ज्ञान का पिण्ड परमात्मा निज सूर्य-स्वरूप, केवलज्ञान का सूर्य आत्मा है। कहो, सूरजमलजी! सूर्य है। मात्र

केवल ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञानप्रकाश का सूर्य मात्र। इस प्रकाश का सूर्य का ज्ञान का ज्ञान करना, वह विचक्षण धर्मात्मा है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त सर्वज्ञ, अनन्त केवली, अनन्त वीतराग सन्तों ने उसे पण्डित और विचक्षण कहा है। आहाहा! **केवलज्ञानकर पूर्ण जानता है,...** केवलज्ञानकर पूर्ण का अर्थ क्या? यहाँ पर्याय की बात नहीं है। आत्मा मात्र ज्ञान-केवल ज्ञान—अकेला ज्ञानमय है। अकेला अर्थात् उसमें विकार, शरीर और कर्म है ही नहीं। सम्बन्ध है तो कर्म का सम्बन्ध है... देखो! नीचे अर्थ में आयेगा। समझ में आया? नीचे अर्थ आयेगा। **वही परमसमाधि में तिष्ठता हुआ अन्तरात्मा अर्थात् विवेकी है।** उसे धर्मात्मा कहते हैं। अब, देखो!

भावार्थ :- यद्यपि अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनय से... समझ में आया? **अर्थात् इस जीव के परवस्तु का सम्बन्ध अनादि काल का मिथ्यारूप होने से...** देखो! मिथ्या अर्थात् असद्भूत। है भावार्थ? असत् की व्याख्या मिथ्या करी। भगवान आत्मा ज्ञायकमूर्ति चिद्घन सूर्य, उसको जड़ कर्म का अनुपचरित अर्थात् निमित्तरूप से सम्बन्ध है। असत्-मिथ्या। मिथ्यारूप होने से। परन्तु वह सम्बन्ध मिथ्या है, सच्चा सम्बन्ध नहीं है। किसका? आठ कर्म का। **व्यवहारनयकर देहमयी है...** व्यवहारनयकर कर्मसहित है। व्यवहार निमित्त का सम्बन्ध असद्भूत अनुपचार से कहने में आता है।

तो भी निश्चयनय कर सर्वथा देहादिक से भिन्न है,... यथार्थ वस्तुदृष्टि करने से सर्वथा देहादि, कर्म आदि से भिन्न है। समझ में आया? वस्तु निश्चय—सत्य सत् प्रभु पूर्ण ज्ञानमय आत्मा, उसकी दृष्टि से देखो तो सर्वथा विकार, शरीर, कर्म से भिन्न है। रागादि है, (उसका) अशुद्धनिश्चय से सम्बन्ध है। पर्याय में। कर्म का, देह का अनुपचरित-असद्भूत से सम्बन्ध है। वह जाननेयोग्य है। आदरणीय तो अनादि-अनन्त निश्चय भगवान देह और राग से भिन्न है और केवलज्ञानमय है। अकेला भगवान केवल ज्ञान है। केवलज्ञान अर्थात् पर्याय नहीं। समझ में आया? वह तो अकेला केवल ज्ञान—अकेला ज्ञान, अकेला ज्ञानपुंज स्वरूप ही है। ऐसे निज शुद्धात्मा को—ऐसे निज शुद्धात्मा को—अपने शुद्धात्मा को वीतराग निर्विकल्प सहजानन्द शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप परमसमाधि में स्थित हुआ जानता है, वह विवेकी अन्तरात्मा कहलाता है। क्या कहते हैं? आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द ज्ञान की समाधि का अकेला पिण्ड है। समाधि

अर्थात् शान्ति। शान्ति अर्थात् वीतरागभाव। वीतरागभाव से पूर्ण भरा आत्मा है। वही परमसमाधि अर्थात् वीतराग परिणति से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् स्वरूपाचरण, ऐसी वीतराग परिणति से अपने को ऐसी अनुभूतिरूप परमसमाधि में स्थित हुआ, ऐसे आत्मा को जानता है, वही विवेकी अन्तरात्मा कहलाता है। वही विवेकी अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा कहने में आता है। ओहोहो! लड्डू तैयार करके रखा है। लबालब! लड्डू होते हैं न? लड्डू। तैयार करके रखे हैं। क्या कहा?

अन्तरात्मा की व्याख्या चलती है। चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान की। सम्यग्दृष्टि से बारहवें (गुणस्थान) में वीतरागभाव प्रगट हो, उसकी व्याख्या चलती है। अन्तरात्मा किसे कहना? भले थोड़ी शान्ति, विशेष शान्ति, ऐसे भंग हो। थोड़ी वीतरागता, विशेष वीतरागता, विशेष वीतरागता, ऐसे भंग हो, परन्तु सामान्यरूप से शान्ति और वीतरागता की शान्ति से आत्मा को जानता है, उसका नाम अन्तरात्मा विवेकी और पण्डित कहने में आता है। चौथे से बारह (गुणस्थानपर्यन्त)। समझ में आया?

निज शुद्धात्मा को... भगवान नहीं, परमात्मा एक ओर रह गये। प्रगट हुए परमात्मा सिद्ध और अरिहन्त नहीं, यह आत्मा। निज शुद्धात्मा को वीतराग रागरहित। अभेद होकर सहजानन्द स्वाभाविक आत्मा का आनन्द। ऐसे शुद्धात्मा की अनुभूति, सहजानन्द ऐसी शुद्धात्मा की अनुभूति, अनुभव में स्वाभाविक अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद (आना), वह परमसमाधि-शान्ति में स्थित होता हुआ आत्मा को इस प्रकार जानता है। वही विवेकी अन्तरात्मा कहलाता है। ओहोहो! कहो, समझ में आया? इसमें छह काय की दया, छह काय के व्रत, भक्ति, पूजा, मन्दिर इत्यादि नहीं आता। उस सम्बन्धी का स्वयं का ज्ञान है—अपना ज्ञान है, वह ज्ञान आया। उसमें दूसरा कुछ आता नहीं। आहाहा! वाह! नेमिदासभाई! जैनशाला आदि में पढ़ना, वह कैसा ज्ञान होगा?

भगवान निज शुद्धात्मा, अकेला शुद्ध अर्थात् रागरहित और अकेला ज्ञानमय भगवान, उसकी रागरहित अभेद शान्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द, ऐसी अनुभूति, उस परम शान्ति में स्थित हुआ आत्मा को जानता है। वही विवेकी अन्तरात्मा, धर्मात्मा, विचक्षण, साधक, परमात्मा को प्राप्त करने को तलस रहा है, ऐसा अन्तरात्मा कहते हैं। उसे पुण्य करना है और स्वर्ग प्राप्त करना है, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! सेठी!

मुमुक्षु : वह तो परमात्मा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा है।

यह परमात्मा ही सर्वथा आराधने योग्य है, ऐसा जानना। अन्तरात्मा को भी पूर्ण परमात्मा आराधन-सेवन करनेयोग्य है अथवा प्रगट करनेयोग्य है, ऐसा जानना। अन्तरात्मा में रहना नहीं। आहा! रहने पर भी उसे परमात्मा प्रति, पूर्ण प्रगट प्रति ही प्रयास है। स्वभाव की ओर का प्रयास अन्दर में उग्र चलता है। उसे परमात्मा ही आराधन, आदरणीय, उत्पन्न करनेयोग्य है। अन्तरात्मा तो हुआ, उसे परमात्मा उत्पन्न करनेयोग्य है—ऐसा कहने में आता है। आहाहा! अन्तर की बातें लोगों को बाहर में मिले नहीं और बेचारे ... और लोग बाहर में कीमत करते हैं। बाह्य से त्याग अथवा बाहर से बोलता हो। बोलता हो, बातें करता हो, कुछ बातें करनी आती हो... आहा... शिखरचन्दजी! आहाहा! बस, हो गया। उसे लगे ... जानपना लगता है। भाषा में ऐसा कहे, फलाना ऐसा कहते हैं, फलाना ने ऐसा कहा है, फलाना ने वैसा कहा है। शास्त्र के आधार बहुत दिये हैं।....

एक आर्जिका है। सनावद। सम्यग्दर्शन कोई भी जिनवणी से मिल सकता है। कोई कहता है कि ऐसे ज्ञानी से ही मिले, ऐसी बात नहीं है। फलाना नहीं है, ढींकणा नहीं है। अब तो बहुत लोग बातें करने लगे हैं। और विकार की बात (करते हैं)। स्फटिकमणि के कारण, जैसे स्फटिकमणि में रंग के कारण रंग होता है, अपने से नहीं। स्फटिकमणि में काला रंग आता है तो उससे रंग होता है। वैसे आत्मा अपने से विकार नहीं करता। विकार का अपना कारण है ही नहीं, निमित्त तो कर्म ही है। बहुत लिखा है। उसी से विकार होता है। यह तो स्थूल बातें हैं, बहुत स्थूल बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ममत्व करता है तो होता है, पर से कहाँ होता है। अभी तो बाह्य की स्थूल बात स्वीकार करने की सामर्थ्य नहीं है। उसके जानपने में इतनी क्षयोपशम में भी अभी सामर्थ्य नहीं। यह तो दूसरी बात है। समझ में आया?

वह परमात्मा ही सर्वथा आराधनेयोग्य है,... देखो! इसमें भी लिया है, हों!

सर्वथा। चौदह गाथा (पूरी) हुई। तेरहवीं (गाथा) बहिरात्मा की (थी)। चौदहवीं अन्तरात्मा की। सब आधार दिये हैं। 'अमोघवर्ष, प्रश्नोत्तरमाला रत्नमाला।'

★ ★ ★

गाथा - १५

आगे सब परद्रव्यों को छोड़कर... दृष्टि में तो छूटा था, अब सम्बन्ध में अस्थिरता को छोड़कर **जिसने अपना स्वरूप केवलज्ञानमय पा लिया है,...** पर्याय में केवलज्ञानमय प्रगट हुआ। **वही परमात्मा है,...** वह परमात्मा है। अरिहन्त भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा किसे कहते हैं? वह सम्प्रदाय की चीज़ नहीं है, यह तो वस्तु की चीज़ है। हमारे जैन में ऐसा है (ऐसा नहीं), यह तो वस्तु ही ऐसी है। आहाहा! तुम्हारे अरिहन्त है और हमारे फलाना है। परन्तु अरिहन्त शब्द का (अर्थ) क्या? भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि करके, स्वरूप में स्थिर हुआ और आठ कर्म निमित्त का नाश हुआ। अशुद्धता का नाश हुआ। वह तो वस्तु की स्थिति है, ऐसी बात की है। अशुद्धता का नाश और शुद्धता की उत्पत्ति। तो कर्म के सम्बन्ध का उसे अभाव हो गया है। ऐसी चीज़ है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा अपने में जो पूर्ण ज्ञान और आनन्दमय पड़ा है, उसको पर्याय में पूर्णरूप से रागरहित, कर्मरहित होकर, मात्र परमात्मा की पर्यायरूप परिणमित होता है... समझ में आया? बाद में आत्मा कहेंगे।

१५) अप्पा लद्धउ णाणमउ कम्म-विमुक्कँ जेण।
मेल्लिवि सयलु वि दव्वु परु सो परु मुणहि मणेण॥१५॥

अन्वयार्थ :- जिसने ज्ञानावरणादि कर्मों का नाश करके... देखो! **'कर्मविमुक्तेन'** है न? उसे निमित्तरूप से कर्म का सम्बन्ध ही नहीं रहा। असद्भूत अनुपचार कर्म का सम्बन्ध जो अन्तरात्मा को भी था, (उसका नाश करके)। समझ में आया? बहिरात्मा को तो वही चीज़ थी। ज्ञानी को असद्भूतव्यवहारनय से थोड़ा कर्म का सम्बन्ध था पर्याय में। और विकार का अशुद्धनिश्चयनय से एक समय की पर्याय में सम्बन्ध था। फिर भी उसकी दृष्टि छोड़कर, ज्ञानमयी दृष्टि की तो जितना बाकी रहा, उसका ज्ञान

करनेयोग्य रह गया। परमात्मा को तो उस चीज़ का नाश हो गया। आहाहा! समझ में आया?

जिसने ज्ञानावरणादि कर्मों का... 'विमुक्तेन' समझ में आया? वह जो असद्भूतव्यवहार का सम्बन्ध था और अशुद्धनिश्चय का जो सम्बन्ध था, वह सम्बन्ध ही छूट गया। अकेले पूर्ण स्वभाव के साथ सम्बन्ध हो गया। अन्तरात्मा में शुद्ध स्वभाव का सम्बन्ध हुआ, परन्तु पूर्ण सम्बन्ध नहीं हुआ। क्योंकि अभी उतना सम्बन्ध शेष है। परमात्मा को वह सम्बन्ध भी सर्वथा छूटकर, सर्वथा स्वभाव में सम्बन्ध हो गया, परमात्मपर्याय प्रगट हो गयी। समझ में आया? ओहोहो! वस्तु ही ऐसी है, उसमें क्या कहे? कोई तर्क का प्रश्न ही कहाँ है। ऐसा दूसरा कहते हैं और वैसा कहते हैं। वस्तु ऐसी है। शुद्ध करना है तो ऐसा प्रश्न उठे तो उसमें सब सिद्ध हो जायेगा। अशुद्धता है, निमित्त है, शुद्ध करना है तो शुद्ध स्वरूप है, पहले से पूर्ण शुद्ध है—ऐसी दृष्टि हुए बिना, ऐसे सम्बन्ध का व्यवहार ज्ञान किये बिना, शुद्धता का साधक हो सकता नहीं। समझ में आया?

जिसने ज्ञानावरणादि कर्मों का नाश करके... 'सकलमपि परं द्रव्यं' देखो! सब देहादि परद्रव्यों को। उसमें रागादि ले लेना। **केवलज्ञानमयी आत्मा... 'लब्धः'—पाया है,...** देखो! पर्याय में पाया, ऐसा कहते हैं। वस्तुरूप से नहीं। यहाँ तो लब्ध-पाया। पर्याय में प्राप्ति हो गई। समझ में आया? **केवलज्ञानमयी आत्मा पाया है, उसको शुद्ध मन से परमात्मा जानो।** अन्तरात्मा को कहते हैं, शुद्ध मन से उसको शुद्ध पर्याय प्रगट हुई, उसको तुम परमात्मा जानो। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। तीनों पर्याय की व्याख्या हुई। उसका विशेष (स्पष्टीकरण आयेगा)....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ७, शुक्रवार, दिनांक ०१-१०-१९६५
गाथा - १५ - १६, प्रवचन - १२

परमात्मप्रकाश, पहला भाग, १५वीं गाथा। उसका भावार्थ। परमात्मा की व्याख्या है, परमात्मा पर्याय में परमात्मा कौन वे? आत्मा द्रव्यस्वरूप से तो परमात्मा शक्तिरूप से है। यह आत्मा वस्तुरूप से, शक्तिरूप से, सत्त्वरूप से, स्वभावरूप से परमात्मा ही है। कहो, समझ में आया? ऐसे आत्मा की—शक्तिरूप से परमात्मा है उसकी—व्यक्त प्रगटरूप से परमात्मा कैसे होते हैं, उसका यह स्वरूप वर्णन करते हैं। उसके स्वरूप का हे प्रभाकर भट्ट! तू ध्यान कर। ऐसा कहा जाता है। दूसरे कोई परमात्मा कर्ता-हर्ता जगत के हैं, ऐसा कुछ है नहीं।

भावार्थ : जिसने देहादिक समस्त परद्रव्य को छोड़कर... जो आत्मा, यह वस्तु यह आत्मा है, उसे देह, शरीर, वाणी, परद्रव्य को **छोड़कर ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादिक भावकर्म, शरीरादि नोकर्म इन तीनों से रहित...** भगवान आत्मा परमात्मा जो हुए, सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्त या सिद्ध हुए, वे ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म से रहित हुए, पुण्य-पाप के विकारी भाव थे, उनसे रहित हुए और शरीर के संयोग से भी रहित हुए।

इन तीनों से रहित केवलज्ञानमयी अपने आत्मा का लाभ कर लिया है,... केवलज्ञानमयी अकेला ज्ञानमूर्ति प्रभु! ऐसा जिसने पर्याय में, व्यक्त में, प्रगट में लाभ प्राप्त किया है। कहो, समझ में आया? **केवलज्ञानमयी अपने आत्मा का लाभ कर लिया है, ऐसे आत्मा को हे प्रभारकभट्ट,...** ऐसा कहते हैं। ऐसे परमात्मा को तू जान। वह कब ज्ञात होता है? ऐसा कहते हैं। ऐसे परमात्मा अकेले केवलज्ञानमय परमात्मस्वरूप सिद्धपद, वह नीचे कब ज्ञात हो?

माया, मिथ्या, निदानरूप शल्य वगैरह समस्त विभाव (विकार) परिणामों से रहित... माया का शल्य, मिथ्या अभिप्राय का शल्य और क्रिया के फल का शल्य कि

क्रिया से मुझे कुछ लाभ हो। ऐसे तीन शल्य इत्यादि समस्त विकार। देखो! तब उस परमात्मा को जाना। मोक्ष तत्त्व ऐसा परमात्म तत्त्व, यह आत्मा उसे जाने तब कहा जाये। देखो! यह बात। यह सर्वज्ञ को कहते हैं न? सर्वज्ञ केवलज्ञानी, केवलज्ञानी ने सब जाना, ऐसा होता है। कहते हैं कि यहाँ भी केवलज्ञानी जो परमात्मा हैं, उन्हें तू जान, तब तेरी दशा में क्या होना चाहिए? समझ में आया? कि माया / कपट / कुटिलता का त्याग, मिथ्या अभिप्राय का त्याग। परमात्मा को जानना किसे कहा जाये? किस प्रकार से जाने? उसका नमूना अन्तर में आये बिना यह परमात्मा है, ऐसा किस प्रकार जाने? सेठी!

यह पाँच मण चावल पक गये हैं, उसका पाक ऐसे आधा पाव, पाव सेर हाथ में लेने से ऐसे चढ़ गये देखे तो हो कि सब ऐसे हैं। क्या कहलाता है वह? वह बड़ा? पायली-पायली। इसी प्रकार आत्मा को... यहाँ देखो! प्रभाकर भट्ट को कहते हैं कि तू परमात्मा को जान। परमात्मा अर्थात् केवलज्ञानी प्रभु। पर्याय में। अनादि कोई शिव कर्ता-हर्ता जगत का है, ऐसा नहीं।

जिसने आत्मा का स्वभाव, वस्तु में पूर्ण आनन्द और ज्ञान भरे हैं, ऐसे आत्मा को जिसने आठ कर्मरहित, विकाररहित, शरीररहित आत्मा का साधन करके केवलज्ञानमय पर्याय को प्राप्त किया है। आहाहा! अकेली केवलज्ञान पर्याय, जिसे पर्याय में तीन काल-तीन लोक ऐसे ज्ञात हों। ऐसा ही उसकी पर्याय को, केवलज्ञान का, पूर्ण दर्शन का धर्म है, स्वभाव है। ऐसा स्वभाव और परमात्मा को तू जाने किस प्रकार? कि, वह निर्मलानन्द पूर्ण है तो उसे जानना यहाँ कब (कहलाये)? कि, आत्मा कपट, मिथ्या अभिप्राय और निदान—क्रिया का फल—रागादि का फल। राग, राग का फल और मिथ्या अभिप्राय।

ऐसा आशय छोड़कर **विभाव (विकार) परिणामों से रहित निर्मल चित्त से परमात्मा जान,...** देखो! आहाहा! सम्यग्ज्ञान की निर्मल पर्याय द्वारा भगवान आत्मा को जान। उस परमात्मा को जान अर्थात् तेरे आत्मा को जान, तब परमात्मा को जानना कहा जाये। कहो, धर्मचन्दजी! बहुत बात... सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण आत्मा, जिनकी निज शक्ति प्रगट हो गयी पूर्ण कैवल्य। वह वास्तविक आत्मा। वही पूर्ण आत्मा, वही परमात्मा।

उसे तू जान। कब जाने वह ? उसे जाने। (वह) कब जाने ? अन्दर में राग, कर्म और विकल्प आदि से रहित होकर यह आत्मा पूर्णानन्द है—ऐसा जाने, तब परमात्मा को जाना, ऐसा कहा जाये। इसमें बहुत सरस (बात की है)। कहो, परमात्मा को जाने तो इस प्रकार से जाने, कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या ? शर्त-शर्त है। जवाबदारी। यह कहा न! तेरा आत्मा वह पुण्य-पाप के विकल्प, मिथ्या श्रद्धा और निदान की दृष्टि छोड़कर, वह भाव छोड़कर, वह आदि सर्व विभाव छोड़कर, ऐसा कहा वापस। ऐसा कहा है न ? सर्व विभाव की वृत्ति छोड़कर। क्योंकि पूर्ण स्वभाव को प्राप्त भगवान की पर्याय हुई, उसे तुझे कब जानने में आवे ? कि सर्व विभाव से रहित होकर तेरे आत्मा को अन्दर में जान, तब उन परमात्मा को तूने जाना, ऐसा कहा जाये। यह शर्त है, शर्त। कहो, समझ में आया ? लो! ओहो!

ऐसा चैतन्य प्रभु जब पूर्ण पर्याय को केवलज्ञानी परमात्मा प्राप्त हुए, ऐसे परमात्मा को तो कोई विकल्प और वासना, राग या कर्म या शरीर कुछ नहीं। तब कुछ नहीं, ऐसी पूर्ण पर्याय को जानने में सामर्थ्य जाननेवाले की कितनी चाहिए ? वह भी वर्तमान भले उसे विभाव हो, इतनी बात है, उन्हें विभाव बिल्कुल गये हैं। समझ में आया ? परमात्मा को पूर्ण विकल्प आदि, शरीर आदि पूर्ण बिल्कुल अभाव हो गया है। अब ऐसे अभाववाले को तुझे मानना हो तो तुझे वर्तमान कर्म, रागादि भाव भले हो। परन्तु उनके स्वभावभाव की दृष्टि छोड़कर, उनसे रहित होकर आत्मा को जान, तब अभी थोड़ा सम्बन्ध रहेगा। उन्हें पूर्ण स्वभाव (होकर) सम्बन्ध छूट गया है। समझ में आया ? उन्हें—सिद्ध को पूर्ण निमित्त सम्बन्ध भी छूट गया है। तुझे भी वह निमित्त वर्तमान रागादि का, कर्म का होने पर भी उन सब भाव से भिन्न वर्तमान में मेरा स्वभाव शुद्ध है, इस प्रकार से तू जान, तब तूने परमात्मा को जाना कहा जाये। आहाहा! गजब बात, भाई!

निर्मल चित्त से परमात्मा जान,... अस्ति-नास्ति की। विभावी पर्यायरहित निर्मल ज्ञान द्वारा आत्मा को जान, अर्थात् परमात्मा को जान। परन्तु वह परमात्मा कब ज्ञात हो उसे ? समझ में आया ? **तथा केवलज्ञानादि गुणोंवाला परमात्मा ही ध्यान करने योग्य**

हैं... ऐसे पूर्णानन्द को प्राप्त परमात्मा, वही तेरे ध्यान में ध्यानेयोग्य है। वह परमात्मा पूर्ण ऐसे, उसका ध्यान करे, इसका अर्थ कि पूर्णानन्दस्वभाव अपना है, उसका ध्यान करे अर्थात् वह परमात्मा का ध्यान किया कहा जाता है। क्योंकि परमात्मापर्याय को प्रगट करना है, उसका ध्यान करना अर्थात् जिन्हें प्रगट हुई, वैसी उसे प्रगट करनी है। इसलिए प्रगट हुई का ध्यान कब हो? कि प्रगट करनी है, ऐसा भाव स्वभाव-सन्मुख ढले, तब उस परमात्मा का ध्यान किया कहा जाये। बहुत बात... भाई! समझ में आया?

यह णमो अरिहंताणं को जानना हो तो ऐसे जान, ऐसा कहा है। मन्त्रीजी! आहाहा! भगवान! अरिहन्त परमात्मा... यह तो प्रवचनसार में लिया न? '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं, सो जाणदि अप्पाणं**' भगवान आत्मा... परमात्मा का आत्मा, परमात्मा के गुण और परमात्मा की प्रगट पर्याय को जानकर आत्मा के साथ तू अन्दर में मिलान कर। इतनी बड़ी पर्याय जिन्हें प्रगट हुई है, ऐसा जब तू अन्दर में बैठाने जाये, वहाँ राग और शरीर के आश्रय बिना जब दृष्टि हो, तब तू उस परमात्मा को अन्दर में बैठा सकेगा। आहाहा! यह णमो अरिहंताणं की बात चलती है। सुजानमलजी! आहाहा!

भगवान अरिहन्त अर्थात् वे ही परमात्मा सिद्ध लो, सिद्ध परमात्मा जिन्हें कुछ नहीं। अकेला आत्मा ज्ञानानन्द पूर्ण जैसा स्वरूप—शक्ति थी, वैसी प्रगट दशा हो गयी। ऐसे परमात्मा की जो दशा, उस परमात्मा का ध्यान कर। इसका अर्थ यह कि, उसे तू जान और उसका तू ध्यान कर। दो बातें आयी न? यह जाने कब? कि वह स्वयं भी आत्मा, ऐसे आत्मा की अस्ति जगत में परमात्मा पूर्ण ज्ञान प्राप्त है, ऐसी महासत्ता का स्वीकार करने जाये, तब वह विभाव और शरीर रहित आत्मसत्ता है, उसका स्वीकार हो, तब उनका (परमात्मा का) स्वीकार होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परमात्मा का ध्यान, यह कहलाता है। परमात्मा का ध्यान किसे कहा जाये? विकल्प का ध्यान करना है यहाँ? परमात्मा का ध्यान किसे कहा जाये? पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण वीर्य—ऐसी जिनकी वर्तमान

दशा प्रगट हो गयी है। ऐसे जो परमात्मा—शक्ति में से व्यक्तता प्रगट की है, ऐसे प्रभु को जान और उनका ध्यान कर। उन्हें जान।

ऐसा परमात्मा महा परम स्वरूप से प्रगट, उसकी यहाँ प्रतीति और ध्यान करने जाता है, वहाँ वह विभाव, शरीररहित चैतन्य भगवान आत्मा की ओर ढले बिना, जाने बिना, ध्यान किये बिना, वे (परमात्मा) जाने या ध्यान किया कहलाता नहीं। गजब बात, भाई! समझ में आया? कहो, सेठी! बराबर है?

और ज्ञानावरणादिरूप सब परवस्तु त्यागने योग्य है,... ऐसे परमात्मा को तू महासत्ता का स्वीकार करने जा, तुझे भी ज्ञानावरणीय आठ कर्म और विकार आदि का त्याग करनेयोग्य है और वस्तुस्वरूप पूर्णानन्द, वही आदरनेयोग्य है, ऐसा अनुभव हो, तब उन परमात्मा को जाना और ध्यान किया, ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? बात तो भाई! बड़ी ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु प्रगट है, ऐसी प्रतीति करना है या नहीं इसे? है, उसकी अस्ति का स्वीकार करना है या नहीं? जो ऐसे परमात्मा हों, आत्मा की शक्ति की जो पूर्णता, उन्हें प्रगट हो गयी है। ऐसी प्रगट हुई परमात्मदशा का जहाँ स्वीकार करता है, तब विभाव और शरीररहित आत्मा है, उसका स्वीकार हो, तब इनका स्वीकार किया कहलाता है। आहाहा! परमात्मप्रकाश है यह। भाव से प्रगट परमात्म हो गये, उनका ध्यान और जानना, वह तेरा द्रव्य परमात्मा, उसका ध्यान और ज्ञान करे, तब उसे जाना और ध्यान किया कहलाये। ऐसी बात है, लो! समझ में आया?

इस प्रकार जिसमें तीन तरह के आत्मा का कथन है,... देखो! तीन प्रकार का कथन आया न? तीनों पर्याय की बात है, हों! बहिरात्मा—मूढ़, अन्तरात्मा—विचक्षण, परमात्मा—प्रगट अवस्था से प्राप्त। पूर्ण केवलज्ञान आदि लब्धि की प्राप्ति। समझ में आया? बहिरात्मा अर्थात् पर्याय में, पर्याय की बात है न? अवस्था। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य को नहीं जानता, वह अल्पज्ञ पर्याय अथवा रागादि को, निमित्त आदि को अकेला अपना स्वरूप मानता हुआ, वह बहिरबुद्धि—बहिरात्मा है, अधर्म-आत्मा है। आहाहा! कितना उसका उल्टा पुरुषार्थ!

अब सुलटा—'**वियक्खणु**' वह '**मूढु**' यह '**वियक्खणु**'**।** अन्तरात्मा विचिक्षण है। विचिक्षण उसे कहते हैं कि जिसका चैतन्य स्वभाव पूर्णानन्द प्रभु! जिसने अन्तर ज्ञान में, दृष्टि में लिया है, उसे विचिक्ष और चतुर कहते हैं। बाकी सब चतुर और विचिक्षण के शून्य। सेठी! कहाँ गये यह सब चतुरपन–चतुरपन? है न? मलूकचन्दभाई! कपड़े की दुकान के, फलाना के यह व्यापार के उसका यह और होशियार व्यक्ति है न बहुत। लो! ऐई! यह बहुत तूफानी थे वहाँ। नहीं? प्रमुख थे न? प्रमुख। तूफानी अर्थात् यह। बड़े प्रमुख अधिक तूफान करे। कलकत्ता का मन्त्री। यहाँ और बड़ा ... पोरबन्दर में। लो! तब क्या कहलाता है यह?

कहते हैं कि यदि भगवान आत्मा को जानना हो, परमात्मा को, हों! वे सिद्ध परमात्मा, सिद्ध सिद्ध हुए हैं, अर्थात् पर्याय में पूर्णानन्द की प्रगट दशा सिद्ध भगवान, उन्हें जाना तब कहलाये कि, यह आत्मा विकार—विभावरहित होकर अपना ध्यान और ज्ञान करे, तब उसे जानना कहलाये। तब उसे ख्याल में आवे कि, ओहो! पूर्ण पर्याय प्रगट करनेवाला ऐसा होता है। ऐसी पर्याय प्रगट हुई वह मैं। पूर्ण पर्याय प्रगट होने पर ऐसे होते हैं। तब उसे आत्मा का भान होने पर, संवर–निर्जरा का भान शुद्धता के अंश का हुआ, पूर्ण शुद्धता ऐसी हो, उसमें ऐसा ज्ञान आ जाता है। समझ में आया?

अब मुक्ति को प्राप्त हुए केवलज्ञानादिरूप सिद्ध परमात्मा के व्याख्यान की मुख्यताकर दस दोहा–सूत्र कहते हैं। अब दस दोहे अकेले परमात्मा प्रगट हुए, उनकी बात करते हैं। वे तो आत्मा के तीन प्रकार वर्णन किये, उसमें परमात्मा की बात आयी। अब अकेले परमात्मा सिद्ध हैं, उनकी अकेले की बात करते हैं। समझ में आया? वह आता है न? कल आया न? निश्चयसहित व्यवहार और या अकेला व्यवहार का उपदेश दो चरणानुयोग में। ऐई! ऐसा आया था। कल आया था या नहीं? ... क्यों नहीं? परन्तु वह तो उपदेशक की शैली की बात की है। समझ में आया? उपदेशक उसे कैसी वृत्ति है और कौन है, उसकी अपेक्षा से बात करता है। आहाहा! वह यह जाने कि, यह निश्चय (का उपदेश) देने पर नहीं समझता, तो उसे राग आदि मन्द करने की बात करे। भक्ति कर, पूजा कर, ऐसा होता है। परन्तु यह तो उसे धर्म मान बैठा, उससे यह बात करना चाहे, तो उसे नहीं। जिसे व्यवहार का आग्रह है, वह व्यवहार का उपदेश ग्रहण

करेगा तो मिथ्यात्व अधिक पुष्ट होगा। यह नहीं लिखा उसमें? टोडरमलजी ने। और निश्चय का अकेला निश्चयाभास का आग्रह होकर निश्चयाभासी ही रहे हैं और वैराग्य बिल्कुल (नहीं)। राग से सर्व का अन्तर से उदास ऐसा वैराग्य नहीं, तो निश्चयाभासी अधिक शुष्क हो जायेगा। इसलिए जिसे जो हो, उससे उसका विरुद्ध भाव, आग्रह यदि व्यवहाराभास का हो तो निश्चय का ग्रहण करना, निश्चयाभास का हो तो उसे व्यवहार का वैराग्य कैसे हो, उसका ग्रहण करना। समझ में आया? क्या हो परन्तु?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु स्वरूप कहने की अर्थात् कहे कौन? यह तो उपदेश की पद्धति में उपदेशक ऐसे होते हैं। वे भी सम्यग्दृष्टि, उन्हें खबर है कि ऐसा उपदेश होता है। अज्ञानी को उपदेश की खबर कहाँ है? समझ में आया? उसे किसके लिये उपदेश की बात है वहाँ? कि, ऐसे तीर्थंकर, मुनि, सन्त, ज्ञानी ऐसा उपदेश करते हैं। मिथ्यादृष्टि ऐसा उपदेश करते हैं, ऐसा है वहाँ? समझ में आया? यह तो उसे खबर है द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कैसा होता है? इस प्रकार की वाणी आवे। ऐसा ही आवे न! समझ में आया? भारी अटपटी बातें!

यह कहीं निश्चय वृत्ति नहीं होती, इसलिए कहीं पूजा, भक्ति, यह ब्रह्मचर्य पालना, वह भाव छोड़ देना, ऐसा है कहीं? वे भाव होते हैं। नहीं होता? पूजा का, भक्ति का, मन्दिर बनाने का, ब्रह्मचर्य पालने का ऐसा भाव होता है। निश्चय अनुभव बिना भी वह भाव होता है। ऐसा नहीं? परन्तु उसका ही जिसे आग्रह है और वह तो उपदेश हो रहा है और उसे तो पकड़कर बैठा है। उसे क्या कहना? उसे यह उपदेश दे। भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि किये बिना तेरा उद्धार कहीं नहीं। तेरे राग की मन्दता (हो तो) पुण्य बाँधे, तो बाहर में निमित्त रहा करे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। यहाँ पुण्य बाँधे, उसके कारण से निमित्त बाहर रहा करे। परन्तु इससे उसमें आत्मा को क्या? समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १६

अब, मुक्ति को प्राप्त हुए केवलज्ञानादिरूप सिद्ध परमात्मा के व्याख्यान की मुख्यताकर दस दोहा-सूत्र कहते हैं।

इसमें पाँच दोहों में जो हरिहरादिक बड़े पुरुष अपना मन स्थिरकर जिस परमात्मा का ध्यान करते हैं, उसी का तू भी ध्यान कर, यह कहते हैं—

१६) तिहुयण-वंदिउ सिद्धि-गउ हरि-हर झायहिँ जो जि।
लक्खु अलक्खेँ धरिवि थिरु मुणि परमप्पउ सो जि॥ १६॥

कहते हैं कि बड़े-बड़े **इन्द्र, नारायण और रुद्र...** शंकर और विष्णु आदि। **बड़े-बड़े पुरुष तीन लोककर वन्दनीक और केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप सिद्धपने को प्राप्त...** वे भी उनका ध्यान करते हैं। जगत में जो महा पूजनीक लोग कहलाते हैं वे भी, सर्वज्ञ परमात्मा जिनकी पूर्ण आत्मा की दशा प्रगट हो गयी है, उनका वे लोग भी ध्यान करते हैं। उन्हें भी यही ध्यान करनेयोग्य है। समझ में आया? पाठ में है न? '**हरिहरहिरण्य-गर्भादयो**' इसलिए जरा अधिक शब्द डाले।

इन्द्र... वे भी परमात्मा का ध्यान करते हैं। परमात्मा पूर्ण सर्वज्ञ केवलज्ञानमय आत्मा। ऐसे सिद्ध भगवान का इन्द्र ध्यान करते हैं। **नारायण,...** अर्थात् वासुदेव। नारायण अर्थात् वासुदेव, वे भी सिद्ध भगवान का ध्यान करते हैं। **रुद्र,...** वे भी भगवान सिद्ध परमात्मा पूर्ण केवलज्ञानमय, पूर्ण आनन्दमय का ध्यान करते हैं। **केवलज्ञानादि...** समझ में आया? **तीन लोककर वन्दनीक...** वे पुरुष तीन लोक में आदरनेयोग्य लोग मानते हैं न? समझ में आया? वे तीन लोक के। वे लोग बड़े हैं, वे तीन लोक के वन्दनीक भगवान हैं। उन्हें भी लोग बड़े जो कहलाते हैं, वे उन्हें वन्दते हैं। '**त्रिभुवनवंदितं**' कौन? सिद्ध भगवान। तीन लोक में वंदित सिद्ध भगवान। तीन को वंदि, लो! तीन लोक सब मानते होंगे सिद्ध को? महा उत्तम पुरुष उन्हें वन्दन करते हैं, वे तीन लोक के वन्दनीक कहे जाते हैं। समझ में आया? '**त्रिभुवनवंदितं**' सिद्ध परमात्मा, (जिन्हें) आत्मा की पूर्ण निर्मल केवलदर्शन आदि पर्याय प्रगट हुई, वे तीन भुवन को वन्दित हैं। ऊर्ध्व, मध्य और अन्त (अधो) ऐसे तीन लोक में वे वंदित हैं। समझ में आया?

'सिद्धिगतं' और केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप सिद्धपने को प्राप्त... देखो! वन्दनीक कहा एक ओर तथा एक फिर प्राप्त क्या हुआ है उनको? केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य, अनन्त गुण की अनन्त निर्मल पर्याय—अवस्था प्रगट हो गयी है। **सिद्धपने को प्राप्त जिस परमात्मा को ही ध्यावते हैं,...** ऐसे परमात्मा को भी हरिहर आदि ध्यान करते हैं।

अपने मन को वीतराग निर्विकल्प नित्यानन्दस्वभाव परमात्मा में स्थिर करके... लो! **'लक्ष्यं अलक्ष्ये'** लक्ष्य अर्थात् मन, अलक्षे अर्थात् परमात्मा (रूप) आत्मा, उसमें स्थिर हो। है न पाठ में? **'लक्खु अलक्खे'** लखनेवाला अर्थात् विकल्प करनेवाला मन, पर को जाननेवाला मन, उसे **अपने मन को वीतराग निर्विकल्प नित्यानन्दस्वभाव परमात्मा में स्थिर करके...** वह पूर्ण परमात्मा ऐसे होते हैं, उनका ध्यान करने जाये, अपना ही आत्मा **निर्विकल्प नित्यानन्दस्वभाव परमात्मा में स्थिर करके उसी को हे प्रभाकर भट्ट, तू परमात्मा जान...** उसे परमात्मा जानना। पूर्णानन्द परमात्मा हुए, वे परमात्मा, उनका तू ध्यान कर। **परमात्मा जानकर चिन्तवन कर।** कब इसके ज्ञान में वह आवे? यह तो बात हुई। वे पूर्ण शुद्ध हैं, पूर्ण प्रगट दशा हो गयी है। तो उस पर्याय को पूर्ण शुद्ध का जहाँ अन्तर में ध्यान करने जाये, वहाँ पूर्ण शुद्धस्वभाव का ही ध्यान हो जाता है। समझ में आया? आहाहा!

सारांश यह है कि केवलज्ञानादिरूप उस परमात्मा के समान रागादि रहित अपने शुद्धात्मा को पहचान,... देखो! यह सारांश लिया वापस। है न? पाठ में ही है। **'रागादिरहितः स्वशुद्धात्मा साक्षादुपादेय'** वे परमात्मा जहाँ शुद्ध परमात्मा सर्वज्ञ, ओहोहो! पूर्ण जिनकी दशा! जिनकी एक समय की अवस्था में तीन काल-तीन लोक स्वयं की पर्याय में ज्ञात हों। समझ में आया? एक समय का दर्शन का उपयोग तीन काल-तीन लोक सामान्य देखे, एक समय के आनन्द में अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हो। एक समय का वीर्य अनन्त-अनन्त गुण की पर्याय की निर्मलता को रचे, ऐसे जो अनन्त गुणों की पर्याय जिनकी अवस्था में प्रगट हो गयी है। ऐसी सत्ता—अस्तित्व का ध्यान, वह अपने स्वभाव का—शुद्धात्मा का ही ध्यान है। समझ में आया?

रागरहित है, पूर्ण निर्मल है। ऐसा जहाँ अन्तर में विचार करे, वहाँ उसे, यह

रागरहित है और पूर्ण निर्मल आत्मा है, उसके ऊपर दृष्टि और ज्ञान जाये और शुद्धात्मा का आदर करे, तब वह परमात्मा का ध्यान किया कहलाता है। कहो, समझ में आया, इसमें? अब भाई! संक्षिप्त-संक्षिप्त बात में बड़ी-बड़ी महिमा है, हों! आहाहा! ऐसा परमात्मा है उसे अभी पहले न जाने। उसकी पर्याय में, उसकी अवस्था में ऐसे परमात्मा पूर्ण हैं, उसका भी स्वीकार, सत्कार आवे नहीं, तब तक उसे आत्मा का भान होता नहीं और आत्मा के भान बिना उसे कोई चारित्र-फारित्र होता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु चारित्र किसका कहना? चारित्र किसका ले? आत्मा के अनुभव (बिना चारित्र किसका?) यह आत्मा पूर्णानन्द परमात्मा है, उसे जहाँ लेने जाये, वहाँ विकार और विभावरहित स्वभाव है, उसमें ढलने से, पूर्णानन्द की—आत्मा की प्रतीति (होती है कि) यह निर्विकल्प ज्ञाता-दृष्टा है। ऐसा भान होने पर उसमें स्थिर होना, ऐसा चारित्र बाद में आवे। इसके बिना चारित्र आता कहाँ से था? धूल में? कहो, समझ में आया? एक दो पूड़ी और पाव सेर दूध खाता है। बहुत त्याग है। (वह) धर्म का त्याग है। समझ में आया? ऐई! ईश्वरचन्दजी! आहाहा!

(एक व्यक्ति) कहे, भाई! यह सब पुस्तकें निकाल डाली। अब कौन उसका ध्यान करे? करनेवाला करेगा करना होगा तो। उसमें क्या है परन्तु अब? ऐसा कि यह सब निकालते हैं न गाँव में अपने मकान में से। निकाल डालो यह पुस्तकें। वह तो होनेवाला होगा, वह होगा। उसे कोई रोक सकता है? नहीं, नहीं। यह तो एक कोई कदाचित् हो तो भी क्या? उसे रोके कौन? और समझानेवाले को समझावे कौन? ऐई! बात ही कोई दूसरी है। आहाहा! यह तो जिसकी पर्याय की योग्यता है, तत्प्रमाण उसका परिणमन होगा। परन्तु उसमें क्या है? रोकना है किसे और छोड़ना है किसे और रखना है किसे? अब तो देखादेखी हो गयी है। निकालो, निकालो।

अरे! भाई! यह परमात्मा का स्वरूप है, ऐसा जिसे ज्ञान होने पर वह तो ज्ञाता-दृष्टा के काम में रहे, उसे होना हो, वह हो और न होना हो, वह न हो। उसमें कौन करे और न हो कहाँ?यह दूसरे का ज्ञान भी कौन करे? और उसे समझे बिना तू समझना बराबर, हों! वह कौन कर सकता है? धर्मचन्दजी! ...चन्दजी! कौन करता है प्रचार की

नोंध ? किसने की ? क्या किया ? रामजीभाई ने विकल्प किया। क्या किया ? क्या है ? तुम ट्रस्टी हो, कहते हैं। यह है दो के सब। यहाँ लिखते और वहाँ भी लिखते, चारों ओर लिखते। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा !

कहते हैं, उसे जान (कि) भगवान परमात्मा ऐसे हैं। आहाहा! जिनकी एक समय की दशा में तीन काल-तीन लोक का जानना प्रगट दशा। यह वह कोई बात! जिसे पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... आनन्द का पूर्ण आनन्द का अतीन्द्रिय का अनुभव। जिसके वीर्य के बल का पूर्ण विकास, पूर्ण विकास, अनन्त-अनन्त गुणों की पूर्ण पर्याय की रचना का वीर्य काम करे, ऐसा पूर्ण। अरे! यह वह कहीं आस्था! उसका स्वीकार। भीखाभाई !

अपने आँगन में केवली को पधराते हैं। देखो! ऐसे भगवान पूर्ण ज्ञान, दर्शन के धारक, अनन्त परमात्मा ऐसे, इस राग में पधराना है ? राग में आ सकेंगे ? राग जाननेवाला है ? जाननेवाला ज्ञान है। उस जाननेवाले ज्ञान में वे आ सकते हैं। ज्ञान में उनका ज्ञान आ सकता है, राग में उनका आता नहीं। बस, समाप्त हो गया। तो उसका ज्ञान, अनन्त सर्वज्ञ ऐसे परमात्मा हैं, उनका यहाँ ज्ञान में ज्ञान आता है, राग में नहीं, इसलिए ऐसा ज्ञान ऐसा बड़ा, वह जहाँ प्रतीति करने जाता है, तब उसे शुद्धत्मा ही उपादेय है, ऐसा आ जाता है। कहो, बराबर है मन्त्रीजी ? आहाहा! गुण को पधरा सकते हैं ?

यह पर्याय में ख्याल कर सकता है। ऐसे परमात्मा, ऐसे परमात्मा। आहाहा! अनन्त अनन्त जिनकी पर्याय पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण, उसे जहाँ ज्ञान में लाता है, वहाँ वह राग और पर से हट जाता है। हट जाता है अर्थात् द्रव्य के ऊपर दृष्टि जाती है। ज्ञायक पूर्णानन्द के ऊपर दृष्टि जाये, तब उसकी पर्याय में परमात्मा का ध्यान हुआ कहलाये। आहाहा! कहो, समझ में आया ? इससे इसमें रखा न ?

'चिन्तवन कर।' केवलज्ञानादिरूप उस परमात्मा के समान... उनके जैसा मैं, ऐसा। ऐसा कहा। है न ? पाठ में है। समझ में आया ? **'सदृशो'** देखो! **'केवलज्ञानादि-व्यक्तिरूपमुक्तिगतपरमात्मसदृशो'** उनके जैसा मैं। आहाहा! इतना अन्दर पुरुषार्थ है वहाँ। समझ में आया ? वह केवलज्ञान आदि पूर्ण परमात्मा, उन सिद्ध समान सदृश। उन सिद्ध के जैसा ही मैं। मुझे और उनमें कुछ अन्तर नहीं। सदृश। देखो! जिसमें विकल्प

है नहीं, उसमें विकल्प उठाना कहाँ रहा ? सेठी ! आहाहा ! ऐसे **परमात्मा के समान,...** प्रगट परमात्मा है, उनके समान। रागादि रहित भगवान आत्मा, पुण्य-पाप के विकल्प रहित आत्मा **अपने शुद्धात्मा को पहचान, वही साक्षात् उपादेय है,...** लो ! वे साक्षात् आदरणीय हैं। समझ में आया ?

साक्षात् उपादेय है,... हों ! पाठ में है, भाई ! साक्षात्। क्या कि साक्षात् यहाँ। वे परमात्मा हैं, वे पर हैं। परन्तु उन्हें यहाँ साक्षात् करने जाये तो साक्षात् उपादेय यह होता है, साक्षात् उपादेय यह है। आहाहा ! बात तो भाई ! बड़ी है, बापू ! आहाहा ! वस्तुस्थिति यह है न। ऐसे अकेला चैतन्य भगवान ऐसा ज्ञान का गोला, उसे देखना और ज्ञान की वर्तमान अवस्था से परिपूर्ण, जिसमें राग की गन्ध नहीं और ज्ञान में अपूर्णता नहीं। राग की गन्ध नहीं, वासना की गन्ध नहीं और अपूर्णता का एक अंश नहीं। ऐसा पूर्ण परमात्मा शुद्ध, प्रभु ! कहते हैं कि उसका साक्षात् उपादेय, उनके जैसा तू है, वह उपादेय है। आहाहा ! परमात्मप्रकाश। समझ में आया ?

अरे ! बड़े राजा घर में आवे, उसका आँगन कैसा उज्ज्वल होता है ? बड़ा राजा आवे न ? बड़ा राजा आवे न घर में ? घर में, घर में समझते हो या नहीं ? अपने घर पर। तो घर का आँगन साफ करे। साफ-सूफ करे, चाकला-बाकळा बाँधे और ऐसे व्यवस्थित करे ऐसा। इत्र-बीत्र नहीं परन्तु अपने सुगन्धी लो न गुलाबजल, गुलाबजल ऐसे डाले। राजा-महाराजा अपने घर में आये हैं। बाहर दिखाये उसे, कहते हैं।

यह तो अन्दर के आँगन उज्ज्वल करे पर्याय में। विकार भगवान को नहीं, उसे मुझे यहाँ पधराना है। तीन लोक के नाथ परमात्मा पूर्णानन्द पूर्ण पर्याय जिन्हें तीन काल-तीन लोक हस्तामलवत् हो गये हैं, ऐसे भगवान मेरे आँगन में ! तो इसका अर्थ हुआ कि उसकी पर्याय में इतना बल आया कि जो पर्याय आत्मा को शुद्धात्मा के रूप से स्वीकारती है। समझ में आया ?

इस बात की गन्ध आये बिना इसे उसका माहात्म्य आता नहीं। अब यह माहात्म्य हाँके ही रखे। यह करो... यह करो... यह करो... यह करो। यह तो है, अब यह तो है और यह करते हैं। यह कहाँ नहीं ? अब धर्म क्या है ? धर्म कैसे हो ? हुआ वह हुआ। अब उसे फिर से संसार होगा नहीं। वह चीज क्या ? समझे न ? हुआ, वह रहा और गया

वह गया। वह क्या? आता है न? उत्पाद, वह व्ययरहित; व्यय, वह उत्पादरहित। प्रवचनसार में आता है। आत्मा उत्पाद अर्थात् आत्मा शुद्ध चिदानन्द परमात्मा जैसा है। यह परमात्मा है, ऐसा मैं। ऐसी जहाँ दृष्टि उत्पन्न हुई, वह हुई। वह अब जाती नहीं। वह परमात्मा होता है। और मिथ्याभ्रान्ति गयी, वह गयी। अब भ्रान्ति आती नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि, वह परमात्मा सदृश भगवान आत्मा अपना। वही **उपादेय है, अन्य सब संकल्प विकल्प त्यागने योग्य है।** यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! हिन्दीवालों को समझ में आये ऐसा है। थोड़ा-थोड़ा ध्यान रखे तो समझ में आये। भाई! 'नहीं समझ में आता' डाले उसे नहीं समझ में आता। गुजराती भाषा सादी है। आठ-आठ वर्ष के लड़के केवलज्ञान पाते थे। ईश्वरचन्दजी! उसमें क्या है? आहाहा! ऐसा भगवान अपने पिण्ड—चिदानन्द पिण्ड में ढला, एकदम केवलज्ञान! परन्तु इसे भरोसा आना चाहिए न? भरोसे में ऐसे-ऐसे लबक लबक हो। यह तो ऐसा होगा, ऐसा होगा? वहाँ दीपक बुझ जायेगा। समझ में आया? यह दीपक बुझे, तब ऐसे लबक-झबक हो, वहाँ तो बुझ जानेवाला है। ... रूप से अन्दर ज्ञानानन्द मूर्ति हूँ। पूर्ण परमात्मा ऐसे थे। ऐसे अनन्त परमात्मा का मैं भक्त हूँ, उनका दास हूँ, उनका सेवक हूँ। कब हो? समझ में आया? उस विभाव का, निमित्त का दास छूटकर स्वभाव का दास हो, तब परमात्मा का दास होता है। समझ में आया? आहाहा!

देखो न! टीकाकार ने सदृश डाला वापस। ध्यान करने का कहा। तू परमात्मा को जान और परमात्मा का (ध्यान कर)। यहाँ दस दोहों में तो सिद्ध की ही व्याख्या है। सिद्ध की व्याख्या दस दोहों में। सोलह से। सिद्ध की व्याख्या करते हुए वहाँ कह दिया वापस कि भाई! देखो! ऐसे हैं सिद्ध, ऐसे हैं सिद्ध, ऐसे हैं, उन्हें जान और ध्यान कर। इसका अर्थ यह आ जाता है कि उनके जैसा शुद्धात्मा तू है, उसे उपादेय जान, तब तूने सिद्ध को जाना कहलाये। आहाहा! समझ में आया? कहो, भगवानभाई! यहाँ तो अभी णमो सिद्धाणं की बात है। णमो सिद्धाणं की खबर नहीं होती। णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं करे। उसे खबर है। उसके गाँव में। सवेरे आवे... किया करे। भाई! तुमने नहीं देखा होगा। देखा है? न अर्थ आवे सिद्ध का, न आवे अरिहन्त

का। वे सिद्ध कैसे? वे तो भगवान केवलज्ञानी परमात्मा। परन्तु केवलज्ञानी अर्थात् क्या? ऐसे परमात्मा सिद्ध को जहाँ वन्दन करना। देखो न! वह की वह बात ली है। वह तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? सिद्ध को वन्दन करता हूँ। यह दूसरे ढंग से बात की। वह वन्दन करूँ तो इसका अर्थ कि मेरे स्वरूप में उन्हें स्थापित करता हूँ। अर्थात् मैं सिद्ध समान मेरा आत्मा है, उसमें दृष्टि को ले जाता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

अब, संकल्प विकल्प का स्वरूप कहते हैं, कि जो बाह्य वस्तु पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब, बान्धव आदि सचेतन पदार्थ, तथा चाँदी, सोना, रत्न, मणि के आभूषण आदि अचेतन पदार्थ हैं, इन सबको अपने समझे, कि ये मेरे हैं, ऐसे ममत्व परिणाम को संकल्प जानना। यहाँ मिथ्यात्व का ही संकल्प लिया है। समझ में आया? और मिथ्यात्व का ही विकल्प लिया है। क्या कहा? भगवान आत्मा अपना द्रव्यस्वभाव वस्तु, उसे छोड़कर जितनी बाह्य चीज़ें हैं, वे इत्यादि पुत्र, परिवार हमारा... हमारा... हमारा... हमारा... ऐ! हमारे हों, वे तुझमें प्रवेश कर गये हों। वे तेरे नहीं।

मुमुक्षु : कब्जा होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका कब्जा है? और यह चाँदी, सोना, रतन, मणि लाये, लो! ऐई सेठी! तुम्हारे ऐसे आभूषण इत्यादि अचेतन पदार्थ। हमारे गहने, हमारा सोना, हमारे मणि (के) गहने, हमारा यह, हमारा यह। लटकते होते हैं न? ऐरिंग? क्या कहलाता है? ऐरिंग। ऐरिंग लगावे। कहो, समझ में आया?

ऐसे ममत्व परिणाम को संकल्प जानना। मिथ्यात्वरूपी संकल्प। शरीर मेरा, स्त्री मेरी, परिवार मेरा, पुत्र मेरे। परन्तु अब यह वह कहीं बाबा हुए बिना मेरापन तोड़ा जाये? ऐसा कहता है। परन्तु बाबा है, सुन न! उनसे रहित ही है तू यहाँ। आहाहा! समझ में आया? स्त्री, परिवार, भाई इत्यादि सचेतन पदार्थ परवस्तु, परवस्तु। चाँदी, सोना, अचेतन इत्यादि परवस्तु **सबको अपने समझे, कि ये मेरे हैं,...** कहो, समझ में आया? वे सब परद्रव्य मेरे। चाहे वह मन्दिर हो, यह देव-गुरु-शास्त्र हो, वे इत्यादि में आ जाते हैं। वह पर मेरे। वह पर इसमें नहीं तीन काल में। वे पर मेरे, उनसे मुझे लाभ होता है, यह परिणाम ही संकल्प और मिथ्यात्व है। भाई! क्या करना यह? एकदम नाह डालना? शोक सन्देश सुनाते नहीं? सुनाते हैं न। ... रखे फिर। यह बनिया में है न?

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, छोड़ न शोर अब, राग को छोड़ न। यह पर मेरे, यह तो तू रोता है, रोना है। उसमें तू मर गया। परवस्तु तेरी तीन काल में नहीं, तीन काल में नहीं, तीन लोक में नहीं। काल और क्षेत्र में नहीं तो भाव में है नहीं। आहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह महासुख तुम्हारा नहीं, पर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होगा। ऐसे वापस जाये तो ऐसे हाथ फिरावे यह। १२ वर्ष का, १४ वर्ष का, १५ वर्ष का हाथ फिरावे। यहाँ से जाते हो न! हम तो देखते हैं न! हमारे तो सब नाटक देखने का होता है न! और पिता-पुत्र को प्रेम हो, इसलिए सब... कैसे, शिवलालभाई! कहाँ गये तुम्हारे? नहीं आये। पिता-पुत्र दोनों को बहुत प्रेम। अनुभाई को इनके पिता के प्रति बहुत प्रेम। जाते हों तो ऐसे हाथ रखे।

यहाँ कहते हैं, कोई किसी का नहीं। अरे.. अरे! शिवलालभाई! आहाहा! किसी का मेल न हो तो भी मेल होगा। प्रेम ऐसा। परन्तु कहते हैं कि मेरे हैं नहीं। मेरे मानना, वह संकल्प मिथ्यात्व है। वह झूठा है, वह दुःखरूप है। आहाहा! परन्तु यह घर के पुत्र, ये अपने पुत्र, उन्हें अपना नहीं मानना? घर के पुत्र तो तेरी निर्मल पर्याय श्रद्धा-ज्ञान हो, वह तेरी प्रजा है। ये पुत्र कहाँ से आये तेरे? थे कब कहीं? आहाहा! यह मेरे, यह मेरे। अच्छे पुत्र हों तो प्रसन्न हो। खराब पुत्र हो तो नाराजगी हो। यह सब मेरेपने का मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? अब भाई! पाँच-पाँच हजार वेतन लाता हो महीने में, यह छह हजार का। अभी रामजीभाई के पुत्र का याद नहीं। यह तो और तुमने याद कराया। मैं तो फिर साधारण बात (कहता हूँ)। ऐई! अब यह पुत्र इनके, देखो न! कितने पाँच-पाँच हजार का वेतन लावे, लो! परन्तु किसके? किसके लड़के? किसके पैसे?

दो लिये यहाँ तो। सचेतन और अचेतन लक्ष्मी मेरी, वह लक्ष्मी मेरी। वह घर जहाँ देखे न तो वह घर मेरा। पचास-पचास वर्ष से यहाँ रहनेवाले हैं, हमारे पिता के पिता यहाँ रहते थे। यहाँ रहते थे कि, तेरे आत्मा में थे तुम? कहाँ रहे? धूल में? वह

घर याद आवे न जहाँ रहते हो वहाँ। वह कहे, यह हमारे पिता का घर, यह हमारे पूर्वजों का यह घर, पूर्वजों का यह घर। आहाहा! कहते हैं कि वह पर अचेतन और सचेतन। स्त्री / बायडी, लड़के, लड़कियाँ उन्हें मेरा मानना, यह महा संकल्प की ममता का परिणाम है। मिथ्या संकल्प है, मिथ्या संकल्प है। उसमें आत्मा की आहूति देता है। समझ में आया? मैं आत्मा उसमें हूँ, मुझमें नहीं, ऐसे जाओ, ओम स्वाहा। अपना ज्ञाता-दृष्टा अनन्त गुण का धनी भगवान, उसे यह मिथ्या संकल्प में होम कर डालता है। आहाहा! समझ में आया?

तथा मैं सुखी... यह वेदन की बात है। मैं सुखी हूँ। भाई! हमारे बादशाही है। लड़के कमाते हैं। आठ-आठ लड़के कमाते हैं और मुझे फिर लड़के आज्ञाकारी। हम सुखी हैं। मूढ़ है? कहाँ से लाया सुख? इन्हें दस पुत्र हैं। एक तो यहाँ साथ में रहता है। एक यहाँ है या नहीं? एक यहाँ है। एक बापू की सम्हाल रखने को चाहिए न! कहो, समझ में आया इसमें?

यह भी कैसी बात है? परन्तु अनन्त द्रव्य, द्रव्य द्रव्य भिन्न, उसमें तेरा कहाँ से माना तूने? यह कहते हैं। और हम सुखी हैं, हम सुखी पैसे, टके से, स्त्री-पुत्र से। मूढ़ है। मिथ्यात्व विकल्प है तेरा, मिथ्या, झूठा, पापमय विकल्प है। आहाहा! कहो, सुजानमलजी! ऐसे बारह सौ-बारह सौ का वेतनदार पुत्र हो तो ऐसे हृदय भर जाये या नहीं? अधिकारी बड़ा, कहो। आहाहा! कहते हैं, भाई! वह चीज़ छोटी या बड़ी, परन्तु उसकी है, तेरी कहाँ से यहाँ आ गयी?

मैं सुखी, मैं दुःखी, इत्यादि हर्ष-विषादरूप परिणाम... देखो! उस ममता के परिणाम। मेरा इतना था। और यह हर्ष-शोक के परिणाम। यह विकल्प। यह मिथ्यात्व का विकल्प है, हों! यह भी। वह संकल्प-विकल्प की व्याख्या अलग थी। उस संकल्प में मिथ्यात्व (और) विकल्प में अनन्तानुबन्धी। जो समयसार में आता है। यह तो दोनों ममता के, मिथ्यात्व के विकल्प।

हम सुखी। भगवान! हम सुखी तो आनन्दमय दशा, वह सुखी है। इस राग की मन्दता से हर्ष हुआ तुझे? ऐसे हर्ष हुआ और यह सब साधन, ओहोहो! देखो न, बापू!

ऐसे पाँच-पाँच, दस करोड़ के आसामी। पुत्र के विवाह में पाँच लाख ऐसे खुलकर, खुले हाथ से प्रयोग करे। हर्ष... हर्ष... हर्ष... स्त्री को तो हर्ष समाये नहीं, (गीत) गाने में गला बैठ गया हो तो हर्ष समाये नहीं। पुत्र का विवाह, भाई! अन्तिम-पहला हमारा है। अब फिर साठ वर्ष हुए अब तो लड़का... हर्ष... हर्ष... हर्ष... यह हम सुखी हैं। मूढ़ है? भीखाभाई! अरेरे! यह गजब बात, भाई!

मैं सुखी, मैं दुःखी, इत्यादि हर्ष-विषादरूप... समझ में आया? '**दुःखीत्यादि-चित्तगतो हर्ष-विषादादिपरिणामो**' विकल्प। यह हम सुखी-दुःखी, यह वेदन की अपेक्षा से लिया। और वह मेरा है, ऐसा माना। अपना द्रव्य पूरा (पड़ा रहा)। अपना द्रव्य भूलकर परद्रव्य को सचेतन, अचेतन द्रव्य को अपना माना और अपना वेदन आनन्द का भूलकर सुख-दुःख के वेदन को अपना माना। समझ में आया? ओहो! व्याख्या अलग। दिगम्बर सन्तों की, दिगम्बर मुनियों की पूरी शैली अलग है। दुनिया से निराली।

इस प्रकार संकल्प-विकल्प का स्वरूप जानना चाहिए। लो! **जानना चाहिए।** परन्तु '**सर्वत्र ज्ञातव्यम्।**' ऐसा है। ऐसा लक्षण सर्वत्र जानना। जहाँ-जहाँ संकल्प-विकल्प आवे, वहाँ ऐसा लक्षण जानना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ९, रविवार, दिनांक ०३-१०-१९६५
गाथा - १७ - १८, प्रवचन - १३

गाथा - १७

परमात्मप्रकाश का पहला भाग चलता है। १७वीं गाथा। **आगे नित्य निरंजन ज्ञानमयी परमानन्दस्वभाव शान्त और शिवस्वरूप का वर्णन करते हैं :-** वर्णन तो सिद्ध भगवान का है। परमात्मा कैसे हैं, उसका वर्णन है। परमात्मा जैसा अपना स्वरूप है, ऐसा जनकर अपने स्वरूप का अनुभव करना। यहाँ उसका यह तात्पर्य बतलाते हैं।

१७) णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंद-सहाउ।
जोएहउ सो संतु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ॥१७॥

भगवान सिद्ध परमात्मा **द्रव्यार्थिकनयकर अविनाशी...** वस्तुरूप से उसका द्रव्य स्वभाव तो अविनाशी है। और '**निरंजन**' **रागादिक उपाधि से रहित...** वर्तमान पर्याय में विकल्प आदि मलिन भाव से पर्याय रहित है। निर्मल पर्याय है। **अथवा कर्ममलरूपी अंजन से रहित...** रागादि और कर्म से रहित है। (जैसे) सिद्ध भगवान, वैसा आत्मा है, ऐसा बताना है। समझ में आया? जैसा आत्मा सिद्ध परमात्मा है, वैसा ही यह आत्मा है। पर्याय में उनको कर्म और विकार का निमित्त सम्बन्ध छूट गया है। यहाँ रागादि और कर्म का निमित्तरूप सम्बन्ध है। वह स्वभाव में नहीं है। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप, द्रव्यदृष्टि से सिद्ध भगवान नित्य है। पर्याय से रागादि, विकल्प, पुण्य-पाप और कर्म से रहित है। ऐसा यह आत्मा द्रव्यस्वरूप से शुद्ध है और पर्याय में जो रागादि विकल्प और कर्म का सम्बन्ध जो देखने में आता है। उससे भी वस्तु स्वरूप भिन्न है। ऐसा अपने आत्मा का ध्यान करना, अन्तर में दृष्टि लगाकर एकाकार होना, वही आत्मा की शान्ति का उपाय है। ओहोहो! समझ में आया?

कैसा है आत्मा? **केवलज्ञान से परिपूर्ण...** सिद्ध भगवान वर्तमान केवलज्ञान की पर्याय से परिपूर्ण है। यह आत्मा भी अन्दर केवलज्ञान से परिपूर्ण है। स्वरूप से ज्ञानमयी

आत्मा है। राग, विकल्प, शरीर, वाणी, मन, कर्म का उसमें सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया? **और... 'परमानंदस्वभावः' शुद्धात्म भावना कर उत्पन्न हुए...** यह सिद्ध की बात चलती है न? परमानन्दस्वभाव अपना शुद्धस्वरूप परमानन्द, उसकी भावना कर। देखो! साथ में उपाय बताते हैं।

सिद्ध कैसे हुए? अथवा सिद्ध परमात्म कैसे प्रगट हुए? कि, अपना निज स्वरूप जो शुद्ध आनन्द है, उस ओर की भावना अर्थात् अन्तर की एकाग्रता, उससे उत्पन्न हुआ परमानन्द, **वीतराग परमानन्दकर परिणत है,...** दो बोल लिये। क्या कहते हैं? अहो! भगवान शुद्धस्वरूप परमात्मा, यह परमात्मा शुद्ध, शक्तिरूप से—स्वभावरूप से। उसकी भावना। ऐसा शुद्ध भगवान परिपूर्ण ज्ञानानन्द वस्तु, उसकी सन्मुख की एकाग्रता, उस एकाग्रता द्वारा उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्द सुख, उससे सिद्ध परिणत है। ऐसे आनन्द से सिद्ध भगवान पर्याय में परिणत है। यह आत्मा ऐसा है, उसकी भावना करने से परिणत होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये भी तुम्हारे साथ मिल रहे हैं। यह आत्मा अन्दर है, भान नहीं है? जयचन्दभाई! यह आत्मा, आत्मा कितनी बात कहते हैं, बापू!

मुमुक्षु : आप कहते हो, परन्तु हमारा जागृत हो तब तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जागृत करे तब हो कि अपने आप हो जाये? जयचन्दभाई! ये शरीर, वाणी, मन उसमें नहीं है।

मुमुक्षु : कभी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी।

मुमुक्षु : ये शरीर में बीमारी है....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर जड़ रूपी है। आत्मा में बीमारी है ही नहीं।

मुमुक्षु : हमें क्यों लग रही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ होकर लग रही है। जयचन्दभाई! शरीर से घिर गये हैं।

लेकिन शरीर धूल है। ऐसा शरीर तो अनन्त बार आया और मिल गया, छूट गया। तेरी जाति में क्या चीज़ है ? ओहोहो! अनन्त काल में मनुष्यपने के भव में भव का अभाव करने का समय (मिला है)। उसमें यह भव मेरा, राग मेरा, शरीर मेरा मूढ़ होकर चार गति का परिभ्रमण करने का भाव करता है। आहाहा! समझ में आया ? कहाँ होगा ऐसा आत्मा ? जयचन्दभाई! अन्दर जानता कौन है ?

मुमुक्षु : स्वयं जीव हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जीव। ऐसा नहीं कहते ? शरीर छूट गया, जीव चला गया। जीव चला गया, वह क्या चीज़ है ? जीव गया, ऐसा कहते हैं या शरीर गया, ऐसा कहते हैं ? शरीर तो यहाँ पड़ा रहता है। तो जीव क्या है ? कौन है जीव ? ज्ञानानन्द आनन्दमय मूर्ति जीव है। ...रतिभाई! समझ में आया ? क्या कहते हैं, समझ में आता है ? ...

यह देह परमाणु का पिण्ड मिट्टी का है और यह वाणी भी जड़ है। अन्दर भगवान चैतन्यमूर्ति आत्मा जिसे कहते हैं, वह वस्तु है या नहीं ? आत्मा, ऐसा शब्द है तो आत्मा उसका वाच्य है या नहीं ? जैसे शक्कर शब्द है तो शक्कर पदार्थ है या नहीं ? ऐसे यह आत्मा, ऐसा शब्द वाचक है। तो वाच्य क्या है ? आत्मा पदार्थ है। तो ऐसी चीज़ आत्मा है क्या ? किसे कहना आत्मा ? आत्मा में तो ज्ञान, आनन्द, शान्ति, अनाकुल स्वच्छता, पूर्णता अनन्त शक्ति का पिण्ड भगवान आत्मा है। खबर नहीं, कभी विचार किया नहीं। अनन्त काल चौरासी के अवतार में कभी विचारने का अवसर मिला तो अवसर लिया नहीं। ऐसे ही खो दिया। आहाहा!

आज सवेरे रास्ते में तो ऐसा विचार आया था, अहो! मुनियो, सन्तो! मनुष्य का स्थान तो छोड़ दिया, परन्तु मनुष्य का पगरव वन में हो वहाँ भी हम नहीं है। आहाहा! हमारे आत्मा की शोध के लिये हम एकान्त में चले जाते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप सत् अर्थात् शाश्वत्, आत्मा वस्तु शाश्वत् है। कहा न ? द्रव्यार्थिक से-द्रव्य से शाश्वत है। पर्याय अर्थात् उसकी दशा में पुण्य-पाप का विकल्प जो विकार दिखता है, वह उसका स्वरूप नहीं। और शरीर, कर्म उसका स्वरूप नहीं। ऐसा भगवान आत्मा, अरे! उसकी शोध का काल मिला और वह काल दूसरे की शोध में चला जाये। आहाहा! समझ में आया ? कुटुम्ब का करना, देह का करना, धूल का (करना)। पर

पदार्थ में कुछ कर सकता नहीं। उसमें ये सब करना। अपना स्वरूप चिदानन्दमूर्ति कौन है, उसकी शोध करने का भव है, उसमें शोध की पर की। रतिभाई! आहाहा! कुटुम्ब, स्त्री, देह, साले या लड़के, उसका करना, उसका करना, उसका करना। विकल्प की जाल में पर की शोध में जिन्दगी चली गई। अनन्त काल में अनन्त बार मनुष्यदेह मिला। परन्तु भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण आनन्द ज्ञानमूर्ति, उसकी अन्तर शोध करने में क्या चीज़ है, ऐसा कभी उसने विचार, मंथन किया नहीं। समझ में आया? बराबर है? ...मलजी! आज तो आप की हिन्दी में चल रहा है। बराबर है। आहाहा!

अरे! भगवान! तेरी चीज़ तो देह से भिन्न आत्मा... आत्मा... आत्मा कहते हैं तो वस्तु है या नहीं? वस्तु है तो वस्तु उसे कहते हैं कि जिसमें अनन्त गुण बसते हैं, उसको वस्तु कहते हैं। आत्मा में अनन्त गुण बसते हैं। अनन्त गुण, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द। भान नहीं, कभी विचार किया नहीं। अन्तर्मुख का मंथन किया नहीं। बहिर्मुख के घोलन में अनन्त काल (बीत गया)। साधु हुआ, त्यागी हुआ, मुण्डन करके पड़ा था तो दया पालनी, ये करना, व्रत करना, ऐसे पर के विकल्प में पड़ा। परन्तु अपनी चीज़ अन्तर में क्या है, उसकी शोध में आया नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : दुःखी हो रहा है....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये बता रहे हैं। दुःखी कैसे हो रहा है। मेरा, मेरा। तेरा नहीं है, उसमें माना मेरा। वह दुःख का ढंढेरा है। नहीं है तेरा, उसमें माना मेरा, यही तेरे दुःख का डेरा है। दुःख का तम्बू यह है। भगवान आत्मा, आहाहा! वस्तु, वस्तु, वस्तु है या नहीं? पदार्थ है या नहीं? जड़ है, शरीर है, यह है तो ऐसे आत्मा वस्तु है या नहीं? अरूपी परन्तु वस्तु है या नहीं? ये वस्तु है तो वस्तु में बसनेवाला कोई शक्ति, गुण, स्वभाव है या नहीं? वस्तु उसको कहते हैं। वास्तु नहीं कहते? वास्तु। वास्तु लेते हैं तो घर में लेते हैं या कोई जंगल में लेते हैं पानी में? वास्तु लेते हैं तो कोई मकान में लेते हैं या नहीं? वास्तु करते हैं ना? क्या कहते हैं? आपकी हिन्दी में क्या कहते हैं? (गृहप्रवेश)। पाँच-पचास लाख का घर बनावे न? गृहप्रवेश, ऐसा लो न। गृह में प्रवेश। बड़े मिट्टी के ढ़ेर में प्रवेश। समझ में आया? आज हमारे यहाँ गृहप्रवेश है। पाँच लाख का बँगला बनाया हो, आज पचास हजार का खर्च करने हैं, आज हमारा गृहप्रवेश

है। हम हमारा घर छोड़कर धूल के ढ़ेर में प्रवेश करते हैं।

भगवान आत्मा... ओहो! ज्ञानसमुद्र प्रभु है। जानन स्वभाव, दर्शन स्वभाव, आनन्द स्वभाव, शुद्ध चैतन्य स्वभाव त्रिकाल अनादि वस्तु जैसे नित्य है, ऐसा स्वयं का स्वभाव ध्रुव नित्य है। उसमें विकारमात्र नहीं, शरीरमात्र नहीं, कर्ममात्र नहीं। ऐसी अपनी चीज़ का अन्तर में ध्यान, दृष्टि लगाना, वही आत्मा का धर्म और मोक्ष का वही उपाय है। बाकी सब 'रण में शोर मचाने' जैसी बात है। समझ में आया? आहाहा! क्या कहते हैं? देखो!

भगवान आत्मा शुद्धात्मा सिद्ध परमात्मा कैसे हुआ? संसारी दशा का व्यय होकर, संसार विकार पर्याय में आत्मा को अनादि से थी। उस विकारी अवस्था का नाश कर, अन्तर के स्वभाव में शुद्धता का एकाकार ध्यान करके, अपनी भावना शुद्धात्मा में लगाकर, वीतराग परमानन्द सुख प्राप्त हुआ, उसका नाम परमात्मा सिद्ध भगवान कहते हैं। ऐसा ही अपना आत्मा है, उसका ध्यान करना, यह बताते हैं। शशीभाई! ऐसी बात। आहाहा! पूरा भगवान आत्मा तो गुम हो गया। उसकी नजर में तो ये सब चीज़ हैं। ये धूल, शरीर, वाणी और अन्दर दया, दान के परिणाम करता है वह पुण्य, उसकी नजर में है। धूल। पापभाव उसकी नजर में है। परन्तु पाप और पुण्य, राग से भिन्न भगवान है, जिसमें पूर्णानन्द और अनन्त ज्ञान भरा है। क्या चीज़ आत्मा है? उसकी कहाँ किसको पड़ी है। समझ में आया?

कहते हैं, प्रभु! तेरी अन्दर पहिचान कर, पहिचान कर। आहाहा! तेरी पहिचान, तेरी कीमत किये बिना अनन्त काल में पुण्य-पाप का भाव और शरीर आदि पर की कीमत करके तूने चौरासी के अवतार में चक्कर खाया, दुःख पाया। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु सच्चिदानन्द स्वरूप है। आहाहा! अपनी अपने को खबर नहीं, पर की खोज करने निकल गया। कहो, समझ में आया?

आचार्य महाराज कहते हैं, भगवान! यह भव तो भव का अभाव करने का काल है। उसमें भव के करने का विकार सेवन करके हम हैं, मानते हो, उसमें तेरे भव की वृद्धि होती है। यह मनुष्यभव उसके लिये है? मुश्किल से पचास-साठ-सत्तर वर्ष मिले। अनन्त काल में निगोद, नरक से निकलकर (ये मनुष्यभव प्राप्त हुआ है)। समझ में आया?

सवेरे यह याद आ गया था, भाई! (संवत्) १९८० वर्ष। वनेचन्द सेठ कहते थे। समझ में आया? 'वालीडा मारा टाणा रे आव्या कामना जी, ऊँटना भवमां तें खाधा कंथेरीना मार', कंथेरी नाम की वनस्पति होती है। ऊँट को मारे। पानी मिले नहीं। 'मनुष्यदेहना टाणा रे वालीडा तने नहीं मळे... अे वालीडा मारा आवो भव फरी नहि रे मळे।' जिसमें आत्मा का कार्य करने का प्रसंग है। भगवान! यह देह भोग, विषय और दुनिया का काम करने के लिये नहीं है, प्रभु! आहाहा! ये तो किसी की सम्हाल करने में लग गया, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, आगे गया तो देश और कुटुम्ब की सम्हाल धूल में भी कर सकता नहीं। मूढ़ जीव पर की सम्हाल करते-करते अपनी सम्हाल खो गया। बराबर है?

अन्दर सच्चिदानन्द भगवान (विराजमान है)। सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु पड़ा है। वस्तु है तो वस्तु में कोई शक्ति का वास न हो तो वस्तु किसकी? भगवान आत्मा वस्तु है, उसमें अनन्त ज्ञान आदि परिपूर्ण वीतराग निर्विकल्प शान्ति पड़ी है। कभी लक्ष्य किया नहीं, कभी सुना नहीं। कभी अपनी चीज़ को कैसी है, (उसे) विश्वास में कभी ली नहीं। आहाहा! और धर्म के नाम पर बाहर में कुछ करे तो ये दया या व्रत या भक्ति या पूजा करते-करते कल्याण हो जायेगा, (ऐसा मान लिया)। धूल में भी नहीं है, वह तो विकल्प, राग है। समझ में आया? वह भी पुण्य है, आत्मा के कल्याण का कारण बिल्कुल नहीं। आहाहा! क्योंकि आत्मा में वह है ही नहीं। वह तो कहते हैं।

भगवान आत्मा सिद्ध परमात्मा कैसे हुआ? अपना निजानन्द प्रभु, उसकी अन्तर में एकाग्रता करके। भावना कहा न? **उत्पन्न हुए...** पर्याय से। सिद्ध एक अवस्था है। सिद्ध कोई द्रव्य नहीं। उसका द्रव्य तो कहा। वस्तु आत्मा द्रव्यार्थिकनय से नित्य है। परन्तु उसकी अवस्था में—पर्याय में निर्मलानन्द वीतराग परमानन्द पूर्ण प्रगट हुआ, उसे परमात्मा और उसे मुक्ति, और उसे सिद्ध कहते हैं। वह कैसा हुआ? भगवान आत्मा...

घर के आठ सदस्य हों। रात को खटिये बिछाये हो। खाटला कहत हैं (या) क्या कहते हैं? उसमें दस बजे एक खाली देखे तो पूछे, क्यों सात ही है? एक लड़की कहाँ चली गयी? खोजने निकले। तुम कौन हो, उसकी कभी खोज की? सो गया। परन्तु तू

कहाँ सो गया? तुम हो कौन? कुछ खबर नहीं। ये लड़की कहाँ चली गयी? खटिये बिछाये हैं। सात तो हैं, आठवीं कहाँ गयी? आयी नहीं है। चलो, खोज करो गाँव में। धूल में... वह तो परवस्तु आनी हो, वह आये और जानेवाली जाये। परन्तु उसकी ममता से खोजने का पार नहीं। अनन्त काल ऐसी खोज में, अपनी खोज खोकर, सुधबुध को खोकर, पर को खोजने में अनन्त काल निकाला। आहाहा! समझ में आया? जयचन्दभाई!

ये तो सुन्दर शरीर हो, इन्द्र, देव का देह हो, परन्तु वह देह भी आत्मा को शान्ति का कारण नहीं। अन्दर में दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का भाव आता है, वह भी धर्म का और शान्ति का कारण नहीं। क्योंकि वह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान,...

कहते हैं, **परमानन्दकर परिणत है, जो ऐसा है, वही शान्तरूप और शिवस्वरूप है,...** समझ में आया? वही सिद्ध भगवान परमात्मा अशरीरी हुए, वे शान्त... शान्त... शान्त अविकारी शान्ति जिसे पर्याय में प्रगट हुई है। और शिव है—निरुपद्रव है। कोई उपद्रव है नहीं और शान्त है। ऐसी पर्याय अर्थात् अवस्था परमात्मा सिद्ध की प्रगट हुई, ऐसा ही यह आत्मा है। समझ में आया? 'सिद्ध समान सदा पद मेरो, चेतन रूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो।' भगवान आत्मा, अरे... अरे! निज स्वरूप की कीमत नहीं और पुण्य-पाप आदि पर की कीमत करता है, वह संयोग से कभी छूटता नहीं। समझ में आया? भव परिभ्रमण से कभी नहीं छूटेगा।

भगवान आत्मा... ओहोहो! मनुष्यभव मुश्किल से पचास-साठ-सत्तर वर्ष का। अनन्त काल में भटकते, भटकते, भटकते मिला। उसमें आत्मशोधन के काल में पर की क्रिया और दया, दान, व्रत भाव और पर में रुक गया। भगवान आत्मा की खोज में आया नहीं। खोज में आया, वह सिद्ध हुए बिना रहा नहीं। वह कहते हैं। अपने शुद्धस्वरूप की खोज में अन्तर में पड़ा, वह सिद्ध परमात्मा, परमात्मा हुए बिना रहे नहीं। वह परमात्मा शिव और शान्त है। दूसरा कोई शिव और शान्त है नहीं। कोई जगत का करनेवाला शिव है या ऐसा है—ऐसा है नहीं। समझ में आया?

वही शान्तरूप और शिवस्वरूप है, उसी परमात्मा का शुद्ध बुद्ध स्वभाव... देखो! उसमें लिखा है। परन्तु 'एक' स्वभाव नहीं लिखा है। '**शुद्धबुद्धैकस्वभावमित्य-**

भिप्रायः'। भगवान आत्मा, जो अपना शुद्ध परमानन्दस्वरूप में अन्तर एकाग्र होकर परमानन्द की प्राप्ति हुई, वह शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव हुआ। शुद्ध हूँ—रागादि रहित। बुद्ध हूँ—ज्ञान की पूर्ण परिणति। सिद्ध परमात्मा की एकरूप अभेद दशा हो गयी।

आत्मा... भाई! आत्मा कौन है? भाई! प्रभु! उसे अपनी कीमत नहीं। कौड़ी (क्षुद्र वस्तु) के लिये आत्मा को बेच दिया। आहाहा! थोड़ा कोई एक पाप परिणाम आया, बस! मजा! थोड़े दया, दान या भक्ति, कोमलता का, सेवा का भाव आया तो ओहोहो! (हो गया)। मूढ़! विकल्प, राग की मन्दता में पूरे आत्मा को खो दिया। जेठाभाई! आहा!

मुमुक्षु : उसमें स्वाद....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें धूल में भी स्वाद नहीं है। देखो न! ये दुःखी हो रहा है, परेशान हो रहा है। बार-बार अन्दर से वेदन आ रहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे ही सब अनन्त भी ऐसे ही हैं। उसका तो दृष्टान्त दिया। जयचन्दभाई! ये तो आगे बैठे हो उसका दृष्टान्त दिया। हैरान-हैरान हो गया।

भगवान आत्मा चिद्‌ज्योति। आहाहा! सन्तों, जहाँ मनुष्य का स्थान था, वहाँ से तो चले गये, परन्तु जहाँ मनुष्य के पैर जिस पगदण्डी पर पड़े हो, उस पगदण्डी पर भी नहीं आते। हमारा रास्ता और स्थान भी अलग है। आहाहा! राजकुमार चक्रवर्ती हो और चक्रवर्ती के पुत्र हो। देखो न! 'राम' के दो (पुत्र) लव और कुश। रामचन्द्रजी के दो पुत्र। जब लक्ष्मण का स्वर्गवास हुआ। छह महीने तक उठाकर चलते हैं। पिताजी! आज्ञा दीजिये! ओहो! पिताजी चाचा के मृत्यु के पीछे पागल हो गये। चाचा का स्वर्गवास हुआ। अरे! संसार। अरे! संसार। आहाहा! घर में पद्मिनी जैसी रानियाँ, हों! राजा की पुत्री। अरे! हम कहाँ है? अरे! हम कहाँ पड़े हैं? हमारा स्थान अन्दर में असंख्य प्रदेश में अनन्त आनन्द का धाम, वह हमें दृष्टि में आया, उसके शोधन में हम वहाँ अटक रहे हैं। ये विकल्प अटकाते हैं। स्त्री, कुटुम्ब-परिवार। पिता! आज्ञा दीजिये! समझ में आया? आहाहा!

छह खण्ड के राजा, ९६ हजार रानियाँ जिसके घर पर हों, वह भी जब ऐसा तत्त्व देखे... आहाहा! अरे! हमारे निधान को शोधने का समय हमने लिया नहीं। हमारे चेतन के निधान खोलने का समय नहीं लिया। जैसे नाक में से कफ निकाल दे, जैसे भूत को देखकर भागे, वैसे भागे। भागे, हाँ! कहाँ जाओगे? हम तो वन में जायेंगे। आहाहा! परन्तु ये सब स्थान, ये भरा हुआ घर, ये नया कुटुम्ब, नयी ताजी रोटी भोजन में मिले। पूरणपोली मिले, गरम-गरम दाल मिले। अरे! हमारा आनन्द पर की ओर के विकल्प में लूटा जा रहा है। आहाहा! हमारा अतीन्द्रिय आनन्द हमारा जीवन है, वह पर की ओर के विकल्प में लुट रहा है। हमें अब पोसाता नहीं। हमें अब पोसाता नहीं। बस, चल दिये। आहाहा! समझ में आया? (उनके पीछे) ९६-९६ हजार स्त्री स्वयं के बाल खींचे। (फिर भी) चल पड़े। मुर्दे को जैसे जनाज में श्मशान में ले जाते हैं, हम निकल पड़े हैं, स्वयं निकल पड़े हैं। मेरा भगवान मुझे दृष्टि में आया है। समझ में आया? मेरा प्रभु, मेरा चिदानन्द परमात्मा मेरी दृष्टि में मुझे आया है। मैं शोधने निकल पड़ा हूँ। उसका नाम साधु। अपने स्वरूप का शोधन साधे, वह साधु। बाकी सब ढोंगी साधु। समझ में आया? आहाहा! शशीभाई!

★ ★ ★

गाथा - १८

१८) जो णिय-भाउ ण परिहरइ जो पर-भाउ ण लेइ।
जाणइ सयलु वि णिच्चु पर सो सिउ संतु हवेइ ॥१८॥

जो भगवान सिद्ध परमात्मा को अपनी निज पर्याय में अनन्त ज्ञान, आनन्दादि प्रगट हुई, उसे कभी छोड़ते नहीं। और विकल्प रागादि, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति के विकल्प को वे कभी ग्रहण नहीं करते। ओहोहो! वैसे यह भगवान आत्मा, वस्तु की अपेक्षा उसका वस्तु स्वभाव, उसमें बेहद ज्ञानादि आनन्द है, वह स्वरूप वस्तुस्व, अपनी शक्ति-सत्त्व को कभी छोड़ते नहीं और वह वस्तु, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव को भी द्रव्य पकड़ता नहीं, ग्रहण करता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा अपना द्रव्यस्वरूप भगवान आत्मा पदार्थ, उसकी अन्तर दृष्टि का ध्यान करना, वह

मोक्ष का उपाय है। वह धर्म है, बाकी सब बातें दुनिया को ठगने की बातें हैं। समझ में आया? जयन्तीभाई! ये सब बातें बहुत (अलौकिक)!

देखो न! रामचन्द्रजी। कल विजयदशमी है न? यहाँ आत्मा की विजयदशमी है। अरे! भगवान प्रभु! तेरे स्वभाव शक्ति में तूने कभी पूर्णता का त्याग नहीं किया और कभी तूने अल्प विकार का एक सूक्ष्म थोड़ा विकल्प भी ग्रहण नहीं किया। ऐसी मेरी चीज़ है, ऐसी अन्तर में अनुभव दृष्टि करके, सम्यग्दर्शन प्रगट करके, स्वरूप में स्थिर होना, उसका नाम धर्म और मोक्ष का उपाय है। आहाहा! समझ में आया?

इतना तो है परन्तु **'सकलमपि केवल नित्यं जानाति।'** सिद्ध परमात्मा एक समय में—सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में, तीन लोक-तीन काल की सब चीजों को केवल, केवल खास हमेशा जानते हैं। सिद्ध हुआ, वह अपनी ज्ञान की एक समय की दशा में तीन काल-तीन लोक को पूर्ण-पूर्ण हमेशा नित्य... समझ में आया? केवल जानता है, ऐसा कहते हैं। किसी का कर्ता-फर्ता नहीं। अनन्त-अनन्त चीज़ों को केवल जानता है। एक विकल्प राग का (आये कि) दुनिया दुःखी है, मैं कुछ करूँ, ऐसा है ही नहीं। वह तो अपने अज्ञान से दुःखी है। ज्ञान जानता है कि वह अज्ञान से दुःखी है। वह अज्ञान तोड़ेगा तो सुखी होगा, मेरे से कोई सुखी-दुःखी होगा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहा!

कहते हैं, **तीन लोक-तीन काल की सब चीजों को केवल...** केवल क्यों लिया? इतना-इतना जाने तो उसमें कुछ हलचल है या नहीं? रागादि कोई विकल्प है या नहीं? केवल जानता है, केवल जानता है। सर्वज्ञ पर्याय में परमात्मा तीन काल-तीन लोक केवल जानता है। बस। यह आत्मा भी अपने ज्ञानस्वभाव में तीन काल-तीन लोक को जानने की शक्ति रखता है। बस, केवल जानने की शक्ति रखता है। केवल जानने की शक्ति। राग, पुण्य का विकल्प उठाने की शक्ति आत्मा नहीं रखता। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा सिद्ध परमात्मा केवल, केवल पूर्ण मात्र जानते हैं। बिल्कुल राग की अपेक्षा बिना जानते हैं। ऐसे भगवान आत्मा केवल जानने-देखने का स्वभाव ही आत्मा रखता है। उसके स्वभव में जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव की शक्ति आत्मा स्वभाव में नहीं रखता। आहाहा! समझ में आया? अरे! उसे उसकी कीमत नहीं। खबर

नहीं, खबर नहीं। बेखबर है। बेखबर अर्थात् दो-खबर होगा? दो खबर होगी? बे अर्थात् नहीं। नहीं तो दुनिया तो ऐसे कहती है कि बेखबर है। बेखबर आप में कहते हैं? हिन्दी में क्या कहते हैं? बेखबरा है। बेखबर अर्थात् दो खबर-दो ज्ञान होगा? बेखबर अर्थात् भान बिना का है। आहाहा! बेखबर फिर रहा है। बेखबर अर्थात् दो खबर होगी? दो की खबर। खबर अर्थात् ज्ञान। आहाहा!

भगवान चैतन्यप्रभु, तेरा चैतन्यहीरा जिसमें केवलज्ञान चमकता है, जिसमें राग के एक विकल्प का भाव ग्रहण करने की उसमें सामर्थ्य नहीं है। सिद्ध में सामर्थ्य नहीं है, वह तो पर्याय से नहीं है। यहाँ द्रव्य में सामर्थ्य नहीं, ऐसा बताते हैं। आहाहा!

केवल हमेशा जानता है, वही शिवस्वरूप... वही शिवस्वरूप, वही **शान्तस्वरूप है।** सिद्ध की व्याख्या कही। आहा! पहले कहा न? जैसा परमात्मा है, ऐसा ही तू है, ऐसा ध्यान करो। तेरा स्वभाव ऐसा शुद्ध बुद्ध परमानन्द है, वह राग की जाल में गुम हो गया है। गुम हो गया है। अब तू स्वभाव में गुम हो जाओ तो राग गुम हो जाये। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... 'सर्व जीव है सिद्ध सम' श्रीमद् कहते हैं न? 'सर्व जीव है सिद्ध सम, जे समझे ते होय।' बस, इतनी बात है। करना-फरना वह बात नहीं है, वह समझे वही उसकी क्रिया है। आहाहा! शशीभाई! श्रीमद् तो बहुत कहते हैं परन्तु आदमी को कुछ विचार करना नहीं है और पक्ष करके बैठ जाये। फिर ऐसा करने से ऐसा होगा और ऐसा करने से वैसा होगा, (ऐसा मान लेते हैं)। सूरजमलजी! उसमें आता है या नहीं?

सर्व जीव है सिद्ध सम, जे समझे वे होय।
सद्गुरु आज्ञा जिनदशा निमित्त कारण मांय॥

तेरी चीज़ तेरे ज्ञान में आवे तो गुरु को ज्ञानी को निमित्त कहने में आता है। अज्ञानी निमित्त नहीं होता, इतना निषेध करने को बताते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अपने यहाँ योगसार में है न? 'सर्व जीव है ज्ञानमय, जाणे समता भाव।' सर्व जीव परमात्मा स्वरूप अन्दर ज्ञानमय है। वस्तु है या नहीं? तो वस्तु का कोई स्वभाव

है या नहीं? कहते हैं, उसका ज्ञानप्रधान धर्म है। ज्ञानप्रधान धर्म, जानना प्रधान धर्म, जानना मुख्य धर्म। उसके साथ अनन्त स्वभाव भले हो। परन्तु वह तो ज्ञानमय है। राग, पुण्य विकल्पमय आत्मा है ही नहीं। कर्ममय तो है ही नहीं, परन्तु दया, दान के विकल्प से आत्मामय है नहीं, मय अर्थात् तन्मय है ही नहीं। भिन्न है, भिन्न है। आस्रवतत्त्व है। पुण्य परिणाम दया, दान का विकल्प तो आस्रवतत्त्व है। भगवान ज्ञायकतत्त्व में उसका प्रवेश है ही नहीं। आहा! (प्रवेश हो तो) दो तत्त्व भिन्न रहते नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अरे! एक रत्न जैसा पुत्र हो और कोई उसकी प्रशंसा करे तो उसे कितना अन्दर भाव होता है कि उसका कलेजा ठण्डा होता है। आहाहा! मेरा पुत्र! नेमचन्दभाई! नजर वहाँ चली गयी। आहाहा! भले पैसा कमाये और फिर पाप बाँधे। परन्तु उसे ऐसा लगे, आहा! मेरा पुत्र। यहाँ तो यह कहना है कि कोई पुत्र को अच्छा कहे तो प्रसन्न होता है। और यहाँ तुझे अच्छा कहे और तू प्रसन्न नहीं होता? समझ में आया? ऐसा पुत्र, उसका ऐसा पुत्र है। एक कहता था, मेरे साले की बहू ऐसी है। आहा! परन्तु इतनी प्रशंसा किसकी करते हो? होता है, होता है। आहा! मेरे साले की बहू ऐसी है। परन्तु साले की बहू को और तुझे क्या लेना-देना? मेरा साला और उसकी बहू, ऐसी। परन्तु तुझे क्या है? इतनी प्रशंसा सुनकर तुझे अन्दर में अच्छा लगता है। (यहाँ) तेरे भगवान स्वरूप का माहात्म्य करे, उसकी प्रशंसा करे, उसमें तू प्रसन्न न हो, और विकार में प्रसन्न हो जाये, विकार की प्रसन्नता नहीं जाये। तो तू तो पर की खुशी में खुश हो गया। आहाहा! समझ में आया? 'चीथरे वीट्युं रतन छे' भाई को ऐसा कहा था। मगनभाई ने कहा था। मोरबी के थे ना? गवर्नर आये थे, गवर्नर। मगन दफ्तरी। आपके अग्रणी थे ना पहले? वे आये थे। जब लेने आये थे ना? ... उस दिन उसे कहा था, इसमें कुछ माल नहीं है। उस दिन कहाँ माने? उस दिन तो अन्दर से वेग था। ये तो एक बात है। कोने में बैठकर कहा था। याद है? इसमें कुछ नहीं है। वह बाहर में बोलने लग गया था। कुछ भान, अक्ल नहीं। जय नारायण! यहाँ कहते हैं, अरे! पुत्र को रत्न कहे तो तू खुश हो जाये। ये तेरा चैतन्यरत्न ऐसा है, ऐसा (सुनने के बाद भी) तुझे वीर्य का उल्लास न आये? आहाहा! समझ में आया?

यह परमात्मप्रकाश है। परमात्मप्रकाश। **शिवस्वरूप तथा शान्तस्वरूप है।**

भावार्थ :- संसार अवस्था में... देखो! संसार अवस्था में सब जीव **शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव शक्तिरूप से परमात्मा हैं,...** जो परमात्मा शक्ति—सत्त्वरूप से न हो तो प्रगटरूप से कहाँ से आयेगा? समझ में आया? छोटी पीपर होती है न? छोटी पीपर। छोटी पीपर में चौसठ पहरी सामर्थ्य अन्दर चरपराई की भरी है। जो अन्दर में न हो तो बाहर में आयेगी कहाँ से? समझ में आया? घूंटकर निकाली है, वह बाहर प्रगट हो गयी है। अन्दर में पड़ी है वह छोटी पीपर का... ... क्या कहते हैं? ... सब में चौसठ पहरी-पूरा रुपया-सोलह आना चरपराई-तीखाश अन्दर में पड़ी है। जो है तो चौसठ पहरी प्रगट होती है।

ऐसे भगवान आत्मा का ठेला पड़ा है। ठेला का ठेला अनन्त आत्मा है। सब एक-एक आत्मा में चौसठ पहरा अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन पड़ा है। आहाहा! ज्ञान उसे स्वीकार करे, तब उसे विश्वास (आये)। आहा! मुम्बई में पूरा गोदाम भरा हो। किसी का पीपर का व्यापार हो तो पीपर का ही होता है। लाखों रुपयें की पीपर। एक-एक पीर में चौसठ पहरी—सोलह आना—रुपया या चौसठ पैसा कहो या चौसठ आना कहो। चौसठ पहरी पूरी शक्ति पड़ी है तो प्रगट होती है। वैसे ठेले के ठेले पड़े हैं। चौदह ब्रह्माण्ड... क्या कहते हैं? समझ में आया? गोदाम। चौदह ब्रह्माण्डरूपी गोदाम। उसमें अनन्त आत्मारूपी ठेले पड़े हैं। एक-एक आत्मा में अनन्त ज्ञान, दर्शन शक्ति अन्दर पड़ी है। आहाहा! यह चौदह ब्रह्माण्ड गोदाम है। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो!

संसार अवस्था में... संसार में निगोद भी लेना, हों! निगोद जीव, आलू, शक्करकन्द, ईंट, चींटी सब चीज़ हैं न? जीव ही है। जीव है, अवस्था में मलिन भले हो, शक्तिरूप से तो परमात्मा ही है। चौसठ पहरी उसमें ताकत भरी है। इतनी चींटी होती है, परन्तु आत्मा है या नहीं? इतना बड़ा हाथी है तो आत्मा है या नहीं? आत्मा में छोटा-बड़ा कहाँ से आया? वह तो क्षेत्र से छोटा-बड़ा ऐसा अवगाहन हुआ। भाव में छोटा-बड़ा कहाँ से आया? समझ में आया?

कहते हैं, **संसार अवस्था में शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर...** वस्तु अपेक्षा परमात्मा अपना निज स्वरूप की दृष्टि से देखो तो सभी जीव शक्तिरूप से परमात्मा हैं। जैसे

चौसठ पहरी सामर्थ्य चरपराई, हमारी गुजराती में तीखाश कहते हैं, चौसठ पहरी-सोलह आना पड़ी है, पीपर में चरपराई-तीखा रस पड़ा है, ऐसे आत्मा में अनन्त ज्ञान का पूर्ण रस सबमें भरा है। कहो, बराबर है? जयन्तीभाई! ऐसे ही एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय... तस्स मिच्छामि दुककडम कर लिया। ... ऐसा बड़ा आत्मा, उसको ऐसा मानना कि मैं अल्प ज्ञानमय और रागमय हूँ, ... पूरे जीवत्व का नाश कर दिया। दृष्टि में अपने चैतन्य भगवान का माहात्म्य का नाश कर दिया। उसका नाम जीविया ववरोविया है। ईच्छामी पडिक्कमा में आता है न? प्रतिमक्रमण के पाठ में आता है। आपने किया है या नहीं? किया था पहले? ... नहीं आता है? नहीं आता होगा। सामायिक के सात पाठ आते हैं न? सामायिक के। णमो अरिहंताणं से बोल रहा हो, इच्छामि, तस्सूतरी, लोगस्स, ... नमोत्थुणं, सात आते हैं या नहीं? आहाहा!

व्यक्तिरूप से नहीं है। प्रत्येक वस्तु, जैसे छोटी पीपर के ठेले हो, उन प्रत्येक में चौसठ पहरी शक्ति पूर्ण भरी है। प्रगट हो तब पर्याय में—अवस्था में प्रगट होती है। ऐसे प्रत्येक आत्मा पूरा चौदह ब्रह्माण्ड गोदाम, अनन्त आत्मा का ठेला पड़ा है, उसमें एक-एक पीपर में जैसे चौसठ पहरी (चरपराई भरी है, वैसे) एक-एक आत्मा में पूर्ण परमात्मा शक्तिरूप से पड़ा है। आहाहा! किस तरह उसे बैठे? भोग बिना चले नहीं, उड़द की दाल अच्छी नहीं बनी हो तो माथा (खराब हो जाये)। उड़द की दाल। उसमें मठ्ठा डालकर एकरस बनी न हो तो... अरे! भगवान! एकरस तुम हो अन्दर। तेरा (एक रसपना) पुण्य-पाप का विकल्प मेरा, उसमें तेरा अन्तर का एकाकार का रस चला गया। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अपना बल खोजने को निकल पड़े। मैं तो मेरे शोधन में हूँ। या पर के शोधन में मैं रहूँ? आहा! भाव करता है। अपना स्वरूप भगवान आत्मा, जिसमें पूर्ण परमात्मा पड़ा है, वह उसकी पर्याय में एन्लार्ज होता है, पर्याय में प्रगट होता है। अन्दर में है, वह बाहर आता है। 'ऐसा कथन अन्य ग्रन्थों में भी कहा है...' विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ९, सोमवार, दिनांक ०४-१०-१९६५
गाथा - १८ से २१, प्रवचन - १४

गाथा १८। परमात्मप्रकाश १८वीं गाथा चलती है। उसका भावार्थ। देखो! अधिकार क्या है? यह परमात्मप्रकाश है। संसार अवस्था में जो आत्मा है, वह तो शुद्ध आनन्दकन्द सिद्ध समान ध्रुव है, शुद्ध। आत्मा वस्तु पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति अर्थात् चारित्र आदि शुद्धस्वरूप का वह पिण्ड आत्मपदार्थ है आत्मा। उसकी वर्तमान एक समय की अवस्था में, जिसको यहाँ संसार अवस्था कहते हैं... वस्तु त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द ध्रुव, उसकी एक समय की (पर्याय), एक सेकेण्ड के असंख्यवे भाग में—एक समयरूप संसार अवस्था में एक समय की अवस्था न देखो तो **शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव शक्तिरूप से परमात्मा हैं,...** समझ में आया? एक समय की वर्तमान विकृत अवस्था को न देखो... क्योंकि वह तो पर्याय-अवस्था नय का विषय है। वर्तमान पुण्य-पाप, राग-द्वेष आदि जीवपदार्थ में वर्तमान अवस्था में पर्याय में जो दिखते हैं, वह तो वर्तमान एक समय की अवस्था का विषय है। वस्तु जो है, पदार्थ, द्रव्यार्थिक शुद्ध द्रव्यार्थिक। शुद्ध द्रव्यस्वरूप चिद्घन आनन्दकन्द, परमानन्द की मूर्ति सभी जीव शक्तिरूप से परमात्मा हैं। सब आत्मा, अनन्त आत्मायें सब परमात्मस्वरूप ही है। वस्तुदृष्टि में तो। समझ में आया?

व्यक्तिरूप से नहीं है। वर्तमान पर्यायरूप नहीं, वर्तमान अवस्थादशारूप, जो आत्मा शक्तिरूप से परमात्मा है, वह पर्यायरूप से नहीं। **ऐसा कथन अन्य ग्रन्थों में कहा है...** कि **परमकल्याणरूप,...** यह पर्यायरूप की बात चलती है। जो आत्मा पर्याय अर्थात् अवस्था—हालत में परमात्मपद पाया, वह कैसा है? परम कल्याणरूप है। वस्तुस्वरूप में तो परम कल्याण था ही। वस्तु में—परम द्रव्य में तो परम कल्याण था ही। अनुभव निर्विकल्प ध्यान द्वारा, वस्तु का स्वरूप शुद्ध अखण्ड आनन्द उसे अन्तर रागादि का, मन आदि के अवलम्बन बिना, शुद्ध वस्तु का त्रिकाल का अवलम्बन, ऐसी

निर्विकल्प रागरहित पर्याय-अवस्था में उसका ध्यान करने से आत्मा परम कल्याणरूप वर्तमान पर्याय में प्रगट होता है। समझ में आया?

परमकल्याणरूप, निर्वाणरूप... शीतलीभूत वर्तमान दशा में (हुआ)। निर्वाणस्वरूप, शीतलीस्वरूप तो है ही। वस्तु पदार्थ अकषाय शीतल अर्थात् शान्त (स्वरूप है), उसमें कषाय की अग्नि बिल्कुल नहीं है। ऐसा आत्मा निर्वाणस्वरूप द्रव्य है। वह पर्याय में निर्वाणरूप हुआ। समझ में आया? **महाशान्त...** भगवान आत्मा वस्तु अपेक्षा से तो महाशान्त ही है। महाशान्त... शान्त... शान्त (है)। ऐसा अन्तर में ध्यान करने से पर्यय में महाशान्तपने की दशा प्रगट हुई, उसे सिद्ध परमात्मा कहते हैं। समझ में आया?

अविनश्वर,... द्रव्य आत्मा तो अविनश्वर है। परन्तु पर्याय में अविनश्वर दशा प्रगट हुई। इस संसार में चार गति में परिभ्रमण (में) भिन्न-भिन्न, भिन्न-भिन्न गति होती थी। एक समय में भिन्न-भिन्न गति का परिवर्तन (होता था), उसका नाश होकर (अविनश्वर दशा प्रगट हुई)। वह नाशवान गति थी। उसका नाश होकर वस्तु अविनश्वर तो है ही, पर्याय में अविनश्वर दशा हो गयी। अन्तर आत्मा का अनुभव का ध्यान करके, चिद्विलास स्वरूप का ध्यान करके (सिद्धदशा प्रगट हुई)। उसका दूसरा कोई उपाय नहीं है। समझ में आया?

वस्तु अखण्डानन्द प्रभु, उसका ध्यान करके पूर्ण अविनश्वर पर्याय का उत्पन्न होना, उसका नाम सिद्ध परमात्मा कहते हैं। **ऐसे मुक्ति-पद को जिसने पा लिया है,...** ऐसे जिसने अपनी वर्तमान दशा में मुक्त अवस्थारूप प्राप्ति कर ली। **वही शिव है,...** वह शिव है। दूसरा कोई जगत का कर्ता-हर्ता शिव है नहीं। जगत का दूसरा कोई शिव कर्ता है, या नाश (कर्ता) है, ऐसा है नहीं। आत्मा ही शिवस्वरूप था, वस्तु यह आत्मा ही शिवस्वरूप था। अपना ध्यान करने से, निज स्वरूप का ध्यान करने से पर्याय में शिवरूप हुआ। वही परमात्मा है, दूसरा कोई परमात्मा जगत का करनेवाला, हरनेवाला है नहीं। समझ में आया?

अन्य कोई, एक जगत्कर्ता सर्वव्यापी सदा मुक्त शान्त नैयायिकों का तथा वैशेषिक आदि का माना हुआ नहीं है। नैयायिक और वैशेषिक मानते हैं कि सदा शिव

कोई है। ऐसा कोई है नहीं। आत्मा ही शिवस्वरूप अन्दर परमात्मस्वरूप शक्ति का दल था, आनन्दरूप था, उसका ध्यान करने से पर्यय में पूर्णानन्द अविनश्वर दशा हुई, उसको मुक्ति और उसको शिव कहते हैं।

यह शुद्धात्मा ही शान्त है, शिव है,... यही परमात्मा शुद्ध आत्मा शान्त और शिव है। वही **उपादेय है।** अर्थात् वैसा ही यह आत्मा है, वही आत्मा अन्तर में उपादेय है। उपादेय अर्थात् अन्तर ध्यान करनेयोग्य वह चीज़ है। समझ में आया? यह तो परमात्मप्रकाश है। तैयार लड्डू बनाकर (दिये हैं)।

भगवान आत्मा... आगे बहुत गाथा आयेगी। पूर्णानन्दस्वरूप, स्वरूप स्व-रूप जिसका, वस्तु आत्मा वह तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण परमात्मस्वरूप ही शक्ति का सत्त्व है। उसमें एक अंश में भी फेरफार है नहीं। वस्तु में एक समय की संसार की अवस्था है, स्वरूप का एक समय का अन्तर ध्यान लगाना। ध्यान लगाने से (संसार) अवस्था का व्यय होता है, और शुद्ध आनन्द की प्रशान्त, शिव, निरुपद्रव अवस्था प्राप्त होती है। उसी सिद्ध को शिव और शान्त कहते हैं। भाई! शिवो अहं, शिवो अहं कहते हैं न?

हम 'हुबली... हुबली' गये थे। वहाँ... थे। बारह वर्ष से मौन रहते थे। अभी स्वर्गवास हुआ। बारह वर्ष से मौन रहते थे। बाद में सब साधु उसके साथ आये। बड़ा मठ था उसमें ठहरे थे। शिवो अहं... शिवो अहं... शिवो अहं करते-करते चले आये। कहो, शिवो अहं कौन? बाद में कहा था, पीपर का दृष्टान्त दिया न? उसका साधु था तो उसको बहुत अच्छा लगा। सब साधु व्याख्यान में बैठे थे। हुबली... हुबली न? सिद्धार्थ मठ। कहा, भाई! शिवो अहं। शिवस्वरूप तो यह आत्मा शक्तिरूप से है। पीपर का दृष्टान्त दिया था। बहुत प्रसन्न हुए। शिव दूसरा कोई है नहीं। यह भगवान आत्मा ही अन्दर में शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति द्रव्य पड़ा है, परमात्मा ही है। उसका ध्यान करने से पर्याय में प्रगट होना, उसका नाम परमात्मा है। समझ में आया?

वह शिव और शान्त। स्थिर हो गये। सारी दुनिया में चाहे सो हो। निर्विकल्प परमानन्द शान्त निर्वाणपद की अनुभव दशा में पड़ा है। उसका नाम परमात्मा, उसका नाम ईश्वर, उसका नाम शिव है। शान्त।

★ ★ ★

गाथा - १९-२१

आगे पहले कहे हुए निरंजनस्वरूप को तीन दोहासूत्रों से प्रगट करते हैं :—

१९) जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि णाउ णिरंजणु तासु॥१९॥

२०) जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सो जि णिरंजणु जाणु॥२०॥

२१) अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु अत्थि ण हरिसु विसाउ।
अत्थि ण एक्कु वि दोसु जसु सो जि णिरंजणु भाउ॥२१॥

अन्वयार्थ:-**जिस भगवान के...** प्रगट परमात्मा की बात करते हैं। परन्तु ऐसा ही आत्मा है, ऐसा समझ लेना। वस्तु अपेक्षा ऐसा है, ऐसा समझना। यहाँ पर्याय प्रगट हुई, उसकी बात करते हैं। जिसकी वस्तु की—पदार्थ की वर्तमान दशा प्राप्त हुई, (ऐसे) परमात्मा कैसा उसका वर्णन करते हैं। परन्तु ऐसा पर्याय में है, इस संसारी पर्याय एक समय की अवस्था में ऐसा नहीं। वस्तु ऐसी है, ऐसा उसके साथ समझ लेना। समझ में आया? यदि ऐसी वस्तु न हो तो पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था—हालत में ऐसी दशा कहाँ से हुई? और विकार संसार अवस्था कहाँ गयी? समझ में आया?

जिस भगवान के सफेद, काला, लाल, पीला, नीला स्वरूप पाँच प्रकार वर्ण नहीं है,... कितने ही लोग कहते हैं कि आत्मा के ध्यान में ऐसा सफेद दिखता है, लाल दिखता है। लाल, सफेद तो रंग है। आत्मा कहाँ से आया? समझ में आया? क्या कहते हैं? यह आत्मा है न? आत्मा अन्दर। यह शरीर जड़ मिट्टी, यह वाणी मिट्टी है। अन्दर कर्म रजकण है, वह भी मिट्टी—धूल अजीव है। और अन्दर में दया, दान, व्रत का परिणाम होता है, यह पुण्य है। और हिंसा, झूठ, चोरी आदि का पापभाव है। ये दोनों पाप-पुण्यतत्त्व से भिन्न भगवान आत्मद्रव्य है।

यह आत्मद्रव्य है, वस्तु जो आत्मा है, उसमें रंग नहीं है। यहाँ तो सिद्ध की पर्याय में रंग नहीं है, ऐसा बताते हैं। सफेद, काला, लाल, पीला, नीला पाँच प्रकार का

वर्ण सिद्ध परमात्मा को नहीं है। ऐसे इस द्रव्यस्वरूप में भी पंच रंग नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यपिण्ड, ज्ञान और आनन्द की महाशीतल शिला! यह द्रव्य, द्रव्य। परमात्मा सिद्ध वर्तमान पर्याय में महान शीतल-शीतल शान्त शिवरूप प्रगट हो गया। यह आत्मा वस्तु अपेक्षा असंख्य प्रदेशी चिद्घन धाम है। शीतल शिला, शान्त शिला, आनन्द का धाम आत्मा है। उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है नहीं।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब क्या? भाई!

मुमुक्षु : .... तब की बात करते हो न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर्याय में उसको है, यहाँ पर्याय में निमित्त हो, वस्तु में नहीं है। वस्तु में कहाँ है? राग, द्वेष, भ्रमणा, विकल्प, वह तो एक समय—एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग—एक समयमात्र की दशा है। वस्तु में कुछ नहीं है। वस्तु तो निर्मलानन्द शीतल शिला पड़ी है। समझ में आया? शशीकान्त याद आया। ऐई! समवसरण में है न। इन्द्र आते हैं, तब शशीकान्त शिला में विश्राम लेते हैं। वैसे यह आत्मा... ऐई! शशीभाई! शशीकान्त शिला है आत्मा। आहाहा! परन्तु खबर नहीं। क्या है? मैं कौन हूँ? शीतल आनन्द, आनन्द, आनन्द शीतल शान्त अविकारी वीतरागस्वभाव का धाम वस्तु है। उसमें संसार एक समय की अवस्था दिखती है, वह अन्दर में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अन्दर में नहीं थी तो वस्तु का ध्यान करने से संसार अवस्था का नाशकर सिद्ध भगवान ने पूर्णानन्द की पर्याय को प्राप्त किया। समझ में आया?

सुगन्ध दुर्गन्धरूप दो प्रकार की गन्ध नहीं है,... सिद्ध भगवान को सुगन्ध-दुर्गन्ध नहीं है, तो इस आत्मा में भी सुगन्ध-दुर्गन्ध नहीं है। वस्तु में नहीं है। वस्तु तो अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध चिद्घन पड़ी है। शशीकान्त। इन्द्र जैसे समवसरण में जाकर विश्राम लेते हैं, वैसे शशीकान्त विश्राम शीतलधाम आत्मा है। उसमें धर्मी विश्राम लेते हैं। जैसे इन्द्र समवसरण में जाते हैं। वहाँ शशीकान्त शिला है। समवसरण में सफेद-सफेद शिला है। वहाँ इन्द्र भगवान के दर्शन को जाते हैं, तो थोड़ी देर बैठते हैं। वैसे आत्मा—सिद्ध के दर्शन करने को आत्मा जाये, पूर्णानन्द पर्याय प्राप्त करने को, तो अपना

शुद्ध आनन्दधाम, उसमें अन्तर दृष्टि करके आत्मा विश्राम लेता है। आहाहा! समझ में आया? तब वह आत्मा परमात्मपद को पाता है। कोई क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत या देह की क्रिया से वह परमात्मा होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मधुर, आम्ल (खट्टा), तिक्त, कटु, कषाय (क्षार) रूप पाँच रस नहीं है। सिद्ध में ये पाँच रस नहीं हैं। तो यह भगवान आत्मा अन्दर वस्तु, चिदानन्द द्रव्य वस्तु पिण्ड पड़ा है, उसमें रस नहीं है। पाँच प्रकार के रस का वस्तु में अभाव है। ऐसी चीज़ भगवान आत्मा, उसकी अन्तर दृष्टि करके ध्यान करना, वही धर्म और वही मोक्ष का उपाय, कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जितना सुख अन्दर में पड़ा था, आनन्द आत्मा में था, उतना प्रवाहरूप पर्याय में सिद्ध को आनन्द आ गया। धूल में बाहर में सुख साधन नहीं है। धूल यह पैसा, शरीर सुख का साधन है? आकुलता का निमित्त है। वास्तव में आकुलता का कारण नहीं है। वह आकुलता उत्पन्न करता है तो बाह्य चीज़ उसमें निमित्त कहने में आती है। बाह्य चीज़ में सुख-दु:ख का निमित्त नहीं है। धूल में भी नहीं है, पैसा में नहीं है, चक्रवर्ती के पद में नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु है न? वस्तु है न। वस्तु है तो उसमें बसे हुए—रहे हुए गुण हैं या नहीं? गोम्मटसार में नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं कि आत्मा वस्तु है। तो वस्तु में रहे हुए—बसे हुए गुण हैं। कैसे (गुण हैं) ? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शीतल... शीतल... शीतल... शीतल स्वभाव, ऐसी शक्ति-सत्त्व आत्मा में पड़ा है। वह सिद्ध भगवान को अन्तर में ध्यान करने से प्रगट हो गया। समझ में आया?

(भाषा अभाषारूप) शब्द नहीं है,... भाषा अभाषारूप शब्द सिद्ध को नहीं है। तो इस भगवान आत्मा को भी शब्द-शब्द है नहीं। यह वाणी तो जड़ की है। बोलते है, वह वाणी बोलती है, आत्मा नहीं। आत्मा में वाणी है ही नहीं। वाणी तो जड़ है। आत्मा कभी तीन काल—तीन लोक में बोलता नहीं। आहाहा! ... भाई!

मुमुक्षु : मर जाने के बाद या जीवित है तब?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवित किसे कहना? भगवान आत्मा शब्द भाषा और अभाषा से रहित है। सिद्ध भगवान को निमित्त का सम्बन्ध नहीं रहा। यहाँ द्रव्य में, वर्तमान पर्याय में शब्द का निमित्त सम्बन्ध है, वस्तु में नहीं है। ओहो! शब्द बोले कौन? वह तो रजकण, ध्वनि धूल की है। ॐ आदि ध्वनि उठती है, वह तो परमाणु रजकण भाषा की उठती है। आत्मा में अन्दर रजकण पड़ा है कि आत्मा भाषा निकाले?

मुमुक्षु : यह ठवणी बोलती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ठवणी बोलती है, देखो! आवाज हुई या नहीं ? वह रजकण की अवस्था में अन्दर से उठती है। वास्तव में तो यह भी नहीं बोलता और यह ऊँगली भी नहीं। अन्दर ऐसे हो, उसमें भाषावर्गणा योग्य परमाणु है, उसकी आवाज उठती है। ऐसा करते हैं तो आवाज उठती है। उसमें से नहीं, ऊँगली से नहीं। उसमें से परमाणु की पर्याय की आवाज उठती है। ऐसे आत्मा से नहीं। होंठ से नहीं, भाषा की वर्गणा अद्धर से उठती है। आहाहा! सेठी!

भाषा और अभाषा। ... दूसरे शब्द हैं, वह भी आत्मा में है नहीं। **अर्थात् सचित्त अचित्त मिश्ररूप कोई शब्द नहीं है,...** सिद्ध को नहीं है, वैसे आत्मपदार्थ में भी नहीं है। वस्तु भगवान आत्मा अरूपी ज्ञानघन आत्मा है। पर्याय में सिद्ध को नहीं है। इसका पर्याय में निमित्त कहने में आता है। कहो, समझ में आया? **सात स्वर नहीं है।** सात प्रकार का स्वर होता है न? हारमोनियम में स्वर होते हैं न? ऐसे स्वर सिद्ध को नहीं होते है और आत्मा में नहीं है।

शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, गुरु, लघु, मृदु, कठिनरूप आठ तरह का स्पर्श नहीं है,... ऐसे आत्मा में आठ स्पर्श है नहीं। भगवान आत्मा वस्तु से आठ स्पर्श रहित है। सिद्ध को वर्तमान निमित्त का सम्बन्ध छूट गया। यहाँ निमित्त हो, परन्तु वस्तु में है नहीं। **और जिसके जन्म, जरा नहीं है,...** ओहो! सिद्ध भगवान परमात्मा 'णमो सिद्धाणं' जो हुए, उन्हें जन्म और मरण नहीं है। भगवान आत्मा वस्तु, उसको भी जन्म-मरण नहीं है। वस्तु क्या जन्मे? और वस्तु का क्या मृत्यु हो? चिद्घन ध्रुव शाश्वत् चैतन्यधातु, आत्मा शाश्वत् अनादि-अनन्त अकृत्रिम अणनाश, ऐसा चैतन्यतत्त्व दल भगवान आत्मा, ऐसी वस्तु में तो जन्म और मरण का निमित्तपना भी नहीं है। ओहोहो! समझ में आया?

उसी चिदानन्द शुद्धस्वभाव परमात्मा की निरंजन संज्ञा है,... ऐसा चिदानन्द ज्ञानानन्द शुद्ध स्वभाव सिद्ध परमात्मा की निरंजन संज्ञा है। **ऐसे परमात्मा को ही निरंजनदेव कहते हैं।**

फिर वह निरंजनदेव कैसा है? जिसे सिद्ध परमेष्ठी के गुस्सा नहीं है,... क्रोध-गुस्सा कहाँ है? वस्तु में गुस्सा नहीं है। वह पर्याय में विकार उत्पन्न करता है, अन्दर में नहीं है। जो परमात्मा निज स्वरूप निज शुद्धात्मा, उसमें गुस्सा नहीं है। पर्याय में उत्पन्न करता है। सिद्ध को तो पर्याय में भी है नहीं। ओहोहो! **मोह तथा कुल जाति आदि आठ तरह का अभिमान नहीं है,...** सिद्ध को वर्तमान भगवान पर्यायपने—अवस्थापने परमात्मा हुए उसमें जाति, कुल, मद, ज्ञान, विद्या, ईश्वर का मद है ही नहीं। अहो! वस्तु भगवान आत्मा स्वयं का निज स्वरूप, उसमें मद कैसा?

सम्यग्दृष्टि को भी मद नहीं है। समझ में आया? वस्तु में मद नहीं तो धर्मी को भी जाति, कुल, ज्ञान, विद्या, ईश्वर का मद है ही नहीं। सिद्ध को वर्तमान मद नहीं। सम्यग्दृष्टि को भी, द्रव्यस्वभाव में मद नहीं तो द्रव्य का भान हुआ है तो उसकी अधिकाई में कोई ज्ञान का क्षयोपशम, ईश्वर का बड़प्पन—महत्ता (हो), उसका मद समकिती को होता नहीं क्योंकि मेरा अधिक परमात्मा शुद्ध अखण्डानन्द भगवान विराजमान है। मैं, उसके पास सब चीज़ हल्की और तुच्छ है।

समकिती को चक्रवर्ती का पूरा राज हो। समझ में आया? 'चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग, कागवीट सम मानत है, सम्यग्दृष्टि लोग' ...भाई! आहाहा! सम्यग्दृष्टि अपना निज स्वरूप पूर्ण आनन्दमूर्ति की अन्तर दृष्टि का अनुभव में प्रतीत हुई है। समकित चौथा गुणस्थान। उसको चक्रवर्ती की सम्पदा... छह खण्ड की सम्पदा पूर्व के पुण्य के कारण हो। और 'इन्द्र सरीखा भोग...' दो सागर की स्थितिवाला शकेन्द्र, जिसको करोड़ों इन्द्राणी हैं। ऐसे संयोग हो, 'कागवीट सम मानत है।' कौवे की विष्टा। शशीभाई!

मुमुक्षु : कौन मानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती। आत्मा की श्रद्धावन्त, आत्मा के धर्म को माननेवाला। आहाहा! 'कागवीट सम मानत है।' चक्रवर्ती को पद्मिनी जैसी ९६ स्त्री, नव निधान,

सोलह हजार देव सेवा करे। अरे! मेरी चीज तो अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध आत्मा, मैं आनन्द हूँ। ऐसी दृष्टि में धर्मी उस चक्रवर्ती पद को और इन्द्रपद को कौवे की विष्टा जैसा मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? मेरी निजपद अन्तर आनन्दमूर्ति भगवान, उसकी अधिकाई में उससे अधिक जगत में कोई नहीं है। समझ में आया?

सिद्ध आठ मद से रहित है। वस्तुस्वरूप आठ मद से रहित है। और सम्यग्दृष्टि वर्तमान में आठ मदरहित है। समझ में आया? जाति, कुल, बल आदि समकिती को बाह्य निमित्त में हो। वह मेरी चीज ही नहीं तो मुझे किसका अभिमान करना? मेरी चीज तो अखण्डानन्द सच्चिदानन्द 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'। सिद्ध समान मेरा अन्तर स्वरूप है तो उसके आगे कोई अधिक चीज़ है नहीं। किसका अभिमान करे? आहाहा! कहो। सेठी। देखो, क्या कहा?

कुल जाति... माता का पक्ष, कुल पिता का **आदि आठ प्रकार का अभिमान...** सिद्ध में नहीं है, वस्तु आत्मा में नहीं है। आत्मा में नहीं है तो उसकी दृष्टि करनेवाले धर्मी को भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहाँ चीज़ आत्मा और कहाँ लोग धर्म मानकर बैठे हैं। भगवान अनाकुल आनन्द का पिण्ड धाम, उसका चिद्घन का निर्विकल्प ध्यान से ही उसकी प्राप्ति होती है। उसके अलावा दूसरा कोई उपाय है नहीं। वह बाद में आयेगा। भगवान की वाणी से भी वह प्राप्त नहीं होता, ऐसा कहेंगे। भाई! बाद में कहेंगे। २३ गाथा में आयेगा। केवली की दिव्यध्वनि से भी प्राप्त नहीं होता। **'वेयहिँ सत्थहिँ इंदियहिँ जो जिय मुणहु ण जाइ।'** वीतराग की दिव्यध्वनि से भी आत्मा जाना नहीं जाता। लोग चिल्लाते हैं। आहाहा! अरेरे! भगवान की वाणी से नहीं जाना जाता? परन्तु वाणी तो पर है। पर ऊपर सुनने का लक्ष्य रहता है, उतना विकल्प है। भाई! लोग चिल्लाते हैं। विशेष स्पष्टीकरण आयेगा तब कहेंगे। २३ में (कहा है), दिव्यध्वनि से भी भगवान आत्मा जाना नहीं जाता। अररर! ये जैन कहलाते हैं? ऐसा कहते हैं। कहो योगीन्द्रदेव को। योगीन्द्रदेव कहते हैं, हम तो आचार्य हैं। जैन के आचार्य ऐसा कहते हैं कि दिव्यध्वनि से आत्मा को लाभ नहीं होता, जाना नहीं जाता। समझ में आया? वजुभाई! ये सब सेठ लोग को भारी पड़ता है। अग्रेसर बनकर रहना है। सब भेडियों को—संघ को सम्हालना है... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, योगीन्द्रदेव आचार्य सन्त मुनि परमेष्ठीपद में सम्मिलित है, 'णमो लोए सव्व आईरियाणं' उसमें वे हैं। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि वन में बसनेवाले कहते हैं, वीतराग की वाणी से भी आत्मा जाना जाता नहीं। हाय... हाय! अरे! वीतराग की वाणी से न जाने तो वह जैन नहीं, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। अरर! यहाँ तो कहते हैं, वीतराग की वाणी से नहीं जाना जाता, निर्विकल्प ध्यान से जाना जाता है, वही जैन है। आहाहा! क्या करें? वह बहुत अच्छी गाथा आयेगी। वह तो आगे आयेगी। लोग अन्य मार्ग में लगे हैं, ऐसा आयेगा। ३० गाथा में बहुत आयेगा। समझे? लोग अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं। सो वृथा क्लेश करते हैं। आगे आयेगा। समझ में आया? आगे आयेगा।

वेद शास्त्र तो अन्य तरह ही हैं, नय, प्रमाणरूप हैं, तथा ज्ञान की पण्डिताई कुछ और ही है, वह आत्मा निर्विकल्प है, नय, प्रमाण, निक्षेप से रहित है। वह परमतत्त्व तो केवल आनन्दरूप है। और ये लोक अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं। पाठ में है। यशस्तिलक का श्लोक है। २३ गाथा में अन्त में है संस्कृत टीका। लोग अन्य मार्ग में लगे हुए हैं। विकल्प और ऐसा, वैसा। मार्ग दूसरा है। **सो वृथा क्लेश कर रहे हैं।** है? भाई! २३ गाथा में अन्त में। संस्कृत टीका में है। यशस्तिलक। '**अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रपाण्डित्यमन्यथा। अन्यथा परमं तत्त्वं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा॥**' मार्ग दूसरा है, लोग अन्यथा क्लेश कर रहे हैं। आहाहा! वजुभाई! देखो! ये दिगम्बर सन्त! यह दिगम्बर मुनि है, हाँ! पंचम काल के छठवें गुणस्थानवाले भावलिंगी सन्त हैं। लोग अन्य मार्ग में लगकर वृथा क्लेश करते हैं। विकल्प और ऐसा, वैसा, दया, व्रत और भक्ति से कल्याण होगा। वृथा क्लेश करते हैं। मार्ग अन्य है। लोग अन्य वृथा क्लेश करते हैं। समझ में आया? वह श्लोक तो आयेगा। ये तो थोड़ा याद आ गया। सेठी! आहाहा!

भगवान आत्मा... पहले शास्त्र से समझने का निमित्त है, इतना कहना है। बस। कि क्या है? बाद में प्राप्ति तो ध्यान से ही होती है। निर्विकल्प ध्यान से प्राप्ति है, उसका दूसरा कोई उपाय तीन काल में नहीं। पाया, उसने ध्यान से पाया; खोया, उसने आर्तध्यान, रौद्रध्यान से खोया। समझ में आया? आहा!

कहते हैं, मद क्या? मद किसका? ओहोहो! केवलज्ञान का कन्द भगवान, जिसमें केवलज्ञान का प्रवाह अनन्त बहे, ऐसा मैं आत्मा हूँ। ऐसे आत्मा में मद कहाँ?

और ऐसी दृष्टिवन्त को मद कहाँ? और पूर्ण पर्याय प्राप्त में तो मद है नहीं। समझ में आया? **जिसके माया व मान कषाय नहीं है,...** भगवान परमात्मा सिद्धदशा में माया व मान नहीं। भगवान आत्मा में—वस्तु में माया या मान तीन काल में नहीं।

और जिसके ध्यान के स्थान नाभि, हृदय, मस्तक आदि नहीं हैं... ऐसे ध्यान करना, नासिका में लक्ष्य ले जाना, सिर पर ले जाना। क्या है? सिर, नासिका ही नहीं है आत्मा में। समझ में आया? **और जिसके ध्यान के स्थान नाभि, हृदय, मस्तक, आदि नहीं हैं...** सिद्ध को नहीं है तो भगवान आत्मा वस्तु में नहीं है। **चित्त के रोकनेरूप ध्यान नहीं है, जब चित्त ही नहीं है तो रोकना किसका हो।** समझ में आया? भगवान को चित्त ही नहीं, रोकना किसको? द्रव्य में भी चित्त नहीं है तो रोकना किसको? भगवान आत्मा ऐसा ही अखण्डानन्द प्रभु पड़ा है। वह निर्विकल्प अन्तर ध्यान करने से वह प्राप्त होता है। मैं चित्त को रोकूँ, ऐसा भी वहाँ है नहीं। आहाहा! मैं विकल्प कम करूँ तो प्राप्त होगा, ऐसा वस्तु में नहीं और वस्तु की निर्विकल्प ध्यान की दशा में ऐसा नहीं है। परमात्मा को पर्याय में नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ... समझ में आता है? आज तो हिन्दी आ रही है। थोड़ा गुजराती सीख लेना। गुजराती में बहुत सरल आता है। **रोकना किसका हो...**

ऐसे निज शुद्धात्मा को हे जीव,... देखो! लिया ऐसा है, सिद्ध को है नहीं परन्तु ऐसा '**स्वशुद्धात्मानं हे जीव निरंजनं जानीहि**' '**तमित्थंभूतं स्वशुद्धात्मानं**' संस्कृत है। है न? '**यस्य न तमित्थंभूतं स्वशुद्धात्मानं हे जीव निरंजन जानीहि**' सिद्ध भगवान ऐसे हैं, वैसा शुद्धात्मा हे जीव! निरंजन है, ऐसा तू जान। संस्कृत में है। '**स्वशुद्धात्मानं हे जीव निरंजनं जानीहि**' संस्कृत है। नीचे से तीसरी पंक्ति है। है न? बात तो यह है कि परमात्मा पर्याय में बताते-बताते वस्तु बताते हैं। हेतु क्या है बताने का? परमात्मा सिद्ध ऐसे हैं, यह बताने का प्रयोजन क्या है? समझ में आया? तेरा आत्मा निज शुद्धात्मा सिद्ध ऐसे हैं, यह बताने का प्रयोजन क्या है? समझ में आया? तेरा आत्मा निज शुद्धात्मा को, हे जीव! तू जान। निरंजन जान, निरंजन जान। आहाहा!

सारांश यह हुआ कि अपनी प्रति सिद्धता (बडाई) महिमा, अपूर्व वस्तु का मिलना,... सब विकल्प छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। **अपनी प्रति सिद्धता...** भगवान आत्मा

की प्रसिद्धता तुझे करनी है या बाह्य की प्रसिद्धि तुझे प्राप्त करनी है? ऐई! ...भाई! भगवान दिगम्बर सन्त मुनि! आहाहा! धर्म के स्तम्भ! परमात्मा केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ अरिहन्त परमेश्वर ने जो धर्म फरमाया, उस धर्मरूप आचार्य परिणत हुए हैं। भाव अन्तर आत्मानन्द का परिणमन करके बात करते हैं। अरे! आत्मा। तेरी प्रसिद्धि में दूसरी प्रसिद्धि को छोड़ दे। आहाहा!

भगवान आत्मा निज शुद्धात्मा की प्रसिद्धि पर्याय में करनी है या बाह्य की प्रसिद्धि प्राप्त करनी है? बाहर में हमारी प्रशंसा करे। धूल में भी नहीं है बाह्य की प्रसिद्धता। बड़ाई। समझे न प्रसिद्धता का मतलब? महिमा। हमारी महिमा जगत में बढ़े। अरे! भगवान! तेरी महिमा तो अन्तर वस्तु में है तो बाहर की महिमा का तुझे क्या काम है? तेरी महिमा ओहो! सिद्ध भगवान, अरिहन्त भी तेरी महिमा की पूरी बात कह सके नहीं। समझ में आया? ऐसी चीज तू अन्दर में सच्चिदानन्द प्रभु है। उसकी महिमा (करनी है) या तेरे पुण्य की, दया की, पुण्य के फल की महिमा? किसकी महिमा तुझे करनी है? आहाहा!

अपूर्व वस्तु का मिलना... बाह्य में कुछ अपूर्व नया मिले, अच्छा पुत्र मिले, या एकदम लक्ष्मी मिले, निधान निकले तो... आहाहा! हमें बहुत मिला। धूल में भी नहीं है, छोड़ दे विकल्प। अपूर्व मिलना तो आत्मा का मिलना है। यहाँ तो ऐसा विकल्प छोड़कर, ऐसा कहते हैं। **(बड़ाई) महिमा, अपूर्व वस्तु का मिलना,...** अपूर्व अर्थात् पूर्व में नहीं मिली हो और पहली बार मिली हो। ओहोहो! ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कि साठ वर्ष में पुत्र हुआ। बांझपना टल गया। क्या है? धूल है। क्या है? तेरी सम्यग्दर्शन-ज्ञान की प्रजा प्रगट किये बिना तुझे इस प्रजा से हित क्या है? कहो, समझ में आया? कहो, मोतीलालजी! दस-दस पुत्र (हो)। अपूर्व मिलना। उसे दस पुत्र हैं।

मुमुक्षु : पैसे मिले तो सब अपूर्व ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं है। धूल में कुछ मिलना नहीं है। पैसा तो धूल-मिट्टी है। कर प्रार्थना जब रोग आये, मरण आये कि अरे! मैंने तेरे लिये बहुत समय बिताया, अब मेरा मृत्यु का समय है तो कुछ मदद तो करो, बोल, होली कर

उसके पास। मलूकचन्दभाई! दो करोड़ मिला, तीन करोड़ मिला, पाँच करोड़ मिला। फिर अन्दर... उसे क्या कहते हैं? ब्लडप्रेशर। माथा घूम रहा है। बोल न, पुकार कर तेरी धूल के पास। भाईसाहब! तेरे लिये मैंने जिन्दगी निकाली, मैंने मेरा कुछ किया नहीं। तेरे लिये निकाली और इस दुःख के समय तू मेरा सहायक नहीं होगा? पैसा कहता है, हम बोलते नहीं, हम तो जड़ हैं। ...भाई! दिगम्बर आचार्य कहते हैं, भगवान! तेरी बड़ाई—प्रतिष्ठा के आगे दूसरे की बड़ाई—प्रतिष्ठा की तुझे क्यों कीमत आती है? वह कीमत छोड़ दे और आत्मा की बड़ाई—प्रतिष्ठा की कीमत कर। आहाहा! समझ में आया? ये कहते हैं, पैसे हो तो कितने प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये।

मुमुक्षु : लोक ऐसा मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया मानती है। पागल दुनिया अपने निजघर का भाव छोड़कर परघर की सम्पदा में प्रतिष्ठा और बड़ाई मानते हैं, वह पागल दुनिया है। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि कहा न? इन्द्रपद मिले तो काग विष्टा है। चक्रवर्ती का पद, ९६ हजार इन्द्राणी जैसी स्त्री, पद्मिनी जैसी, कौवे की विष्टा है। ओहो! देखा था या नहीं? चाँदमलजी! आपके उज्जैन में नहीं देखा था? चाकला में लिखा था। समझ में आया? आहाहा!

अरे! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं, भगवान! तेरे आत्मा की अन्दर चीज़ मेरे जैसी ही है। सिद्ध परमात्मा हुए और अरिहन्त हुए, ऐसी तेरी चीज़ अन्दर में है। उसकी बड़ाई छोड़कर दुनिया की बड़ाई में हैरान हो गया। समझ में आया? आहाहा!

देखे, सुने, भोग इनकी इच्छारूप सब विभाव परिणामों को छोड़कर... अपनी प्रसिद्धताई छोड़ दे। अपनी अर्थात् बाहर की, हाँ! अन्दर की नहीं। बाह्य की अपूर्व वस्तु मिलना, बड़ाई, महिमा जितनी बाहर की चीज़ दिखे, सब देखने में विकल्प राग था। जितना सुना, जितना भोगा, भगवान आत्मा को कभी अन्दर भोग नहीं। जितना रागादि, पुण्यादि विकल्प का भोग हुआ, **इनकी इच्छारूप सब विभाव परिणामों को छोड़कर अपने शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप निर्विकल्पसमाधि में ठहरकर उस शुद्धात्मा का अनुभव कर।** लो, यह है। समझ में आया? बड़ाई, प्रतिष्ठा... समझ में आया? अपूर्व। थोड़े काल में नहीं मिली हो। पूर्व में तो स्वर्ग आदि अनन्त बार मिला है। उन सबकी

विकल्प की विभावजाल छोड़कर भगवान आत्मा अपने शुद्धात्मा की... ऐसा कहते हैं। सिद्ध भगवान दूर रहे। बात करते हैं सिद्ध भगवान की, परन्तु सिद्ध भगवान की बात करते हैं, उसमें प्रयोजन क्या है ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा देहदेवल में चैतन्यदेव विराजमान है, देहमन्दिर में चैतन्यदेव भगवान विराजमान पूर्णानन्द प्रभु तेरा है। उसकी अन्तर **शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप...** उसकी अन्तर में दृष्टि लगाकर अनुभव करो। निर्विकल्प शान्ति में ठहरकर शुद्धात्मा का अनुभव करे, वह सार है। समझ में आया ? भगवान आत्मा पहले गुरुगम से, शास्त्र से सुन ले, जान ले। परन्तु जानने के बाद वह स्वरूप निर्विकल्प आत्मा राग, पुण्य, दया, दान विकल्प से भी पार चीज है। उससे भी आत्मा की प्राप्ति होती नहीं। आहाहा! वर्तमान में तो लोग चिल्लाते हैं। शशीभाई! चारों ओर चिल्लाते हैं, अरे! व्यवहार से होता है, धूल में भी नहीं होता, सुन तो सही। व्यवहार तो राग है, भगवान तो निर्विकल्पस्वरूप निज परमात्मा है।

निज शुद्धात्मा की अनुभूति। भगवान निर्मलानन्द प्रभु, उसका अनुसरण करके अनुभव होना। राग, पुण्य और मन के संग बिना निर्विकल्प अनुभव होना, उससे ही शान्ति (प्राप्त होती है)। अभेद शान्ति में ठहरकर शुद्धात्मा का अनुभव कर। परमात्मा को बताने का आशय तो यह है। है या नहीं ? सेठी! बात तो सिद्ध की चलती है। परन्तु सिद्ध की बताने में हेतु क्या है ? तेरी चीज ऐसी है। जैसी सिद्ध की पर्याय में है, ऐसा तेरे द्रव्य में है। पर्याय में प्रगट करने को निर्विकल्प रागरहित, मनरहित, मन के संग रहित, स्वभाव की अन्तर दृष्टि का त्राटक लगाकर, आत्मा है, ऐसी अनुभूति—अनुभव करके शान्त होकर अन्दर में ठहर जा तो आत्मा का अनुभव होगा। तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होगी। ओहोहो! वजुभाई! पर्यूषण कहाँ किया ? यहाँ या भावनगर ? कहो, समझ में आया इसमें ?

श्रद्धा में यह बात रुचि में आये बिना (कि), आत्मा की प्राप्ति में अन्य कोई उपाय है ही नहीं। श्रद्धा का वज्र स्तम्भ ऐसा लगा दे कि भगवान अखण्डानन्द प्रभु, उसके सन्मुख निर्विकल्प अनुभव से ही आत्मा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान होता है। और आत्मा की प्राप्ति उस सम्यक् अनुभव से ही होती है। जिसने पाया, उसने ध्यान से पाया;

जिसने गँवाया उसने राग की एकता से गँवाया। समझ में आया? आहाहा! तीन काल—तीन लोक में यह मार्ग है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर जैन परमेश्वर, उसका मार्ग है। ...भाई! यह है। आहाहा! लोगों को कठिन लगे, इसलिए बाहर में चढ़ा दिये। आयेगा, उस गाथा में बहुत आयेगा। अन्य मार्ग में लोगों को लगा दिया। घांची के बैल को लगा दिया है, घूमता रहता है, बैस लगा दिया है, ये कर, यह कर। धूल भी नहीं होगी। सुन न। आहाहा!

यह योगीन्द्रदेव आचार्य परमात्मप्रकाश कहते हैं। पढ़ना नहीं, सुनना नहीं, समझना नहीं और आत्मा को धर्म हो जायेगा, धर्म हो जायेगा। कहाँ से धूल में हो जायेगा? आहाहा! तेरा आत्मराम अन्दर में विराजमान भगवान पूर्णानन्द है, उसमें दृष्टि लगाकर रागरहित निर्विकल्प अनुभव से शान्ति में ठहरकर अनुभव कर, वही एक आत्मा में सिद्धपद पाने का उपाय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कर्म कहाँ जायेंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म, कर्म में गये। कहाँ थे? आत्मा में कर्म-फर्म है ही नहीं। कर्म का अस्तित्व कर्म में, आत्मा का अस्तित्व आत्मा में। कर्म जड़ है या नहीं? तो जड़ की मौजूदगी जड़ में, चैतन्य भगवान की मौजूदगी आत्मा में। मौजूदगी दोनों की है। हो तो उसमें वह है, इसमें यह है। कर्म कहाँ आत्मा में घुस गये? समझ में आया? एक समय का विकल्प का विद्यमानपना भी वस्तु में नहीं है, इसलिए निर्विकल्प ध्यान करके आत्मा की प्राप्ति होती है, दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! ओहोहो! समझ में आया? ऊपर कहा न? सब विभाव। इन सब बोल में उसका बहुत विस्तार है। प्रसिद्धि, महिमा, अपूर्व मिलना, देखे, सुने, भोग, इन सब विभाव परिणाम को छोड़कर।

एक अपना भगवान शुद्धात्मा... अरे! उसकी महिमा की खबर नहीं। भगवान शुद्धात्मा। एक-एक गुण जिसमें अनन्त अचिन्त्य महान अपूर्व महिमा लेकर पड़े हैं। पूर्णानन्दस्वभाव जिसका, उसकी बात क्या! जिसकी अन्तर नजर में निधान भगवान पड़ने से निर्विकल्प अनुभव में ही आत्मा की प्राप्ति होती है। दूसरा कोई उसे आत्मप्राप्ति में उपाय तीन काल-तीन लोक में भगवान ने कहा नहीं। समझ में आया? व्यवहार कहा, वह तो निमित्त का ज्ञान कराने को कहा।

वस्तु का स्वरूप भगवान आत्मा पहले शास्त्र से, सत् समागम से (जाने कि), ऐसी चीज़ है, ऐसा ख्याल करने में उपायरूप से कहने में आया है। परन्तु उस ख्याल का अन्दर में उपाय न करे तो बाह्य को निमित्त भी कहने में आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो! दस दोहे में बात चल रही है, सिद्ध की। पहले कहा था, कि सिद्ध की बात दस दोहे में कहेंगे। परन्तु कहने का आशय क्या है? सिद्ध की बात, सिद्ध... सिद्ध, सिद्ध ऐसे हैं, वह तो पर्याय सिद्ध हुई। पर्यायरूप सिद्ध तो सिद्ध पर्याय है। संसार भी पर्याय है, सिद्ध भी पर्याय है। द्रव्य-गुण तो त्रिकाली शुद्ध अखण्डानन्द है। ऐसी पर्याय में निर्मल पर्याय प्रगट की, ऐसी सिद्ध की पर्याय बताने का हेतु, तुम भी सिद्ध समान द्रव्य हो। उसमें ऐसा निर्विकल्प स्वभाव है, ऐसी पर्याय निर्विकल्प करके उसको प्राप्त कर, तो निर्विकल्प पर्याय की पूर्ण शुद्धि की पर्याय प्राप्त होगी। दूसरे कोई कारण से होगी नहीं। आहाहा! कहो, शशीभाई! बेचारे लोग चिल्लाते हैं, अरेरे! व्यवहार, व्यवहार, हमारा व्यवहार। ऐसे गले लगाया है। तुझे व्यवहार था कहाँ? निश्चय के भान बिना? अनुभव अन्तर दृष्टि निश्चय की प्रगट हुए बिना विकल्प जो है, उसे व्यवहार कहते हैं, परन्तु व्यवहार बन्ध का कारण है। वह निर्विकल्प ध्यान में मदद करता नहीं। आहाहा! छहढाला में आता है। नवनीतभाई को छहढाला मुखपाठ है। 'परद्रव्य से भिन्न आत्मद्रव्य रुचि भला है' छहढाला में आता है। नवनीतभाई को छहढाला बहुत प्रिय है तो दस हजार छपकर आ गयी है। बहुत लोगों को भेंट दी है। समझ में आया? आहाहा! सार यह कहा, देखो! समझ में आया?

पुनः वह निरंजन कैसा है? जिसके द्रव्यभावरूप पुण्य नहीं... आत्मा में द्रव्यपुण्य रजकण भी नहीं और भावपुण्य जो विकल्प होता है, वह भी आत्मा में नहीं। सिद्ध में भी नहीं है और आत्मा में भी नहीं है। आहाहा! **राग-द्वेषरूपी खुशी व रंज नहीं है, और जिसके क्षुधा आदि दोषों में से एक भी दोष नहीं है, वही शुद्धात्मा निरंजन है, ऐसा तू जान।** समझ में आया? ऐसा शुद्धात्मा तेरा अन्दर में है। पर्यायरूप प्रगट हुआ भगवान को। ऐसा ही तेरा वस्तुरूप से है, उसका अन्तर्मुख होकर ध्यान करके सिद्धपद की प्राप्ति कर। वही सारे शास्त्र को कहने का सार है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १०, मंगलवार, दिनांक ०५-१०-१९६५
गाथा - १९ से २३, प्रवचन - १५

परमात्मप्रकाश। पहला भाग है, इसकी १९ से २१ गाथा। इसका भावार्थ। क्या कहते हैं? यह देह-शरीर, वाणी, पुण्य-पाप का विकल्प, रागादि से भिन्न है, ऐसा स्वरूप पहले ज्ञान में ख्याल में लेकर **ऐसे निज शुद्धात्मा के परिज्ञानरूप...** ऐसा शब्द पड़ा है। ऐसे अर्थात् भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण शुद्ध चैतन्य अनन्त गुण का पुंज-पिण्ड है। विकार का विकल्प आदि से, राग से, मन से रहित है। ऐसे आत्मा **निज शुद्धात्मा के परिज्ञानरूप...** ऐसा पहले ख्याल में लेकर **वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर तू अनुभव कर।** भगवान आत्मा पूर्णानन्द अनन्त गुण सम्पन्न परमात्मा शुद्ध है, पूर्ण है। उसमें रागादि, कर्म आदि का सम्बन्ध बिल्कुल वस्तु में है नहीं। ऐसा पहले परिज्ञान, परिज्ञान (करना)। सत्समागम से अथवा शास्त्र से उसका ज्ञान कर। बाद में करना क्या? वीतराग निर्विकल्प शान्ति। भगवान आत्मा शुद्ध निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान का ही वह विषय है। समझ में आया?

आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु, अनन्त गुणधामरूप रागरहित, इच्छारहित, निर्विकल्प शान्ति का वह विषय है। समझ में आया? निर्विकल्प शान्ति में स्थित होकर। आखिर में सार लिया है न? तेरी चीज़ अन्दर में पूर्णानन्द अनन्त-अनन्त तेरे गर्भ में, ध्रुव में शान्ति और अतीन्द्रिय आनन्द का रस पड़ा है। वह चीज़ बिल्कुल संसार के विकल्प के लेप से रहित है। समझ में आया? ऐसी चीज़ को पहले सत्समागम से ख्याल में, लक्ष्य में लेकर करना क्या?

भगवान आत्मा में शुभाशुभ विकल्प से रहित अरागी निर्विकल्प वीतरागी पर्याय में स्थित होकर उसका ध्यान कर। अनुभव उससे होता है, दूसरी चीज़ से होता नहीं। ओहो! यह परमात्मप्रकाश है। अपना निज परमात्मा अथवा परमस्वरूप परम-आत्मा अर्थात् परमस्वरूप, पूर्ण शुद्ध द्रव्य ध्रुव निज परमात्मा है। वह विकार, दोष से रहित है,

ऐसा ख्याल करने के बाद स्वरूप सन्मुख की निर्विकल्प रागरहित शान्ति का विषय है, वह शान्ति द्वारा परम शान्ति का अनुभव कर। बहुत सूक्ष्म। समझ में आया? बाहर से कहते हैं ना कि राग की मन्दता या दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से आत्मा की प्राप्ति होती है, तो ऐसा है नहीं तीन काल में। समझ में आया?

भगवान निर्दोष परमात्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द, अन्तर में अभेद रागरहित निर्विकल्प ध्यान शान्ति का ही वह विषय है। समझ में आया? यहाँ योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि सन्त महन्त वनवासी थे। उन्होंने यह परमात्मप्रकाश बनाया। वे अपने प्रभाकरभट्ट शिष्य को कहते हैं, हे प्रभाकर! तेरा भगवान पूर्ण तेरे पास, तू ही वह है। आहाहा! पर परमात्मा के लक्ष्य से भी उस परमात्मा का ज्ञान नहीं होता। समझ में आया?

अनन्त परपदार्थ, चाहे सो सिद्ध हो, उनके लक्ष्य से भी विकल्प उठता है तो उसका भी वह आत्मा विषय नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा, निर्विकल्प शान्ति से अनुभव कर, वही मुक्ति पाने का उपाय है। शक्ति में से व्यक्तरूप परमात्मा होने का, शक्तिरूप परमात्मा निर्दोष भगवान निज स्वरूप है, उसका अन्तर ध्यान करने से ही शक्ति में से पूर्ण परमात्मा की व्यक्ति—प्रगटता—प्रसिद्धता होती है। कहो, समझ में आया?

इस प्रकार तीन दोहों में जिसका स्वरूप कहा गया है, उसे ही निरंजन जानो,... ऐसा अपना निज स्वरूप निरंजन है। कोई निरंजन ईश्वर था और उसने यह बनाया है, सदाशिव कोई था, ऐसा है नहीं। तू ही सदाशिव द्रव्यस्वरूप अनादि-अनन्त है। ऐसा शिवस्वरूप परमात्मा निजानन्दमूर्ति, उसको तुम निरंजन जानो। दूसरा कोई परमात्मा निरंजन है और तेरा करनेवाला है, ऐसा कोई है नहीं। **अन्य कोई भी परकल्पित निरंजन नहीं है।** अज्ञानियों ने कल्पित किया कि कोई ईश्वर है, निरंजन है, उसकी ये सब लीला है—ऐसा कुछ है ही नहीं।

इन तीनों दोहों में जो निर्मल ज्ञान दर्शनस्वभाववाला... आखिर की गाथा-पद है। भगवान आत्मा निर्दोष दर्शन, ज्ञानसामान्य त्रिकाल है। ज्ञान और दर्शन त्रिकाल स्वभावस्वरूप जो आत्मा है, वही निरंजन कहा जाता है, दूसरा कोई निरंजन जगत में कर्ता-हर्ता है नहीं। समझ में आया? **यही उपादेय है।** यही भगवान निरंजन, जिसमें

अंजन अर्थात् विकल्प, राग, दया, दान आदि का मैल का लेप का जिसे स्पर्श है नहीं। ऐसा भगवान निज स्वरूप, उसका अनुभव करके शान्ति को प्राप्त हो। दूसरा कोई शान्ति का—धर्म प्राप्ति का उपाय है नहीं। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २२

आगे २२ गाथा। **आगे धारणा...** शास्त्र में व्यवहार के विकल्प की बात आती है, **धारणा, ध्येय,...** प्रतिमा आदि का ध्येय **यन्त्र, मन्त्र, मुद्रा आदिक व्यवहारध्यान के विषय मन्त्रवाद शास्त्र में कहे गये हैं, उन सबका निर्दोष परमात्मा की आराधनारूप ध्यान में निषेध किया है।** समझ में आया? व्यवहारशास्त्र में आता है कि पहले ऐसा चिन्तवन करना। ध्यान में प्रतिमा लक्ष्य में लेना। प्रतिमा भगवान है, ऐसा लक्ष्य में लेना। ऐसी जो बात व्यवहारशास्त्र में आती है, वस्तु के स्वरूप में वह व्यवहार है ही नहीं। समझ में आया? और उस वस्तुस्वरूप के साधन में भी वह व्यवहार है ही नहीं। समझ में आया? कहो, डालचन्दजी!

तेरे अन्दर में दर्शन, ज्ञान, आनन्द स्वभाव का माल पड़ा है न! ज्ञानार्णव में व्यवहार की धारणा का बहुत विषय लिया है। कहते हैं कि वह भी उसके स्वरूप में नहीं है और अन्तर में साधक में उसकी सहायता भी नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? **उन सबका निर्दोष परमात्मा की आराधनारूप ध्यान में निषेध किया है।** भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप की आराधना व्यवहार के साधन से नहीं होती, ऐसा कहते हैं। जो व्यवहारशास्त्र में ऐसा कथन आया है, वह अशुभ विकल्प से बचने को पहले शुभ विकल्प में आने की बात व्यवहारशास्त्र में कही है। वह यहाँ अन्तर स्वरूप के ध्यान में अनुभव की प्राप्ति में बिल्कुल सहायक नहीं। आहाहा! समझ में आया?

पहले उसकी प्रतीति में ऐसा पक्का निश्चय होना चाहिए कि मैं ही पूर्णानन्द स्वभाव, स्वभाव से ही प्राप्त होनेवाली चीज़ हूँ। कोई विकल्प से, निमित्त से, संयोग से प्राप्त होनेवाला, अनुभव होनेवाली चीज़ मैं हूँ नहीं। मेरी चीज़ में ऐसा है ही नहीं। सेठी! ओहो! लोग चिल्लाते हैं। अररर! हमारा व्यवहार? भाई! व्यवहार तो विकल्प आया,

उसकी रुचि छोड़कर, भगवान परमानन्दमूर्ति की अन्तर में निर्विकल्प दृष्टि करके अनुभव करना, वही साधन है। वही साधन है। व्यवहार का साधन, वह परमार्थ में है नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

२२) जाणु ण धारणु धेउ ण वि जासु ण जंतु ण मंतु।
जासु ण मंडलु मुद्द ण वि सो मुणि देउँ अणंतु॥२२॥

यस्य न धारणा ध्येयं नापि यस्य न यन्त्रं न मन्त्रः।
यस्य न मण्डलं मुद्रा नापि तं मन्यस्व देवमन्तरम्॥२२॥

अन्वयार्थ :- जिस परमात्मा के... भगवान निज स्वरूप पूर्णानन्द में **'धारणा न' कुम्भक, पूरक, रेचक...** आदि। पवन का भरना आदि। **कुम्भक, पूरक, रेचक नामवाली वायुधारणादिक वस्तु में नहीं है,...** वस्तु स्वरूप पूर्णानन्द में साधनकाल में वह चीज़ बिल्कुल है नहीं। आहाहा! **प्रतिमा आदि ध्यान करने योग्य पदार्थ भी नहीं है,...** जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, समवसरण जिनेश्वर का, वह भी आत्मा का अन्तर ध्यान के काल में बिल्कुल नहीं है और उससे ध्यानप्राप्ति होती नहीं। ओहो! सेठी! इतने मन्दिर, इतने समवसरण... से है। वह तो उसके कारण से है। शुभभाव आता है तो लक्ष्य भक्ति में जाता है। आहाहा!

चौथे गुणस्थान में भी स्वरूप के ध्यान में वह साधन-फाधन है नहीं। जब अन्दर स्थिरता न हो तो शुभ विकल्प आता है तो पर ऊपर लक्ष्य जाता है। फिर भी वह विकल्प बन्ध का कारण है। स्वभाव के साधन में वह सहायक है नहीं। व्यवहार है सही। जैसे आत्मा के अलावा दूसरे द्रव्य हैं सही, परन्तु वह द्रव्य अपने स्वरूप के साधन में मददगार नहीं हैं। ऐसे विकल्प है सही, व्यवहार है सही; परन्तु है, वह स्वरूप की एकाग्रता में स्वभाव में स्पर्शन करने में बिल्कुल सहायक नहीं है।

मुमुक्षु : परम्परा....

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा कहने में आया है। परम्परा क्या है? परम्परा का अर्थ है कि वह विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प में स्थिरता कर। परम्परा कहते हैं, परन्तु वह मददगार बिल्कुल है नहीं। स्वभाव निर्लेप शुद्ध भगवान परमानन्द सागर, उसका स्वभाव

ही उसका साधन है। निर्विकल्प शान्ति की पर्याय जो स्वभाव, वही साधन है। ...भारी बात, भाई! लोग चिल्लाते हैं, दिल्ली में तो चिल्लाते हैं, अरे! एकान्त हो जाता है, एकान्त हो जाता है। भगवान! एकान्त हुए बिना तेरी प्राप्ति होती ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वह कहाँ गुण से और शक्ति से अपूर्ण है? प्रभु! वह अपने गुण और शक्ति से सम्पूर्ण पूर्ण-पूर्ण परमात्मा है। उसके अन्तर परमात्मा में अनन्त परमात्मा उसके पेट में—गर्भ में भरे हैं। आहाहा! समझ में आया? अनन्त-अनन्त सिद्ध पर्याय जो प्रगट होती है, सादि-अनन्त पर्याय, सादि-अनन्त। अनादि-सान्त जो संसार की पर्याय है। सादि-अनन्त सिद्ध की परमात्मा की (पर्याय), एक समय का परमात्मा, दूसरा परमात्मा ऐसे सादि-अनन्त। भूतकाल की पर्याय की संख्या (से) भविष्य की अनन्तगुनी संख्या। परमात्मा का एक समय का काल है, वैसा अनन्त काल है। ऐसे अनन्त परमात्मा आत्मद्रव्य में भरे हैं। डालचन्दजी! क्या (कहा)? एक परमात्मा में अनन्त परमात्मा पड़े हैं? भगवान आत्मा तेरे गर्भ में—ध्रुव में, सत्त्व में—स्वभाव में अनन्त-अनन्त सिद्धपर्याय की खान वह आत्मा है। राग की खान, विकल्प की खान वह चीज़ है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा प्रतिमा वगैरह ध्यान करनेयोग्य वस्तु में है ही नहीं। उसका ऐसा अर्थ नहीं है कि जब वह ध्यान में न हो, स्थिरता पूर्ण न हो और परमात्मा की व्यक्तता न हो, उसके पहले ऐसा भक्ति का शुभभाव आता है, व्यवहार होता है, परन्तु उस व्यवहार से निश्चय की प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं। आहाहा! दो चीज़ है। आत्मा है, वैसे अनन्त परपदार्थ भी हैं। ऐसे निश्चय स्वरूप के ध्यान की परिणति से प्राप्त है, वैसे राग, व्यवहार वस्तु है। परन्तु उस वस्तु से अन्तर में ध्यान का साधन प्रगट होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **प्रतिमा आदि ध्यान करनेयोग्य पदार्थ...** भगवान आत्मा में तो नहीं, परन्तु उसके अनुभव की अन्दर साधकदशा, द्रव्य साध्य करने में, उसमें भी वह नहीं है। समझ में आया? **जिसके अक्षरों की रचनारूप स्तम्भन मोहनादि विषयक यन्त्र नहीं है,...** यन्त्र करते हैं न? छोटे-बड़े अक्षर लिखकर। ये यन्त्र-फन्त्र आत्मा के द्रव्य में तो

है नहीं, परन्तु द्रव्य का निर्विकल्प साधन स्वभाव में वह यन्त्र-फन्त्र है नहीं। समझ में आया? ... बड़ी गड़बड़ होगी। मन्दिर में से निकाल दो, निकाल दो। कौन निकाले? निजमन्दिर में भगवान पड़ा है, उसमें से निकाले कौन? राजमलजी! भगवान पूर्णानन्द प्रभु, अपना स्वभाव सागर में पड़ा है। ऐसी स्वभाव की परिणति से ही स्वभाव का पता चलता है। ऐसे यन्त्र और मन्त्र....

अनेक तरह के अक्षरों के बोलनेरूप मन्त्र नहीं है,... णमो अरिहंताणं, ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... लाख करोड़ मन्त्र का विकल्प है, वह वस्तु में नहीं और वस्तु की प्राप्ति के साधन में भी वह है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है, ज्ञान कराने की चीज़ है। बताते हैं। ज्ञान करवाते हैं। भगवान आत्मा अपना शुद्धस्वरूप पूर्णानन्द को साधकपने सिद्ध करता है तो साथ में वह विकल्प है, स्व का ज्ञान हुआ तो साथ में विकल्प भी है, ऐसा ज्ञान स्व-परप्रकाशक प्रगट होता है तो ज्ञान करनेयोग्य है। आश्रय करने और आदर करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? आहाहा!

आत्मद्रव्य है, ऐसे छह अन्य द्रव्य नहीं है, ऐसा नहीं। 'है' परन्तु वह तो ज्ञान में स्व का ज्ञान होता है, स्व-परप्रकाशक ज्ञान में यह पर है, ऐसा ज्ञान आ जाता है। ऐसे भगवान आत्मा शुद्ध चिद्घन वस्तु निर्विकल्प स्वभाव निर्विकल्प दृष्टि और ज्ञान से ही प्राप्त होता है। उसमें रागादि बाकी रहा तो उसको व्यवहार का ज्ञान हुआ। है, उसका ज्ञान हुआ। परन्तु साधन में मददगार है, ऐसा उसमें भान नहीं हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार साधन कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार साधन का अर्थ कि साधन है नहीं। क्या है? मालचन्दजी! नहीं है, उसको साधन कहना, उसका नाम व्यवहारनय का कथन है। आहाहा!

उसको चैतन्यप्रभु की महिमा ही आयी नहीं। उसकी महिमा तो उसके महिमा स्वभाव से उसकी महिमा है। राग से प्राप्ति हो तो उसकी महिमा ही उसमें नहीं आयी।

जो अपना द्रव्य और निर्मल पर्याय जो साधक है, उससे (अधिक) विकल्प जो व्यवहार है उसकी महिमा है, तो उसको निर्मल पर्याय और द्रव्य की महिमा ही नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पड़ोसी तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़ोसी तो सब द्रव्य पड़े हैं। दुनिया में अनन्त निगोद है तो क्या है? छह द्रव्य नहीं है? छह द्रव्य नहीं है? एक समय की ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य हैं, ऐसा निश्चय करने की पर्याय में सामर्थ्य है, परन्तु उस पर्याय जितना द्रव्य नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा की एक ज्ञानगुण की एक श्रुतज्ञान आदि पर्याय में षट् द्रव्य हैं, ऐसा निर्णय करने की, जानने की सामर्थ्य है पर्याय में। यदि छह द्रव्य की न कहे तो पर्याय का इतना सामर्थ्य है, उसका निषेध हो जाता है। परन्तु वह एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का निर्णय हुआ तो वह पदार्थ एक पर्याय जितना नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह जो परप्रकाशक की एक समय की पर्याय हुई, उसका भी स्व-परप्रकाशक यथार्थ कब होता है? कि स्व ज्ञायकमूर्ति भगवान अपने ज्ञान से, स्वसंवेदन ज्ञान से भान हुआ तो उस ज्ञान में दूसरे षट् द्रव्य हैं, ऐसा पर्याय का ज्ञान भी स्व-परप्रकाशक में आ गया। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात, भाई! यह परमात्मप्रकाश है। समयसार और परमात्मप्रकाश। समझ में आया? अरे! निज परमात्मा उसकी क्या निधि और क्या माहात्म्य है, उसे उसने कभी प्रीति से सुना नहीं। समझ में आया?

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अकेला सहजानन्द का गोला निरालम्बन पदार्थ, ऐसी भगवान आत्मा की प्राप्ति में मन्त्र-फन्त्र की रचना काम करती नहीं। उसकी पर्याय में काम नहीं करती, हों! द्रव्य में तो है ही नहीं। समझ में आया? वह पर्याय, जो वीतराग पर्याय से स्वभाव का साधन होता है, उस पर्याय में मन्त्र आदि का ज्ञान है या यह है। साधन में मददगार नहीं है। समझ में आया?

और जिसके जलमण्डल, वायुमण्डल, अग्निमण्डल, पृथ्वीमण्डलादिक पवन के भेद नहीं है,... जल ऐसा और पवन ऐसा। एक भी विकल्प है, वह स्वभावस्वरूप भगवान आत्मा में तो है नहीं, परन्तु निर्विकल्प साधन की पर्याय में भी वह है नहीं। समझ में आया? कठिन पड़े, भाई! परन्तु वस्तु ऐसी है। कठिन नहीं, वस्तु ही ऐसी है,

वस्तु ही ऐसी है। जैसी वस्तु है, ऐसी वस्तु पुकार करती है। आहाहा! सेठी! **पवन के भेद नहीं है,...**

गारुडमुद्रा, ज्ञानमुद्रा आदि मुद्रा नहीं है,... ऐसे चिन्तवन करना कि ऐसा गरुड़ है और ऐसे उड़ रहा है, ज्ञान ऐसे आकारवाला है। सब आकार का विकल्प भगवान वस्तुस्वरूप में है नहीं, परन्तु उसका जो साधन निर्विकल्प स्वभाव का आश्रय लेकर निर्मल पर्याय में चलता है, (उसमें भी) वह चीज़ नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा का अन्तर्मुख जो निर्विकल्प पर्याय से साधन होता है, वह स्वभाव में से स्वभाव का अंश प्रगट होकर उससे साधन होता है, इस साधन में बिल्कुल मददगार नहीं है। दूसरी चीज़ है, ऐसा ज्ञान करनेयोग्य है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान का आकार—ऐसा ज्ञान है और ऐसी आकृति। ज्ञानमुद्रा क्या है? आकार चिन्तवे न? ऐसा ज्ञान है, गोला है, ऐसा है, वैसा है। ऐसा विकल्प का ज्ञान में चिन्तवन करना कि ज्ञान ऐसा है, ऐसा है, वह सब विकल्प उसमें है ही नहीं। समझ में आया?

उसे द्रव्यार्थिकनय से अविनाशी... ऐसा भगवान आत्मा द्रव्य से अविनाशी **तथा अनन्त ज्ञानादिगुणरूप परमात्मदेव जानो।** यह परमात्मा है। भगवान! तेरा स्वरूप ऐसा है। देखो! अब लेते हैं।

भावार्थ :- **अतीन्द्रिय आत्मिक-सुख के आस्वाद से विपरीत जिह्वाइन्द्री के विषय (रस) को जीत के...** जिह्वा इन्द्रिय का रस का लक्ष्य छोड़कर, **अतीन्द्रिय-आत्मिक सुख के आस्वाद से...** अतीन्द्रिय भगवान आत्मा। अतीन्द्रिय आत्मिक सुख का आस्वाद—उसका अनुभव, आनन्द का आस्वाद, उससे जिह्वारस का विषय भिन्न है। उस रस को छोड़कर, अतीन्द्रिय आनन्द के रस का अनुभव करना, वही अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय आत्मा का साधन करनेवाली है। समझ में आया?

निर्मोह शुद्ध स्वभाव से विपरीत... भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव निर्मोह है। जिसमें मोह, विकल्पमात्र (नहीं है)। पर ओर की सावधानी का भाव जिसके द्रव्य-गुण में

त्रिकाल में नहीं है। ऐसा भगवान आत्मा, उससे **विपरीत मोहभाव...** विकल्प आदि भाव है, उसे छोड़ दे, उसकी रुचि छोड़कर, भगवान! निर्मोहस्वरूप भगवान का ध्यान कर। समझ में आया? इसमें तो मार्मिक बात खोल दी है। समझ में आया?

भगवान आत्मा पर ओर के विकल्प की सावधानी छोड़। स्वरूप की सावधानी से आत्मा का अनुभव कर। समझ में आया? भगवान आत्मा निर्मोह, निर्मोह, निर्मोह। अकेला शान्त शीतल शीतल बर्फ की शिला है। भगवान आत्मा शीतल वीतराग अकषाय-स्वभाव की शीतल उपशमरस शिला है। मोह का—पर ओर की सावधानी का विकल्प अग्नि, कषाय-ज्वाला है। उसको छोड़कर शीतल, शीतल वीतरागस्वभावरस, अकषाय वस्तु पड़ी है, उसको अकषायभाव से अनुभव कर। समझ में आया?

यहाँ तो, द्रव्यस्वरूप है, वह अन्तर की निर्मल पर्याय से ही साधा जाता है, दूसरा कोई उसमें उपाय ही नहीं है। व्यवहार है सही। व्यवहार का निषेध करे तो भेद आदि रहते हैं, भेद होता है, उसका ज्ञान यथार्थ नहीं रहता। निश्चय का निषेध करे तो तत्त्व ही नहीं रहता। तत्त्व भगवान पूर्णानन्द का नाथ, एक समय में बर्फ की विशाल शिला पड़ी हो, ऐसे चैतन्य शान्तरस की बड़ी ध्रुव शिला आत्मा है। समझ में आया? मोह से रहित होकर, निर्मोह भगवान आत्मा का आस्वाद से अनुभव कर। वही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

वीतराग सहज आनन्द परम समरसीभाव सुखरूपी रस के अनुभव का शत्रु... कैसा है भगवान आत्मा? रागरहित स्वाभाविक आनन्द ऐसा परम समरसी, परम समरसी, परम शान्तरस, परम शान्तरस, अकेली परम समता, समता, समता। जिसमें सूक्ष्म विकल्प (का अस्तित्व नहीं)। जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, ऐसे सूक्ष्म विकल्प की ज्वाला भी जिसके समतास्वरूप में नहीं। समझ में आया? ऐसा **परम समरसीभाव...** आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह कषाय-ज्वाला है। सेठी! कहते हैं, विकल्प-ज्वाला है, उससे रहित अकेला शान्त अविकारी वीतराग समतारस का पिण्ड प्रभु, अन्तर समता की पर्याय के आश्रय से अवलम्बन ले। राग के अवलम्बन से साधकपना प्रगट होता नहीं। यहाँ यह सिद्ध करना है। ज्ञानचन्दजी! क्या करे? आहाहा!

अरे! जिसको वस्तु का साधकपना और साध्य वस्तु का ज्ञान भी नहीं है तो वह अन्तर रुचि करके स्वरूप का अनुभव कैसे कर सकेगा? समझ में आया? भगवान समरसी, समरसी। अकेला समता... समता (स्वरूप है)। समता अर्थात् अराग। अराग अर्थात् अद्वेष। अद्वेष अर्थात् वीतरागस्वभाव का समरसस्वरूप एकरूप, उसका अनुभव कर। शान्तरस से शान्तरस का अनुभव कर। शान्तरस से शान्तरस त्रिकाल का अनुभव कर। विकल्प अशान्त है। समझ में आया?

अनुभव का शत्रु जो नौ तरह का कुशील... मन, वचन, काय; करना, करवाना, अनुमोदन आदि भोग के विकल्प या नौ प्रकार का विषय का प्रकार, सबको छोड़कर। **निर्विकल्पसमाधि के घातक...** भगवान आत्मा निर्विकल्प समाधिस्वरूप, उसकी पर्याय निर्विकल्प समाधि से साधनेवाली दशा, ऐसी निर्विकल्प समाधि की निर्मल पर्याय, उसका घातक। **मन के संकल्प विकल्पों को त्यागकर...** समझ में आया? अभेद समाधि। भगवान आत्मा अभेद शान्तरूप, उसका साधन अभेद शान्त समाधि, उसका घातक मन का संकल्प-विकल्प। समझ में आया? घातक। देखो! मन में विकल्प आदि उठे, उसको साधन कहना, व्यवहार दया, दान आदि व्यवहाररत्नत्रय आदि को साधन कहना, वह तो विकल्प है। निर्विकल्प शान्ति का घातक है। घातक को साधक कहना, यह व्यवहारनय का लक्षण है। यह व्यवहारनय का लक्षण है। उसकी कथनशैली है। आहाहा! समझ में आया? घातक को साधक कहना, यह व्यवहारनय। निमित्त है, उसका ज्ञान करवाना है। उस समय ऐसा ही नव तत्त्व का, छह द्रव्य आदि का विकल्प, सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर की पर्याय पूर्ण है, ऐसा विकल्प की प्रतीति में आया है, ऐसा ही विकल्प होता है, दूसरा नहीं होता, ऐसा ज्ञान कराने को, वहाँ व्यवहार बीच में आता है, उसका ज्ञान करवाने को कहा। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बताते हैं कि तेरा परमातमा पूर्ण है। उसका साधन भी पूर्ण निर्विकल्प शान्ति से साधन होता है, यह बताते हैं। छोड़ दे दूसरा विकल्प। फलाना से ऐसा होता है और वैसा होता है। व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा छोड़ दे। सेठी! भगवान की भक्ति करते-करते अन्दर सम्यग्दर्शन हो जायेगा, परमात्मा का दर्शन करने

से चारित्र हो जायेगा, महाव्रत पालने से विकल्प करने से अन्दर चारित्र की स्थिरता हो जायेगी—(ऐसा) छोड़ दे।

मुमुक्षु : धर्म तो होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म कहाँ से होगा? विकल्प तो धर्म की पर्याय का घातक है, यहाँ तो कहा। घातक का अर्थ क्या हुआ? अधर्म है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प होता है, जरूर आता है। क्योंकि भूमिका में पूर्णानन्द परमात्मा की जो दृष्टि हुई, उसमें पूर्ण परमात्मा का, वाणी आदि, परमात्मा कैसे हैं, ऐसा विकल्प आता है। परन्तु वह विकल्प स्वरूप के साधन में घातक है। उसको व्यवहारनय साधक कहता है। व्यवहारनय साधक है, ऐसा कहता है। समझ में आया? क्या? साधक निमित्तपने कहने में आता है। है तो नहीं। आहाहा! है नहीं, उसको कहना वह व्यवहार की सिद्धि करते हैं, दूसरी चीज़ है सही।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्धि की है। क्या किया है? दो प्रकार के नय हैं न? कथनशैली आये। व्यवहार साधन कहा तो... समझ में आया? बताना है न? वस्तु है, ऐसी बताते हैं। भगवान आत्मा में जो राग है, विकल्प है, वह क्या चीज़ है, समझावे नहीं? समझाकर बराबर बताते हैं। ज्ञान करना है या नहीं? सारे लोकालोक का ज्ञान (होना), वह तो अपना स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। लोकालोक का ज्ञान करना, वह तो स्व-परप्रकाशक अपना स्वभाव है, कोई पर के कारण से नहीं है। व्यवहार आया तो व्यवहार के कारण से यहाँ स्व-परप्रकाशक ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। परन्तु स्व-परप्रकाशक में व्यवहार का क्या ज्ञान आया, उस व्यवहार को बताते हैं। समझ में आया?

निर्विकल्पसमाधि के घातक मन के संकल्प-विकल्पों को त्यागकर, हे प्रभाकरभट्ट! तू शुद्धात्मा का अनुभव कर। विकल्प से भी कहना है तो यह कहना है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तेरा चैतन्यप्रभु... अभी पीछे लेंगे। २३ में। समझ में आया? वह तो ध्यान का ही विषय है। वह कोई भी परद्रव्य आदि का विषय है ही नहीं, अविषय है, ऐसा लेंगे। शीर्षक है न? '**वेदशास्त्रेन्द्रियादिपरद्रव्यालम्बनाविषयं**' २३ में

ऊपर अविषय (कहा है)। है न? वस्तु है। यहाँ तो मक्खन तत्त्व क्या है, वह बात चलती है। कहते हैं, **मन के संकल्प-विकल्पों को त्यागकर, हे प्रभाकर...** भगवान आत्मा... अन्तर अनुभूति-गुफा में जाकर उसका अनुभव कर।

ऐसी ही दूसरी जगह भी कहा है... 'अक्खाणेति' इसका आशय इस तरह है कि इन्द्रियों में जीभ प्रबल होती है,... पहले रस आया था ना? आत्मरस के अलावा जिह्वारस का स्वाद में विकल्प है, छोड़ वह रस। भगवान का आनन्दरस अन्दर में पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्दरस के सामने जिह्वाइन्द्रिय का विषय का विकल्प छोड़ दे। **ज्ञानावरणादि आठ कर्मों में मोहकर्म बलवान होता है,...** उसमें निर्मोह कहा था न? निर्मोह-शुभाशुभ विपरीत मोहभाव कहा था न? उसकी गाथा कही है। भगवान आत्मा, सबमें पर ओर की सावधानी का विकल्प जितना ही महामुश्किल लिया है। समझ में आया? यहाँ कर्म लिया है परन्तु कर्म की ओर का झुकाव, मोह ऐसे झुकाव है, स्वभाव की ओर झुककर उसे जीतना वह ही बड़ा कठिन है। अशक्य नहीं है। **बलवान होता है,...** राग, पर की ओर का भावविकार बलवान होता है। उसको छोड़कर स्वभाव का साधन करना महान अनन्त पुरुषार्थ का प्रयत्न है। समझ में आया?

पाँच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत प्रबल है,... ब्रह्म ब्रह्मानन्द भगवान उसकी लीनता। विकल्प है, उसमें भी दूसरे पाँच विकल्प हैं उससे ब्रह्म का विकल्प विशेष है। **तीन गुप्तियों में से मनोगुप्ति पालना कठिन है।** क्योंकि उसमें संकल्प-विकल्प से रहित अन्दर होना (पड़ता है)। **ये चार बातें मुश्किल से सिद्ध होती हैं।** मुश्किल से सिद्ध होती है, अशक्य नहीं है। समझ में आया? वही बात टीका में कही थी, उसे (सिद्ध करने को) दूसरा आधार लिया। 'अणगार धर्मामृत' पृष्ठ २२२, ऐसा लिखा है। उस श्लोक का आधार (दिया है)। वहाँ का श्लोक है, ऐसे। श्लोक वहाँ का है। कहो, समझ में आया?

दुनिया चिल्लाती है, पुकार करती है। अरे! भगवान की दिव्यध्वनि से भी आत्मा का ज्ञान नहीं होता? जिनवाणी से भी आत्मा का ज्ञान नहीं होता? ऐसा कहनेवाला जैन नहीं। यहाँ कहते हैं कि जिनवाणी से अपना ज्ञान होता है—ऐसा माने, वह जैन नहीं। आहाहा! माणेकचन्दजी! देखो!

वेद... वेद अर्थात् दिव्यध्वनि। **शास्त्र,...** मुनि के वचन। **इन्द्रियादि परद्रव्यों के अगोचर...** पाठ में अविषय है, भाई! वीतराग की वाणी से अगम्य आत्मा है। दिव्यध्वनि से अगम्य आत्मा है। दिव्यध्वनि परद्रव्य है। इस पर चिल्लाते हैं, अरेरे! सोनगढ़वाले (ऐसा कहते हैं)। अरे! सोनगढ़वाले नहीं, अनन्त तीर्थंकर ऐसा कहते हैं। अरे! भगवन! तुझे खबर नहीं है, प्रभु! ये क्या लिखा है? देखो! क्या है उसमें? अरे! सोनगढ़वाले दिव्यध्वनि से भी लाभ नहीं मानते। ऐ मोतीरामजी! सोनगढ़वाले दिव्यध्वनि से लाभ नहीं मानते। (वे) जैन नहीं, निकाल दो। निकाल दो न तुम्हारे विकल्प में से। आहाहा!

वेद अर्थात् भगवान की वाणी। शास्त्र अर्थात् सन्तों के वचन, मुनियों के वचन। इन्द्रियादि, परद्रव्य मन आदि के अविषय आत्मा है। आत्मा अविषय है। दिव्यध्वनि का विषय आत्मा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वेद अर्थात् ये चार वेद?

पूज्य गुरुदेवश्री : वेद ये वीतराग की वाणी वेद। चार अनुयोग हैं या नहीं? भगवान के मुख से निकला चार अनुयोग, वेद, वाणी। अन्य वेद की बात यहाँ कहाँ है? सर्वज्ञ परमात्मा देवाधिदेव ॐकार ध्वनि में से चार अनुयोग निकले, उस दिव्यध्वनि का भगवान विषय ध्येय हो सकता नहीं। समझ में आया? ये किसके लिये कहा है? ये परमात्मप्रकाश गुप्त रखने के लिये योगीन्द्रदेव ने कहा था? कि, गुप्त रखना, भैया! वीतराग की वाणी से लाभ नहीं होगा तो लोग सुनेंगे नहीं, पढ़ेंगे नहीं। सुन तो सही। जब तक स्वरूप में स्थिरता न हो, तब तक ऐसा सुनने का विकल्प आये बिना रहे नहीं। गणधर को भी आता है। परन्तु वह वाणी और विकल्प का विषय आत्मा नहीं। आहाहा!

वह तो **वीतराग निर्विकल्प समाधि के...** गम्य है। विषय है, प्रत्यक्ष है, गम्य है दो अर्थ लिये। **'वीतरागनिर्विकल्पसमाधिविषयं'।** देखो! यह शब्द ऊपर है। भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, शुद्ध शान्ति का भगवान आत्मा विषय है। वाणी का विषय नहीं, समझने का वाणी का विकल्प उठता है और वाणी का लक्ष्य करके परलक्ष्यी जो ज्ञान हुआ, उसका भी वह आत्मा विषय नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी पर्याय का ध्यान करने से होता है, समवसरण के कारण से नहीं होता। भैया! वहाँ होता है तो वहाँ अपना परमात्मा विराजमान है या नहीं? बस, उसमें ध्यान लगाने से केवलज्ञान होता है, वाणी से केवलज्ञान होता है, ऐसा है ही नहीं। वहाँ समवसरण में अपना आत्मा है या नहीं? या चला गया है? समझ में आया? देखो! कितने ही लोग कहते हैं, अपने जिनवाणी का खूब सेवन करने से आत्मा का लाभ होगा। यहाँ ना कहते हैं। जिनवाणी परद्रव्य है। देखो! पाठ है या नहीं? '**वेदशास्त्रेन्द्रियादि-परद्रव्यालम्बनाविषयं**' आहाहा! अरे! भगवान अन्तर आँगन कैसा है उसकी भी उसे खबर नहीं। उसकी चीज़ क्या है उसकी तो खबर नहीं, परन्तु अपने आँगन में पर्याय में क्या चीज़ है कि जिससे वह लक्ष्य में आता है, उस चीज़ की खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुप्तरूप है, परन्तु है या नहीं? विद्यमान है या अविद्यमान है? भूतार्थ पदार्थ है या अभूतार्थ है? अरूपी होने पर भी महान आनन्दकन्द का अस्तित्व है या मौजूदगी नहीं है? आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २३

२३) वेयहिँ सत्थहिँ इंदियहिँ जो जिय मुणहु ण जाइ।
णिम्मल-झाणहँ जो विसउ सो परमप्पु अणाइ॥ २३॥

आहाहा! मालचन्दजी! कितनों ने तो यह माल भी कभी सुना नहीं। आहाहा! वेद अर्थात् **केवली की दिव्यवाणी से...** देखो! अन्दर लिखा है। केवली की दिव्यवाणी। उससे आत्मा जाना जाता नहीं। समझ में आया? स्वसंवेद्यमान गम्य आत्मा है। पहले '**स्वानुभूत्या चकासते**' में कहा था। समयसार में पहले ही कलश में आया है कि '**स्वानुभूत्या चकासते**'। अपनी निर्मल स्वसंवेदन अनुभूति से प्रगट होता है। समझ में आया? बाकी तो व्यवहार आदि है, उसका ज्ञान करनेयोग्य है।

केवली की दिव्यध्वनि वाणी... समझ में आया? उससे भी भगवान आत्मा जाना नहीं जाता। समवसरण में भी अनन्त बार गया। दिव्यध्वनि भी अनन्त बार सुनी। परपदार्थ है, सुनने में लक्ष्य था, उतना विकल्प था। और यह वाणी है, छह द्रव्य आदि है, उसका ज्ञान हुआ, वह भी परप्रकाशक परसत्तावलम्बीज्ञान हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शत्रुंजय से नहीं होता, सच बात है। (संवत्) २००६ के वर्ष में वहाँ गये थे। (वहाँ किसी ने कहा), ये लोग कहते हैं, शत्रुंजय से सिद्धि नहीं होती। अरे! शत्रुंजय तो बहुत दूर रह गया, साक्षात् भगवान की वाणी से भी आत्मा जाना जाता नहीं। परद्रव्य से आत्मा—स्वद्रव्य जानने में आता है? क्या यह आत्मा इतना पराधीन है? उसके स्वभाव में ऐसी कोई योग्यता है कि परद्रव्य से जानने में आता है, ऐसी उसकी सामर्थ्य है? कि स्वपर्याय से जानने में आता है, ऐसी स्वभाव में सामर्थ्य है। सेठिया। आहाहा! सिद्धगिरि। सिद्धगिरि को नहीं मानते, सिद्धगिरि से लाभ नहीं मानते। सिद्धगिरि तो बहुत दूर रह गया। साक्षात् सिद्ध हो तो भी उसके लक्ष्य से आत्मा को ज्ञान नहीं होता। वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य लिया है न? देखो न! आदि परद्रव्य, ऐसे लिया है, भाई! ऐसा कहकर यहाँ तो थोड़े शब्द से न्याय दिया है। सब परद्रव्य हैं। जितना परद्रव्य का लक्ष्य करने में परालम्बी परसत्तावलम्बी क्षयोपशमज्ञान होता है। उससे आत्मा का ज्ञान होता नहीं। आहाहा! परद्रव्य से नहीं, परद्रव्य के लक्ष्य के विकल्प से नहीं और परद्रव्य का क्षयोपशम ज्ञान अपनी पर्याय में हुआ, उससे भी आत्मा जाना जाता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : शिखरजी का माहात्म्य.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शिखरजी है न। अपना शिखर नहीं है? आत्मा सम्मेदशिखर है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकर मोक्ष पधारे न? आत्मा में से अनन्त तीर्थंकरर केवली परमात्मा सिद्ध अन्दर में से पर्वत में से उत्पन्न होते हैं, ऐसा सम्मेदशिखर यह (निजात्मा) है। जिसके ऊपर अनन्त परमात्मा मोक्ष का अनुभव करते हैं। जिसके ऊपर (अर्थात्) ध्रुव पर। अपने ध्रुव पर अनन्त परमात्मा होकर आनन्द का अनुभव करते हैं, ऐसा

सम्मेदशिखर अपना आत्मा है। आहाहा! 'एक बार दर्शन जो होई...' ऐसा कुछ आता है न? 'वंदे जो कोई, नारक पशु होई नहीं' नारक, पशु न हो तो उसमें क्या हुआ? फिर से होगा। परद्रव्य के लक्ष्य से, परद्रव्य के ज्ञान से, परद्रव्य के विकल्प से कभी आत्मा का साधन, स्वभाव हो सकता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

केवली की दिव्यवाणी से, महामुनियों के वचनों से... महा कुन्दकुन्दाचार्य जैसे सन्तों की गणधरों की वाणी। शास्त्र रचे हो। दिव्यध्वनि ... रचे हुए शास्त्र, गणधरों के शास्त्र। उससे आत्मा जाना जाता नहीं। देखो! **'जिह मुणहु ण जाइ'।** भगवान! तेरी पामरता बाहर में प्रसिद्ध मत कर। तेरी पामरता बाहर में प्रसिद्ध मत कर, प्रभुता प्रसिद्ध कर न। मैं पर के अवलम्बन से जाना नहीं जाता, ऐसा मैं स्वभाव से जाना जाता हूँ। ऐसा प्रसिद्ध कर न, ये क्या पामरता प्रसिद्ध कर रहे हो। समझ में आया? महामुनियों के वचनों से भी भगवान आत्मा जाना जाता नहीं। समझ में आया? कैसे जाना जाता है, वह कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ११, बुधवार, दिनांक ०६-१०-१९६५
गाथा - २३, प्रवचन - १६

परमात्मप्रकाश का पहला भाग—अध्याय चलता है। उसमें २३वीं गाथा है। क्या कहते हैं ? केवली की दिव्यध्वनि का आत्मा विषय नहीं। भगवान आत्मा शुद्ध परमब्रह्म आनन्दस्वरूप आत्मा है, वह भगवान की वाणी का भी विषय नहीं। वाणी है, वह परद्रव्य है और परद्रव्य के लक्ष्य से सुनने का जो विकल्प आता है, उस विकल्प का भी आत्मा विषय नहीं। समझ में आया ? उससे **जाना नहीं जाता...** दिव्यध्वनि से भगवान आत्मा जानने में नहीं आता, क्योंकि वह दिव्यध्वनि का विषय नहीं। (ऐसा हो) तो वाणी का सुनना (आदि) सब निरर्थक हो जाये। सुनने में विकल्प है, वह निमित्त हो, परन्तु वह स्वरूप को पकड़ने में साधन नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु आकुलता का विकल्प का भी वह विषय नहीं, तो दिव्यध्वनि का विषय आत्मा का ध्येय हो, ऐसा आत्मा के स्वभाव में नहीं। वाणी का विषय बने, ऐसी वाणी की सामर्थ्य नहीं। समझ में आया ? ओहोहो! ज्ञानचन्दजी! क्या करना ? लोग कहते हैं।

देखो! प्रभु! तेरी चीज ही ऐसी है न! अनन्त-अनन्त शुद्ध गुण सम्पन्न प्रभु, परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। तो वह दिव्यध्वनि का विषय कैसे हो ? वह तो अपना स्वभाव निर्विकल्प श्रद्धा, निर्विकल्प ज्ञान, निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प समाधि का विषय आत्मा है। समझ में आया ? हेमचन्दजी! शास्त्र का विषय नहीं। महामुनियों कुन्दकुन्दाचार्य आदि गणधर, भगवान के मुख में से अर्थ निकले, (उसमें से) गणधरों ने सूत्र-शास्त्र की रचना की। शास्त्र की रचना हुई, उसका भी आत्मा विषय नहीं। ओहोहो! समझ में आया ? भगवान के अर्थ से दिव्यध्वनि निकली, गणधरों ने शब्दों से शास्त्र की रचना की। उसका भी भगवान आत्मा विषय नहीं। उससे—शास्त्र से आत्मा ध्येय हो जाये, ऐसा आत्मा नहीं। ओहोहो! ज्ञानचन्दजी! जयकुमारजी! क्या है ? (लोग)

चिल्लाते हैं, पुकार करते हैं। खिल्ली उड़ाते हैं। खिल्ली कहते हैं न? तुम्हारे में क्या कहते हैं? खिल्ली उड़ाते हैं। ... कहते हैं। मश्करी करते हैं। अरे! क्या शास्त्र से समझ में नहीं आये? ऐसे मश्करी करते हैं। और शास्त्र की ओर की बुद्धि को शास्त्र में व्यभिचारी कहा है। पद्मनन्दि पंचविंशति में (कहा है)। शास्त्र है, वह परद्रव्य है। उसमें बुद्धि रुकती है, वह शुभ विकल्प है। वह व्यभिचारी बुद्धि है। आहाहा! (लोग कहते हैं), वाणी को व्यभिचारी कहते हैं। वाणी तो जड़, पर है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शास्त्र में—परद्रव्य में जितना घूमे, उतना भी विकल्प शुभराग है। शुभराग है, वह स्वभाव का व्यभिचार है। वह शुद्ध स्वभाव में अशुद्धता का संयोग हुआ। समझ में आया? सेठियाजी! बुद्धि को व्यभिचार कहा है। शुभ विकल्प है न, (इसलिए)।

कहते हैं, इन्द्रिय और मन का भी विषय नहीं। भगवान आत्मा! मन तो विकल्परूप है। समझ में आया? उसका भी विषय नहीं। इन्द्रिय तो मूर्तिक है। उससे भी आत्मा अनुभव में आ सके, ऐसी ताकत मन, इन्द्रिय में नहीं है। समझ में आया? ... आहाहा! व्यवहार के अर्थी लोग तो चिल्लाते हैं। पुकार-पुकार (करते हैं)। पुकार करो तो करो, वस्तु तुम कहते हो, ऐसी है नहीं। पहले श्रद्धा में उसका बराबर वास्तविक निश्चय तो करे कि भगवान आत्मा वाणी, अर्थ, मन और इन्द्रिय का विषय ही नहीं है। समझ में आया? वह तो अन्दर में निर्विकल्प शान्ति की पर्याय का आत्मा विषय है। कहते हैं, मन से भी शुद्धात्मा जाना नहीं जाता है।

वेद, शास्त्र, ये दोनों शब्द अर्थस्वरूप हैं,... वेद और शास्त्र तो शब्द अर्थरूप है। भगवान की वाणी अर्थरूप, गणधर की रचना शब्दरूप है। (इन) दोनों से आत्मा जाना नहीं जाता। मालाचन्दजी! क्या करना? शास्त्र स्वाध्याय करने से निर्जरा होती है, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहते हैं। अभी नहीं कहते हैं? ऐसा लिखा है। शास्त्र स्वाध्याय करने से निर्जरा होती है। सुन तो सही, भगवान! वह तो अपने स्वरूप के आश्रय से जितनी एकाग्रता हो, उसके कारण से निर्जरा होती है। शास्त्र ओर का जितना विकल्प है, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। ओहोहो!

आत्मा शब्दातीत है,... शास्त्र और वेद शब्दरूप है, अर्थरूप है। भगवान की,

मुनियों की, सन्तों की वाणी अर्थरूप है। उस वाणी से भी आत्मा जाना नहीं जाता। जिनवाणी से भी आत्मा जाना नहीं जाता। सुनने में लोगों के बहुत कठिन लगे... **तथा इन्द्रिय, मन विकल्परूप हैं,...** मन तो विकल्परूप है और इन्द्रिय मूर्तिक पदार्थ है। समझे ? मन और विकल्प तो **मूर्तिक पदार्थ को जानते हैं,...** भगवान आत्मा तो निर्विकल्प है न, शुद्ध स्वरूप है न। शरीर, कर्म अजीवतत्त्व है और मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग एक समय का आस्रवतत्त्व है। उस आस्रवतत्त्व से रहित भगवान आत्मा है। आत्मा तो निर्विकल्प है, अमूर्तिक है। **इसलिए इन तीनों से नहीं जान सकते।** समझ में आया ? वेद, शास्त्र, मन और इन्द्रिय। जो आत्मा निर्मल ध्यान के गम्य है, विषय है। मूल में विषय शब्द पड़ा है न ? विषय ही नहीं है, वह उसका विषय नहीं है, उसका अर्थ निकाला। '**णिम्मल-झाणहँ**' वेद, शास्त्र, इन्द्रिय, मन का विषय नहीं है। ओहोहो !

भगवान आत्मा, उस ओर की अन्तर एकाग्रता, शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की अन्तर एकाग्रता, ऐसे निर्मल श्रद्धा, ज्ञान के ध्यान द्वारा ही आत्मा विषय-ध्येय अनुभव में आने योग्य है। समझ में आया ? निर्मल ध्यान का विषय है। विषय कहो, गम्य कहो, ध्यान से प्रत्यक्ष कहो, ध्यानगोचर कहो, (सब एकार्थ हैं)। शब्द, वाणी से अगम्य, अगोचर, अविषय। मन, इन्द्रिय से अगम्य, अगोचर, अविषय। भगवान निर्मल पर्याय से गम्य है। निर्मल पर्याय से गम्य है, निर्मल पर्याय का ध्येय है, निर्मल पर्याय का विषय है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलो न। क्या है ? कौन बोलता है ? बोलो। बोलता कौन है तो बोलो।

वही आदि-अन्त रहित परमात्मा है। भगवान अनादि-अनन्त ध्रुव, जो वर्तमान निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञानपर्याय ध्यान से ही वह विषय हो सकता है, लक्ष्य हो सकता है, ध्येय होता है, उससे आत्मा प्राप्त होता है।

मुमुक्षु : ध्यान आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान आया न। संवर, निर्जरा ध्यान है, निर्मल पर्याय है।

समझ में आया? ध्यान का अर्थ वस्तु शुद्ध चिदानन्द की एकाग्रता, वह ध्यान। समझ में आया? पहले से सम्यग्दर्शन से आत्मा ध्यानगम्य ही है। समझ में आया? **वही आदि -अन्तरहित परमात्मा है।** अर्थात् टीकाकार टीका करते हैं। देखो!

भावार्थ :- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग—इन पाँच तरह आस्रवों से रहित... क्या कहते हैं? कि भगवान वर्तमान में वर्तमान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। वर्तमान में इन्द्रिय, कर्म, शरीर, वाणी (आदि) तो अजीव हैं, उसका तो विषय नहीं, क्योंकि वह उसमें नहीं। परन्तु मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग जो एक समय की विकृत पर्याय है, वह आस्रव है। इस आस्रव का विषय नहीं। आत्मा आस्रव से रहित है। समझ में आया? वर्तमान की बात चलती है, हाँ!

वस्तु एक समय में पूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन (स्वरूप है), वह बाद में लेंगे। २४ गाथा में। समझ में आया? **'केवल-दंसण-णाणमउ'।** भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्यस्वरूप प्रभु, बेहद विस्तार आनन्द आदि स्वभाव का सामर्थ्यरूप प्रभु, वह अपने निर्मल श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति (का विषय है)। जो आत्मा मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योगरूप एक समय की विकृत अवस्था (का विषय नहीं)। पाँचों एक समय की विकृत अवस्था है, उससे भगवान आत्मा भिन्न है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकृत पर्याय से भिन्न आत्मा है। वह तो आस्रव है और यह तो आत्मा है। एक समय में मिथ्याश्रद्धा, अव्रतभाव, प्रमादभाव, कषायभाव, कम्पनभाव योग आदि, एक समय की विकृत दशा आस्रव है। भगवान आत्मा तो आस्रव के नास्तिरूप भाव है। अपने अनन्त ज्ञान, दर्शनरूप अस्तिरूप स्वभाव है और आस्रव से नास्तिरूप भाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कहाँ छुप गया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आर्तध्यान और रौद्रध्यान में छुप गया है। ये लड़के कैसे अच्छे रास्ते पर चले, शरीर का रोग कैसे मिटे? ऐसे राग के विपरीत रास्ते पर चढ़ गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... **अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं...** नीचे है। देखो! नीचे है, हाँ! हमारे शब्द नहीं हैं। देखो! नीचे। **लोग अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं...** है अन्दर? है न, अन्दर है। है, उसमें नीचे हैं। २३वीं गाथा में अन्त में है। लोग अन्य ही मार्ग में लगे हैं। कोई राग, कोई पुण्य, कोई पाप, कोई विकल्प के ऐसे मार्ग में लगे हैं और (मानते हैं) हमको आत्मा का धर्म होगा और आत्मा की प्राप्ति होगी। स्वमार्ग में नहीं लगे हैं, अन्य मार्ग में लगे हैं। आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत भ्रान्ति। भगवान निर्भ्रान्त स्वरूप है। भ्रान्ति तो आस्रवपर्याय है। भगवान चैतन्यमूर्ति निर्भ्रान्त सम्यक् श्रद्धा सम्पन्न उसका स्वभाव है। समझ में आया? अविरत, वह रागभाव है। प्रमाद भी राग है, कषाय भी राग है। योग भी राग है अथवा कम्पन है। एक समय का आस्रव है। समझ में आया? उसका विषय नहीं। क्योंकि वह आस्रव है, भगवान आस्रवरहित है। तो जिससे रहित है, उसका विषय कैसे हो सकता है? समझ में आया? भगवान आत्मा चिदानन्दमूर्ति अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग के आस्रव की एक समय की विकृत दशा से पार—दूरीभूत भगवान है। ऐसा आत्मा आस्रव या विकल्प का विषय क्यों हो? उससे कैसे प्राप्त हो? उसमें नहीं है, उससे कैसे प्राप्त हो? उसमें परमानन्द आदि शुद्धता पड़ी है, तो परमानन्द आदि शुद्धपर्याय से ही उसकी प्राप्ति होती है। समझ में आया? आहाहा!

इन पाँच तरह आस्रवों से रहित निर्मल निज शुद्धात्मा... व्याख्या (कही)। कैसा है शुद्धात्मा? निर्मल है। आस्रवरहित है, कर्म, शरीररहित है। अजीव से रहित है, वह बात नहीं कही। यहाँ तो उसकी पर्याय में जो आस्रव है, उससे रहित भगवान आत्मा है। है रहित तो है कैसा? रहित है तो सहित कैसा है? कि निर्मल निज शुद्धात्मा। भगवान निर्मलानन्द निज शुद्धात्मा पूर्ण निर्मल, पूर्ण प्रकाश शुद्ध स्वभाव ऐसा निज निर्मल शुद्धात्मा, परम निर्मल आत्मा वह द्रव्य है। **ज्ञानकर उत्पन्न हुए...** उसके ज्ञान से—शुद्धात्मा के ज्ञान से। वह पर्याय (हुई)। उसका **ज्ञानकर उत्पन्न हुए...** उसका ज्ञानकर क्यों लिया? कि शास्त्र का ज्ञान, वेद का, वाणी का (ज्ञान) नहीं। इसलिए लिया है।

पाँच आस्रवरहित भगवान वर्तमान में है। वर्तमान में पाँच आस्रवरहित है? मालचन्दजी! वर्तमान में रहित ही है। सात तत्त्व है या नहीं? सात तत्त्व। जीव-आस्रव,

अजीवतत्त्व। अजीवतत्त्व भिन्न है, आस्रव भिन्न है, आत्मा भिन्न है। तत्त्व भिन्न है या नहीं? समझ में आया? भगवान आत्मा निर्मल निज शुद्धात्मा, निज, हाँ! यहाँ पर की बात नहीं है। परमात्मा भी नहीं। बात चलती है सिद्ध की, परन्तु अन्दर आत्मा ही लिया है।

ऐसा **निर्मल निज शुद्धात्मा...** वस्तु, वस्तु। पाँच आस्रवरहित। निर्मल शुद्ध शुद्धात्मा अस्तिरूप वस्तु। उसका ज्ञानकर। देखो! दिव्यध्वनि का, शास्त्र का, मन का, इन्द्रिय का विषय नहीं। परन्तु निज शुद्धात्मा के ज्ञान का वह विषय है। समझ में आया? आत्मा का ज्ञान, उस ज्ञान का वह विषय है। आत्मा वह तो निज शुद्धात्मा और उसको जिस ज्ञान ने विषय किया, वह सम्यग्ज्ञान। उस सम्यग्ज्ञान का, आत्मा का ज्ञान उसका विषय है। वह ज्ञान कैसा है?

ज्ञानकर उत्पन्न हुए नित्यानन्द सुखामृत का आस्वाद... आहाहा! भगवान आत्मा मन, वाणी, देह, कर्म, अजीवतत्त्व से तो वर्तमान में त्रिकाल भिन्न ही है। परन्तु पाँच आस्रव के विकल्प की पर्याय से त्रिकाल भिन्न है। है कैसा? निर्मल शुद्धात्मा निज। उसका जो ज्ञान, उसका जो ज्ञान किया उस ज्ञान से क्या उत्पन्न हुआ? आस्रव के लक्ष्य से तो आस्रव ही उत्पन्न होता है और आकुलता उत्पन्न होती है। परन्तु भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप निर्मल पूर्ण वस्तु... वस्तु, उसका ज्ञान; उसका ज्ञान, वह वर्तमान पर्याय है। उस ज्ञान के साथ उत्पन्न हुआ नित्यानन्द सुखामृत का स्वाद। नित्यानन्द भगवान जो नित्य आनन्दरूप है, उसका सुखामृत का आस्वाद। उसके साथ—आत्मा के ज्ञान के साथ आनन्द की उत्पत्ति हुई। समझ में आया?

सुखामृत—सुखरूपी अमृत का आस्वाद। **उस स्वरूप परिणत...** उस रूप—अवस्थारूप आत्मा हुआ। **निर्विकल्प अपने स्वरूप के ध्यानकर स्वरूप की प्राप्ति है।** समझ में आया? ओहोहो! यहाँ तो लोगों को (यही मानना है कि) चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में व्यवहाररत्नत्रय है, उससे आत्मा की प्राप्ति हो गयी। व्यवहार से। अरे! व्यवहार तो विकल्प का आश्रय है। पराश्रय व्यवहार। पराश्रय व्यवहार, स्वआश्रय निश्चय। समझ में आया? शान्ति से पहले सुनना। सुनकर उसका निश्चय करना कि क्या चीज़ है। ऐसे ही चला जाये और (कहे), ऐसे नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा खोटा है, ऐसा सच्चा है, परन्तु सुन तो सही, प्रभु!

तेरी चीज़ तो निर्मल आनन्दकन्द है और उस चीज़ में आस्रव और अजीव का तो त्रिकाल अभाव है। और वह आत्मा शुद्ध निर्मल की दृष्टि हुई और उसके साथ जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, उसी ज्ञान के साथ जो निर्मलानन्द, नित्यानन्द प्रभु आत्मा, उसका व्यक्तरूप आनन्द का—निर्विकल्प आनन्द का स्वाद (प्रगट) हुआ। ऐसे आस्वाद **उस स्वरूप परिणत...** हुआ आत्मा। पर्याय में आत्मा परिणत हुआ। वह संवर, निर्जरा हुई। समझ में आया?

सात तत्त्व सिद्ध करने हैं न? तो अजीवतत्त्व कर्म, शरीर से भिन्न। वर्तमान आस्रव से भिन्न। अब भगवान शुद्ध प्रभु आत्मा, उसमें अन्तर एकाग्र होकर आत्मा का जो ज्ञान हुआ, उस ज्ञान से उत्पन्न हुआ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, उसरूप परिणत हुआ, वह संवर, निर्जरा हुई। वह निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुआ। निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ। समझ में आया? ऐसे स्वरूप परिणत। परिणत। वस्तु जो शुद्ध स्वरूप है, उसका अन्तर लक्ष्य, दृष्टि करने से भगवान आत्मा का ज्ञान, श्रद्धा और निर्विकल्प आनन्दरूप पर्याय में दशा परिणत हुई, ऐसे निर्विकल्प अपने स्वरूप के ध्यानकर। **ऐसे निर्विकल्प अपने स्वरूप के ध्यानकर स्वरूप की प्राप्ति है।** कहो, मक्खन आया है, मक्खन। मक्खन है? ...चन्दजी! आहाहा!

'लाख बात की बात एक निश्चय उर लावो।' वह आता है न? छहढाला में आता है। छहढाला में आता है। छहढाला में, आता है न? जयकुमारजी! छहढाला में नहीं आता है? 'लाख बात की बात निश्चय उर लावो, करोड़ बात की बात निश्चय उर लावो, अनन्त बात की बात निश्चय उर लावो।' बात तो लाख कही। कहे कितनी? समझ में आया?

भगवान आत्मा **अपने स्वरूप के ध्यानकर...** देखो! अपने स्वरूप के ध्यानकर। वाणी, शास्त्र, मन, इन्द्रिय का लक्ष्यकर, ध्यानकर प्राप्ति नहीं होती, उससे तो विकार की उत्पत्ति होती है। चिल्लाते हैं। अरेरेरे! जिनवाणी से लाभ नहीं होता? मुम्बई में कहा, जिनवाणी से लाभ न हो, ऐसा माननेवाला जैन नहीं। उसको आत्मा में से निकाल दो। ... जिनवाणी से लाभ नहीं? जिनवाणी परद्रव्य? अनन्त बार परद्रव्य। और परद्रव्य का विषय भगवान है ही नहीं। थोड़ा कहेंगे।

आत्मा ध्यानगम्य ही है,... भगवान आत्मा तो अन्तर की एकाग्रता में ही गम्य है। वह निर्विकल्प दृष्टि द्वारा ही गम्य है। बस, दूसरा कोई उसका उपाय है नहीं। कहो, बराबर है ? ज्ञानचन्दजी ! इसमें फिर विवाद हो या नहीं ? ... लोप हो जाता है। लोप नहीं होता है, ऐसे ही रहता है। जैसा है, वैसा रहता है। सेठियाजी ! भगवान आत्मा, अपने स्वरूप की एकाग्रता हो, तब स्थिरता नहीं होती हो, (तब) विकल्प हो, निमित्त हो, लक्ष्य हो, परन्तु उन सबसे अगम्य बात है। उसके गम्य नहीं। उससे गम्य नहीं। भगवान आत्मा का धर्म राग और पर से गम्य नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

शास्त्रगम्य नहीं है,... है उसमें ? उसमें है या नहीं ? इसमें कहाँ है ? लिखा है या नहीं ? (जब) शास्त्रगम्य नहीं है तो आर्तध्यानगम्य तो हो कहाँ से ? शास्त्रगम्य नहीं है। दिगम्बर सन्त नग्न साधु। नागा बादशाह से आघा। आत्मा शास्त्रगम्य नहीं है, दिगम्बर सन्त पुकार करते हैं। समझ में आया ? अज्ञानी का भार नहीं है कि ऐसा कह सके। दिगम्बर सन्त, मुनि भावलिंगी छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। विकल्प आया, शास्त्र वाणी वाणी से रच गया, विकल्प से नहीं। विकल्प का कर्ता भी नहीं, विकल्प से मुझे लाभ भी नहीं और दुनिया को लाभ हो, उससे मुझे भी लाभ नहीं। ओहोहो ! समझ में आया ? दूसरा (जीव) थोड़ा धर्म प्राप्त कर ले तो उसकी पर्याय से आत्मा को थोड़ा लाभ होता है या नहीं ? धर्मचन्दजी ! दूसरा (जीव) धर्म प्राप्त करे उसका लाभ यहाँ नहीं होता ? नहीं ? तो क्यों धर्म-प्राप्ति करवानी ? आहाहा !

वचन अगोचर वस्तु है, कहे वही लाभ अगमअगोचर वस्तु है। वह चीज़ ही अलौकिक चिदानन्द प्रभु है। कहते हैं, अभी थोड़ा कहेंगे। शास्त्र तो थोड़ा सुनने का उपाय, पहले लक्ष्य करना इतना है। उससे आत्मा प्राप्त होता है, ऐसी चीज़ नहीं। निमित्तरूप उपाय कहने में आता है। **क्योंकि जिनको शास्त्र सुनने से ध्यान की सिद्धि हो जाये,...** शास्त्र सुनकर यदि ध्यान की सिद्धि हो, तो सुना, उसे निमित्त कहने में आता है, ऐसा कहते हैं। यह कहा। सुनकर यदि उसके श्रद्धा-ज्ञान में आत्मा की ओर का ध्यान हो जाये, यह कर्तव्य है, यह (सुनना आदि) तो कर्तव्य है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। सुनने से आया न ? आहाहा !

मुमुक्षु : निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हो, तब उसे निमित्त कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा अर्थ लिखा है। देखो! **वे ही आत्मा का अनुभव कर सकते हैं,...** ध्यान की सिद्धि हो जावे (तब उसे निमित्त कहते हैं)। शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हमारी ओर का लक्ष्य छोड़। शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हमारी ओर का लक्ष्य छोड़ दे। विकल्प भी छोड़ दे, स्वभाव का ध्यान कर। ऐसा वह शास्त्र कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। शास्त्र सुनकर क्या किया? **जिनको शास्त्र सुनने से...** का अर्थ क्या हुआ? कि शास्त्र ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा पूर्णानन्द निर्मलानन्द प्रभु, पाँच आस्रव की विकल्प पर्याय से भिन्न है, उसका विषय नहीं, अजीव का विषय नहीं। वह अन्तर निर्मल पर्याय का (विषय है), ऐसा शास्त्र कहते हैं। ऐसा शास्त्र ने कहा, वह उसके लक्ष्य में रहो। शास्त्र से भी नहीं, विकल्प से नहीं और शास्त्र सन्मुख के ज्ञान से आत्मा प्राप्त होता नहीं। आत्मा के ज्ञान से आत्मा प्राप्त होता है। ऐसा शास्त्र ने कहा। शास्त्र ने ऐसा कहा और ऐसा सुना। (शास्त्र) कहता यह है कि हमारी ओर से लक्ष्य छोड़ दे, विकल्प का लक्ष्य छोड़ दे। पूर्णानन्द भगवान की निर्मल पर्याय से ध्यान कर। ऐसा ध्यान हुआ तो शास्त्र को निमित्त कहने में आया।

मुमुक्षु : शास्त्र से इतनी चेतावनी तो आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतावनी दी परन्तु लक्ष्य में लिया किसने? उसने कैसे लक्ष्य में लिया? कैसे उसने लक्ष्य में लिया? कि शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हमारी ओर के लक्ष्य से तुम्हारा ज्ञान नहीं होगा। शास्त्र ऐसा कहते हैं हमें सुनने से विकल्प होते हैं, उस विकल्प से तेरा विषय नहीं होगा। शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हमारी ओर के विकल्प से जो क्षयोपशम पर्याय होती है, उससे तेरा विषय नहीं होगा। ऐसा शास्त्र कहते हैं। सेठियाजी! जयकुमारजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा शास्त्र कहते हैं। तू ध्यान से प्राप्त होता है, ऐसा शास्त्र कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

शास्त्र सुनने से... इतना अर्थ आया। **ध्यान की सिद्धि हो...** शास्त्र ने क्या कहा? शास्त्र ने कहा क्या? कि हमारी ओर का लक्ष्य करने से तेरी प्राप्ति नहीं होगी और हमारी ओर (लक्ष्य करके) सुनने में जो विकल्प उठता है, उस विकल्प से तेरी प्राप्ति नहीं होगी। और हमारी ओर का मात्र शास्त्र का बोध हुआ, राग मन्द होकर कोई क्षयोपशम (हुआ), उससे भी आत्मा का बोध नहीं होगा। शास्त्र कहते हैं कि तेरी निर्मलानन्द भगवान चीज़ है, उसका ज्ञान कर। उस ज्ञान से प्राप्त होगा, ऐसा शास्त्र कहते हैं। मालचन्दजी! यह अन्दर माल पड़ा है। आहाहा! वह निर्माल्य नहीं है, मालवाला है। कमजोर नहीं है, पामर नहीं है, प्रभु है तू। आहाहा! समझ में आया? पंगु लकड़ी लेकर चले, ऐसा नहीं है। हमारे अवलम्बन से तेरा ध्यान हो, ऐसा तू है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। तू ऐसा नहीं है। हम ऐसा कहते हैं, शास्त्र कहते हैं कि हमारे लक्ष्य से तेरा ध्यान हो, ऐसा तू है ही नहीं। बराबर है? ज्ञानचन्दजी! आत्मा है, देखो! आहाहा! प्रभु! तेरी कीमत क्या है?

सर्वज्ञ की वाणी और सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कि तेरा आत्मा परलक्ष्यी निमित्त, परलक्ष्यी विकल्प, परलक्ष्यी ज्ञान, उससे तेरा ज्ञान होता नहीं—ऐसा भगवान कहते हैं। भगवान कहते हैं, शास्त्र कहते हैं, गणधर कहते हैं, सन्तों कहते हैं। ऐसा सुना। ओहो! ये तो निषेध करते हैं...। समझ में आया? बोलो तो थोड़ा मिले। फिर सुनने से आया। भीखाभाई! भीख माँगने की आदत पड़ गयी है न। यहाँ तो कहते हैं, भगवान कहते हैं, भीख माँगने की ताकत ही तेरे में नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! हेमचन्दभाई! आहाहा! तेरी शक्ति ऐसी है, हम कहते हैं, यह तुझे बैठता नहीं? तेरा सामर्थ्य ही ऐसा है, यह तुझे जँचता नहीं? हम कहते हैं, वह तुझे जँचता नहीं तो हमारी तूने मानी नहीं। मूल में भूल। नेमिदासभाई! हम सर्वज्ञ कहते हैं, वाणी द्वारा, निमित्त द्वारा और शास्त्र द्वारा सन्त ऐसा कहते हैं कि तुम्हारा भगवान आत्मा हमारे अवलम्बन से प्राप्त हो, ऐसा तुम्हारा आत्मा है ही नहीं। हम ऐसा कहते हैं और तुम ऐसा मानते हो या नहीं? आहाहा!

भगवान चिदाननदज्योति मात्र वीर्य की मूर्ति। वीर्य अर्थात् बल। बल... बल...

बल... बल... मात्र बल की मूर्ति। उस बल से देखो तो पूर्ण बल की मूर्ति है। ज्ञान से देखो तो पूर्ण ज्ञान की मूर्ति। पूर्ण बल, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण आनन्द, ऐसा स्वभावमय प्रभु, सर्वज्ञ कहते हैं कि हमारे लक्ष्य से तेरा लक्ष्य हो, ऐसा तू है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसने भगवान को कहाँ माना? कहते हैं, प्रभु! तेरी चीज़ में ऐसी ताकत है, इतना सामर्थ्य है, इतना तेरा सहज स्वभाव सम्पन्न प्रभु तू है कि पर के अवलम्बन से तेरा आत्मा प्राप्त हो, ऐसा तुझमें है ही नहीं। आहाहा! तेरे ज्ञान से, तेरी श्रद्धा से, तेरी शान्ति से तुम प्राप्त हो, ऐसा तेरा स्वभाव हो, ऐसा तेरा स्वरूप है, ऐसा तेरा सामर्थ्य है। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैसा कहते हैं, वैसा है। समझ में आया? आहाहा! जो कहा जाता है, वह तो वाणी है, वाच्य तो आत्मा है।

कहते हैं, **आत्मा ध्यानगम्य ही है, शास्त्रगम्य नहीं है,...** ऐसा शास्त्र कहते हैं, ऐसा केवली कहते हैं। कौन कहता है? ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, सन्त, गणधर शास्त्र में कहते हैं। कहो, हेमचन्दभाई! आहाहा! एक बार हाँ तो कह, हाँ कह। तू हाँ कर तो लत हो जायेगी, हालत हो जायेगी। न कहोगे तो आत्मा प्राप्त नहीं होगा। समझ में आया? सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर देवाधिदेव सौ इन्द्र की उपस्थिति में समवसरण में फरमाया। सौ इन्द्र की उपस्थिति में त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने फरमाया, ऐसे सन्तों ने शास्त्र रचे, अर्थ से कहा, शास्त्र रचे, ऐसे ही शास्त्र सन्तों ने रचे। वह शास्त्र पुकार करते हैं कि हमारे से तुम गम्य नहीं। सेठियाजी! आहाहा!

भगवान आत्मा ऐसा ही उसका सामर्थ्य, स्वरूप, सत्त्व है कि उसके सत्त्व में ऐसा ही सत् स्वरूप पड़ा है कि परालम्बन से, विकल्प से, परालम्बी ज्ञान से भी प्राप्त न हो और अपने आत्मा के ज्ञान, अपनी श्रद्धा, स्वभाव शुद्ध शान्ति से प्राप्त हो, ऐसा ही भगवान आत्मा है, ऐसा शास्त्र कहते हैं। कहो, बराबर है? जयकुमारजी! शास्त्र कहते हैं या दूसरा कोई ऐसा कहता है? लिखा है न? देखो!

क्योंकि जिनको शास्त्र सुनने से ध्यान की सिद्धि हो जाये, वे ही आत्मा का

अनुभव कर सकते हैं,... शास्त्र ने ऐसा कहा, उसके लक्ष्य में आ गया कि शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हमारे ज्ञान से भी तेरा ज्ञान नहीं होगा। आहाहा! कायर काँप उठे, ऐसी बात है। 'वचनामृत वीतराग के, परम शांतरस मूल, औषध जो भवरोग को, कायर को प्रतिकूल'। नपुंसक को (ऐसा लगे), अरेरेरे! ये क्या? भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव दिव्यध्वनि में इन्द्रों के समक्ष, गणधरों के समक्ष, लाखों-करोड़ों मनुष्यों और देवों के समक्ष फरमाते थे, हमारे लक्ष्य से तेरा लक्ष्य नहीं होगा, ऐसा तेरा आत्मा है। आहाहा!

जिन्होंने पाया, उन्होंने ध्यान से ही पाया है,... जिन्हें आत्मा मिला, उन्हें ध्यान से ही मिला है। शास्त्र से, विकल्प से, देह से, वाणी से, गुरु से, तीर्थंकर से कभी प्राप्त हुआ नहीं। समझ में आया? **जिन्होंने पाया, उन्होंने ध्यान से ही पाया है,...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक का अर्थ अलौकिक स्वरूप आत्मा का है। आत्मा लौकिक स्वरूप है क्या? समझ में आया? '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' द्रव्यसंग्रह में आता है। निश्चय-व्यवहार दोनों मार्ग ध्यान में ही प्राप्त होते हैं। द्रव्यसंग्रह की ४७वीं गाथा है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ध्यान से अन्तर आत्मा का निर्विकल्प ध्यान हुआ, उससे ही प्राप्त होता है; दूसरा कोई उसका उपाय है ही नहीं। ऐसी उसकी सामर्थ्य है, ऐसा उसका सामर्थ्य है। ऐसा उसके निर्मल पर्याय के सामर्थ्य से पर्यायवान ध्यान में आता है, ऐसा उसका स्वरूप है। दूसरा स्वरूप नहीं है तो कहाँ से लावे? **शास्त्र सुनना तो ध्यान का उपाय है...** उपाय का (अर्थ) क्या? ये कहते हैं ऐसा। ये ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सुनकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ऐसा सुनता है कि मेरा लक्ष्य छोड़ दे, ऐसा वह सुनता है। चन्दुभाई! ऐसा सुनता है, वह ऐसा सुनता है और ऐसा सुनाते हैं। अकेला भगवान ध्रुव परमात्मा महान पदार्थ, महान पदार्थ, महान पदार्थ है। अपना निज आत्मा सिद्ध से भी भिन्न महान आत्मा है। सिद्ध तो उसके लिये महान है, अपने लिये महान नहीं है। अपने लिये सिद्ध आत्मा महान नहीं है। समझ में आया? भगवान निज शुद्ध प्रभु, उसमें...

समझ में आया ? ऐसा शब्द है। उसमें कहाँ वह है ? आगे आयेगा। **आप ही सब बातों में परिपूर्ण...** है। २४ गाथा में अन्वयार्थ में आयेगा। **आप ही सब बातों में परिपूर्ण...** अन्वयार्थ में तीसरी पंक्ति में है। सब बातों से परिपूर्ण है। २४ गाथा है न ? उसमें है। केवलज्ञान, केवलदर्शनमयी है, उसका अर्थ किया है। आप ही सब बातों में परिपूर्ण हैं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा मार्ग महान कोई पुण्य का योग हो तो सुनने मिले। समझ में आया ? और उसके क्षयोपशम की इतनी योग्यता हो तो सुनने मिले। उसे सुनने में यह आया कि हमारी ओर के ज्ञान से तेरा ज्ञान नहीं होगा। सेठियाजी ! आहाहा ! तब उनके उपकार का विकल्प आये बिना रहता नहीं। समझ में आया ? ओहोहो !

जिन्होंने पाया, उन्होंने ध्यान से ही पाया है,.... ऐसा भगवान फरमाते हैं। उसको भगवान फरमाते हैं, ऐसा मानना या दूसरा मानना ? वाणी ऐसा कहती है, सन्तों की वाणी, परमात्मा की वाणी, दिव्यध्वनि, जिनवाणी, ज्ञानी की सब बात एक ही है। किसी बात में अन्तर है नहीं। कहते हैं, भाई ! भगवान ! तेरी महिमा तू घटाकर तेरी महिमा तुझे आये ऐसा कैसे बने ? तेरी महिमा घटाकर पर की महिमा करके तेरी महिमा आ जाये, (ऐसा) कैसे बने ? समझ में आया ? ओहोहो ! शास्त्र सुनना तो ध्यान का निमित्तमात्र उपाय है। वह क्या कहते हैं, ऐसा ख्याल में आया, तो ख्याल ऐसा आया कि वे कहते हैं कि हमारी ओर का लक्ष्य छोड़ दे। हमारी ओर का जो ज्ञान हुआ, उससे भी तेरे आत्मा का ज्ञान हो—ऐसा नहीं है। क्योंकि आत्मा में ज्ञानानन्द पड़ा है। उसके लक्ष्य से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उस ज्ञान से ही प्राप्ति होती है। बस, इतनी बात है। आहाहा ! क्यों भैया समझ में आता है या नहीं ? छोटी उम्र में तो पहले सुनने में आये कि ये चीज़ है। आहाहा ! आत्मा क्या है ? आत्मा को छोटी उम्र है कहाँ ? आहाहा !

शास्त्र के ज्ञान से आत्मा जानने में नहीं आये, ऐसी सामर्थ्यवाला है। उसकी सामर्थ्य कम मानना, वह आत्मद्रव्य को ही मानता नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : निगोद में से निकलकर आठ वर्ष में केवल (ज्ञान) पावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मद्रव्य है न ! पाये क्या ? पाया ही है। दृष्टि पलटी। है तो है ही। है तो है ही। अपनी दृष्टि से—निर्विकल्प दृष्टि से प्राप्त होता है। निर्विकल्प

स्वभाव है तो निर्विकल्प दृष्टि से प्राप्त होता है। कोई दूसरे से प्राप्त होता नहीं। समझ में आया? यह बात दुनिया से टकराये ऐसी है। लोगों को टकराव ही पसन्द है न। वह कहेंगे। लोग अन्य ही मार्ग में लगे हैं। वृथा क्लेश करते हैं।

ऐसा समझकर... क्या समझे? कि शास्त्र सुनना तो एक निमित्त कहता है कि तेरा क्या स्वरूप है। लक्ष्य कराया है। तेरा स्वरूप ऐसा है, निर्विकल्प निर्मलानन्द पूर्ण स्वरूप है तो तेरा स्वरूप तेरी निर्मल पर्याय से प्राप्त होता है। ऐसा शास्त्र ने सुनाया। बस। कहते हैं, **ऐसा समझकर अनादि-अनन्त चिद्रूप में अपना परिणमन लगाओ।** देखो! यह सार। अनादि-अनन्त ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव। वर्तमान पर्याय को वहाँ लगाओ। एकरूप चिदानन्द पड़ा है, उसमें परिणाम को लगाओ। बस, वह परिणाम है, वही ध्यान है। उसे द्रव्य पर लगाओ। समझ में आया?

मुमुक्षु : समझकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, समझकर, परन्तु यह समझकर। उससे गम्य नहीं है, तेरे ध्यान से गम्य है, ऐसा समझकर। समझ में आया? यहाँ तो अभी तो व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, तप और विकल्प करते-करते प्राप्त हो जायेगा। एक बार बेड़ा पार हो जायेगा, करते रहो। हो जायेगा। देह का अभाव हो जायेगा, विकार का अभाव नहीं होगा। आहाहा! कितना अन्तर है? मालचन्दजी! बहुत अन्तर है? पहले सब सुना था या नहीं स्थानकवासी में?

मुमुक्षु : पूरब-पश्चिम।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरब-पश्चिम का अन्तर? वस्तु ऐसी है। वस्तु की खबर बिना पुकार करे, क्या करे?

कहते हैं, अपना परिणाम लगाओ। चिद्रूप अनादि-अनन्त ध्रुव है, उसमें अपना परिणाम (लगाओ)। अपना परिणाम निर्विकल्प परिणाम लगाओ। बस, यह पर्याय (हुई)। समझ में आया? सारा बारह अंग, चौदह पूर्व, दिव्यध्वनि यह कहते हैं।

दूसरी जगह भी 'अन्यथा' इत्यादि कहा है... यशस्तिलक चंपू। उसमें कहा है। अरे! **वेद शास्त्र तो अन्य तरह ही हैं,...** वीतराग की वाणी और शास्त्र तो अन्य तरह ही

है, भगवान भिन्न है। वह तो **नय प्रमाणरूप हैं,...** विकल्पात्मक। **तथा ज्ञान की पण्डिताई कुछ और ही है,...** क्षयोपशम ज्ञान का हो, बातें करे, ज्ञान की क्षयोपशम की पण्डिताई कुछ और है। ओहोहो! समझ में आया? देखो, पाठ में है, हों! '**वेदपाण्डित्यं शास्त्रपाण्डित्यमन्यथा**' दिव्यध्वनि का ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान अन्यथा (है), ऐसा कहते हैं। दोनों में पण्डित शब्द है। '**वेदपाण्डित्यं शास्त्रपाण्डित्यमन्यथा**'। यशस्तिलक में तो बड़ी बात कही है। ओहो!

वह आत्मा निर्विकल्प है,... रागरहित, निर्मल पर्यायस्वरूप, निर्मल स्वरूप है। **नय प्रमाण निक्षेप से रहित है,...** नय, प्रमाण, निक्षेप के विकल्प के भेद से रहित है। **वह परमतत्त्व तो केवल आनन्दरूप है,...** भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दरसरूप है। उस ओर आनन्द की पर्याय आदि को ज्ञान से अन्तर में लगाओ, वही एक आत्मा की मुक्ति पाने का और आत्मा की प्राप्ति का उपाय है। आहाहा!

और लोग अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं,... देखो! समझ में आया? '**अन्यथा परमं तत्त्वं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा**' अरे! परमतत्त्व तो कोई दूसरी चीज अन्दर है। समझ में आया? **लोग अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं,...** ओहोहो! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा, यात्रा, ऐसा पालना, ऐसा कष्ट, अनशन, ऊनोदरी, व्रत ऐसा करना, शास्त्र अभ्यास ऐसा करना। लोग अन्य मार्ग में लगे हैं, मार्ग दूसरा है। यहाँ बहुत स्पष्ट आया है। यह गाथा ऐसी आ गयी। सेठियाजी आये और ऐसी गाथा आयी। समझ में आया? आहाहा!

लोग अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं,... व्यवहार के विकल्प में, बाहर की क्रियाकाण्ड में, बाह्य के शास्त्र-अभ्यास में अन्य मार्ग में लगे हुए हैं, मार्ग दूसरा है। **सो वृथा क्लेश कर रहे हैं।** सेठी! पहली बार में यह सुने तो कठिन लगे, धमाका लगे। जब वे पहली बार आये थे तब। **इस जगह अर्थरूप शुद्धात्मा उपादेय है,...** भगवान शुद्धस्वरूप अर्थ, जो पदार्थ आत्मा, वही ध्यान करनेयोग्य है, **अन्य सब त्यागनेयोग्य हैं, यह सारांश समझना।** २३वीं गाथा में कहा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १२, गुरुवार, दिनांक ०७-१०-१९६५
गाथा - २४ से २६, प्रवचन - १७

गाथा - २४

पहले भाग की २४वीं गाथा है। २३ गाथा हो गयी। **आगे कहते हैं जो परमात्मा वेद-शास्त्रगम्य तथा इन्द्रियगम्य नहीं,...** यह भगवान आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न पदार्थ है, परन्तु वह शास्त्रगम्य नहीं है। शास्त्र है, वह तो परवस्तु है। और उसका वह ज्ञान कराता है तो वह भी परलक्ष्यी ज्ञान होता है। उससे वह गम्य नहीं। वह तो अपना स्वरूप शुद्ध, पूर्ण, निर्विकल्प दृष्टि, शान्ति से गम्य है। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध समाधि आनन्दस्वरूप वस्तु है। वस्तु है तो वस्तु में अनन्त गुण (बसे हुए हैं)। वह अभी कहेंगे। वह शास्त्रगम्य नहीं, इन्द्रियगम्य नहीं।

केवल परमसमाधिरूप... अर्थात्? वस्तु जो अनन्त गुणस्वरूप अस्तिरूप धाम पदार्थ है, वह अन्तर्मुख रागरहित अरागी शुद्ध शान्ति, दृष्टि और ज्ञान का वह विषय है। सुमेरुमलजी! क्या आया? भगवान आत्मा अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञानादि धाम प्रभु स्वतः वस्तु अखण्ड पदार्थ है। एक अपना स्वरूप, हों! यह अखण्ड पदार्थ शास्त्र, इन्द्रिय, मन, विकल्प गम्य है ही नहीं। शान्तिगम्य है। अरागी शान्ति, अरागी दृष्टि और अरागी ज्ञान अथवा आत्मा का ज्ञान (गम्य है)। ऐसा निर्विकल्प शान्ति, ऐसा ध्यानकर ही गम्य है। ऐसे ध्यान में ही वह आत्मा आ सकता है। दूसरे कोई उपाय से आ सकता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभ-उपयोग से आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल में (नहीं)। शुभ-उपयोग तो राग है। धूल में आये? शुभ तो आस्रव है, विकल्प है। उदयभाव से परमपारिणामिकभाव दृष्टि में नहीं आता। परम स्वभावभाव वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु उसकी निर्मल निर्विकारी पर्याय द्वारा ही अनुभव में आता है।

मुमुक्षु : वह तो शुक्लध्यान न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! धर्मध्यान में। वह तो कहीं ऊपर रह गया। नीचे धर्म अर्थात् स्वभाव, उसका ध्यान। भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसका लक्ष्य करनेवाली निर्विकारी शान्ति की पर्याय जो धर्मध्यानरूप है, उसी से आत्मा गम्य है। समझ में आया? वह गुरु से भी प्राप्त नहीं होता, अरिहन्त से भी प्राप्त नहीं होता, शास्त्र के ज्ञान से भी प्राप्त नहीं होता। वह तो अन्तर स्वभाव वीतराग शान्ति का बिम्बरूप भगवान आत्मा है। वह वीतरागी शान्ति का अंश परिणति द्वारा ही ध्यान में आता है। इसके अलावा आत्मा गम्य होता नहीं।

इसलिए उसी का स्वरूप फिर कहते हैं... २३ (गाथा में) कल आ गया था। परन्तु अब अस्तित्व से कहते हैं, क्या स्वरूप है वह।

२४) केवल-दंसण-णाणमउ केवल-सुक्ख-सहाउ।
केवल-वीरिउ सो मुणहि जो जि परावरु भाउ॥ २४॥

भगवान आत्मा! यहाँ सिद्ध की व्याख्या करते हैं। परन्तु सिद्ध समान अपना आत्मा है, उसकी बात चलती है। समझ में आया? बात सिद्ध की चलती है कि सिद्ध परमात्मा वस्तु है न? पदार्थ है न? अस्ति है न? विद्यमान तत्त्व है न? विद्यमान तत्त्व में उसका विद्यमान त्रिकाली स्वभाव है या नहीं? कि स्वभाव बिना की वस्तु हो? वस्तु और उसका त्रिकाली स्वभाव, वह स्वभाव शुद्ध चिदानन्द, उसकी पर्याय में पूर्ण प्रगट हुआ, वह सिद्ध भगवान हैं। ऐसा ही आत्मा है। समझ में आया? सिद्ध में और अपने आत्मा में किंचित् फर्क नहीं। अपना द्रव्यस्वरूप शुद्ध चिदानन्द भगवान, पूर्णानन्द सहजानन्द मूर्ति है। उसकी अन्तर निर्विकल्प शान्ति, दृष्टि द्वारा ही (ज्ञात होता है)। जैसे सिद्ध ख्याल में आते हैं, वे भी निर्विकल्प दृष्टि से आते हैं। क्योंकि सिद्ध ऐसे हैं, ऐसा ख्याल करने जाये तो ऐसी पर्याय अपनी पर्याय में प्रगट तो है नहीं,... समझ में आया? ऐसे सिद्ध लोकाग्र में विराजमान हैं, वैसे ही लोक अर्थात् देह में मैं ही विराजमान हूँ। समझ में आया? कैसा है?

केवलज्ञान केवलदर्शनमयी है,... सिद्ध परमात्मा केवलज्ञान पर्याय और केवलदर्शन

पर्यायमय है। आत्मा केवल-मात्र ज्ञानमात्र, दर्शनमय स्वरूप है। (सिद्ध भगवान) प्रगट पर्यायमय हैं, यह (निजात्मा) गुणमय-स्वभावमय है। समझ में आया? **अर्थात् जिसके परवस्तु का आश्रय (सहायता) नहीं,...** असहाय शब्द है न? संस्कृत का पहला शब्द। **'केवलोऽसहायः'।** जो ज्ञान की पर्याय सिद्ध भगवान को प्रगट हुई, (वह) असहाय है। प्रगट दशा किसी की सहायता से मदद से केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई अथवा टिकती है, ऐसा वस्तु में है नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा शान्त... शान्त... शान्त निर्विकल्प समाधिस्वरूप आत्मा है। तो पर्याय में निर्विकल्प शान्तिस्वरूप भगवान को—सिद्ध को प्रगट हो गया। समझ में आया? ऐसा ही अपना आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन अथवा **आप ही सब बातों में परिपूर्ण ऐसे ज्ञान दर्शनवाला है,...** सिद्ध भी जैसे पर्याय से परिपूर्ण, आप ही सर्व बातों में परिपूर्ण हैं। वैसे यह भगवान आत्मा आप ही सब बातों से परिपूर्ण, ऐसे ज्ञान, दर्शनवाला है। आहाहा! समझ में आया?

अरे! वह भगवान कौन है? भगवान का अर्थ महिमावन्त, स्वभाववन्त। क्या स्वभाव है? वस्तु है तो वस्तु का स्वभाव (क्या है)? तो कहते हैं, केवल सर्व बातों से परिपूर्ण ऐसा ज्ञान, दर्शन से भगवान आत्मा अपने अन्तर में भरा पड़ा पूर्ण है।

मुमुक्षु : सभी बातें पूरा?

पूज्य गुरुदेवश्री : सभी बातें पूरा। क्या है? देखो!

मुमुक्षु : कहीं शोधने की जरूरत ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर शोधने की जरूरत ही नहीं। कहाँ शोधे? चीज़ अन्तर में है, शोधने जाये राग में (तो) मिले कहाँ से? शुभ विकल्प, शुभ-उपयोग है, उसमें शोधने जाये तो वहाँ तो राग मिलेगा। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्तर में पूर्ण आनन्द, ज्ञान (स्वरूप है)। वस्तु स्वभाव से परिपूर्ण—सब बातें पूरा है। भक्ति में आता है, स्तवन में आता है। 'तू सब बातें पूरा' ऐसा आता है। समझ में आया?

सब बातों से परिपूर्ण। भगवान केवलदर्शन, ज्ञानसहित सिद्ध परमात्मा हैं। ऐसा ही देह देवालय में भगवान सिद्ध आत्मा है। मुक्त में मुक्तालय में विराजमान हैं, यह देह

देवालय में—मन्दिर में परमात्मा विराजमान हैं। आहाहा! समझ में आया? वह आयेगा, हों! २५वीं गाथा में आयेगा। सिद्धालय, वह देवालय है। जैसा सिद्धालय है, अनन्त परमात्मा पूर्ण आनन्द की प्रगट-व्यक्त अवस्था से विराजमान हैं, वह सिद्धालय है। इस देहालय में भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान, दर्शन से भरा पड़ा विराजमान ही है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ दृष्टि देने से वह आत्मा प्रगट होगा। सिद्ध परमात्मा पूर्ण हुए, उनकी दृष्टि से भी यह (आत्मा) प्रगट नहीं होगा। क्योंकि उस दशा में अपनी शक्ति नहीं है। उनकी दशा में, उनके गुण में यह शक्ति नहीं है। यह शक्ति तो यहाँ है। समझ में आया? देखो! रतन का लाल आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! रतनलालजी! तेरा लाल-रतन तेरे पास है न। बाहर कहाँ शोधने को—ढूँढने को जा रहे हो? मृग की नाभि में कस्तूरी है। ढूँढ़ने बाहर फिरता है। कहाँ मिलेगा? भगवान! ऐसे भगवान आत्मा देह देवालय में (विराजमान हैं)। देवालय। देह देवालय। यही देवालय—मन्दिर है। भगवान को रहने का देवालय स्थान यह निमित्तरूप है।

मुमुक्षु : यह जैनधर्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वस्तु ही ऐसी है। जैनधर्म का अर्थ क्या? जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है। कहो! नेमिचन्दजी! वस्तु का स्वरूप है। ऐसी ही वस्तु है। ऐसी वस्तु न हो तो दूसरी तरह से वस्तु हो सके कैसे? समझ में आया?

कहते हैं, **ऐसे ज्ञान-दर्शनवाला है, जिसका केवलसुख स्वभाव है, और जो अनन्त वीर्यवाला है,...** सिद्ध परमात्मा पूर्ण आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण आस्वाद और पूर्ण वीर्य अर्थात् आत्मबल—सामर्थ्य की व्यक्तता। अनन्त गुण की पूर्ण पर्याय की रचना का कार्य करनेवाला अनन्त बेहद अचिन्त्य परमवीर्य सहित सिद्ध भगवान हैं। ऐसा यह भगवान आत्मा है। सुमेरुमलजी! दुनिया ईश्वर को बाहर ढूँढ़ने जाती है कि यहाँ ईश्वर है। 'मेरो प्रभु मेरे...' आता है न? 'मोही में है, सूझत नीकै'। सुना है न? उसमें आया है। बन्ध अधिकार में न? बन्ध अधिकार में। बन्ध अधिकार में है। देखो! (पद ४८)। समझ में आया?...

'केई उदास रहैं प्रभु कारन,
केई कहैं उठि जांहि कहीकै।'

उठो, जाओ कहीं, जाओ। हरप्रसाद... क्या कहते हैं? हरद्वार और यहाँ सम्मेदशिखर।

'केई प्रनाम करैं गढि मूरति,
केई पहार चढैं चढि छीकै।'

छीकै... छीकै। डोली होती है न? डोली में बैठते हैं। 'कोई कहैं असमान के ऊपरि,...' यहाँ है। हजार हाथवाला भगवान वहाँ विराजमान है। 'केई कहैं प्रभु हेठि जमीकै।' नीचे हैं भगवान। चार महीने अन्दर जाते हैं पाताल में।

'मेरो धनी नहि दूर दिसन्तर, मेरो धनी नहि दूर दिसन्तर,
मोहीमैं है मोहि सूझत नीकै।'

क्यों भैया! समझ में आता है या नहीं? 'मेरो धनी नहि दूर दिसन्तर...' दूर देशान्तर में मेरा प्रभु कहीं नहीं है। 'मोहीमैं है मोहि सूझत नीकै।' भलीभाँति मुझे सूझत है। समझ में आया? विकल्पातीत। पुण्य-पाप के विकल्प, शुभाशुभपरिणामरहित भगवान अन्दर में विराजमान है। वह अपनी निर्मल पर्याय से सूझता है। समझ में आया? भगवान के पास, मूर्ति के पास भगवान है, वहाँ लेने जाता है। भगवान वहाँ से देंगे। वहाँ है? ज्ञानचन्दजी! वह तो शुभभाव होता है, तब स्थिरता अन्तर में न हो तो अशुभ से बचने के ऐसे कालक्रम में भाव आता है। शुभ है (भक्ति) होती है। परन्तु शुभ और पर से आत्मा का ख्याल आये या अनुभव हो जाये (ऐसा वस्तुस्वरूप नहीं है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! भगवान! उसने तो गप्प मारी है, गप्प। आहाहा! अरेरे! पहली चोट में भगवान पूर्णानन्द का पर्याय में भान न हो तो आत्मा किसे कहना? समझ में आया? शुभाशुभ विकल्प से पार, निमित्त से पार, संयोग से पार मनातीत, विकल्पातीत भगवान अन्तर में विराजमान है। अन्तर की निर्विकल्प दृष्टि से ही अनुभव में आता है, दूसरा कोई उपाय है नहीं। ओहोहो! समझ में आया? वह मुक्तस्वरूप है। भगवान द्रव्यस्वरूप अथवा मुक्तस्वरूप है। वस्तु बन्धस्वरूप कहाँ से होती है? वस्तु से बन्ध कहाँ होता है? पर्याय में राग की एकता है, उतना बन्ध है। वस्तु में बन्ध कहाँ है? वस्तु

में बन्ध हो तो वस्तु का अभाव, अवस्तु हो जाये। बराबर है?

भगवान आत्मा पूर्ण द्रव्य वस्तु... वस्तु... वस्तु द्रव्य वस्तु, पदार्थ वस्तु है, उसको बन्ध कहाँ? वह तो अबन्धस्वरूपी—मुक्तस्वरूपी है। समझ में आया? वह बन्ध के भावरहित अबन्ध परिणाम से ही ख्याल में आता है। अबन्धस्वरूप भगवान, मुक्तस्वरूप भगवान मुक्त अर्थात् राग से मुक्त, अराग परिणाम से ही अनुभव में आता है। उसकी दूसरी कोई पद्धति नहीं है। समझ में आया? आहाहा! अरे! उसको ऐसे मानना कि वह विकल्प से ख्याल में आता है, तो वह तो प्रभु की पामरता की। विकल्प जो विरुद्ध स्वभावी है, विरोधी दुश्मन से स्वभाव की प्राप्ति होती है, (ऐसा मानता है), वह दुश्मन के वश हो गया। समझ में आया? भगवान आत्मा सिद्ध जैसे अनन्तवीर्य और सुख सम्पन्न हैं, ऐसे प्रभु अपना निज स्वरूप अन्दर में अनन्त वीर्य, सुख, ज्ञान, दर्शन सम्पन्न भरा पड़ा है।

'स एव परापरभावः' 'पर-अपर' 'परापर' उत्कृष्ट अर्हंत परमेष्ठी से भी अधिक स्वभाववाला... है। अरिहन्त भगवान पर उत्कृष्ट हैं, उससे भी सिद्ध भगवान उत्कृष्ट हैं। उससे भी उत्कृष्ट अपना स्वभाव द्रव्यस्वभाव है, अपने में है। उनके स्वभाव से अपना स्वभाव प्रगट होता नहीं। अपना स्वभाव परिपूर्ण सिद्ध समान वस्तु है। वह महान पर सिद्ध से भी पार है। समझ में आया? **अर्हंत परमेष्ठी से अधिक स्वभाववाला सिद्धरूप शुद्धात्मा...** भगवान अपने आत्मा में विराजमान है। आत्मा ही ऐसा है।

भवार्थ :- परमात्मा के दो भेद हैं, पहला सकलपरमात्मा... स-कल। शरीरसहित परमात्मा। स-कल। कल-शरीर। सहित परमात्मा। **दूसरा निकलपरमात्मा...** शरीररहित भगवान परमात्मा। **उनमें से कल अर्थात् शरीरसहित जो अरहन्त भगवान हैं,...** वह साकार। आकार अर्थात्? शरीर सहित देखने में आते हैं। **और जिनके शरीर नहीं, ऐसे निष्कल परमात्मा निराकारस्वरूप सिद्ध परमेष्ठी हैं,...** शरीर का आकार-फाकार उसमें है नहीं। ऐसे सिद्ध परमेष्ठी हैं, **वे सकल परमात्मा से भी उत्तम हैं,...** सकल अरिहन्त परमात्मा से भी उत्तम हैं। समझ में आया? उससे भी अपना आराधन योग्य भगवान सिद्ध से भी अपना स्वरूप भिन्न है, वही उत्कृष्ट है। क्योंकि सिद्ध का लक्ष्य करने से भी आत्मा का आराधन होता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अरे! परमात्मस्वरूप क्या है? उसमें कैसी शक्ति पड़ी है? उसके स्वभाव की अचिन्त्यता, माहात्म्य क्या है, इसने कभी ख्याल में लिया नहीं। क्योंकि प्रगट पर्याय जितनी है, उस पर्याय का झुकाव बाह्य में चला गया है। प्रगट जो अंश है, ज्ञान-दर्शन, वीर्य का प्रगट अंश है, उसका लक्ष्य तो पर ऊपर अनादि से चला गया है। राग और निमित्त (ऊपर है)। परन्तु अन्दर में चीज़ क्या है? समझ में आया? एक समय का जिसका अंश है, जिसका अंश है, वह अंशी कैसा है? समझ में आया? जिसका अंश है, वह अंशी अन्दर में कैसा है? यह तो अंश है, अंश है तो उसका लक्ष्य ही पर में है। बस, इतना माना। तो अंश की गति कहाँ चली? यहाँ चली। राग में, शरीर में, ऐसा मैं, वैसा मैं, यह मैं, यह मैं (उसमें चली)। समझ में आया?

मुमुक्षु : वर्तमान अंश में दु:ख देखे तो हटे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:ख देखे क्या? दु:ख है ही नहीं। अंश अस्तिरूप से है, वह ख्याल में आता है या नहीं? ज्ञान का अंश है, यह ज्ञान का अंश है, प्रगट अंश है, वह ख्याल में आता है या नहीं? वह प्रगट अंश किसका है? राग का है? निमित्त का है? उस ओर का है? जोड़ देता है, उसके साथ। समझ में आया? जिसका अंश है, उसके साथ जोड़ता नहीं और जिसका नहीं और जिसमें वह अंश नहीं, (वहाँ जोड़ता है)। जिसमें वह नहीं, राग नहीं और जिसमें अंश नहीं। राग में (ज्ञान) अंश नहीं और ज्ञान के अंश में राग नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप का प्रगट अंश तो वर्तमान व्यक्त तो सबको थोड़ा है। थोड़ा न हो तो कहाँ जाये? उसका अभाव हो जाये तो जड़ हो जाये। थोड़ा अंश जो कम अंश भी है, तो वह अंश किसका है? क्या यह अंश राग का है? वह अंश राग में है? उस अंश में राग है? उस अंश में शरीर है? शरीर में वह अंश है? समझ में आया? सुमेरमलजी! यह तो सीधी सादी बात है। उसमें कोई बहुत (विद्वतावाली बात नहीं है)।

भगवान आत्मा वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु। आदि-अन्त बिना की चीज़। पदार्थ... पदार्थ... पदार्थ (है)। अनन्त गुणस्वरूप द्रव्यधाम, उसका प्रगट अंश है। उस अंश को यदि अन्तर दृष्टि में ले, जिसका है उसमें जाये तो उसका पता लग जाये कि यह

तो पूर्णानन्द पूर्ण ज्ञानस्वरूप द्रव्य ही है। समझ में आया? परन्तु वह प्रगट अंश अनादि से इन्द्रिय से काम लेता है। बाहर से लेता है। ये शरीर, ये कान, ये जीभ। जीभ से जाना, कान से जाना, ऐसे जाना, ऐसे जाना। ज्ञान के अंश से जाना नहीं, परन्तु उससे जाना, उससे जाना ऐसा हो गया है। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान जैसे सिद्ध परमात्मा सकल शुद्धात्मा हैं, (ऐसा ही) **सिद्धरूप शुद्धात्मा ध्यान करनेयोग्य है।** ऐसा ही मेरा आत्मा है। वही अन्तर ध्यान अर्थात् लक्ष्य में लेने योग्य है। तूने कभी उसे लक्ष्य में लिया ही नहीं। लक्ष्य में लेने योग्य है, ऐसा निश्चय भी किया नहीं। समझ में आया? यह आत्मा पूर्णानन्द द्रव्यस्वरूप पूर्ण है, वही लक्ष्य में लेनेयोग्य है, वही ध्येय करनेयोग्य है, ऐसा निर्णय ही कभी किया नहीं। कहते हैं, भगवान आत्मा शान्तरस से भरा पड़ा पिण्ड है। शीतल बर्फ की शिला (होती है), ऐसे भगवान अकषाय स्वभाव की शिला है। उसका प्रगट अंश ज्ञान का अंश है। शान्ति का अंश भले प्रगट न हो, परन्तु प्रगट ज्ञान का अंश है, उसे अन्तर में झुकाने से प्रगट ज्ञान की सम्यक्ता और अन्तर शान्ति का अंश प्रगट समाधि शान्ति आती है, उससे आत्मा ख्याल में आता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... मीठी लागे ने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मीठी लागे, ऐसा कहते हैं। सुख अंश है, परन्तु जिसका अंश है उस ओर का लक्ष्य है नहीं। लक्ष्य तो राग ऊपर है तो वहाँ तो आकुलता है। आकुलता के पीछे कोई आनन्द है या नहीं? आकुलता तो कृत्रिम क्षणिक हुई। तो क्षणिक आकुलता किसकी है? कोई त्रिकाल आनन्द है, उसकी विपरीतता की आकुलता है या आकुलता अध्धर से उत्पन्न हुई है? आकुलता है, वही बताती है कि निराकुल आनन्द उसमें त्रिकाल पड़ा है। सेठियाजी!

ऐसे परमात्मा सिद्ध में विराजमान सर्वोत्कृष्ट हैं। उससे मेरा आत्मा सर्वोत्कृष्ट है। कयोंकि मेरा साधन मेरे पास है। मेरा साधन पर से होता नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान परमानन्द की मूर्ति है। अरे! स्वयं को अपनी कीमत नहीं। आहाहा! अपने को अपनी कीमत नहीं। अपने को कीमत राग की, देह की, भोग की, पैसे की और धूल की

है। आहाहा! हीरा की, माणेक की कीमत करने गया। कीमत करनेवाला कीमत करनेवाली चीज़ क्या है, उसकी कीमत नहीं की। मैंने पुण्य बहुत किया, मैंने ऐसा-वैसा (किया), ऐसा भोग (लिया), मैंने कमाया। किसकी कीमत करते हो? प्रभु! कौन कीमत करता है? ज्ञान की पर्याय। किसकी करती है? पर की।... कहाँ से लाया? समझ में आया? जो पर की कीमत करनेवाला है, वह अपनी कीमत करे या पर की कीमत करने जाये? समझ में आया?

कहते हैं, मैं तो सिद्ध से भी उत्कृष्ट हूँ। लो! क्यों? कि मेरा स्वभाव परिपूर्ण है, उस ओर का मैं लक्ष्य करूँगा तो मुझे अनुभव करके शान्ति प्राप्त होगी। सिद्ध पर लक्ष्य करूँगा तो मुझे शान्ति प्राप्त होगी नहीं। समझ में आया? जेठाभाई! 'अगम्य पियाला पियो मतवाला, चिन्ही अध्यातम वासा, आनंदघन चेतन व्है खेले, देखे लोग तमासा। आशा औरन की क्या कीजे? ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे?' सिद्ध भगवान की आशा क्या करना? हेमचन्दजी! भारी बात, भाई! २४ गाथा (पूरी) हुई। २५ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - २५

आगे तीन लोककर वन्दना करनेयोग्य पूर्व में कहे हुए लक्षणों सहित जो शुद्धात्मा कहा गया है, वही लोक के अग्र में रहता है,... लो! उपोद्घात में आ गया।

२५) एयहिँ जुत्तउ लक्खणहिँ जो परु णिक्कलु देउ।
सो तहिँ णिवसइ परम-पइ जो तइलोयहँ झेउ॥ २५॥

एतैर्युक्तो लक्षणैः यः परो निष्कलो देवः।
स तत्र निवसति परमपदे यः त्रैलोक्यस्य ध्येयः॥ २५॥

ओहोहो! परमात्मा प्रकाश है। यह परमात्मप्रकाश है। परमात्मा जैसे सिद्ध प्रकाशरूप हो गये, वे पर्याय में परमात्मा हुए। भगवान द्रव्यरूप परमात्मा यहीं है। ऐसे परमात्मा के समीप जाकर एकाग्र होना, वही व्यक्त परमात्मा करने का उपाय है। राग के

समीप जाना, जिसमें है नहीं, उसके समीप जाकर परमात्मा की व्यक्त शक्ति में से प्रगट होगा, ऐसा है नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

तीन भुवनकर वन्दनीक इत्यादि जो लक्षण कहे थे, उन लक्षणोंकर सहित सबसे उत्कृष्ट... 'निष्कलो' औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण ये पाँच शरीर जिसके नहीं है,... ऐसे भगवान **निराकार है,...** सकल में आकार कहा था, निष्कल में निराकार कहा। सकल में शरीरसहित कहा था, निकल में शरीररहित और निराकार। सकल में शरीरसहित और साकार कहा था। सबसे उत्कृष्ट **तीन लोककर आराधित जगत का देव है,...** सिद्ध भगवान। तीन लोक में आराधने योग्य हैं। ओहो! तीन लोक में एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय भरे पड़े हैं न। जड़ भी भरे हैं। जो सर्वोत्कृष्ट जीव है, जिसका लक्ष्य सिद्ध पर जाता है कि सिद्ध जैसा मैं हूँ, ऐसा **तीन लोककर आराधित जगत का देव है,...** समझ में आया? जिसका लक्ष्य, सिद्ध परमात्मा ऐसे हैं, ऐसा लक्ष्य जाता है, ऐसा जो लोक में विराजमान आत्मा है, ऐसे आत्मा को सिद्ध परमात्मा आराधनेयोग्य है। तो तीन लोक में सब पर आ गये। प्रधान पुरुष आत्मा जो सिद्ध का लक्ष्य करके आराधते हैं, वे ही तीन लोक में प्रधान जीव है। तो तीन लोक आ गया। सब साधारण व्यर्थ रह गये। समझ में आया?

तीन लोककर आराधित जगत का देव है, ऐसा जो परमात्मा सिद्ध है, वही उस लोक के शिखर पर विराजमान है,... कहो, शिखर पर विराजमान है, वह भी कथंचित् परतन्त्र है। ऐसी व्याख्या करते हैं। क्योंकि धर्मास्ति आगे नहीं है तो वहाँ जा नहीं सकते, उतने सिद्ध परतन्त्र हैं। अरे! भगवान! ये तुम क्या कह रहे हो? तेरी परतन्त्रता की दृष्टि ने ऐसे कैसे सिद्ध को परतन्त्र लगा दिया? समझ में आया? सिद्ध भगवान है न? मुक्ति में विराजमान है। आगे क्यों नहीं जा सकते? क्योंकि धर्मास्ति नहीं है। इतने परतन्त्र है। अरे! भगवान स्वतन्त्र पूर्ण है। परतन्त्र किंचित् नहीं है। आहाहा! उसका नाम अनेकान्त है। ऐसे ही लगा दे कि कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र। उसने फुदड़ीवाद लगा दिया। फुदड़ी समझे? चक्कर। ऐसे चक्कर लगाये। ऐसा भी है और ऐसा भी है। ऐसा भी है और ऐसा भी है। कोई निर्णय-निर्धार है या नहीं? समझ में आया?

भगवान परमात्मा सिद्ध प्रभु लोक के अग्र में विराजमान हैं। पूर्ण स्वतन्त्र, पूर्ण

सुखी, पूर्ण आत्मबल सम्पन्न, पूर्ण स्वतन्त्रता में खण्ड का एक अंश उसमें नहीं है। बहुत प्रश्न होता है। सिद्ध क्यों नहीं जाते? देखो! तत्त्वार्थसूत्र में लिखा है, धर्मास्तिकाय अभावात्। धर्मास्तिकाय नहीं है तो (नहीं जाते)। वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है कि निमित्त नहीं है। अपनी योग्यता भी इतनी रहने की, स्वतन्त्र सुखी रहने की वहाँ है। समझ में आया? ओहोहो!

'**परमपदे**' देखो भाषा! '**परमपदे**'**।** परमपद वहाँ है। '**निवसंति**' **विराजमान है, जो कि तीन लोक का ध्येय (ध्यान करनेयोग्य) है।** कहो, समझ में आया? तीन लोक को आराधनेयोग्य वह परमात्मा है। अहो! जिसकी कृतकृत्य दशा परिपूर्ण हो गयी, जिसको कुछ करना बाकी रहा नहीं, सब हो गया। कृतकृत्य दशा (हो गयी)। ऐसा पूर्ण परमात्मा, वही तीन लोक के जीव को ध्येय करके—ऐसा ही मैं हूँ—उसे आदर्श बनाकर, उसको आदर्श दर्पण बनाकर, 'ऐसा मैं हूँ'—ऐसी दृष्टि करना। समझ में आया? आहाहा!

'हरि का मार्ग है शूरों का, कायरना नहीं काम जो ने...' आता है उसमें? 'हरि का रे मारग है शूरों का...' हरि अर्थात् आत्मा। पाप का ओघ 'हरति इति हरि'। 'हरि का मार्ग है शूरों का, कायरना नहीं काम जो ने, प्रथम पहेलुं मस्तक मूकी, वळतुं लेवुं स्वरूप नाम जो ने...' पहली पूरी अर्पणता करनी चाहिए। मैं तो पूर्णानन्द का नाथ (ऐसा) पूर्ण श्रद्धा में (लेना)। पूर्ण-पूर्ण मेरी निर्विकल्प पर्याय से मैं प्रगट होनेवाला हूँ। ऐसे पहले अर्पणता हुए बिना स्वभाव सन्मुख वीर्य की गति होगी नहीं। समझ में आया? हरि अर्थात् आत्मा कहने में आता है। सुमेरुमलजी! पंचाध्यायी में है, पाठ है, हरि, पाप ओघ हरे वह हरि। अज्ञानरूपी राग-द्वेष के पाप-ओघसमूह को हरनेवाला, नाश करनेवाला ऐसा भगवान आत्मा हरि है। समझ में आया? आहाहा!

अरे! इसने आत्मा क्या है (वह सुना नहीं)। आत्मा के दरबार में क्या-क्या उसकी सेना, स्वभाव की कितनी किस प्रकार की है, कितने सामर्थ्यवाली, ऐसे भगवान आत्मा को यथार्थ दृष्टि से, रुचि से सुना ही नहीं। समझ में आया? जेठाभाई! **तीन लोक का ध्येय है।**

भावार्थ :- यहाँ पर जो सिद्धपरमेष्ठी का व्याख्यान किया है, उसी के समान अपना भी स्वरूप है, वही उपादेय (ध्यान करने योग्य) है। बिल्कुल जिसमें विकल्प की गन्ध नहीं। जिसमें गन्ध, विकल्प तो है नहीं परन्तु थोड़ी गन्ध है, वह भी उसमें है नहीं। समझ में आया ? ऐसा भगवान आत्मा निर्विकल्प नाथ, निर्विकल्प का नाथ प्रभु है। समझ में आया ? एक अखण्ड द्रव्य सामर्थ्य जिसका। एक-एक गुण का अखण्ड पूर्ण सामर्थ्य है। ऐसा निज आत्मा अपना स्वरूप **वही उपादेय है।** सिद्ध भगवान को तो निकाल दिये। सिद्ध भगवान के लक्ष्य से सिद्ध भगवान नहीं होता। तो जिसके लक्ष्य से होता है, वही अपने में उत्कृष्ट हो गया। समझ में आया ?

'जो स्वरूप समझे विना, पाया दुःख अनंत
समझाया उन पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत।'

'समझाया उन पद नमुं।' सुमेरमलजी! उसमें तो कहा है, 'समझाव्युं ते...' (कहा)।

'जो स्वरूप समझे विना, पाया दुःख अनंत
समझाया उन पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत।'

हमारा सद्गुरु साहेबो परमात्मा तो मेरे पास है। मेरा साहेबो मेरे पास है, वह और कहीं नहीं है। ऐसा एक अर्थ है। ऐसा एक अर्थ है, ऐसे कहा। आहाहा! अनन्त गुण का साहेबा प्रभु, वह किसी के पास हाथ जोड़ने जाये, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। और दूसरे के पास हाथ जोड़कर प्राप्त हो, ऐसा प्रभु आत्मा है ही नहीं। समझ में आया ? है ही नहीं, उसको ऐसा मानना, वह तो विपरीत मान्यता हुई। समझ में आया ?

शरीर के प्रत्येक रजकण से पार और अपने प्रत्येक गुण के अनन्त सामर्थ्य से अपार। शरीर, मन, वाणी के प्रत्येक रजकण से पार, भिन्न। अपने एक-एक गुण के अनन्त सामर्थ्य से अपार है। अपार-जिसका पार नहीं। ऐसा भगवान आत्मा, अपना आत्मा देह देवालय में विराजमान है। सिद्धालय में सिद्ध विराजमान है। ये देहालय में देह-आलय देहरूपी घर। समझ में आया ? है उसमें ? देखो! उसमें है। **जो सिद्धालय है, वह देहालय है,...** लो। ये जड़ का मन्दिर है, उसमें भगवान चैतन्य विराजता है।

समझ में आया ? देखो ! बात चलती है सिद्ध की, हों ! दस गाथा तक। २५ तक तो सिद्ध की है। १६ गाथा से चली है न ? १६ से चली है न ? यहाँ से लिया। दस गाथा है ? १६ से २५, अर्थात् दस हो गयी। **अब मुक्ति को प्राप्त हुए केवलज्ञानादिरूप सिद्ध परमात्मा के व्याख्यान की मुख्यताकर दस दोहासूत्र कहते हैं।** १६ गाथा से शुरु हुआ। यहाँ पूरी हुई। परन्तु बात में तो अन्दर आत्मा कहा है। प्रयोजन क्या है ? सिद्ध बताने का प्रयोजन क्या है ? तेरा ही सिद्ध... सिद्ध... सिद्ध... परमात्मस्वरूप पूर्ण आनन्द है। सब बातें तुम पूरा है। समझ में आया ? ऐसे अन्तर स्वभाव में माहात्म्य करके निर्विकल्प दृष्टि हो जाना, उससे वह प्राप्त होता है। भगवान वहाँ विराजता है। कहो, सुमेरुमलजी !

जैसा सिद्धलोक में विराज रहा है, ऐसा ही हंस (आत्मा) इस घट (देह) में विराजमान है। आहाहा ! 'मेरो धनी नहि दूर दिसन्तर, मोहीमैं है मोहि सूझत नीकै।' भले प्रकार से। भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, अनन्त गुण का साहेबो, अनन्त गुण की शान्ति का रखवाला, अनादि से उसमें अनन्त गुण रक्षित हैं। कभी खण्डित नहीं हुए। समझ में आया ? ऐसा भगवान तेरे देह-देवालय में विराजमान है। समझ में आया ? देह-देवालय में निक्षेप है। भगवान की मूर्ति तो व्यवहार निक्षेप है। भावनिक्षेप यहाँ है। कितने ही लोग वहाँ लग गये, हो गया, जाओ। मन्दिर, मूर्ति, पूजा और भक्ति। जाओ, उसमें से कल्याण हो जायेगा। जहाँ लक्ष्य करना है वहाँ से चूक गया। लक्ष्य बाँध दिया दूसरे के साथ। जो तीर का ध्येय यहाँ करना था, वह लक्ष्य चूक गया। तीर हाथ में तो लिया, (परन्तु) कहाँ तक डाकना है वह भूल गया। तो लिया क्या हाथ में ? जिस पर डाकना था, वह भूल गया। परमात्मा, प्रतिमा, मन्दिर आदि पूजनीक शुभ विकल्प में आते हैं, परन्तु उसका ध्येय क्या ? ऐसा ही निर्विकल्प है। जैसे भगवान है, हिलते नहीं, निष्क्रिय हैं, वैसा मैं निष्क्रिय परमात्मा हूँ। उसका लक्ष्य करने में वह तो शुभ विकल्प के समय निमित्त कहने में आता है। समझ में आया ?

हंस...हंस... हंस। 'हंसलो नानो ने देवळ जूनुं थयुं' भक्ति में आता है ना ? भक्ति में आता है। हमारे काठियावाड़ में। 'मारो हंसलो नानो ने देवळ जूनुं थयुं'। अर्थात् यह देवल पुराना-जीर्ण हुआ, उसे अपना माना और हंस छोटा रह गया। बड़ा महान है, उसकी दृष्टि की नहीं। समझ में आया ? देह जीर्ण हो गया। अरेरे ! मैं तो नीच हो गया,

हलका हो गया। हंसलो नानो। मैं तो छोटा हूँ। शरीर जीर्ण हो गया। अरे! तू छोटा नहीं है। समझ में आया ?

भगवान परमात्मा सिद्धालय में विद्यमान मौजूद अनन्त-अनन्त सिद्ध हुए। क्योंकि स्वरूप की जो साधक दशा प्रगट की, उसको सिद्ध होने में असंख्य समय के अतिरिक्त विशेष काल नहीं लगता। असंख्य समय में साधक एकदेश शुद्ध हुआ, ऐसा-ऐसा अनन्त काल गया तो अनन्त सिद्ध हो गये। ऐसे अनन्त सिद्ध विराजमान विद्यमान पदार्थ लोकाग्र में है, लोक के अग्र में है। तो यह देह के अग्र भिन्न भगवान आत्मा अन्तर में विराजमान है। समझ में आया? लोक से पार, शरीर से पार, विकल्प आदि सब लोक है पार। मन से पार, वाणी से पार, देह से पार। सब लोक से लोकातीत भिन्न है। समझ में आया? उसकी यथार्थ अन्तर श्रद्धा-दृष्टि करने से उस परमात्मा का पता लगता है। दूसरा कोई उसका उपाय है नहीं। **वैसा ही हंस (आत्मा) इस घट (देह) में विराजमान है।**

इस प्रकार जिसमें तीन तरह के आत्मा का कथन है, ऐसे प्रथम महाधिकार में मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्धपरमात्मा के व्याख्यान की मुख्यताकर चौथे स्थल में दस दोहा-सूत्र कहे। १६ (गाथा) से हुआ था। **आगे पाँच क्षेपक मिले हुए चौबीस दोहों में जैसा प्रगटरूप परमात्मा मुक्ति में है, वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर देह में भी शक्तिरूप है, ऐसा कहते हैं।** यह तो परमात्मा का (सेवन है)। पीपर को घूटते हैं या नहीं? लींडीपीपर—छोटीपीपर नहीं होती? चौसठ पहरी चरपराई उसमें भरी है न? घूटते हैं न? तो चौसठ पहरी प्रगट होती है या नहीं? वैसे यह परमात्मा पूर्णानन्द चौसठ अर्थात् पूर्णानन्द पड़ा है। उसमें एकाग्रतारूप घूटने से पूर्णानन्द की पर्याय में प्राप्ति होती है। समझ में आया?

इस परमात्मप्रकाश में तो ताजे लड्डू करके बताया है। सब विवाद मिट जाये, ये समझे तो। क्यों? माणेकचन्दजी! अरे! भगवान! कहते हैं, अरे! सोनगढ़वाले मन्दिर से लाभ नहीं कहते हैं। मन्दिर बनाते हैं तो अन्य हेतु से बनाते हैं। दिगम्बर तो ... अरे! भगवान! ऐसी कल्पना तुझे कहाँ से हुई? आहाहा! परमात्मा! तूने ऐसी कैसी बात सुनी? हमारे हृदय की बात है। आहाहा! तुम भी परमात्मा हो न! ऐसी गड़बड़वाली बात कहाँ से लाया? समझ में आया? ओहो! वह तो शुभराग होता है और बननेवाली

चीज़ बनती है। भक्ति आदि होती है, शुभभाव है। समझ में आया? सेठियाजी! समझ में आया? आहाहा! प्रभु! ऐसी पामरता किसी के आत्मा में भी कल्पना, ये तेरे लिये ठीक नहीं है। प्रभु! तुम तो महा दृढ़ संकल्पी होकर परमात्मा होने के योग्य हो न! दृढ़ संकल्पी होकर तुम तो परमात्मा होने के योग्य हो न, ऐसा संकल्प तुम कहाँ से लाये? वह कहते हैं, देखो यहाँ।

★ ★ ★

गाथा - २६

२६) जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिँ णिवसइ देउ।
तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहँ मं करि भेउ॥ २६॥

अन्वयार्थ : जैसा केवलज्ञानादि प्रगटस्वरूप कार्यसमयसार... कार्यसमयसार कहो या पर्यायरूप कार्य जिसका प्रगट हो गया, ऐसा कार्यसमयसार, कार्य-आत्मा, कार्यपरमात्मा। जिसका कार्य परमात्मा की पर्याय में सिद्ध को कृतकृत्य-पूरा हो गया। **उपाधिरहित भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप मल से रहित...** कार्यसमयसार कैसा है? कि, उपाधिरहित है। जिसको भावकर्म का विकल्प नहीं है, द्रव्यकर्म का निमित्त सम्बन्ध नहीं है, नोकर्म का अनुपचार से सम्बन्ध था, वह भी नहीं है। **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप सिद्धपरमेष्ठी...** केवलज्ञान आदि अनन्त गुणरूप परमेष्ठी। **देवाधिदेव परम आराध्य...** देव की व्याख्या की। १६ में आया था न? **देवाधिदेव परम आराध्य मुक्ति में रहता है,...** भगवान मुक्ति में परम आराध्य परमात्मा मुक्तिधाम में विराजते हैं।

वैसा ही सब लक्षणोंसहित... 'तादृशः', 'तादृशः'। जैसा सिद्ध भगवान, वैसा सादृश तेरा आत्मा है, कहते हैं। जो सिद्ध में नहीं वह तेरे में नहीं और जो सिद्ध में है, वह तेरे में है। समझ में आया? आदर्श है। उसमें नहीं है। उसमें तो अपूर्णता भी नहीं है। राग नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं, अपूर्णता नहीं। तेरे स्वरूप में भी राग, शरीर और अपूर्णता नहीं है। तेरी वस्तु में नहीं है। समझ में आया? **'तादृशः' 'परब्रह्मा:' परमब्रह्म...** परम आनन्दरूप भगवान। परमब्रह्मस्वरूप, निज स्वरूप परमब्रह्मस्वरूप। **शुद्ध, बुद्ध,...** विकाररहित शुद्ध, ज्ञानानन्दरूप बुद्ध। परमब्रह्म आनन्दरूप भगवान आत्मा। अतीन्द्रिय

आनन्द की पाट अन्दर में पड़ी है। जहाँ एकाग्रता हुई तो उसमें से अतीन्द्रिय निकलेगा, अतीन्द्रिय रस निकलेगा, झरेगा। समझ में आया? उसमें से विकल्प झरे, ऐसी वह चीज़ नहीं है।

उत्कृष्ट शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर शक्तिरूप परमात्मा शरीर में तिष्ठता है,... लो! ऐसा भगवान शुद्ध द्रव्य स्वरूप से द्रव्यार्थिक द्रव्य का प्रयोजन जिस ज्ञान का है, वस्तु का प्रयोजन जिस ज्ञान का है, ऐसे ज्ञानकर देखने से भगवान **शक्तिरूप परमात्मा शरीर में तिष्ठता है, इसलिए हे प्रभाकरभट्ट, तू सिद्ध भगवान में और अपने में भेद मत कर।** आहाहा! ऐसी दृष्टि, ज्ञान प्रगट करना, वही मोक्ष का मार्ग है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १३, शुक्रवार, दिनांक ०८-१०-१९६५
गाथा - २६ से २८, प्रवचन - १८

परमात्मप्रकाश पहले भाग की २६वीं गाथा। यहाँ योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर मुनि हुए, लगभग ८००-९०० वर्ष पहले। महाभावलिंगी सन्त थे, उनको यह परमात्मप्रकाश बनाने का विकल्प आया। परमात्मप्रकाश तो शब्दपर्याय से बन गया। उसमें परमात्मप्रकाश में २६वीं गाथा में शिष्य को यह कहा, शिष्य को उद्देश करके (कहा परन्तु) सर्व आत्मा को (कहा है)।

हे प्रभाकरभट्ट! तू सिद्ध भगवान में और अपने में भेद मत कर। सिद्ध भगवान और अपना आत्मा दो में भेद मत कर। तेरा आत्मा ही सिद्ध स्वरूप अन्दर विराजमान है। उसकी तुम दृष्टि लगाकर ध्यान करो। वही परमात्म शक्ति में से परमात्मा प्रगट होने का कारण और उपाय है। समझ में आया? **सिद्ध भगवान में और अपने में भेद मत कर।** आखिर की गाथा का शब्द है। **ऐसा ही मोक्षपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने भी कहा है...**

णमिएहिं जं णमिज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं।
थुव्वंतेहिं थतुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ की १०३ गाथा है, उसमें कहते हैं। **इसका यह अभिप्राय है कि जो नमस्कार योग्य महापुरुषों से भी नमस्कार करनेयोग्य है,...** यह आत्मा कैसा है? कि जो नमस्कार करनेयोग्य इन्द्र आदि हैं अथवा तीर्थंकर आदि जो नमस्कार करनेयोग्य हैं, उनसे भी नमस्कार करनेयोग्य आत्मा है। समझ में आया? जो सिद्ध भगवान आदि अथवा अरिहन्त आदि को जो नमस्कार करते हैं, नमस्कार करनेयोग्य हैं, अथवा आचार्य आदि नमस्कार करने के योग्य हैं, वही जिसका ध्यान करते हैं, ऐसा आत्मा तेरे पास है। आहाहा! समझ में आया? महापुरुष, जो नमस्कार करनेयोग्य महापुरुष हैं, उनसे भी नमस्कार करनेयोग्य यह आत्मा है। बराबर

है ? ...लालजी ! ऐसा आत्मा ! ? ओहो !

स्तुति करने योग्य सत्पुरुषों से स्तुति किया गया है,... जो कोई महापुरुष धर्मात्मा स्तुति करनेयोग्य है, उनसे भी स्तुति करनेयोग्य आत्मा है। उन्होंने भी आत्मा की स्तुति की है। समझ में आया ? **और ध्यान करनेयोग्य आचार्य परमेष्ठी...** तीर्थंकर आदि हैं (उनको भी) **ध्यान करनेयोग्य ऐसा जीवनामा पदार्थ...** उनसे भी ध्यान करनेयोग्य आत्मा है। ओहोहो ! ध्यान करनेवाला जिसका ध्यान आचार्य आदि करते हैं, आचार्य का ध्यान, वे आचार्य भी आत्मा का ध्यान करते हैं। वही आत्मा आचार्य को अथवा सर्व को ध्यान करनेयोग्य है। समझ में आया ? **ऐसा जीवनामा पदार्थ इस देह में बसता है,...** इस देह में भगवान चिदानन्द तेरे पास ही तेरा स्वभाव है। थोड़ा भी दूर नहीं है। **उसको तू परमात्मा जान।**

योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त मुनि व वनवासी महन्त कहते हैं, अरे ! आत्मा ! तीर्थंकर आदि जो स्तुति करनेयोग्य हैं, वे भी जब साधु थे, तब उन्होंने आत्मा का ध्यान किया। वे वन्दन करनेयोग्य हैं, वे भी आत्मा को वन्दन करते हैं। समझ में आया ?

भावार्थ :- यही परमात्मा उपादेय है। तत्त्वानुशासन में चला है, एक प्रश्न चला है कि भगवन्त ! आत्मा का अरिहन्त का ध्यान करने को तुम कहते हो। आत्मा अरिहन्त स्वरूप का ध्यान करे। अपने में अरिहन्त पद तो है नहीं, पर्याय में तो है नहीं तो किसका ध्यान करना ? तो कहा कि भैया ! अरिहन्त की पर्याय आत्मद्रव्य में वर्तमान में पड़ी है। समझ में आया ? सब पदार्थ जितने दुनिया में हैं, उन पदार्थ की भूतपर्याय अनन्त और भाविपर्याय द्रव्य में तिष्ठती हैं, द्रव्य में रहती हैं। समझ में आया ? सब द्रव्य जो पदार्थ हैं, पदार्थ है, वह पलटते हैं, अवस्थारूप पलटते हैं। वर्तमान अवस्था तो एक ही है। एक अर्थात् एक गुण की एक, सब गुण की अनन्त हैं। परन्तु भूतकाल में जितनी पर्याय हो गई और भविष्य में जितनी होनेवाली हैं, सब द्रव्य में अस्ति अन्दर पड़ी हैं। सेठियाजी ! श्लोक निकाला था न ? समझ में आया ? कौनसी गाथा है ? १९२ गाथा है। ९२।

शिष्य ने प्रश्न किया कि भगवन्त ! अरिहन्त का ध्यान करो, आत्मा का अरिहन्तरूप से ध्यान करो। तो अरिहन्त पर्याय तो है नहीं, तो वह तो निरर्थक ध्यान हुआ। **'णमिएहिं'**

कहा न ? उसके पीछे ही मोक्षपाहुड़ में गाथा आयी है। आत्मा की पर्याय ही अरिहन्तपद, सिद्धपद, आचार्यपद, उपाध्यायपद, साधुपद है। आत्मा की पर्याय ही पाँच पद है। पाँच पद आत्मा की पर्याय से कोई भिन्न नहीं है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु आत्मा की पर्याय है। विकल्प है, शरीर है, वह आत्मा नहीं, वह आचार्यपद नहीं। समझ में आया ? भगवान आत्मा की पूर्ण शुद्ध पर्याय, वह सिद्ध। अरिहन्त में भी कुछ शुद्ध वह अरिहन्त। आचार्य में भी कुछ शुद्धता है, तीन कषाय का अभावरूप निर्मल पर्याय है, वही आचार्यपद है, वही उपाध्याय और वही साधुपद है। वह तो आत्मा की पर्याय ही पाँच पद है। समझ में आया ?

वीतरागी पाँच प्रकार की पर्याय, वही पाँच पद है। समझ में आया ? अरिहन्त का ध्यान करने से वर्तमान अरिहन्त पर्याय है नहीं न ? तो कहते हैं, प्रभु ! '**भाविनो भूताः स्वपर्यायास्तदात्मका**' भगवान आत्मा में भूतपर्याय जो हो गयी और भविष्य में अरिहन्त होनेवाला आत्मा है। समझ में आया ? वह पर्याय सर्वज्ञपद की पर्याय अरिहन्त की जो होनेवाली है वह वर्तमान '**आसते द्रव्यरूपेण**' अन्दर द्रव्यरूप है, अन्दर पड़ी है। शशीभाई ! इस आत्मा में सर्वज्ञपद पर्याय प्रगट होनेवाली है। तो होनेवाली है तो वर्तमान में है या नहीं ? अनन्त अनन्त सर्वज्ञपर्याय जो प्रगट होनेवाली है, वह सब द्रव्य में वर्तमान '**आसते**' पड़ी है। '**आसते द्रव्यरूपेण सर्वद्रव्येषु सर्वदा।**' ये शब्द पड़ा है। सर्व द्रव्य में, सर्वदा। सर्व द्रव्य में, सर्वदा। समझ में आया ?

अनन्त द्रव्य जगत में हैं। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और आकाश। '**आसते द्रव्यरूपेण सर्वद्रव्येषु सर्वदा**'... भूत और भविष्य की पर्याय तादात्म्यद्रव्य में तद्रूप वर्तमान पड़ी है। ओहोहो ! समझ में आया ? प्रश्न तो पीछे लिया है। ऐसे आत्मा में अरिहन्त मैं हूँ, ऐसा ध्यान करते हैं तो उसमें क्या विभ्रम हो गया ? भ्रम क्या हुआ ? वह तो अरिहन्तपर्याय अन्दर में है, उसका ध्यान करते हैं। और यदि विभ्रम हो तो भगवान आत्मा अन्दर सिद्धपद ही है। अरिहन्तपद की पर्याय अन्दर है तो मैं अरिहन्त, सिद्ध वर्तमान हूँ। ऐसा ध्यान करनेवाला यदि पर्याय अरिहन्त और सिद्ध की वर्तमान में न हो तो शान्ति का फल सार्थक कैसे होता है ? समझ में आया ? यदि आत्मा झूठमूठ अरिहन्त है, आत्मा झूठमूठ वर्तमान अरिहन्त हो तो उसका ध्यान

करने से शान्ति कहाँ से मिलेगी ? क्या कहा, समझ में आया ? नहीं, समझ में आया ?

यह आत्मा वस्तु पदार्थ भगवान है। उसकी वर्तमान पर्याय चाहे तो अल्प है। परन्तु उसमें अन्तर में अरिहन्त, सिद्धपर्याय आदि न हो तो उसका ध्यान करने से भ्रमणा होती है, ऐसा कोई कहे, अरिहन्त है नहीं और अरिहन्त का ध्यान करता है तो भ्रम है, भ्रमणा है। यदि भ्रमणा हो तो द्रव्य में अरिहन्तपद है, भूत–भविष्य की पर्याय अन्दर में है, उसका ध्यान करने से शान्ति कहाँ से आयेगी ? यदि झूठमूठ हो, अरिहन्त और सिद्ध अन्दर न हो तो (शान्ति कहाँ से आयेगी) ? समझ में आया ?

वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा अरिहन्त का ध्यान... वह अरिहन्त नहीं, मैं ही अरिहन्त हूँ। वह सिद्ध नहीं, मैं ही सिद्ध हूँ। आचार्य, उपाध्याय (नहीं)। मैं ही वर्तमान आचार्य, उपाध्याय हूँ। जो पर्याय प्रगट होने की है, वह वर्तमान द्रव्य में अस्तिरूप पड़ी है। द्रव्यरूप है, द्रव्यनिक्षेपरूप है, वस्तुरूप है। यदि वस्तुरूप न हो तो उसका ध्यान करने से शान्ति कहाँ से आयेगी ? झूठमूठ अरिहन्तपर्याय का ध्यान करने से शान्ति कहाँ से आयेगी ? समझ में आया ? खोटी चीज़ का ध्यान करने से तो खोटा फल आयेगा।

भगवान आत्मा तीर्थंकर जब साधुपद लेते हैं, तब जिन्हें नमन करते हैं, णमो सिद्धाणं। जो नमन करते हैं वह आत्मा, (सब) तीर्थंकर को नमन करनेयोग्य मानते हैं, वे भी अपने आत्मा को नमन करते हैं। समझ में आया ? इस वस्तु में पदार्थ में वर्तमान पर्याय अल्पज्ञ होने पर भी वस्तु में पूर्ण पर्याय, पूर्ण पर्याय, पूर्ण पर्याय द्रव्यरूप से भरी पड़ी है। भूतकाल की पर्याय और अनन्त भविष्य की पर्याय वर्तमान प्रगट नहीं है, वह सब पर्याय अन्तर में पड़ी हैं। न पड़ी हो तो आयेगी कहाँ से ? अन्तर में न हो तो आयेगी कहाँ से ? और अन्तर में है तो उसका ध्यान करने से शान्ति मिलती है, वह निष्फल (होगी)। यदि अरिहन्त आत्मा अन्दर में न हो तो शान्ति मिलेगी कहाँ से ? समझ में आया ? डालचन्दजी !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में सब है। वह बात अभी नहीं, रात्रि को पूछना। तुम्हें फुरसत नहीं है। अभी चलती बात सुनो। समझ में आया ? दो बात कह दी। तुम्हें रात्रि

को फुरसत नहीं है और अभी पूछते हो तो ऐसा नहीं चलेगा। समझ में आया?

भगवान आत्मा... बात चलती है वही चलेगी। प्रभु आत्मा अपना निज स्वरूप वर्तमान... भव्य जीव की बात चलती है। समझ में आया? भव्य जीव में भविष्य में अरिहन्त पर्याय प्रगट होगी, होगी और होगी। सिद्धपर्याय प्रगट होगी, होगी और होगी। और द्रव्यस्वभाव के निर्विकल्प श्रद्धावान को तो अल्प काल में सिद्धपर्याय होगी, होगी और होगी। समझ में आया? जो पर्याय होगी, वह कहाँ रहती है? वर्तमान पर्याय में नहीं (तो) अन्तर में (भी) नहीं है? अन्तर में न हो तो सत् का अंश आयेगा कहाँ से? समझ में आया? वस्तु त्रिकाल पर्याय का पिण्ड भगवान आत्मा है। सब द्रव्य ऐसे हैं। यहाँ तो सर्वदा सर्व द्रव्येषु। सर्वदा, सर्वदा, सर्व काल, सर्व द्रव्य भूत-भावि पर्याय से भरपूर अन्दर द्रव्य में भरे हैं। अस्ति रहा है। समझ में आया? ऐसा अरिहन्त का ध्यान (करे कि) मैं अरिहन्त हूँ, ऐसा ध्यान करनेवाले को झूठा ध्यान नहीं होता। अन्दर में पद का सत् पड़ा है, उसमें वह एकाग्र होता है। एकाग्रता करने से शान्ति का पूर्ण पद पड़ा है तो उसके ध्यान में शान्ति निर्विकल्प प्रतीत होती है। यदि अरिहन्तपद ही अन्दर न हो तो मैं अरिहन्त हूँ, ऐसा ध्यान करनेवाले को अकेला कषाय उत्पन्न होना चाहिए। समझ में आया? अरिहन्त ही अन्दर में न हो, सिद्धपद अन्दर में न हो, न हो और ध्यान करता है तो राग ही उत्पन्न होना चाहिए, मात्र विकल्प और विकार ही उत्पन्न होना चाहिए। समझ में आया? ऐ मांगीलालजी! क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की क्रिया-फ्रिया की यहाँ बात नहीं है। यहाँ दया, दान, व्रत के विकल्प की बात भी नहीं है। वह सब पुण्यबन्ध का कारण है। वह धर्म-बर्म नहीं है। यहाँ तो परमात्मा अपने निज स्वरूप में परमात्मा जो अनन्त होनेवाली पर्याय है, सब वर्तमान में पड़ी है। ऐसा मैं सिद्ध हूँ, ऐसा ध्यान करनेवाले को रागरहित निर्विकल्प दृष्टि में अकषाय शान्ति आती है। झूठ अरिहन्त और झूठ सिद्ध द्रव्य हो, तो शान्ति कहाँ से आयेगी? समझ में आया? ऐ जेठाभाई!

अरे! उसका तत्त्व अन्दर क्या है? भगवान आत्मा है। परमाणु लो न। परमाणु भी

(ऐसा है)। परमाणु में कुछ वर्तमान पर्याय है, भूत और भविष्य पर्याय द्रव्य में अस्ति टिकी हुई अन्दर है। सत् है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत् है। समझ में आया? यहाँ तो अपने निर्मल पर्याय की बत अभी तो चलती है। अपने तो यहाँ वह बात कहनी है न? **'णमिएहिं'** सिद्ध समान तू है, ऐसा आया है न? (कोई) कहता है कि पर्याय में सिद्धपना नहीं है न? (समाधान है), द्रव्य में सिद्धपना है। वर्तमान में है और उसकी श्रद्धा, उसका ध्यान करनेवाले को सिद्धपर्याय अल्प काल में प्रगट होनेवाली है। विकल्प से, दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय से नहीं (प्रगट होती)। निश्चय स्वभाव का ध्यान करने से (प्रगट होती है)। निश्चयमोक्षमार्ग एक ही मोक्षमार्ग है। दूसरा कोई मोक्षमार्ग है नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

वस्तु है या नहीं? इतनी धारा, इतनी पर्याय की धारा। ओहोहो! तीन काल— तीन काल का समय, उसकी धारा आकाश के एक प्रदेश की धारा में समा जाती है। आकाश जो अनन्त व्यापक है, अनन्त श्रेणीबद्ध आकाश है, उसकी एक ही श्रेणी, आकाश के एक प्रदेश की कोई भी श्रेणी लो, आदि-अन्त के बिना, एक ही प्रदेश... प्रदेश... प्रदेश... प्रदेश... एक श्रेणी है, ऐसी अनन्त श्रेणी आकाश प्रदेश की है। अनन्तानन्त श्रेणियाँ हैं। उसमें एक ही आकाश प्रदेश... प्रदेश... प्रदेश... प्रदेश... प्रदेश धारावाही ले तो यहाँ नीचे आदि नहीं है कि यहाँ आकाश नहीं रहा है, यहाँ अन्त नहीं, तो एक-एक प्रदेश की एक धारा में तीन काल का समय समा जाता है। समझ में आया? तीन काल का समय!! ओहो! काल थोड़ा पड़ा। धारा, आकाश के प्रदेश की धारा बढ़ गयी। अनन्तानन्त गुणी। समझ में आया? कोई भी श्रेणी ऐसी लो, ऐसे लो, एक ही बात। प्रदेश... प्रदेश... प्रदेश... एक ही श्रेणी पूरे तीन काल के समय कितनी है। और भगवान आत्मा का एक-एक गुण... समझ में आया? उसकी इतनी पर्याय है, यहाँ तो तीन काल की पर्याय बतानी है, भाई! क्या कहते हैं? सुनो!

यहाँ तो एक गुण में, द्रव्य में तीन काल की पर्याय बतानी है। वर्तमान में तीन काल की बतानी है। तीन काल की पर्याय तो बहुत थोड़ी हो गयी। परन्तु उसमें सामर्थ्य तो इतना पड़ा है... उससे अनन्तगुना सामर्थ्य (गुण में) पड़ा है। आहाहा! एक-एक गुण में, एक-एक गुण में (इतना सामर्थ्य है)। एक ज्ञानगुण लो तो इस ज्ञानगुण की जो

अनादि-अनन्त पर्याय तीन काल के समय की है, समझ में आया? वर्तमान प्रगट है और बाकी गुण में रही, वह तो गुण कितने हुए? इस अपेक्षा से तो तीन काल के समय जितने गुण रहे हैं। परन्तु गुण की सामर्थ्य तो उससे अनन्तगुणी विशेष है। ऐसी बात थोड़ी सूक्ष्म है। समझ में आया? त्रिकाल पर्याय तो गुण की है, परन्तु गुण की ताकत उससे अनन्तगुणी एक-एक में है। वह धारा, सत् के सत्त्व की अविभागी अंश की सत्त्व की शक्ति का पार कहाँ? ऐसे भगवान आत्मा में एक-एक गुण में सब पर्याय पड़ी है। समझ में आया?

भगवान आत्मा में एक चारित्रगुण में यथाख्यातचारित्र वीतराग पर्याय सादि-अनन्त होगी, वह सब पर्यायें गुण में पड़ी हैं। पर्याय कितनी? वह तो तीन काल हुए। समझ में आया? भाव का सामर्थ्य तो क्षेत्र से भी अनन्तगुना है। गुण तो अनन्तगुने हैं, परन्तु भाव का सामर्थ्य अनन्तगुना है। इतने भाव हैं। आहाहा! वर्तमान में, हों! ऐसा वर्तमान में सामर्थ्य हो तो ध्यान करने से शान्ति आती है। सत् हो तो शान्ति आती है, असत् हो तो शान्ति कहाँ-से आयेगी? समझ में आया? सुन्दरमलजी!

कहते हैं, यही तेरी परमात्मा सिद्ध समान वर्तमान में वस्तु है। भ्रान्ति न कर, भ्रम न करे। एक समय की इतनी पर्याय में द्रव्य में कहाँ रहा? (ऐसा) भ्रम छोड़ दे। समझ में आया? नेमिचन्दजी! आहाहा! यह परमात्मप्रकाश है। तो परमात्मा की जितनी पर्याय प्रगट होनेवाली है, वह सब द्रव्य में है। ऐसा परमात्मा तू ही है, तुम्हारा ध्यान करो। तुम्हारे में दृष्टि लगाओ, तुम्हारा सत्कार तुम करो, तुम्हारे सत्कार से ही भगवान की केवलज्ञान पर्याय आयेगी। समझ में आया? कोई विकल्प आदि दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय से वह पर्याय प्रगट (नहीं होती)। क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी अशुद्धता है। यहाँ तो शुद्धता प्रगट करनी है। समझ में आया? आहाहा!

हे आत्मा! ऐसा आत्मा, महन्त आत्मा, अनन्त स्वभाव सम्पन्न आत्मा, एक समय में अनन्त-अनन्त सिद्ध की पर्याय गर्भ में रखनेवाला आत्मा है। आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान! ये पाँचों पर्याय तो पाँच पद की आत्मा की निर्मल पर्याय हैं। तो भगवान! ये पाँचों पर्याय वर्तमान में नहीं है? समझ में आया? साधु होने की पर्याय, आचार्य, उपाध्याय, अरिहन्त और सिद्ध सब पर्याय आत्मा की प्रगट हो, वह आत्मा है।

तो प्रगट नहीं है, उसके अन्तर में भी सब पर्याय का पिण्ड भगवान पड़ा है। आहाहा! जेठाभाई!

उसकी वर्तमान दृष्टि में इतना अन्दर पावर पड़ा है। इतना जब (तक) दृष्टि में न आवे, तब तक उसकी निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती। निर्विकल्प दृष्टि में इतनी सामर्थ्य है कि एक समय में पूर्ण परमात्मा वर्तमान में हूँ, ऐसी प्रतीति करने की सामर्थ्य है। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन में सामर्थ्य है। समझ में आया? और निश्चय स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान की पर्याय में सामर्थ्य है।

कहते हैं, हे जीव! तू सिद्ध और तेरे आत्मा में भेद मत कर। आहाहा! पामर दृष्टि भेद किये बिना रहे? उसे बैठे नहीं। अररर! भेद मत कर, भगवान! भेद मत कर। भगवान तेरे पास है, पूर्ण परमात्मा तुम ही हो। शंका छोड़ दे। निःसन्देह होकर, निःशंक होकर हम कहते हैं, ऐसा तू है। हम कहते हैं, ऐसा तू है। है, उसकी हम प्रतीति करवाते हैं; नहीं है, उसकी प्रतीति नहीं करवाते हैं। समझ में आया? आहाहा! **आचार्य परमेष्ठी वगैरह से भी ध्यान करनेयोग्य ऐसा जीवनामा पदार्थ इस देह में बसता है,...** अरे! विवाद कैसा? भाई! अरे! भगवान तेरे घर में है, तू किसको शोधने बाहर जाते हो? समझ में आया? बड़ा आदमी हो तो मिलने को सामने जाये। कुत्ता आवे तो सामने मिलने जाता है? ऐसे तेरे पास तो अनन्त सिद्ध भगवान पड़ा है न! भगवान! तेरे द्रव्य में पड़ा है, पड़ा है, पड़ा है। है, है, है। 'है' में नहीं है, ऐसा कभी आता नहीं। समझ में आया?

कहा था न? आकाश 'है' में कभी अस्ति में नास्ति नहीं आयेगी। कभी नास्ति नहीं है। ऐसे भगवान आत्मा में शुद्धता है, है, है। परिपूर्ण वर्तमान है। पूरी, पूरी, पूरी, पूरी। 'है' में 'नहीं है' ऐसी उसकी गन्ध उसमें है नहीं। समझ में आया? ओहो! पूर्ण पर्याय पड़ी है, ऐसा कहते हैं। पूर्ण पूर्ण वर्तमान में पूर्ण। वर्तमान में केवलज्ञान, वर्तमान में पूर्णानन्द, वर्तमान में पूर्ण वीर्य, वर्तमान में पूर्ण दृष्टा है। समझ में आया? ऐसा तेरा द्रव्य भगवान आत्मा तू ही है, तू ही है। माहात्म्य करके ध्यान लगाओ, बस, यही दृष्टि करने से ही परमात्मा प्रगट होगा। दूसरे (कोई उपाय) से होगा नहीं। यही कहते हैं, देखो! २७ गाथा।

★ ★ ★

गाथा - २७

आगे जिस शुद्धात्मा को सम्यग्ज्ञान-नेत्र से देखने से... देखो! **पहले उपार्जन किये हुए कर्म नाश हो जाते हैं, उसे हे योगिन्! तू क्यों नहीं पहचानता, ऐसा कहते हैं।**

२७) जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व-कियाइँ।
सो परु जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइँ॥ २७॥

येन दृष्टेन त्रुटयन्ति लघु कर्माणि पूर्वकृतानि।
तं परं जानासि योगिन् देहे वसन्तं न किम्॥ २७॥

अन्वयार्थ :- **जिस परमात्मा को सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रोंकर देखने से...** देखो! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप परमात्मा वर्तमान में द्रव्यरूप से पूर्ण है। पर्यायरूप से अल्प भले हो। ऐसे भगवान को सम्यग्ज्ञान, सम्यग्ज्ञान स्वसंवेदनज्ञान (से देखने से)। शास्त्रज्ञान, परज्ञान नहीं। अपने ज्ञान की वर्तमान निर्मल पर्याय, जो रागरहित निर्विकल्प है, निर्विकल्प अर्थात् रागरहित। ज्ञान का स्वभाव तो अविकल्प है, वह बात नहीं है। निर्विकल्प अर्थात् रागरहित अपनी निर्मल ज्ञानपर्याय में शान्तिसहित, **सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रोंकर देखने से...** सदा आनन्दरूप वीतराग तो अपना त्रिकाली स्वरूप है, परन्तु उसका **निर्विकल्प समाधिस्वयप निर्मल नेत्रोंकर देखने से...** वर्तमान में सम्यग्ज्ञान, सम्यग्ज्ञान (से देखने से)। विकल्प नहीं, व्यवहार विकल्प नहीं। सम्यग्ज्ञान की पर्याय शुद्ध नेत्र प्रगट करके उससे भगवान वर्तमान में पूर्ण है, (ऐसे) देखने से अज्ञानभाव से बँधा हुआ कर्म छूट जायेगा, निर्जरा हो जायेगी। समझ में आया? आहाहा! देखो! क्या कहते हैं?

सदा आनन्दरूप... कोई कहे कि सदा आनन्दरूप तो त्रिकाल है। परन्तु त्रिकाल सदानन्द वीतराग निर्विकल्प समाधि उसमें उत्पन्न हुई। सदा निर्विकल्प पर्याय सदा आनन्दरूप ही है। वस्तु तो आनन्दरूप है, परन्तु पर्याय जो सम्यक् ज्ञान से देखना है, वह सदा निर्मल ज्ञान सदा आनन्दरूप ही है। समझ में आया? पर्याय। जिस सम्यक् नेत्र से अन्तर देखना है, वह पर्याय भी सदा आनन्दरूप ही है। उसमें कभी राग आ जाता है,

ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भगवान की बात उसके सुनने में आयी नहीं। कौन है परमात्मा? पामर कहाँ शोधते हैं? क्रियाकाण्ड में, दया, दान, व्रत, भक्ति करते-करते आत्मा मिलेगा, (ऐसा मानते हैं)। उसमें आत्मा है (नहीं)। शरीर की क्रिया में आत्मा है नहीं? आत्मा कहाँ है? ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा तो अनन्त गुण सम्पन्न एक समय में अन्दर में पड़ा है। उसकी दृष्टि निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान, शान्ति की दृष्टि से देख लो तो अशान्ति और अज्ञानभाव से जो पूर्व में कर्म बँधे थे, वे छूट जायेंगे। देखो!

निर्मल नेत्रोंकर देखने से शीघ्र ही... 'पूर्वकृतानि' निर्वाण के रोकनेवाले पूर्व उपार्जित कर्म... 'त्रुटयन्ति' चूर्ण हो जाते हैं,... ये चूर्ण हो जाते हैं। निद्धत और निकाचित भगवान के जिनबिम्ब (दर्शन से चूर होते हैं), ऐसा कहते हैं ना? यह जिनबिम्ब, यह जिनबिम्ब। समझ में आया? जिनबिम्ब भगवान भगवान। अरे! चैतन्यदल स्वभाव स्वरूप, स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... जिसमें अनन्त सिद्ध पर्याय प्रगट होनेवाला अन्दर में विराजता है। उसी का ऐनलार्ज पर्याय में होता है। पर्याय में वह प्रगट होता है। बाहर से प्रगट होता है? समझ में आया? विकल्प, राग में पड़ा है, भगवान? चिल्लाते हैं। कोई दूसरा मार्ग कहो। मार्ग एक ही है। कथन पद्धति दो प्रकार की है। समझ में आया? दो मोक्षमार्ग का कथन है, मोक्षमार्ग दो नहीं है। मोक्षमार्ग एक ही है। अबन्धस्वरूप भगवान में अनन्त सिद्धपद वर्तमान में पड़ा है, उसकी अन्तर में निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान करने से उसकी प्राप्ति होती है। यह एक ही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग है नहीं। समझ में आया? आहा! एकान्तवादी ऐसा कहते हैं, ऐसा लिखा है। अरे! भगवान! भाई! एकान्तवादी ऐसा मानते हैं। यहाँ तो व्यवहार से भी लाभ हो, निश्चय से भी लाभ हो, उसे अनेकान्त कहते हैं... अरे! भगवान! प्रभु! शान्त था, शान्त था। धीर था। समझे? वह निजकला से प्राप्त होनेवाली चीज़ है। रागादि, परकला से प्राप्त होनेवाली चीज़ नहीं है। समझ में आया? लोग कहते हैं, ... बाहर से मान रखा है और मनाते हैं। मनानेवाले मनावे और माननेवाले ने मान रखा है। वस्तु एक ओर रह गयी। चार गति में भटकने का भाव उसके पास पड़ा है। परन्तु गति में भटकने के भाव अलावा कोई चीज़ अन्दर है या नहीं? और निर्मलानन्द पर्याय प्रगट होनेवाली

है, वह वर्तमान विद्यमान है या नहीं? पर्याय में नहीं, द्रव्य में नहीं (हो) तो पर्याय कहाँ—से आयेगी? समझ में आयेगी? अध्धर से आयेगी?

जिस परमात्मा को... (सम्यग्ज्ञान) नेत्र से तू क्यों नहीं पहचानता? ऐसा कहते हैं। जिस परमात्मा को (देखने से), **शीघ्र ही निर्वाण के रोकनेवाले पूर्व उपार्जित कर्म चूर्ण हो जाते हैं, अर्थात् सम्यग्ज्ञान के अभाव से अज्ञान से जो पहले शुभ-अशुभ कर्म कमाये थे,...** कमाये थे। कमाई हुई, कमाया था, पुण्य-पाप के परमाणु की कमाई की थी। अज्ञानभाव से भगवान चिदानन्द के अनादर से, परमानन्द की मूर्ति प्रभु उसके अनादर से, वीतराग पिण्ड जिनबिम्ब परमात्मा के अनादर से कर्म कमाये थे, वह भगवान के आदर से छूट जाते हैं। समझ में आया? वह धर्मध्यान में आता है। माँगीरामजी! धर्मध्यान का काउसग्ग नहीं आता? मिथ्यात्व से बँधे कर्म समकित से तोड़ते हैं, अव्रत से बँधे कर्म, प्रमाद से बँधे कर्म अप्रमाद से तोड़ते हैं। धर्मध्यान का काउसग्ग आता है। स्थानकवासी में आता है। एक आता है, धर्मध्यान का काउसग्ग आता है। धर्मध्यान का एक काउसग्ग आता है, उसमें वह आता है कि प्रमाद से बँधा कर्म अप्रमाद से टूटता है। अचारित्र से बँधा कर्म चारित्र से टूटते हैं। मिथ्यात्व से बँधा कर्म सम्यग्दर्शन से टूटता है। यहाँ कहते हैं, अज्ञान से बँधा कर्म भगवान परमात्मा की दृष्टि से और स्थिरता से छूटते हैं। धर्मध्यान का काउसग्ग है, वह हमारे काठियावाड में चलता है। सुना है या नहीं? धर्मध्यान का एक काउसग्ग आता है। आता है। देखो! उसे मालूम है। उसने बहुत मुण्डन करवाये हैं। कलकत्ता और (दूसरी जगह)। आहाहा!

कहते हैं, दो बात करते हैं। क्या कहा? भगवान अपना निज स्वरूप पूर्णानन्द, उसका आश्रय नहीं करके, उसका अवलम्बन नहीं करके, रागादि का अवलम्बन किया, उसके अस्तित्व में अपना पद माना तो नये कर्म उपार्जन हुए। और अपने निजानन्द पद का आश्रय किया, अनाश्रय से जो कर्म बँधे थे, वह आश्रय से छूटते हैं। उसमें निर्जरा और मोक्ष होने की रीत भी बता दी। निर्जरा-बिर्जरा कोई विकल्प से होती है या शुभभाव से होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे! लोग चिल्लाते हैं, शुभ से निर्जरा है। शुभभाव से क्षायिक समकित होता है। भगवान! गजब किया, गजब किया! शुभभाव से क्षायिक समकित होता है। चौथे गुणस्थान में शुद्ध-उपयोग नहीं है। भगवान! शुद्ध-

उपयोग नहीं है (ऐसा) नहीं। है, परन्तु कदाचित् होता है। तो शुद्ध परिणति तो निरन्तर होती है। समझ में आया ? शुद्ध परिणति द्वारा शुद्ध स्वभाव का अवलम्बन लिया, उससे कर्म छूटते हैं। समझ में आया ?

निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं,... देखो! निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं। है पाठ ? देखो! '**वीतरागनिर्विकल्पसमाधिलक्षणनिर्मललोचने-नावलोकितेन त्रुटयन्ति शतचूर्णानि भवन्ति।**' देखो! यहाँ यह आया है। चूर्ण-चूर-चूर हो जाते हैं। चूर्ण इसका अर्थ कर्म की पर्याय छूट जाती है। परमाणु तो कहाँ जाये ? कर्मरूप पर्याय जो परमाणु ने धारण की है, कर्मरूप पर्याय जो परमाणु ने धारण की है, अज्ञानभाव से जो धारण की थी, वह स्वभाव की एकाग्रता द्वारा कर्मरूपी पर्याय अकर्मरूप पर्याय हो जाती है। समझ में आया ? उसका नाम चूर्ण किया। चूर्ण का अर्थ परमाणु चूर्ण हो जाते हैं ? चूर्ण किया। ओहोहो!

अरे! भगवान आत्मा ऐसा पहले रुचि में तो ले। और रुचि में लेकर उसके विचार, ध्यान में ले, तो कहते हैं, तेरा पूर्व का कर्म छूट जायेगा और अल्प काल में परमात्मा हो जायेगा। परमात्मा तेरे पास पड़ा है, चाबी खोल दे। चाबी खोले तो माल निकलता है न ? पटारे में पड़ा है वह। चाबी खोल दे कि मैं परमात्मा ही हूँ। राग की एकताबुद्धि में ताला लगाया था। विकल्प की एकताबुद्धि में खजाना खोलने पर ताला लगाया था। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ वर्तमान में ही पूर्ण परमात्मा है। ऐसी एकताबुद्धि करके ताला खोल दे। उसमें से तेरा परमात्मा प्रगट होगा। कोई अन्य जगह से आनेवाला नहीं है। समझ में आया ? ओहोहो! 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' 'एक ही होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' बाकी तो व्यवहार निमित्त कहा। वस्तु तो यह है।

सदानन्दरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी... भगवान! यह सदानन्दी प्रभु, नित्यानन्दी नाथ, तेरे देह में तू ही विराजमान है न! आहाहा! बाहर में नजर करने से कहीं मिलेगा ? कहीं नहीं है। पहाड़ में मिलेगा ? शत्रुंजय में मिलेगा ? सम्मेदशिखर में ? मन्दिर में मिलेगा ? मन्दिर की प्रतिमा में से मिलेगा ? कहाँ है ? तेरा आत्मा उसमें (नहीं है)। समझ में आया ? रतिभाई! मानस्तम्भ में से मिलेगा ? नहीं ? ऐसा कहते हैं कि अब

काम हो गया, इसलिए कोई हर्जा नहीं है। पहले यदि कहा होता तो नहीं होता। कौन करता है कि नहीं होता? किसने वह मानस्तम्भ बनाया है? राजकोट में बनाया न? दो लाख का समवसरण बना है, सवा लाख का मानस्तम्भ बना। अभी हम एक मास गये थे न? रतिभाई के कुटुम्ब और एक लाख पहले निकाले थे और अब तीस-चालीस हजार (निकाले)। दो लाख का समवसरण हुआ है। दो लाख का, हों! नया। सवा लाख का मानस्तम्भ। ऐसा नहीं है। चौपन फीट का है। दो फीट विशेष किया तो बढ़ गया। सवा लाख। वह तो परमाणु की पर्याय उस समय वहाँ परावर्तन से होनेवाली थी तो हुआ है। कोई रतिभाई के विकल्प से और उसके बाप के विकल्प से वहाँ हुआ है? उसका पिताजी है न, उसका भाव था। एक लाख निकाला। पहले लाख निकाला था और अभी तीस-चालीस हजार पंच कल्याणक में। उसको पैसेवाला कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, सिद्धवाला आत्मा है। रागवाला भी आत्मा नहीं, कर्मवाला आत्मा नहीं, शरीरवाला आत्मा नहीं। अल्पज्ञ पर्याय जैसा आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा भगवान योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त मुनि वनवास में परमात्मप्रकाश बनाया। जगत को सम्बोधन करके, शिष्य को सम्बोधन करके कहा, हे प्रभाकरभट्ट! तेरे आत्मा में सर्व सम्पन्न गुण पड़ा है। तेरी दृष्टि की नजर निधान पर दे। निधान में नजर पड़ने से ही निधान खुल जायेगा। समझ में आया? आहाहा! वीतरागमार्ग यह है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव का यह मार्ग है। बाकी दूसरा मार्ग कहते हैं, वह सब अज्ञानी का मार्ग है। समझ में आया? ओहोहो! परमात्मप्रकाश ने परमात्मा का स्तम्भ खड़ा कर दिया है कि देखो! उसमें लिया है न? प्रवचनसार में लिया है, स्तम्भ में भविष्य के तीर्थंकर... भविष्य की चौबीसी के वर्तमान। भूत की चौबीसी, वर्तमान चौबीसी, भविष्य की। वर्तमान प्रत्यक्ष देखते हैं कि ये तीन काल की चौबीसी है। वैसे भगवान आत्मा में तीन काल की पर्याय का पिण्ड द्रव्य है, वह दृष्टि में देखने में आता है। श्रद्धा में निर्विकल्प, निर्विकल्प ज्ञाननेत्र से तू आत्मा को देख। भगवान सिद्ध समान ही तेरा स्वरूप है। बस, वह निर्विकल्प ज्ञान के द्वारा ही तेरा परमात्मा प्रगट होगा। दूसरा कोई कारण, क्रियाकाण्ड या बाहर से तीन काल-तीन लोक में प्रगट होगा नहीं। समझ में आया?

सदानन्दरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी हे योगी! तू क्यों नहीं जानता ? अरे! दूसरे को जानता है। जाननेवाले तुम (हो)। उसमें आयेगा। यह शब्द पड़ा है न? क्यों नहीं जानता? देखो! नीचे आयेगा।

जिसके जानने से कर्म-कलंक दूर हो जाते हैं, वह आत्मा शरीर में निवास करता हुआ भी देहरूप नहीं होता,... क्या कहते हैं? भगवान पूर्णानन्द प्रभु अनन्त-अनन्त स्वभाव की श्रेणी से भरा हुआ भगवान है। अनन्त-अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द बेहद स्वभाव की श्रेणी से, स्वभाव के स्वरूप से पड़ा हुआ प्रभु पूर्ण है। **जिसके जानने से कर्म-कलंक दूर हो जाते हैं,...** भगवान आत्मा का अन्तर ज्ञान करने से—सम्यग्ज्ञान करने से कर्म दूर हो जाते हैं। ओहो! **वह आत्मा शरीर में निवास करता हुआ भी देहरूप नहीं होता...** भगवान आत्मा शरीर में रहता है, ऐसा देखने में आता है। देहरूप नहीं हुआ, कर्मरूप नहीं हुआ, रागरूप नहीं हुआ। एक समय की अल्पज्ञ पर्याय जितना भी नहीं हुआ है। द्रव्य तो उतना ही नहीं है। समझ में आया?

उसको तू अच्छी तरह पहचान... भाई! भगवान! तेरे चर्मचक्षु को छोड़ दे। विकल्प चर्मचक्षु है। विकल्प से, पुण्य से भी भगवान ख्याल में नहीं आता। शुभराग भी चर्मचक्षु है। वह चैतन्य नेत्र नहीं है... सुमेरुमलजी! आहाहा! बाहर धमाल में पड़ा हो। ऐसे रास्ते पर दुनिया को चढ़ा दिया है कि चैतन्य कहाँ है, वह तो कहीं गुम हो गया। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ देवाधिदेव जैन परमेश्वर समवसरण में सौ इन्द्र की उपस्थिति में ऐसा फरमाते थे। वैसा यहाँ सन्त कहते हैं। वे घर की बात कहते नहीं। घर की अर्थात् कल्पना की। है तो बात घर की।

कहते हैं, भगवान! तू तेरे पास जहाँ नजर करनेयोग्य है, वहाँ तो नजर करता नहीं। **दूसरे अनेक प्रपंचों (झगड़ों) तो जानता है;...** देखो! लिखा है न? तू क्यों नहीं जानता? उसमें से निकाला। ये दुनिया, शरीर, राग, पुण्यक्रिया, राग के परिणाम। उसको जानने का ज्ञान अपना और जानता है राग, विकार और पर को। ऐसे प्रपंचों को जानता है, परन्तु भगवान आत्मा क्या है, उस पर तेरी नजर नहीं पड़ती। तुम क्या करते हो? समझ में आया? आहाहा! सम्प्रदाय के आग्रह में पड़े हो उनको तो यह बात सुनकर ही ... लगे। बोलते हैं, ईर्ष्या होती है, द्वेष होता है। नेमीचन्दजी! भगवान! भगवान पर ईर्ष्या

नहीं होती। भगवान की कथा चलती है। भगवान परमात्मा परमात्मा की कला से प्रगट होता है। वह तो परमात्मा की कथा है। समझ में आया? राग से, पुण्य से और ऐसी क्रिया से प्राप्त हो, वह विकथा है, वह धर्मकथा नहीं। समझ में आया? ओहोहो! बहुत फेरफार हो गया। और बहुत फेरफार करने पर ही आत्मा में परमात्मा होगा।

अरे! भगवन! दूसरे अनेक झगड़ों को तो जानता है। शरीर, वाणी, कपड़ा, ये, वो, कोई भी चीज़, जगत को जानने की क्रिया में बाकी नहीं रखा। ऐसा और वैसा। परन्तु जाननेवाला कौन है, उसको तो जाना नहीं। समझ में आया? देखो न। लड़ाई की बातें इस जैनपत्रों में आती है। वीरवाणी और जैनजगत। बड़े लेख।

अरे! भगवान! '**किं न जानासि**' भगवान! तुझे तू क्यों नहीं जानता? ऐसा कहते हैं। तुझे तू क्यों नहीं जानता? और जाननेवाले को जाने बिना पर के झगड़े में क्यों पड़े हो? **दूसरे अनेक प्रपंचों को...** ओहोहो! अपने द्रव्य के अलावा परद्रव्य का ज्ञान करना, वह भी सब प्रपंच, विकल्प है, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! जो परमात्मा अपना पूर्ण स्वरूप रखकर पड़ा है, उसका ज्ञान नहीं करके ये सब झगड़े विकल्प, शुभाशुभ परिणाम, शरीर की क्रिया, वाणी, ऐसा बोला, ऐसा हुआ, ऐसा बढ़ाया, उस बाह्य क्रिया का तुझे ज्ञान हो वह तो झगड़ा का ज्ञान हुआ। प्रपंच का ज्ञान है। समझ में आया?

अपने स्वरूप की तरफ क्यों नहीं देखता? जहाँ देखने की चीज़ है, वहाँ क्यों नहीं देखता? जहाँ जानने की चीज़ है, वहाँ क्यों नहीं जानता? जिसमें स्थिर होने की चीज़ है, उसमें क्यों नहीं स्थिर होता? समझ में आया? भगवान पूर्णानन्द वही जानने की चीज़ है, वही देखने की चीज़ है, वही श्रद्धान करने की चीज़ है और उसमें स्थिर होने की वही चीज़ है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा **अपने स्वरूप की तरफ क्यों नहीं देखता? यह निज स्वरूप ही उपादेय है,...** भगवान पूर्ण शुद्धस्वरूप ही उपादेय है, **अन्य कोई नहीं है।** कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २८

इससे आगे पाँच प्रक्षेपकों द्वारा आत्मा ही का कथन करते हैं :- '**ऊर्ध्व**' है न? '**ऊर्ध्व**' शब्द पड़ा है। देखो! '**ऊर्ध्व**'। '**ऊर्ध्व**' अर्थात् आगे। '**प्रक्षेपपञ्चकं**' '**ऊर्ध्व**' शब्द पड़ा है। ऊर्ध्व पंचास्तिकाय में आता है न? बड़ा विवाद। विवाद करनेवाले विवाद ही करते हैं। पंचास्तिकाय भी बन्द करना पड़ा। हमने बोल दिया और (पण्डितजी को) बैठा नहीं। क्या करना? इसलिए बाहर नहीं आया था। अरे! भगवान कहाँ की कल्पना करते हैं। आहाहा! देखो! '**ऊर्ध्व**'। अब पाँच प्रक्षेपकों की गाथा कहेंगे।

२८) जित्थु ण इंदिय-सुह-दुहइँ जित्थु ण मण-वावारु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ अण्णु परिं अवहारु॥ २८॥

आकुलतारहित **जिस शुद्ध आत्मस्वभाव में...** भगवान आत्मा जिस शुद्ध परमात्मा निज स्वरूप में, परमानन्दमूर्ति भगवान में, अपना भगवान, हों! **आकुलतारहित अतीन्द्रियसुख से विपरीत जो आकुलता के उत्पन्न करनेवाले इन्द्रियजनित सुख-दुःख नहीं हैं,...** भगवान आत्मा में इन्द्रियजनित सुख-दुःख की कल्पना, सुख-दुःख आत्मा में है ही नहीं। भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का भोगनेवाला है। समझ में आया? सुख-दुःख की कल्पना... ओहोहो! आकुलतारहित अपना अतीन्द्रिय सुख। उससे विपरीत **आकुलता के उत्पन्न करनेवाले इन्द्रियजनित सुख-दुःख नहीं हैं,...** भगवान आत्मा में। सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा को ऐसा जानते हैं कि मेरे में इन्द्रिय के सुख-दुःख की कल्पना वस्तु में है ही नहीं। समझ में आया? और बाहर में पुण्य के कारण चक्रवर्ती या इन्द्रपद मिला है, वह कागविष्टा समान समकित दृष्टि जानते हैं। धर्मी सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला। 'चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्र सरीखा भोग, कागविष्ट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोक'। सम्यग्दृष्टि लोक समकिती चौथे गुणस्थानवाला। अपना इन्द्रिय सुख कल्पना में है, वह तो अपने में है ही नहीं। बाहर की चीज़ की गन्ध दिखती है, चक्रवर्ती इन्द्र का पद, वह सम्यग्दृष्टि को काग विष्टा सम दिखता है। कौवे की विष्टा। आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा में वह बाहर की सम्पदा नहीं है। पुण्य-पाप के सुख-दुःख की कल्पना भी स्वरूप में है नहीं। ऐसा आत्मा, जिसमें दूसरी चीज़ क्या नहीं है, इत्यादि कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १४, शनिवार, दिनांक ०९-१०-१९६५
गाथा - २८ - २९, प्रवचन - १९

यह परमात्मप्रकाश है। उसका पहला भाग चलता है। उसकी २८वीं गाथा। शब्दार्थ चलता है। यह परमात्मस्वरूप आत्मा कैसा है? कि जिसमें, इन्द्रिय के विषय की कल्पना का सुख-दुःख का भाव (होता है), वह वस्तु में है नहीं। समझ में आया?

आकुलतारहित अतीन्द्रियसुख... आत्मा तो अतीन्द्रिय सुखरूप है। आकुलता रहित अतीन्द्रिय सुख का स्वरूप आत्मा है। उससे **विपरीत जो आकुलता के उत्पन्न करनेवाले इन्द्रियजनित सुख-दुःख नहीं हैं,...** अर्थात् जो पाँच इन्द्रिय की ओर का लक्ष्य कर जो हर्ष, रागादि की कल्पना होती है, वह कल्पना वस्तुस्वरूप में नहीं है। ऐसे आत्मा पर दृष्टि करने से आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की प्राप्ति होती है। समझ में आया? भगवान आत्मा अनाकुल आनन्दमूर्ति है। वस्तु... वस्तु। वस्तु ही ऐसी है। उसमें इन्द्रिय के सुख-दुःख की कल्पना जो बहिर्लक्ष्यी उत्पन्न होती है, वह अन्तर स्वभाव में नहीं है। है, कल्पना है वह चीज़ है। कल्पना सुख-दुःख की कल्पना, वह वस्तु है, वस्तुस्वरूप में नहीं है। समझ में आया? ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या, ऐसा नहीं है। सुमेरुमलजी! भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दमूर्ति परमानन्द स्वरूप, उसमें इन्द्रिय के सुख-दुःख की (कल्पना नहीं है)। इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रिय का विषय भी है और विषय के ओर की सुख-दुःख की कल्पना भी है। परन्तु वह वस्तु में नहीं है। आत्मा स्वभाव शुद्ध चैतन्य में नहीं है। समझ में आया? है, उसका निषेध हो न; नहीं हो, उसका निषेध क्या? समझ में आया?

वस्तु परमात्मा निज स्वरूप, जिसको आत्मा कहते हैं, वह तो वीतराग वीतरागस्वभाव, अनाकुल आनन्दस्वभाव का पिण्ड, रस आत्मा है। उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और मुक्ति का मार्ग प्रगट होता है। क्योंकि आत्मा ही मुक्तस्वरूप है। विकल्प सुख-दुःख की कल्पना से मुक्त है। कर्म से मुक्त है, शरीर से मुक्त है,

इन्द्रिय से मुक्त है और इन्द्रिय के विषय से भी मुक्त है। और विषय की कल्पना है, उससे भी वह मुक्त है। ऐसे आत्मा में अन्तर दृष्टि करने से आत्मा अनुभव में, दृष्टि में आया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

जिसमें संकल्प-विकल्परूप मन का व्यापार भी नहीं है,... मन में संकल्प या विकल्प है। मन का संग करने से परलक्ष्यी संग करने से संकल्प-विकल्प की विकृत पर्याय है। वस्तु द्रव्य चैतन्य भगवान में वह नहीं है। समझ में आया? तत्त्व सिद्ध करते जाते हैं। संकल्प-विकल्प का एक आस्रवतत्त्व है। तत्त्व ज्ञायकस्वरूप परमानन्द आत्मा स्वरूप, परमात्मस्वरूप में वह नहीं है। ...मलजी! आस्रव (उसके स्थान में) है या नहीं? दुःख की पर्याय, संकल्प-विकल्प की पर्याय, विकल्प की अवस्था है। अस्ति है। चिदानन्द भगवान आत्मा में वह नहीं है। समझ में आया? ऐसा संकल्प-विकल्प का मन का व्यापार है। कहते हैं कि स्वरूप में वह व्यापार नहीं है।

विकल्परहित परमात्मा से (मन के) व्यापार जुदे हैं,... भिन्न हैं। समझ में आया? शुभाशुभ वृत्तियाँ उठती हैं, वह हैं। वस्तु चिदानन्द आत्मा की अनुभव, दृष्टि करने से उसमें है नहीं। समझ में आया? उसमें नहीं है, ऐसा भान होने पर, विकल्प है, उसका ज्ञान रहता है। राग राग में है, राग स्वभाव में नहीं है, ऐसे चैतन्यस्वभाव की दृष्टि होने से राग है, उसका ज्ञान है, परन्तु वह राग आत्मा में है, ऐसा ज्ञान नहीं है। व्रत आदि, दया, दान का विकल्प है। नहीं है, ऐसा नहीं। परन्तु वह भगवान चिदानन्दस्वरूप आत्मा में नहीं है। आत्मा में है, ऐसा मान ले तो (उसने) दो तत्त्व को एक माना, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? दो को एक माना वह तो मिथ्यादृष्टि है। मिथ्या अर्थात् वस्तुस्वरूप है, ऐसा नहीं माना, मिथ्या मान्यता हुई। कहते हैं, मन का व्यापार है। क्योंकि वह आस्रव विकल्प तत्त्व है। भगवानस्वरूप चिदानन्द में दृष्टि करने से वस्तु में नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... क्या चलता है? वह तो चलता है। समझ में आया? संकल्प-विकल्प है तो कहा। परन्तु वस्तुस्वरूप में नहीं है, ऐसा अनुभव दृष्टि करने से प्रतीति में ऐसा आता है कि वस्तु में नहीं है। समझ में आया? सप्त तत्त्वश्रद्धान करना है

न ? 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन' है न ? उसका अर्थ क्या ? सात तत्त्व क्यों लिये ? सात सातरूप है, ऐसी श्रद्धा करना। उसका अर्थ क्या हुआ ? कि भगवान चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु परमात्मा आत्मा ज्ञायकस्वरूप, उसमें वह संकल्प-विकल्प है ही नहीं। भिन्न है। समझ में आया ? ऐसे आत्मा की अन्तर श्रद्धा, अनुभव, ज्ञान में आत्मा को लेकर प्रतीति में लेना कि आत्मा वह संकल्प-विकल्प तीन काल में है नहीं। संकल्प-विकल्प संकल्प-विकल्प में है, वह भिन्न रह गया। समझ में आया ? ऐसा अन्तर में ज्ञान अनुभव करके प्रतीति में लाना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? यहाँ तो वही बात चलती है। क्या कहते हैं ?

उस पूर्वोक्त लक्षणवाले को हे जीव, तू आत्माराम मान,... क्या (कहते हैं) ? कि इन्द्रिय के सुख-दुःख का विकल्प, इन्द्रियाँ और विषय, उससे भिन्न भगवान और मन के विकल्प से भिन्न भगवान, ऐसा आत्माराम, उसको तू आत्मा जान। दया, दान, भक्ति आदि का विकल्प उठते हैं, वह आत्मा नहीं। (क्रियाकाण्ड में धर्म मानकर) सिर फोड़ा हो वह माने ? थोड़ा नीचे उतर जाये तो माने। तेरा शरण कहाँ है, उसका पता लिये बिना तेरा दुःख कैसे मिटेगा ? समझ में आया ? बाहर की बड़ी-बड़ी पदवी आ गयी, ले ली, आचार्य है, उपाध्याय है, साधु है। कौन ना कहते हैं ? पदवी में क्या आत्मा आ गया ? समझ में आया ?

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसमें संकल्प-विकल्प और इन्द्रिय का सुख-दुःख तो है ही नहीं। है उसकी अवस्था में है, उसके अस्तित्व में है। अपने परमानन्द के अस्तित्व में नहीं है, ऐसा आत्मा का अनुभव, प्रतीति, स्वरूप में रमणता करना। उसका उन सब में अभाव है, ऐसा ज्ञान होता है। उसका अर्थ, रागादि विकल्प के साधन से आत्मा की दृष्टि नहीं होती। कषाय की मन्दता आस्रव है। वह तो स्वरूप में है नहीं। है नहीं तो वह साधन होकर आत्मा की दृष्टि कैसे होगी ? चिदानन्द प्रभु, सिद्ध समान स्वरूप शुद्ध, उसकी दृष्टि में तो पुण्य-पाप के विकल्प से रहित परमात्मा है। ऐसे लक्षणवाले अन्तरात्मा को तुम पहिचानो। कहो, समझ में आया ? ऐसी कोई साधारण बात, पोपाबाई का राज नहीं है कि बाहर से चीज़ मिल जाये। (पोल) अन्दर तत्त्व में चले नहीं। घन तत्त्व चिदानन्द ज्ञानघन वस्तु है। ज्ञानघन वस्तु है, विज्ञानरस वस्तु है। उसमें विकल्प का

प्रवेश नहीं। तो विकल्प का साधन होकर सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कभी तीन काल में है नहीं। आहाहा! कुछ आधार चाहिए, बाहर से आधार चाहिए। परन्तु वह निराधार निरालम्बी चीज़ भगवान आत्मा है। समझ में आया? वह पर के आलम्बन रहित (है तो) उसके (-पर के) आलम्बन से निरालम्बन तत्त्व दृष्टि में आता है, ऐसा होता नहीं। विकल्प आदि को छोड़ दृष्टि में से। भगवान पूर्णानन्द अकेला ज्ञानस्वभाव से भरा, उसकी दृष्टि में तू परमात्मा आत्मा जान।

भावार्थ : ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा को... भगवान निज शुद्धात्मा कैसा है? दो का वर्णन किया। ज्ञानानन्द—ज्ञान और आनन्द। ज्ञान और आनन्द। ज्ञान तो प्रगट अंश है, लोगों की भावना आनन्द की है। सुख। लोगों की भावना सुख लेने की है और ज्ञान का अंश प्रगट है। आनन्द का अंश अनादि से प्रगट नहीं है। तो कहा कि भगवान! ज्ञान का अंश प्रगट है न? सम्पूर्ण आत्मा ज्ञानस्वरूप है। और तुझे सुख चाहिए न? तो आनन्दस्वरूप ही आत्मा है। समझ में आया? तुझे सुख चाहिए न? समाधान चाहिए न? शान्ति चाहिए न? तो वह शान्ति तेरे स्वभाव में ही पड़ी है। बाहर से आनेवाली नहीं है।

ज्ञानानन्दस्वरूप... देखो! **ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा को निर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर जान,...** ऐसे ही जानना, ऐसे नहीं। लक्ष्य में, धारणा में लिया कि आत्मा ऐसा है, ऐसे नहीं। आत्मा शुद्ध है, पवित्र है। ऐसे लक्ष्य में क्षयोपशमज्ञान में लिया, ऐसे नहीं। उसे जानना नहीं कहने में आता है। विकल्परहित दृष्टि करके शान्तिवाली दृष्टि से भगवान को अनुभव में जान। समझ में आया? राग विकल्परहित अथवा निर्विकल्प शान्ति, ऐसी प्रतीति, ऐसा ज्ञान, ऐसे निर्विकल्प शान्ति द्वारा आत्मा (को) जान, तब आत्मा को जाना, ऐसा कहने में आता है। लक्ष्य में लिया कि आत्मा ऐसा है। नहीं, वह आत्मा को जाना नहीं।

आत्मा जानना उसको कहते हैं कि भगवान आत्मा, शरीर, वाणी, मन का लक्ष्य छोड़ दे, पुण्य-पाप के विकल्प का लक्ष्य छोड़ दे। स्वरूप की दृष्टि में रागरहित आंशिक वीतरागता, प्रतीति, ज्ञान में लीनता द्वारा आत्मा को अनुभवे—जाने, तब आत्मा को जाना, ऐसा कहने में आता है।

ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा... उसको अन्तर निर्विकल्प दृष्टि और निर्विकल्प शान्ति अर्थात् रागरहित और ज्ञान की पर्याय में भी रागरहित है, ऐसे सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति (होनी), उसका नाम निर्विकल्प समाधि है। निर्विकल्प शान्ति, समाधि द्वारा आत्मा यह है, ऐसा जान। तेरे आत्मा का अनुभव उसमें होगा। तुझे मुक्ति का मार्ग ख्याल में आ जायेगा कि ओहो! मार्ग तो अन्दर में लीन होना ही मार्ग है। समझ में आया? अन्य कोई मार्ग है नहीं।

अन्य परमात्मस्वभाव से विपरीत पाँच इन्द्रियों के विषय आदि सब विकार परिणामों को दूर से ही त्याग,... अन्तर अनुभव की दृष्टि में रागादि दूर से त्याग। दूर से त्याग का अर्थ क्या? थोड़ी कषाय की मन्दता का विकल्प मुझे अन्दर में सहायक होगा, ऐसा नहीं। समझ में आया? विकल्प जो राग मन्द है, वह मेरे आत्मा के अनुभव में थोड़ा सहायक होगा, (ऐसा) छोड़ दे। दूर से छोड़ दे। ओहोहो! समझ में आया?

भगवान चिदानन्द परमात्मा देह-देवालय विकल्प की आड़ में परमात्मा पड़ा है। समझ में आया? उसमें कहते हैं, उसमें नरसिंह मेहता हुए न? बात करते हैं। यह चीज़ नहीं है परन्तु आत्मा एक नाम लेकर बात करते हैं। ऐसे आत्मा की तो उसे खबर नहीं। 'तारी पासे हरि नथी वेगळा जी। पण आडो आव्यो तने रे अहंकार' विकल्प का अहंकार। यह मैं, वह आड़े आया। प्रभु! 'तारी पासे रे हरि नथी वेगळा जी।' हरि अर्थात् भगवान तेरे से वेगळा—दूर नहीं है। यह हरि। हरद्वार, हरद्वार जाते हैं न? भैया! 'तारी पासे...' पासे शब्द से संकल्प-विकल्प को दूर से छोड़ दे, उसमें वह है ही नहीं। समझ में आया? यह बात तो दूसरे में होती नहीं। आत्मा का नाम लोग लेते हैं। समझे? परन्तु यह आत्मा ऐसा है, कहीं नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शान्ति आदि अनन्त-अनन्त गुण की राशि का पिण्ड एक वस्तु है। ऐसी चीज़ सर्वज्ञ भगवान ने ही ऐसी देखी है। दुनिय कल्पना से आत्मा आत्मा करते हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

ऐसा परमात्मा तू ही है। पास का अर्थ तू ही है। संकल्प-विकल्प को दूर से त्याग, भाई! संकल्प का, विचार का थोड़ा-सा भी सहारा लेकर मुझे चैतन्य की प्राप्ति होगी, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? कहते हैं, **दूर से ही त्याग, उनका सर्वथा ही**

त्याग कर। भगवान आत्मा की प्राप्ति में तेरी विकल्प आदि की वृत्ति सर्वथा छोड़ दे। निर्विकल्प दृष्टि से ही भगवान आत्मा, निर्विकल्प शान्ति से ही भगवान आत्मा अनुभव में आनेवाली चीज़ है। समझ में आया? ये तो महाव्रत पाले, वह अध्यात्म है, ऐसा मानते हैं। ये हमारा निवृत्त मार्ग है, अध्यात्म मार्ग है, ऐसा शब्द लेते हैं अभी। कहाँ (मार्ग है)? महाव्रत का विकल्प तो पर की ओर जाता है। महाव्रत कैसा अभी सम्यग्दर्शन के बिना? अनुभव चिदानन्द अखण्डानन्द भगवान पूर्णानन्द प्रभु हूँ, ऐसे सम्यक् अनुभव में स्वसन्मुख में अनुभव हुए बिना सम्यक् नहीं है तो फिर महाव्रत का विकल्प का व्यवहार भी उसको कहाँ आया? मांगीरामजी! माँगीरामजी तो उदार बहुत है तो सबको ऐसा कहते हैं, ये समझ जाये तो बहुत अच्छा हो जाये। खानदान है, गाँव में परिचयवाला है। वह समझा दे। मांगीरामजी! दूसरे पर डाल दिया। आत्मा परमानन्द की मूर्ति, लाख-अनन्त दूसरे उपाय करे तो दूसरे उपाय से (उसकी) प्राप्ति नहीं होती। वह तो अन्तर्मुख में निर्विकल्प शान्ति और दृष्टि द्वारा ही आत्मा का अनुभव होता है। (इसलिए अन्य रागादि को) दूर से छोड़, सर्वथा छोड़।

यहाँ पर किसी शिष्य ने प्रश्न किया कि निर्विकल्पसमाधि में सब जगह वीतराग विशेषण क्यों कहा है? प्रभु! आपने तो अन्तर आत्मा की वीतराग निर्विकल्प समाधि (में) वीतराग... वीतराग शब्द का प्रयोग किया है। ऐसा क्यों कहा है?

उसका उत्तर कहते हैं—जहाँ पर वीतरागता है, वही निर्विकल्पसमाधिपना है,... क्या कहते हैं? अन्यमति में ऐसे समाधि लगाते हैं कि ऐसी समाधि (होती है)। परन्तु वस्तु क्या है, वह दृष्टि में आये बिना शून्य हो जाता है। समझ में आया? वस्तु एक समय में पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड अस्ति-सत्ता महाधाम, उसका पहले ज्ञान हुआ नहीं तो ज्ञान की दृष्टि उस ओर मुड़ती नहीं तो महान अस्तित्व की प्रतीति आती नहीं। शून्य जैसा हो जाये। इसलिए कहते हैं कि वीतराग पर्याय अन्दर आनी चाहिए। अकेला शून्य नहीं। समझ में आया? निर्विकल्प समाधि में, गृहस्थ को समझाते हैं...

जहाँ पर वीतरागता है, वहीं निर्विकल्पसमाधिपना है,... अर्थात् जो वस्तु है, वही अविकारी वीतरागस्वरूप का पिण्ड वस्तु है। अनन्त गुण का पिण्ड वीतरागस्वरूप ही द्रव्य है। तो उसकी पर्याय में वीतरागता प्रगट हो, अस्ति में—जागृत में—भान में—

अराग की शान्ति की पर्याय में 'यह पूर्णानन्द है', ऐसा प्राप्त हो, इसलिए उसमें वीतरागता कहने में आया है। शून्य हो जाये और कुछ है, ऐसे नहीं। शून्य हो गया, कोई विकल्प नहीं रहा, मन को बाँध लिया, ऐसे नहीं। ठण्डे आदमी है, मीठे आदमी है न? मीठालाल नाम है न? समझ में नहीं आया, कहते हैं। क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा वस्तु वस्तु है। अपने इतने क्षेत्र में (रहा है)। समझ में आया? एकाग्र होना है तो ऐसे (बाहर) लक्ष्य करके नहीं होना है। क्योंकि उसका क्षेत्र बाहर में नहीं है। जितने में एकाग्रता करता है, वह इतने क्षेत्र में है, परन्तु उस क्षेत्र में है क्या? अनन्त भाव, ज्ञानानन्दस्वरूप भावस्वरूप वह क्षेत्र है। समझ में आया? नित्यानन्द ज्ञानानन्दस्वभाव वस्तुस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप है। ऐसी अन्तर प्रतीति में जब आता है, तब रागरहित वीतराग दृष्टि हो, वीतराग शान्ति हो, तब वीतराग शान्ति में वह दृष्टि में आता है। शून्य नहीं हो जाता है। वह तो जागृत हुआ। ओहो! जो आनन्द का अंश आया (उससे प्रतीति में आया कि) सारा आनन्दमय है। ऐसा जागृत में भान में आ गया, ऐसा कहते हैं। शून्य नहीं (हो जाता) कि आत्मा कहीं है, ऐसा आ गया, ऐसे नहीं।

ज्ञान में—ज्ञान के अंश में—सारा स्वरूप ज्ञानमय अस्तिज्ञानमय पदार्थ महान है, ऐसा ज्ञान के अंश में प्रतीति में आता है। और रागरहित में सारा आत्मा अनाकुल आनन्दमय है, यह शान्ति का अंश आया, उससे ख्याल में आया कि सारा आत्मा शान्ति का पिण्ड है। ऐसा अस्तित्व में आता है, वीतरागदृष्टि से आता है। तो वीतरागता का भी अस्तित्व रहा और उसके अस्तित्व में शून्य नहीं आया। विकल्प का शून्यपना आया। वीतरागपर्याय आयी। पूरी चीज़ में शून्य नहीं है। ये तो महान पदार्थ है। अंश में इतना है, तो महान पदार्थ है, ऐसा दृष्टि में आना, उसका नाम आत्मा कहते हैं, उसका नाम निर्विकल्प समाधि कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चन्दभाई! समझ में आया?

जहाँ पर वीतरागता है,... अस्ति में निर्मल शान्ति है। समझ में आया? ऐसे ही शून्य जाये, ऐसा नहीं। शान्ति की जागृति ऐसी है कि सारी शान्ति का पिण्ड की प्रतीति करवाती है। समझ में आया? शून्य समाधि, कुम्भक, रेचक, फलाना, इंगला, पिंगला। भाई ने तो पहले बहुत अभ्यास किया है न। कोई-कोई बार दृष्टान्त देते हैं। पहली बार

आये थे और उनकी स्त्री ने प्रश्न किया था। तीन काल को जाननेवाला सर्वज्ञ हो तो भूतकाल का करनेवाला कहाँ रहा? समझ में आया? सर्वज्ञ हो, सर्वज्ञ हो। सर्वज्ञ है तो उसमें तीन काल का ज्ञान आया। भूतकाल का किया और वर्तमान, भविष्य का ज्ञान दो प्रकार का न आया। एक में तो कर्ता आया (तो) तीन काल का ज्ञान आया नहीं। सर्वज्ञ कहो तो वह किसी का कर्ता है नहीं। पहले प्रश्न चला था। पहले शुरु में आये (तब)।

वस्तु आत्मा है। जो है तो उसकी पर्याय में सर्वज्ञपना है। सर्वज्ञपना आया तो अन्दर सर्वज्ञपना था। आया तो सर्वज्ञपना में त्रिकाल जानना हुआ। त्रिकाल में एक काल में वह आत्मा करनेवाला है और दो काल का जाननेवाला है, तो सर्वज्ञ हुआ नहीं। ईश्वरकर्ता सिद्ध नहीं होता। परन्तु ईश्वर तीन काल का जाननेवाला सिद्ध होता है। समझ में आया? ईश्वर की महत्ता—बड़प्पन उसका नाम है कि अपना स्वभाव ही पूर्ण ईश्वर वीतरागस्वरूप है और पर्याय में निर्विकल्प शान्ति, श्रद्धा, ज्ञान द्वारा ख्याल में आया कि पूर्ण ज्ञानमय आत्मा है। पूर्ण आनन्दमय है। अब, उसमें जितना स्थिर होऊँगा, इतनी शान्ति बढ़ेगी। पूर्ण स्थिर होऊँ तो केवलज्ञान और पूर्ण वीतरागता होगी। समझ में आया? ऐसा प्रतीति, ज्ञान में निर्विकल्प शान्ति का भाग आये बिना आत्मा जानने में आता नहीं। ऐसा कहते हैं। अस्ति स्थापते हैं। निर्विकल्प पर्याय की अस्ति, त्रिकाल वस्तु की अस्ति। समझ में आया? विकल्प की उसमें नास्ति है। सातों तत्त्व की श्रद्धा हो गयी। विकल्प है नहीं, निर्विकल्प पर्याय उत्पन्न हुई, वह संवर, निर्जरा हुई; सारा आत्मा ज्ञायकतत्त्व है, उसमें स्थिर होने से मोक्षतत्त्व प्रगट होगा। समझ में आया? सभी सात तत्त्वों की श्रद्धा उसमें आ गयी। ऐसे-ऐसे अकेला आत्मा है, आत्मा है ऐसे माने तो उसने आत्मा जाना ही नहीं। समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं?

सात तत्त्व जो सर्वज्ञ भगवान ने कहे, तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन। उसमें महान रहस्य है। अकेला आत्मा आत्मा कहे तो आत्मा है तो दूसरी चीज़ है, उसके बिना आत्मा कहाँ से आया? निर्मल है तो कोई मलिनता की पर्याय न हो तो निर्मल आया कहाँ से? समाप्त हो गया। आत्मा है, तो दूसरी चीज़ है। निर्मल है, तो दूसरी मलिन (वस्तु) है। मलिन अर्थात् आस्रव और बन्ध। जीव अर्थात् ज्ञायकभाव। अजीव अर्थात् भिन्न चीज़। ऐसे आत्मा में विकल्प मलिन और अजीव का लक्ष्य छोड़कर, निर्मल दृष्टि द्वारा यह

आत्मा, ऐसा भान हुआ, वह संवर-निर्जरा हुए। वह मोक्ष के मार्ग का अंकुर हुआ। उसमें, 'इस आत्मा में विशेष स्थिर होऊँगा तो पूर्ण सर्वज्ञ और वीतरागता प्रगट होगी', वह मोक्ष की पर्याय की श्रद्धा हो गयी। समझ में आया?

कहते हैं, निर्विकल्प समाधिपना जहाँ है, वहाँ वीतरागता है। **इस रहस्य को समझाने के लिये अथवा जो रागी हुए कहते हैं कि हम निर्विकल्पसमाधि में स्थित हैं,...** देखो! कितने ही कहते हैं हमारे (निर्विकल्प समाधि है)। क्या है? कोई शान्ति, आनन्द का अनुभव है? ऐसा कुछ नहीं, बस। वह थोथा है। समझ में आया? एक घण्टा, दो घण्टा पढ़े तो ख्याल विशेष बढ़ता है। तो तेरा ज्ञान जो स्व की ओर ढला तो ज्ञान में कोई विशेषता आयी या नहीं? समझ में आया? एक शास्त्र घण्टा, दो घण्टा पढ़ता है तो थोड़ा-थोड़ा ख्याल (आता है)। वस्तु एक ओर रहो, परन्तु जानपना का थोड़ा ख्याल (बढ़ता है)। तो यहाँ एक द्रव्य सारा ज्ञायक चिदानन्द महान पदार्थ है, उसका तुझे ज्ञान हो गया तो उसके ज्ञान में कोई विशेषता पर्याय में आयी या नहीं? समझ में आया? ये विशेषता रागरहित ज्ञान, रागरहित दृष्टि और रागरहित शान्ति का अंश है। समझ में आया? यह दिखाने को यहाँ (कहा कि) समाधि होगी, वह वीतराग समाधि ही होगी। इसलिए वीतरागता (विशेषण) कहा है।

रागी हुए कहते हैं कि हम निर्विकल्पसमाधि में स्थित हैं,... क्या आत्मा है, वह प्रतीति में आया? (तो कहे कि) आत्मा है, कैसा है, हमको कुछ खबर नहीं। तो तूने आत्मा जाना ही नहीं। आत्मा का ज्ञान हो और ज्ञान में आत्मा कैसा है, ऐसी प्रतीति में नयी चमत्कारिक चीज़ नहीं आये तो तुझे आत्मा का ज्ञान है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसका नाम सम्यग्दर्शन।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका नाम सम्यग्दर्शन।

रागी हुए कहते हैं कि हम निर्विकल्पसमाधि में स्थित हैं, उसके निषेध के लिये वीतरागतासहित निर्विकल्पसमाधि का कथन किया गया है,... अलौकिक बात है। राग का अस्तित्व है, अजीव का अस्तित्व है, भगवान का अस्तित्व है। ऐसे अस्तित्व की यदि प्रतीति हुई तो वीतराग पर्याय हुई। वीतरागी पर्याय का शान्ति का वर्तमान वेदन

आया। सारा आत्मा ऐसा है। राग का ज्ञान आया कि राग वस्तु में नहीं है, ज्ञान आया। वस्तु में अजीव नहीं है, (ऐसा) ज्ञान आया। समझ में आया? वह तो ज्ञान स्व-परप्रकाशक अपना है, उसमें ख्याल आया। है दूसरी चीज़, नहीं है ऐसे नहीं। हमने जाना, इसलिए लोक चला जाता है, आत्मा जाना तो लोक शून्य हो जाता है, ऐसा नहीं। लोक तो लोक में है। समझ में आया? भैया!

अथवा सफेद शंख की तरह स्वरूप प्रगट करने के लिये कहा गया है,... क्या? स्वरूप **अर्थात् जो शंख होगा, वह श्वेत ही होगा,...** शंख होगा, वह श्वेत ही होगा। श्वेत। **उसी प्रकार जो निर्विकल्प समाधि होगी, वह वीतरागरूप ही होगी।** वीतरागता का अंश लेकर होगी, वह समाधि है। शून्य नहीं। रागरहित दृष्टि-ज्ञान में वीतरागता लेकर दृष्टि उत्पन्न हुई, उसका नाम वीतरागसमाधि है। शंख श्वेत ही होगा। दृष्टि, समाधि—शान्ति-आत्मा में होगी, वह वीतरागतासहित ही होगी। वीतराग बिना की निर्विकल्प समाधि होती नहीं। समझ में आया?

आत्मा कैसा है? (तो कहे कि) आत्मा सर्वव्यापक है। हमने आत्मा को जान लिया है। तूने आत्मा को जाना ही नहीं। शून्य हो गया। समझ में आया? आत्मा कैसा है? आत्मा तो सब एक ही है। हम ध्यान में निर्विकल्प में (रहते हैं)। तूने जाना ही नहीं। ...भाई! २८ वीं गाथा (पूरी) हुई। शंख होगा, वह सफेद ही होगा। ऐसे भगवान आत्मा का शान्ति का अनुभव हुआ, वह वीतरागी पर्याय ही होगी। समझ में आया? व्यवहार दर्शन, ज्ञान (ऐसा) मोक्षमार्ग चौथे, पाँचवें में शुरु होता है। भगवान! गजब किया। आहाहा!

वीतरागस्वरूप आत्मा वीतराग के अंश से ही प्रतीति में आता है। वीतरागस्वरूप भगवान त्रिकाल है। वस्तु हो, वह तो निर्दोषस्वरूप ही होती है। उसमें सदोष कहाँ से आया? वह तो पर्याय में सदोषता है, वही संसार है। स्वभाव में सदोषता है ही नहीं। ऐसा निर्दोष भगवान आत्मा निर्दोष पर्याय से ही निर्दोषता का पता लगता है। राग से पता लगता है, ऐसा माने वह वस्तु को समझते नहीं, साधन को समझते नहीं। उसके फल को, कार्य को समझते नहीं। अथवा सातों तत्त्व को वह समझता नहीं।

यहाँ तो धर्मध्यान चौथे गुणस्थान में आत्मा की प्राप्ति के काल की बात चलती

है। लोगों ने ऐसा मान लिया है कि शुक्लध्यान होगा, तब आत्मा की प्राप्ति होगी और तब शान्ति होगी। आहाहा! करो यहाँ। क्या करे? धूल करे? उसमें नहीं है, वह प्राप्त होगा? बहुत भ्रमणा, बहुत भ्रमणा अनादि की। साधु होकर अनन्त बार मर गया। पंच महाव्रत लिये। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ, पै निज आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' किसकी बात कही? आठवें गुणस्थान की बात है? आठवाँ गुणस्थान अनन्त में नहीं मिला, ऐसे कहा है वह? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ।' वर्तमान में तो ऐसा शुभभाव भी नहीं है। जो नौवीं ग्रैवेयक में अनन्त बार गया था, शुभभाव शुक्ललेश्या थी, ऐसा तो अभी किसी के पास नहीं है। ऐसा शुभभाव अनन्त बार हुआ परन्तु 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पाया।' उसका क्या अर्थ हुआ? चौथे गुणस्थान की सम्यग्दर्शन की बात है या आठवें गुणस्थान की बात है? समझ में आया? (व्यवहार के पक्षवाले) तो काँप उठते हैं। अरे! हमारा लोप कर दिया। तुम्हारा लोप नहीं किया, तुमने तुम्हारा लोप कर दिया है। देह की क्रिया से हमें आत्मा का भान (और) श्रद्धा होगी। लोप कर दिया, परमानन्द अखण्डानन्द प्रभु का नाश कर दिया। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २९

आगे यह परमात्मा व्यवहारनय से तो इस देह में ठहर रहा है, लेकिन निश्चयनयकर अपने स्वरूप में ही तिष्ठता है, ऐसी आत्मा को कहते हैं :-२९वीं गाथा। ये क्यों बताते हैं? कहाँ है यह बताते हैं। कितने क्षेत्र में है, यह बताते हैं, भाई! पहले लिया न, निर्विकल्पसमाधि। इतने में विराजता है, यह स्पष्ट करने को यह श्लोक लिया है। समझ में आया? निर्विकल्प समाधि में आत्मा का भान हुआ। अनन्त में अनन्त, अनन्त में अनन्त मिल गया, बस (ऐसा कहे)।

२९) देहादेहहिँ जो वसइ भेयाभेय-णएण।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ किं अण्णेँ बहुएण॥ २९॥

अन्वयार्थ :- जो अनुपचरित-असद्भूत व्यवहारनयकर अपने से भिन्न जड़रूप

देह में तिष्ठ रहा है,... अनुपचरित अर्थात् यह देह समीप है न? सम्बन्ध में है न, इसलिए अनुपचरित कहा। उपचरित तो भिन्न हो (जैसे) स्त्री, कुटुम्ब, मकान। यह अनुपचरित (है, क्योंकि) यहाँ समीप में है। और असद्भूत (अर्थात्) झूठा है। आत्मा उसमें है नहीं। असद्भूतनय से, सम्बन्धवाली असद्भूतनय से व्यवहार अर्थात् निमित्तनय से **अपने से भिन्न... अपने से भिन्न जड़रूप देह में तिष्ठ रहा है,...** ऐसा अनुपचरित असद्भूत सम्बन्धवाले झूठे नय से ऐसे कहने में आता है कि देह में आत्मा है। देह में आत्मा है, ऐसे सम्बन्धवाले झूठे नय से, व्यवहार-झूठे व्यवहार से कहने में आता है कि देह में आत्मा है। ऐसे ही मान ले कि हमारे में सर्वव्यापक है, एकाकार है। दो चीज़ है ही नहीं। इतना सर्वव्यापक क्षेत्र, वही आत्मा है। आत्मा ऐसा है नहीं। समझ में आया?

यह देह इतने क्षेत्र में है। ये पहले बताना है। इस देह में है, किस नय से? ज्ञान की कौन-सी अपेक्षा से? कि करीब सम्बन्धवाला झूठा असद्भूत। झूठा सम्बन्ध। ऐसे व्यवहार से जड़ में आत्मा है, ऐसा कहने में आता है। झूठी नय से उसमें है तो सच्चे नय से सर्वव्यापक होगा, (ऐसा कोई कहे)। समझ में आया?

कहते हैं, देखो! **शुद्ध निश्चयनयकर...** परन्तु शुद्ध वस्तु के स्वरूप की वास्तविकता के नय से देखने से **अपने आत्मस्वभाव में ठहरा हुआ है...** भगवान देह में भिन्न अपने आत्मस्वरूप में ठहरा है। व्यवहारनय से अभिन्न कहा, निश्चय से भिन्न कहा। अभिन्न कहने का आशय आयेगा। **शुद्धनिश्चयनयकर अपने आत्मस्वभाव में ठहरा हुआ है...** भगवान! अपने असंख्य प्रदेशी शुद्ध आनन्दघन स्वभाव में ही ठहरा हुआ है। देह में है नहीं। **अर्थात् व्यवहारनयकर तो देह से अभेदरूप (तन्मय) है...** तन्मय का अर्थ क्या? इस देह के साथ ही एकमेक सम्बन्धरूप है। व्यवहार से। क्या (कहा) ? आत्मा यहीं शरीर प्रमाण में व्यवहार से एकरूप एकक्षेत्रावगाह इतने में है, ऐसा बताने को व्यवहारनय से शरीर के साथ एकरूप एकक्षेत्र में अभेद है, ऐसा कहने में आता है। सर्वव्यापक का निषेध करने के लिये शरीर जितने अभेद सम्बन्ध मे हैं, इतना व्यवहारनय से कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मा के घर की बात है। कहते हैं, देह से अभेद है। व्यवहार से देह से अभेद (का अर्थ क्या) ? इतने शरीर सम्बन्ध में ही है। समझ में आया? वह तो पाठ में

अभेद है। **'व्यवहारेणाभेदनयेन'** है न अन्दर? है न? **'स्वपरमात्मनोऽभिन्ने'।** ऐसा कहने का आशय (यह है कि) भगवान आत्मा अनन्त गुण वीतरागस्वरूप की राशि प्रभु है, उसका स्थल निश्चय से अपने स्वरूप में है। व्यवहार से इतने में जो देह है, इसके साथ सम्बन्ध में अभेद में एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध है। समझ में आया? लोक के साथ उसका सम्बन्ध है, उसका निषेध करने को देह के साथ अभेद है, ऐसा कहने में आया है। देह के साथ व्यवहार से अभेद कहा, उसका अर्थ इतना है कि यहाँ सम्बन्ध में है, बाहर सम्बन्ध में है नहीं। बस, इतना। समझ में आया? आहाहा!

निश्चय से सदा काल अत्यन्त जुदा है,... सत्यदृष्टि से, सत् स्वभाव से देहप्रमाण में व्यवहार से सम्बन्ध कहा, वही भगवान आत्मा उसी काल में अन्तर सत् के स्वभाव से देह से बिल्कुल भिन्न, अपने स्वभाव से अभिन्न है। समझ में आया? दो नय कहने का आशय क्या है, समझे?

अपने स्वभाव में स्थित है, उसे हे जीव! तू परमात्मा जान। हे आत्मा! उसे तू आत्मा जान। देह के सम्बन्ध में इतने में है। बस, इतना सम्बन्ध बताने को अनुपचरित झूठी व्यवहारनय से यहीं है, ऐसा कहना है। वस्तुस्वरूप से देखो तो यहाँ होने पर भी बिल्कुल भिन्न है। समझ में आया? आत्मा निर्विकल्प शान्ति में आया तो कौन जाने कैसा व्यापक होगा? व्यवहार से किसके साथ क्षेत्रावगाह सम्बन्ध होगा। बड़ा व्यापक होकर सारा लोकव्यापक है, व्यवहार से ऐसा सम्बन्ध है। परद्रव्य के साथ? शरीर तो इतना है, उसके साथ व्यवहार से सम्बन्ध है। समझ में आया? इतना बड़ा शान्त स्वभाव रखता है, बड़ा ज्ञान रखता है, बड़ी वीतरागता रखता है और इतने देह के व्यवहार सम्बन्ध में भिन्न रहता है? इतने सम्बन्धवाले (होने पर भी) भिन्न है? बड़ा है तो व्यवहार से कोई पर के साथ सम्बन्ध है या नहीं? समझ में आया? असत्नय से इस शरीर तक का व्यवहार सम्बन्ध कहते हैं। वही भगवान शुद्ध सत्ता स्वभाव की दृष्टि से अत्यन्त त्रिकाल वर्तमान देह से भी भिन्न है। समझ में आया? आहाहा!

हे जीव! तू परमात्मा जान। इसे हे आत्मा! तू तुझे जान। **नित्यानन्द वीतराग निर्विकल्पसमाधि में ठहरके...** भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान, आनन्दघन प्रभु शरीरप्रमाण से बसते होने पर भी, शरीरप्रमाण के आकार में अपना स्वरूप त्रिकाल भिन्न रखता है। ऐसे

आत्मा को वहीं निर्विकल्प दृष्टि से जान। समझ में आया? **अपने आत्मा का ध्यान कर। अपने से भिन्न देह रागादिकों से तुझे क्या प्रयोजन है?** तेरे क्षेत्र में ही व्यापक देह का निमित्त सम्बन्ध है और तेरे क्षेत्र में एक समय का व्यापक अशुद्ध रागादि का सम्बन्ध है। समझ में आया? जैसे देह (के साथ) असद्भूतव्यवहारनय से इतना सम्बन्ध है, ऐसे ही पूरा आत्मा है, उसमें भी अशुद्धनिश्चय से उस समय राग का सम्बन्ध उतने में है। उससे तेरा स्वभाव बिल्कुल भिन्न है, उसे तू जान। समझ में आया?

फिर से। भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा, देह में, इसी देह में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धरूप से रहने पर भी, व्यवहार से, इतना व्यवहार सम्बन्ध होने पर भी निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध रहित तेरी चीज़ है। और तेरी पर्याय में रागादि अशुद्ध पर्याय जितने में व्यापक आत्मा है, उतने में ही व्यापक राग की पर्याय है। शरीर प्रमाण से व्यापक असंख्य प्रदेश हैं और राग का व्यापकपना असंख्य प्रदेश में है। फिर भी इतने में राग है। राग भी इतने में है और शरीर भी इतने में है। आत्मा तेरा शुद्ध उतने में है। समझ में आया?

यह तो परमात्मप्रकाश है। परमात्मा तो जैसा है, वैसा प्रकाश में आना चाहिए न? वह तो कहा, राग से पृथक् जान। राग से जान, ऐसे नहीं। शरीर से पृथक् जान। शरीर से जानने में नहीं आता। शरीर अच्छा हो तो समझे। मजबूत दृढ़ शरीर लठ्ठ जैसा हो तो आत्मा में समझ में आये। रोग जैसा शरीर हो तो समझ में आये? ऐसा कितने ही कहते हैं। शरीर मजबूत हो तो अहिंसा पाल सके। कोई सामने जोरदार आये तो हथियार-बथियार लेकर तैयार रहे। दुर्लभ हो तो ऐसा... ऐसा... ऐसा (करे)। अरे! चल। दुर्बल शरीर के साथ क्या सम्बन्ध है? अहिंसा का सम्बन्ध शरीर के साथ क्या है? उससे क्या सम्बन्ध है? एक व्यक्ति ऐसा कहता था, अरे! स्त्री का शरीर बराबर लठ्ठ बनाओ। नहीं तो तुम्हारा लड़का ऐसा नहीं होगा। बोरडी होती है, छोटी बोरडी होती है। बोरडी समझे? बेर। बेर की बोरडी में क्या आम पकता है? इसलिए स्त्री का शरीर पहले बिल्कुल कृश और माल बिना का हो तो क्या उसमें वीर पुरुष पकते हैं? मार गप्प। लोगों को कुछ खबर नहीं। यहाँ तो कहते हैं, शरीर लठ्ठ हो तो भी आत्मा के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध असद्भूतव्यवहारनय से कहा। आहाहा! अरे! भगवान!

अहिंसा पालने का अर्थ क्या? अपना भगवान आत्मा राग से व्यापक एक समय में होने पर भी असद्भूतव्यवहारनय से शरीर (के साथ) निमित्तरूप सम्बन्ध है। भिन्न भगवान आत्मा की दृष्टि और अनुभव करना, वही अहिंसा कहने में आती है। यह अहिंसा है। जितना राग उत्पन्न होता है, उतनी हिंसा है। चिल्लाते हैं। आहाहा! पर की दया का भाव आओ, आते हैं, परन्तु वह राग है, वह स्वरूप की हिंसा है। आहाहा! कहो, समझ में आया? अहिंसा आत्मा वीर का कार्य है। शरीर का वीर का, राग का वीर का कार्य अहिंसा है? आहाहा! **देह रागादिकों से तुझे क्या प्रयोजन है?**

भावार्थ :- देह में रहता हुआ भी... देखो! देह में रहता हुआ भी, व्यवहार से। व्यवहार सिद्ध किया। व्यवहार सिद्ध करते हैं न? इतना है न? **निश्चय से देहस्वरूप तो नहीं होता,...** भगवान वास्तव में देहस्वरूप तो है नहीं। अपने आनन्दस्वरूप में अनादि से विराजमान है। तेरी दृष्टि उसमें आयी नहीं तो तेरा आत्मा कहाँ है, तुझे पता लगता नहीं। **वही निज शुद्धात्मा उपादेय है।** ऐसा भगवान आत्मा ही तुझे आदर करनेयोग्य है। अन्तर दृष्टि करके वही उपादेय जाननेयोग्य है। उपादेय का अर्थ अंगीकार करनेयोग्य, उसमें दृष्टि देनेयोग्य है। समझ में आया? निज शुद्धात्मा ही आदरणीय है, बाकी कोई चीज़ आदरणीय है नहीं। उसका (विशेष अर्थ) आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १५, रविवार, दिनांक १०-१०-१९६५
गाथा - ३०, प्रवचन - २०

गाथा - ३०

परमात्मप्रकाश, उसका पहला अध्याय चलता है। उसकी ३०वीं गाथा। ३०... ३०। **आगे जीव और अजीव में लक्षण के भेद से भेद है, तू दोनों को एक मत जान, ऐसा कहते हैं...**

३०) जीवाजीव म एक्कु करि लक्खण भेएँ भेउ।
जो परु सो परु भणमि मुणि अप्पा अप्पु अभेउ॥ ३०॥

शिष्य को उद्देश्य करके सर्व जीव को कहते हैं, कि हे प्रभाकर भट्ट! तू **जीव और अजीव को एक मत कर...** बहुत बार आ गया है। परन्तु दूसरी तरह से यहाँ बात है। **जीव और अजीव को एक मत कर... क्योंकि दोनों में लक्षण के भेद से भेद है...** भगवान आत्मा और अजीव, दोनों का लक्षण भिन्न है। अजीव के दो प्रकार कहने को इस गाथा में विशेषता ली है। क्या है? देखो! अर्थ में आयेगा।

पर के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए रागादि विभाव (विकार) हैं, उसको पर समझ... भगवान आत्मा, अपने चेतना लक्षण से अनुभव में, लक्ष्य में आनेवाली चीज़ है। समझ में आया? चेतना अर्थात् राग है, वह भावकर्म अन्य द्रव्य सम्बन्धी भाव है। बताना यह है कि आत्मा के साथ भावकर्म का पर्याय में व्यापकरूप भिन्न सम्बन्ध है। समझ में आया? भगवान आत्मा असंख्यप्रदेशी चैतन्यप्रभु अन्तर में निर्विकल्प पर्याय शान्ति, सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प समाधि लक्षण से ही आत्मा जानने में आता है। समझ में आया? क्योंकि राग है वह आत्मा में व्यापक है, परन्तु वह असद्भूत परवस्तु है। है आत्मा के सम्बन्ध में, वह राग कहीं पर में है, ऐसा नहीं। है आत्मा के सम्बन्ध में, परन्तु वह सम्बन्ध अजीव लक्षण सम्बन्ध है। समझ में आया? और शरीर आदि, कर्म आदि भी अजीव लक्षण सम्बन्ध है। उसका स्पष्टीकरण करेंगे।

भगवान आत्मा है, एक समय में शुद्ध चिदानन्दस्वरूप। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने, तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने ऐसा यह आत्मा देखा है। उनका तो देखा, परन्तु सबको ऐसा देखा है। जो आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध अन्तर निर्मल अपने असंख्य प्रदेश में व्यापनेवाली निर्विकल्प समाधि द्वारा ही प्राप्त होता है। समझ में आया? उसके साथ राग का व्यापकपना है, वह उसकी पर्याय में है, परन्तु भिन्न व्यापकपना है। अजीव लक्षण सम्बन्धी जीव में व्यापकपना निमित्त से कहने में (आता है)। वह अजीव का लक्षण, जीव के सम्बन्ध में रहनेवाली राग की पर्याय को अजीव का लक्षण कहने में आया है... सेठी!

शरीर और कर्म, यहाँ जो निमित्तरूप सम्बन्ध है, यह बताने का आशय (यह है कि) दूसरा पदार्थ है, वह भिन्न है। उसके साथ उपचरित भिन्न लक्षणवाला सम्बन्ध है। और यहाँ जो समीप में है, उतने में ही आत्मा व्यापक है और उतने में ही शरीर और कर्म व्यापक है। समझ में आया? अन्य मत का निषेध करके जैन आगमार्थ उसका क्या है? आगम में उसको क्या कहना है, वह बताने को कहा कि भगवान आत्मा वस्तु अपनी निर्विकल्प समाधि शान्ति से प्राप्त होनेवाला है। उसका सम्बन्ध तो नित्य स्वरूप जैसा त्रिकाल स्वभाव के साथ नित्य है, वैसे निर्मल पर्याय के साथ भी अभेद सम्बन्ध है। निर्विकल्प पर्याय से आत्मा जाना जाता है, वह अभेद सम्बन्ध है और राग का भेद, अजीव लक्षण सम्बन्ध है। इतने ही द्रव्य के साथ... समझ में आया? और उतने ही द्रव्य में शरीर और कर्म का भी इतना ही सम्बन्ध इतने में है। वह पहले आ गया था, यहाँ विशेष (कहते हैं)। पहले वह (२९वीं) गाथा आ गयी थी न?

अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयकर अपने से भिन्न जड़रूप... ये कहने का हेतु (यह है कि) आत्मा शरीर व्यापक ही है। शरीर से आगे है, ऐसा नहीं। शरीरप्रमाण उसका व्यापकपना है। लोकप्रमाण व्यापकपना कोई कहते हैं, ऐसी वस्तुस्थिति नहीं है। उसका निषेध करने के लिये आगमार्थ कहने में भगवान आत्मा है तो शरीर, कर्म से भिन्न, फिर भी शरीर, कर्म जितने में है, उतने में ही आत्मा है। समझ में आया? उससे अधिक या हीन है, ऐसा नहीं। सुमेरुमलजी! समझ में आया? और दूसरे द्रव्य जो हैं, दूर या पास, कोई भी स्थान में हो, परन्तु वह असद्भूत उपचार सम्बन्ध है। समीप का

क्षेत्रावगाह सम्बन्ध है नहीं। सेठियाजी! समझ में आया?

विकार का, कर्म का, शरीर के इतने क्षेत्र में निमित्त-नैमित्तिक समीप सम्बन्ध है। है वह अजीवलक्षण। दया, दान, काम, क्रोध का विकल्प उठता है, वह अचेतनलक्षण है। वह चेतनलक्षण नहीं है। परन्तु है उसका व्यापकपना समीप में है। समझ में आया? और शरीर है भिन्न, परन्तु व्यापकपना शरीरप्रमाण आत्मा है तो इतने प्रमाण में ही शरीर वहाँ है। ये असद्भूत अनुपचारनय का सम्बन्ध ज्ञान कराने को कहा है। परलक्षण अजीवलक्षण ऐसा है। कर्म, शरीर व्यापक आत्माप्रमाण है, वह अजीवलक्षण सम्बन्ध है। है अजीव, परन्तु जीव सम्बन्ध लक्षणवाला इतनी चीज़ है। समझ में आया?

स्त्री, कुटुम्ब-परिवार दूसरे द्रव्य हैं। है, नहीं है—ऐसा नहीं। परन्तु उसका आत्मा के साथ उपचार, असद्भूत उपचार सम्बन्ध है। समझ में आया? क्योंकि इतने प्रमाण में व्यापक और इतने प्रमाण में क्षेत्रावगाह दूसरे द्रव्य नहीं है। समझ में आया? आहाहा! पर के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए रागादि, विभाव आदि उनको अन्य समझ और आत्मा को अपने से अभेद जान, ऐसा मैं कहता हूँ।

हे भगवान! हे आत्मा! तेरी चीज़ तो अन्दर शुद्ध निर्विकल्प शान्तकन्द, रसकन्द है। उसी आत्मा का भान (होना)। रागरहित स्वभाव है तो रागरहित सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति उसका नाम वीतरागी पर्याय, उसका नाम निर्विकल्प समाधि, उससे प्राप्त है। सारे द्रव्य में शुद्धपना, वीतरागपना पड़ा है तो निर्विकल्प शान्ति की पर्याय से वह अनुभव में आता है। सारा पूर्ण द्रव्य निर्विकल्प समाधि में प्राप्त होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कठिन पड़े ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े ऐसा है? पहली गाथा से इस गाथा को अलग करनी है। कल तो यह कहा था, शरीर का सम्बन्ध, शरीरव्यापक कहने का कारण क्या है?

मुमुक्षु : अभिन्न कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिन्न कहा न। व्यवहार से अभिन्न है। यहीं अभिन्न है, समीप है। क्षेत्रावगाह है। इसलिए व्यवहार से अभिन्न है, निश्चय से भिन्न है। पाठ में है न? '**व्यवहारेणाभेदनयेन**' २९ गाथा। ऐसा कहने का आशय क्या है? कोई आत्मा को

सर्वव्यापक, पूरी दुनिया में व्यापक है, ऐसा कहे तो ऐसी चीज़ नहीं। दूसरे से वस्तु का स्वरूप भिन्न बताने को ऐसा कहा कि भगवान आत्मा शरीर से अभेद है। कैसे? निमित्तनय, व्यवहारनय, असद्भूत-झूठे नय के सम्बन्ध से अभेद है। उसमें शब्द है। असद्भूत और अनुपचरित। उसका अर्थ है—अनुपचरित अर्थात् इतने में सम्बन्ध है। दूसरे के कर्म, शरीर, दूसरे का शरीर, समझे? दूसरे का आत्मा, या दूसरे परद्रव्य, आकाश आदि पर है, उसके साथ ऐसा सम्बन्ध नहीं है। सर्वज्ञ ने देखा हुआ आत्मा कैसा है? कितने प्रमाण में है? और उसको कैसे निमित्त का सम्बन्ध इतने क्षेत्रावगाह में और भिन्न कितना है, वह भी है सही। परन्तु वह भिन्न बताने को दो प्रकार का लक्ष्य बताया। समझ में आया? ओहोहो!

यहाँ शरीरप्रमाण (है, ऐसा) अनुपचारनय से तो वहाँ कहा था—असद्भूत क्यों कहा? कि शरीरप्रमाण में व्यापक है। उसका क्षेत्र इतने में ही है। इससे आगे कोई क्षेत्र माने तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है नहीं। और राग का क्षेत्र भी आत्माप्रमाण ही है। परन्तु वह असद्भूत अशुद्धनिश्चय से सम्बन्ध है, वस्तु के साथ सम्बन्ध नहीं है। वह अजीवलक्षण में जाता है। आहाहा! समझ में आया? और शरीर, कर्म का सम्बन्ध एकक्षेत्रावगाह प्रमाण में अनुपचरित झूठी नय से सम्बन्ध है, यहाँ है। इतने में है। जितने में आत्मा है, उतने में ही है। जितने में शरीर, कर्म है, उतने में ही आत्मा है, जितने में आत्मा है, उतने में शरीर और कर्म है। समझ में आया? और दूसरे जो पदार्थ हैं, शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, मकान आदि सब दूसरे द्रव्य के साथ एकक्षेत्रावगाह अनुपचरित सम्बन्ध नहीं है। भिन्न सम्बन्ध है। आगे-पीछे, दूर क्षेत्र में कहीं भी हो। वह दूसरी चीज़ है। समझ में आया? उसके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। ज्ञान-ज्ञेय। फिर भी उसके साथ उपचरित सम्बन्ध है। अरे! समझ में आया? यह तो परमात्मप्रकाश का वर्णन है।

अपना स्वरूप ही द्रव्य परमात्मा ही है। वस्तु... वस्तु... वस्तु भगवान आत्मा। द्रव्य है, वह तो वस्तु हुई। उसका स्वभाव पूरे द्रव्यप्रमाण में व्यापक शुद्ध आनन्द, ज्ञानादि पूरे द्रव्यप्रमाण में व्यापक है। व्यापक है और तादात्म्य है। विकार भी पूरे द्रव्यप्रमाण में व्यापक है। समझ में आया? फिर भी वह एक समय का असद्भूत अथवा अशुद्धनय का उसके साथ सम्बन्ध है। वस्तु के स्वभाव के साथ तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। समझ

में आया ? और शरीर, कर्म के साथ भी इतने प्रमाण में क्षेत्र में रहनेवाला भगवान, उसके साथ अनुपचरित सम्बन्ध है। अनुपचरित का अर्थ (जैसे) पर के साथ बिल्कुल सम्बन्ध नहीं है, ऐसा नहीं है। एक क्षेत्रावगाह में शरीर, कर्म का इतना सम्बन्ध है। तो उसे अनुपचरित क्षेत्र का सम्बन्धवाले अजीव को, जीव सम्बन्धी अजीव लक्षणवाला कहने में आया है। मालचन्दजी! बहुत सूक्ष्म पड़ता है, ऐसा कहते हैं। एक-एक गाथा में भिन्न-भिन्न बात करते हैं। एक ही बात नहीं करते हैं। ये कहते हैं, जीव से अजीव भिन्न है, ये तो बहुत बार आ गया। नहीं। सुन तो सही। आहाहा!

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव, उन्होंने जैसा आत्मा देखा, (ऐसा है और) अन्यमति जो कहते हैं, ऐसा आत्मा नहीं है, उससे भिन्न करने को (यहाँ कथन किया है)। जयकुमारजी! क्यों ? सुमेरुमलजी! आता है न ? सर्वव्यापक है, कल्याण में ऐसा है, वैसा है। ज्ञान में सब देखते हैं। लो, लकड़ी का ज्ञान होता है या नहीं ? लकड़ी का ज्ञान होता है। लकड़ी सम्बन्धी ज्ञान है तो वह ज्ञान की चीज़ है। वह तो एक है, इसलिए ज्ञान होता है। ऐसा नहीं है। आता है न ? उसमें तर्क आता है। उसमें डाला था। जीवन शोधन। भाई! उसे क्या कहते हैं ? मसरुवाला। उसने 'जीवन शोधन' नाम के दो पुस्तक बनाये थे। उसमें एक तर्क दिया था। ये लकड़ी दिखती है, स्तम्भ देखने में आता है। देखने में आता है तो उस सम्बन्धी ज्ञान हुआ, तो वह तो ज्ञानमयी चीज़ है तो ज्ञान हुआ। इसलिए सब एक है। ऐसा नहीं है। समझ में आया ? उसके शरीर का ज्ञान, कर्म का ज्ञान, और पर का ज्ञान, दो में भी भिन्न लक्षणवाला यहाँ तो सम्बन्ध बताया। इस शरीर, कर्म का ज्ञान हो। अपनी निर्विकल्प दृष्टि में अपने शुद्ध स्वरूप के भान में, **मैं यह अस्ति हूँ और राग, कर्म, शरीर मेरे क्षेत्रावगाह प्रमाण में होने पर भी मैं नास्ति हूँ।** परन्तु उसके साथ अनुपचरित सम्बन्ध है, अनुपचरित सम्बन्ध है। पर का जैसा उपचार सम्बन्ध है, ऐसा उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। ओहोहो! समझ में आया ? यहाँ नय के प्रयोजन में सार्थकता बताते हैं। अनुपचरित असद्भूतनय से सम्बन्ध है। पर के साथ उपचरित असद्भूत सम्बन्ध है। परन्तु उसका अर्थ क्या ? प्रयोजन क्या ? समझ में आया ? शशीभाई!

कहते हैं, भगवान अपने स्वरूप से अभेद है और ध्यान करने से प्राप्ति (होती

है)। वह ध्यान की पर्याय भी स्वरूप से (अभेद है)। भले एक समय की हो, परन्तु अभेद है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय, है एक समय की, परन्तु शुद्ध द्रव्य के साथ सर्वव्यापक एक समय में पूरा अभेद है। समझ में आया? और रागादि भाव है, वह व्यापक असंख्य प्रदेश प्रमाण में है, परन्तु उसका सम्बन्ध भिन्न अजीवलक्षण है। जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण। ऐसी कैसी बात? समझ में आया? यह बात सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा के अलावा और कहीं हो सकती नहीं। समझ में आया? सम्प्रदाय में अभी खबर नहीं तो अन्य में तो कहाँ है? अन्य में तो है ही नहीं।

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड देखा। परन्तु शरीर व्यापक ही तेरे आत्मा को देखा है। समझ में आया? तेरी राग की पर्याय आत्मव्यापक ही देखी है। परन्तु व्यापक होने पर भी भिन्न है, भिन्न है। शरीर, कर्म भी आत्मव्यापक देखा है, आत्मप्रमाण में ये पूरा शरीर, कर्म व्यापक (देखे हैं)। परन्तु वह अनुपचरित झूठे नय से सम्बन्ध है, ऐसा जानना। समझ में आया? और दूसरे जो पदार्थ हैं, अजीव, पुद्गल आदि, देखो! ये लकड़ी आदि, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? असद्भूत उपचारनय वस्तु सिद्ध करती है और वस्तु का ज्ञान होता है तो ज्ञान में सम्बन्ध कितना? उपचरित असद्भूतनय से जानने में आता है। बस। उसका आत्मा के साथ सम्बन्ध होना, ऐसा कोई आवश्यक नहीं। अनुपचरित में तो आत्मा का सम्बन्ध जितने में है उतने में है, ऐसा सम्बन्ध का ज्ञान करवाने को अनुपचरित असद्भूतनय कहा है। शशीभाई! सेठियाजी!

भावार्थ :- जीव अजीव के लक्षणों में से... सूक्ष्म बात है, गुलाबचन्दभाई! वीतराग की बात सूक्ष्म है। लोगों को सुनने नहीं मिलती। लोग क्या करे? पहली चीज़ क्या है? भगवान आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने ऐसा तेरा आत्मा देखा है और वैसा है। शुद्ध आनन्दकन्द आत्मा है। क्यों? कि रागादि व्यापक होने पर भी राग आस्रवतत्त्व है। पुण्य-पाप का विकल्प है। अस्ति सिद्ध करनी है। मात्र आत्मा ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुणराशि-पिण्ड प्रभु पूर्णानन्द आत्मा है, उसको भगवान आत्मा कहते हैं और ऐसा आत्मा है। साथ में राग को भगवान ने

आस्त्रवतत्त्व देखा है। तेरी पर्याय में असंख्य प्रदेश व्यापक होने पर भी उसका सम्बन्ध अशुद्धनिश्चय से है, वस्तु का तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। ऐसा पुण्य-पाप का विकल्प आत्मव्यापक होने पर भी, वह अजीवलक्षण, अचेतन लक्षणवाला विकार है। उसका सम्बन्ध आत्मा प्रमाण में है। आहाहा! ऐसा भगवान ने देखा है। ऐसा उसकी दृष्टि में आना चाहिए। जो आत्मा है, उसमें वहीं राग है। इतने प्रमाण में। इतने प्रमाण में राग से हटकर अपनी निर्विकल्प पर्याय से व्यापक होकर अन्तर में अनुभव में आना, वही जीव का लक्षण है। आहाहा! समझ में आया?

जीव अजीव के लक्षणों में से जीव का लक्षण शुद्ध चैतन्य है,... देखो! समझ में आया? भगवान आत्मा... पुण्य-पाप का विकल्प, वह चैतन्य का लक्षण नहीं, चैतन्य का लक्षण नहीं। वह तो आस्त्रव का लक्षण अर्थात् अजीव के लक्षण में जाता है। आहाहा! समझ में आया? सुमेरुमलजी! यहाँ तो जीव और अजीव, दोनों के लक्षणभेद करेंगे। राग, शरीर, कर्म और सब। सबको अजीव में डालकर, एक जीव सम्बन्धी अजीव (लक्षण) और एक बाह्य सम्बन्धी अजीव (लक्षण), दोनों के लक्षण बिल्कुल भिन्न, जीव से भिन्न है।

वह स्पर्श, रस, गन्ध, रूप शब्दादिक से रहित है। भगवान आत्मा में स्पर्श नहीं है, रस नहीं है, गन्ध नहीं है। शब्द का आवाज निकालने की उसमें सामर्थ्य नहीं है। शब्द आदि जड़ की पर्याय से भगवान भिन्न है। वर्तमान और त्रिकाल। समझ में आया? शब्दादिक की ध्वनि भिन्न परमाणु से उठती है। अपने में है नहीं। शब्द की पर्याय से भगवान भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? अपने में शब्द बोलता हूँ, ऐसी मान्यता शब्द जड़ और चैतन्य को एक मानता है, दोनों के भिन्न लक्षण की उसको खबर नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, रस, गन्धरूप शब्दादिक से रहित भगवान है। आत्मा में शब्द है ही नहीं। शब्दलक्षण, शब्दलक्षण अजीवलक्षण सम्बन्ध है। भगवान के साथ चिदानन्द चैतन्यलक्षण सम्बन्ध है। समझ में आया? **ऐसा ही श्री समयसार में कहा है...** ४९वीं गाथा है न? '**अरसमरूवमगंधं**'। '**अव्वत्त चेदणागुणमसद्दं**' है न? '**जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दि-ट्ठसंठाणं**'। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु, उसमें **मिष्ट आदि पाँच प्रकार**

के रस रहित है,... पाँच रस भगवान आत्मा में नहीं है। क्या कहते हैं? कि ये जो रस, रस है न? रस। वह रस सम्बन्धी जो यहाँ ज्ञान होता है, इसलिए वह रसवाला आत्मा है, ऐसा नहीं। समझ में आया? खट्टा, मीठा का ज्ञान होता है या नहीं? सामने रस है या नहीं? तो रस का ज्ञान होता है। ज्ञान होता है, तो कहते हैं रसस्वरूप आत्मा है, इसलिए ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। रस भिन्न है। ज्ञान होता है, वह रस से नहीं, और रसमय हुआ है और ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। और रस है तो यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? रस से भिन्न है। रस है, ऐसा ज्ञान में आता है। बराबर ऐसी ही ज्ञान होता है। खट्टा है, मीठा है। ऐसी खट्टे-मीठे की पर्याय से उसी समय में ज्ञान भिन्न है। और खट्टे-मीठे की पर्याय का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान की पर्याय उससे हुई, ऐसा नहीं है। क्योंकि उससे वह भिन्न है। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय चैतन्यलक्षण है तो आत्मा से उत्पन्न हुई है। समझ में आया? इसलिए रस से भगवान भिन्न है। वर्तमान बात चलती है, हों! वर्तमान आत्मा ऐसा है। ऐसा दृष्टि में जब तक नहीं आता, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता।

रस का ज्ञान हो तो वह रस का ज्ञान है? रस उसमें आया है तो आत्मा खट्टा-मीठा हो गया? खट्टा-मीठा आत्मा हुआ है? आत्मा की पर्याय। द्रव्य-गुण तो (होते ही नहीं)। पर्याय में खट्टा-मीठा आ गया है? पर्याय अर्थात् अवस्था, उसमें खट्टा-मीठा है? खट्टा-मीठा से भिन्न है। खट्टे-मीठे के अस्तित्व से यहाँ ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व है? नहीं। ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व, द्रव्य का लक्षण जो चैतन्य है, उससे उत्पन्न हुई ज्ञान की पर्याय है। समझ में आया? रस से भिन्न है।

श्वेत आदिक पाँच तरह के वर्णरहित है,... पाँच दिखते हैं न? श्वेत-सफेद ज्ञान में आता है न? क्या ज्ञान की पर्याय सफेद होती है? ज्ञान की पर्याय सफेद होती है? और सफेद के कारण से ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई है? भिन्न है सफेद से। भिन्न है तो सफेद का ज्ञान कहाँ-से उत्पन्न हुआ? भिन्न से हुआ? सफेद से भिन्न है। पाँचों रंग से भिन्न है। समझ में आया? चैतन्यलक्षण है तो चैतन्यलक्षणवाले द्रव्य का लक्ष्य किया तो उस समय यह सफेद है, ऐसा ज्ञान अपना स्व का ज्ञान करने से हुआ है। समझ में आया?

सुगन्ध, दुर्गन्ध इन दो तरह के गन्ध उसमें नहीं है,... फूल की सुगन्ध। सुगन्ध है, वह आत्मा की पर्याय में आ गयी है ? और सुगन्ध है तो ज्ञान की पर्याय हुई है ? पर्याय के अंश का अस्तित्व उस सुगन्ध के कारण से हुआ है ? सुगन्ध है तो हुआ है ? नहीं। इसलिए सुगन्ध से भिन्न है। वह पर्याय अपने द्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न होती है। समझ में आया ? ओहो ! **प्रगट (दृष्टिगोचर) नहीं है,...** गन्ध उसमें नहीं है। **प्रगट (दृष्टिगोचर) नहीं है, चैतन्यगुण सहित है,...** भगवान तो जानन गुण सहित है। जानना लक्षणवाला चैतन्य, अपने लक्ष्य से चैतन्य की पर्याय प्राप्त होती है। शब्दरूप से नहीं, शब्दरूप यहाँ आता नहीं, वह है तो पर्याय होती नहीं; अपना चैतन्यलक्षणवाला द्रव्य है तो पर्याय होती है। समझ में आया ? चैतन्यलक्षणवाला आत्मा बताना है। स्पर्श का ज्ञान होकर स्पर्श के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान का लक्षण, ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

शब्द से रहित है,... भगवान वाणी की पर्याय उठती है, वह अपने से तो नहीं, परन्तु शब्द की पर्याय का ज्ञान होता है, वह शब्द है तो ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। जिसमें ज्ञान भरा है, उसके आश्रय से वह ज्ञान की पर्याय होती है। ओहोहो ! स्व के चैतन्य लक्षण से लक्षित भगवान अपना ज्ञान करता है, उस समय शब्द उठता है तो अपनी स्व-परप्रकाशक ज्ञान के समय में शब्द का ज्ञान अपने स्व आश्रय से हुआ है। तो शब्द से भिन्न है। शब्द का ज्ञान से भी वह भिन्न है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निकले क्या ? कुछ निकलता नहीं। वाणी वाणी के कारण निकलती है। रात्रि में खबर नहीं पड़ता ? सपना आया हो तो बड़बड़ करता है। बोलता है या नहीं ? एक आदमी था। दिन में पूछे तो नहीं आये। 'जमाली' का अधिकार चलता था। भगवती में जमाली का अधिकार आता है न ? जमाली ! जीव शाश्वत है या अशाश्वत ? रात्रि में नींद में बोले। ऐसे साधारण था। ... दिन में व्याख्यान सुना था। चर्चा चलती थी। वहीं सो गया तो रात्रि में बोल रहा था। जमाली। भगवान कहते हैं, जमाली ! जीव शाश्वत् है या अशाश्वत् ? चलमाणी... आता है न ? भगवती (सूत्र) में चलमाणी ... आता है। दोपहर में व्याख्यान चलता था, वह सुना। रात्रि में बोलने लगा। दिन में पूछा तो कहा, मुझे कुछ मालूम नहीं। ... थे ना ? उनके साथ सोया था।

भाषा की पर्याय स्वतन्त्र है। आहाहा! आत्मा है तो भाषा निकलती है, ऐसा है नहीं। और भाषा है तो आत्मा में उसका ज्ञान होता है, ऐसा है नहीं। जिसमें ज्ञान है, उससे ज्ञान होता है तो आत्मा कहने में आता है। आहाहा! पर का लक्ष्य से जो ज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग, नपुंसकलिंग से आत्मा ग्रहण नहीं होता। पुल्लिंग ग्रहण आत्मा में है नहीं। भगवान चिदानन्द अरूपी अविकारी स्वरूप है। **ग्रहण नहीं होता अर्थात् लिंग रहित है,...** यहाँ संक्षेप में बात की है। प्रवचनसार में तो बीस बोल लिये हैं। **उसका आकार नहीं दिखता...** इन्द्रिय ग्राह्य आकार नहीं है। **अर्थात् निराकार वस्तु है।**

आकार छह प्रकार के हैं—समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सातिक, कुब्जक, वामन, हुण्डक। इन छह प्रकार के आकारों से रहित है, ऐसा जो चिद्रूप निज वस्तु है, उसे तू पहचान। ऐसा जो चिद्रूप, चिद्रूप, चिद्रूप अहं। ज्ञानरूप, आत्मा ज्ञानरूप है। राग नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, शब्द नहीं, स्पर्श नहीं। ऐसा भगवान आत्मा **चिद्रूप निज वस्तु...** देखो! स्वयं की वस्तु है, उसे तू पहचान। समझ में आया? पहचान का अर्थ? यह तेरी चीज़ है, तेरे ज्ञान के लक्षण से वहाँ जाकर पहचान (कि) यह आत्मा है। समझ में आया?

ज्ञान का अंश जो प्रगट है, वह प्रवाह कहाँ से आया? वह प्रवाह जहाँ से उठता है, वह द्रव्य है। उसका चेतना लक्षण है। पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति के विकल्प से आत्मा जाना जाता नहीं। उससे आत्मा का अनुभव होता नहीं। उससे आत्मा में शान्ति प्राप्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

आत्मा से भिन्न जो अजीव पदार्थ है, उसके लक्षण दो तरह से हैं,... देखो! उसके लक्षण दो प्रकार के। भिन्न अजीव का लक्षण दो प्रकार का। ओहो! **एक जीव सम्बन्धी, दूसरा अजीव सम्बन्धी।** उसमें कहीं आता है न? जीव सम्बन्धी, तत्त्व क्या, फलाना क्या? ऐसा कुछ कहते हैं। यहाँ तो भगवान आत्मा जितने प्रमाण में क्षेत्र बताकर उसका स्वभाव इतने में है, उतने में व्यापक वस्तु है। उसमें जो शरीर, कर्म, राग का सम्बन्ध है, वह अजीवलक्षण, जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण कहने में आता है। जीव

सम्बन्धी अजीवलक्षण कहने में आया है। ओहो! समझ में आया? वस्तु ऐसी है। अन्य (मत में) ऐसा-ऐसा आत्मा आत्मा करे। आत्मा है, बस। विकल्प छोड़ दो, विकल्प छोड़ दो। विकल्प छोड़ दो, परन्तु विकल्प कितने में है? कितने काल है? कितने क्षेत्र में है? विकल्प के पीछे कितने क्षेत्र में स्वभाव भरा है? और उसके निमित्त सम्बन्ध में, क्षेत्रावगाह सम्बन्ध में शरीर, कर्म उतने प्रमाण में है या दूर है? समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

एक जीव सम्बन्धी... लो, ठीक! अजीव पदार्थ के लक्षण दो प्रकार के। एक जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण, दूसरा अजीव सम्बन्धी अजीवलक्षण। अजीव का लक्षण। परन्तु उतना बताना है कि एक अजीव इतने सम्बन्ध में है और एक अजीव क्षेत्रव्यापकता के सम्बन्ध बिना दूर है। परन्तु वह चीज़ है, इतना भी सिद्ध करना है और इतने में व्यापक वह यहाँ सम्बन्ध में है, उसको जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण (कहते हैं)। व्यापक बिना मात्र अजीव सम्बन्धी अजीवलक्षण। समझ में आया?

सात तत्त्व है कि नहीं? तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन, है न? तो तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन में जीव तो ज्ञायक शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। उसकी प्रतीति करना। उसमें दूसरे सात तत्त्व है या नहीं? पुण्य, पाप आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व है तो उसका क्षेत्र कितना? आत्मा की व्यापकता जितना क्षेत्र है। परन्तु है भिन्न तत्त्व है। वह अजीवलक्षण सम्बन्धी आस्रवतत्त्व है। उसको भी अजीवलक्षण कहने में आया है, हों! चैतन्य का प्रकाश पुण्य-पाप के विकल्प में नहीं है। पुण्य-पाप का भाव उठता है, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध का विकल्प है, उसमें अचेतनपना है। चैतन्य के प्रकाश का तेज उसमें नहीं है। आहाहा! परन्तु है आत्मा व्यापक। है अजीवलक्षण परन्तु जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण है। आहाहा! राग के साथ सम्बन्ध है, ऐसा अजीवलक्षण। ओहोहो! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का आत्मा कैसा? ऐसे तो सभी कहते हैं, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं' परन्तु वह तो मात्र आत्मा कहने के लिये है। बाकी वसतु आत्मा कैसी है (उसकी खबर नहीं)। शशीभाई!

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने जो आत्मा देखा, उसका क्षेत्र देखा, उसके साथ राग अजीवलक्षण देखा। उसके साथ कर्म, शरीर अजीवलक्षण देखे। तो

ऐसा अजीव है। मेरे जीव में वह नहीं है। अजीव अजीव में है तो अजीव की श्रद्धा यथार्थ होती है। मेरे चैतन्यलक्षण स्वभाव में वह नहीं है। परन्तु रागादि अजीव है, शरीर, कर्म, जीव सम्बन्ध में इतने क्षेत्र में है, ऐसी उसकी—अजीव की प्रतीति (होती है)। मेरे में नहीं है, ऐसी प्रतीति (आती है)। दूसरे अजीव भिन्न हैं, वह भी मेरे में नहीं है परन्तु भिन्न है, ऐसी प्रतीति। सुमेरुमलजी! ऐसे सात तत्त्व की श्रद्धा, सात तत्त्व की श्रद्धा शास्त्र में तो बहुत आया है। तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। उसका अर्थ क्या? उसकी चीज़ तो सरल है परन्तु कठिन करके मान लिया है, मान लिया है। समझ में आया? समझ में आवे नहीं, समझने में आवे नहीं, सुनने में आवे नहीं तो उसे कठिन लगती है। समझ में आया?

अजीव के दो प्रकार की श्रद्धा करवाते हैं। उसका ज्ञान का सामर्थ्य ही उतना है कि चैतन्यलक्षण से लक्षित द्रव्य भगवान (है) तो उसकी ज्ञान की पर्याय में स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य है। वह अपने से है। परन्तु उसमें एक जीव सम्बन्धी अजीव का ज्ञान और एक अजीव सम्बन्धी मात्र अजीव का ज्ञान। जीव सम्बन्धी अजीव मेरे में नहीं, जीव सम्बन्धरहित अकेला अजीव भी मेरे में नहीं, उसमें है। मात्र आत्मा आत्मा करे, शून्य हो जाओ। परन्तु वह वस्तु क्या है? सात तत्त्व सिद्ध हुए बिना ज्ञायकपना प्रसिद्ध कैसे होगा? ज्ञायक है। ज्ञायक है तो दूसरी कोई चीज़ है या नहीं? समझ में आया? किससे भिन्न पड़ना है? भिन्न पड़ना है,वह कोई चीज़ है या नहीं? बराबर समझ में आया?

कहते हैं, ऐसी कोई टीका परमात्मप्रकाश की है। प्रत्येक गाथा में वस्तु का स्वरूप और वस्तु का सामर्थ्य, उसमें दूसरी चीज़ क्या है, उसका सम्बन्ध कितना, वह बताते-बताते चले जाते हैं। परमात्मा का प्रकाश बताते-बताते चले जाते हैं। समझ में आया?

द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरूप है, वह तो जीवसम्बन्धी... अजीवलक्षण है। है उसमें? देखो! है? मालचन्दजी! बोलिये। द्रव्यकर्म (अर्थात्) जड़ आठ कर्म; नोकर्म (अर्थात्) शरीर, वाणी और भावकर्म (अर्थात्) पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का भाव। उन तीन के साथ जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण है। आहाहा! अजीवलक्षण से आत्मा ज्ञान में आता है और आत्मा को सम्यग्दर्शन होता है? यहाँ तो

भाई! व्यवहाररत्नत्रय को जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण में डाल दिया है। अजीवलक्षण, जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण। आहाहा!

परमात्मप्रकाश बताना है। परमात्मप्रकाश भगवान परमात्मा चैतन्यबिम्ब सारा सूर्य चैतन्य है। अकेला चैतन्य का बिम्ब रसकन्द वह चैतन्य है। उसका जहाँ लक्ष्य हुआ तो प्रकाश हुआ। प्रकाश में यह प्रतीति हुई कि रागादि जीव के साथ अजीवलक्षण सम्बन्ध है, उसका ज्ञान हुआ। समझ में आया? और शरीर और कर्म एकक्षेत्रावगाह जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण है, (उसका) ज्ञान होता है। अपने में ज्ञान होता है, अपने कारण से। उसके कारण से नहीं, उसका अभाव किया नहीं। उसका अभाव (मेरे) स्वभाव में है, उसका अभाव उसमें नहीं। समझ में आया? देखो न भाई! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, जहाँ कहा है, वहाँ कैसी बात करते हैं! ओहोहो! १२वीं गाथा में कहा न, व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। यहाँ दूसरी तरह से कहते हैं। वह भिन्न वस्तु है। अजीवलक्षण कहकर (भिन्नता बताई है)। जीवलक्षण तो चैतन्य लक्षण है? राग में चैतन्य लक्षण कहाँ आया? अजीवलक्षण। जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण।...भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी क्या करे? उसने पढ़ा होगा। वह पुस्तक आपके यहाँ है। परमात्मप्रकाश। यह भी छपा है।

भाई! यह तो आत्मा के घर की बात है। चैतन्य का घर स्व-परप्रकाशक चैतन्यलक्षण है। चैतन्यलक्षण का अर्थ स्व-परप्रकाशक चैतन्यलक्षण से लक्षित आत्मा है। स्व-परप्रकाशक लक्षण से लक्षित, उसके परप्रकाश में क्या आया? है उसमें अभाव, परन्तु आया क्या? कि कुछ है ही नहीं? अकेला ज्ञायक है? उसकी पर्याय का स्व-परप्रकाशक (सामर्थ्य है)। अपना और छह द्रव्य का जानना, ऐसी अपनी पर्याय का सामर्थ्य है। छह द्रव्य के कारण से नहीं, उसकी अस्ति के कारण से नहीं। अपने द्रव्य की, चैतन्य की एक समय की पर्याय अपनी अस्ति के कारण से, अपना और पर का एक समय में छह द्रव्य को जानना, ऐसा अपनी पर्याय का सामर्थ्य है।

यदि कोई छह द्रव्य का स्वीकार नहीं करे तो वह अपनी ज्ञान की स्व-परप्रकाशक

पर्याय का ही स्वीकार नहीं हुआ। समझ में आया? और एक समय की पर्याय का इतने सामर्थ्य का स्वीकार नहीं हुआ तो चैतन्यलक्षण से लक्षित भगवान सारा द्रव्य है, उसकी प्रतीति में नहीं आता। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा चैतन्यलक्षण से लक्षित है। स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य में जीव सम्बन्धी राग अजीवलक्षण है। ओहोहो! कथनपद्धति... दिगम्बर सन्तों की पद्धति... गजब बात है! साधारण बात में क्या डाल दिया, देखो! जीव सम्बन्धी अचेतनलक्षण ऐसा विकार, व्यवहाररत्नत्रय अजीवलक्षण है। आहाहा! अस्ति सिद्ध की। सम्बन्ध सिद्ध किया तो है, उसके साथ सम्बन्ध है या नहीं है, उसके साथ? जीव सम्बन्धी कहा न? जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण, ऐसा कहा न? जीव सम्बन्धी, जीवस्वरूप ऐसे नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा चेतनालक्षण से प्रकाश परमात्मा है। नारायण परमात्मा... नहीं था? एक पागल राजकोट में है न? सवेरे दिशा के लिये जाते थे तब देखकर बोले, नारायण परमात्मा... नारायण परमात्मा। वैष्णव है। नारायण परमात्मा, यह आत्मा नारायण परमात्मा है। समझ में आया? नर का नारायण होता है, वह यह आत्मा है।

पर्याय में अल्पता होने पर भी लक्षण उसके चेतनालक्षण से पूरी द्रव्य वस्तु आती है। पूरा परमात्मा लक्ष्य में आता है। तो परमात्मा यह चीज़ अखण्डानन्द है, उसके लक्षण से जो भाव उत्पन्न हुआ, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। उसके साथ पुण्य-पाप का विकल्प है। अजीव, जीव सम्बन्धवाला जीव का निकट अनुपचरित सम्बन्धवाला, निकट सम्बन्धवाला विकार, उस (जीव) सम्बन्धी, सम्बन्धी, स्वरूपरूप नहीं, ऐसे निमित्त सम्बन्ध में अजीवलक्षणवाला, जीव सम्बन्धी अजीवलक्षणवाला भाव है। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्यकर्म, जड़कर्म। जीव सम्बन्धी, उसके साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। द्रव्यकर्म का समीप का सम्बन्ध है। लड़के का साथ, स्त्री के साथ या इसके साथ सम्बन्ध है, ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐसा ही स्वरूप वहाँ है। द्रव्यकर्म आठ कर्म। मोहनीय, अन्तरायकर्म आदि। जीव सम्बन्ध में भिन्न, जीव सम्बन्ध में भिन्न परन्तु समीप सम्बन्धवाला अजीवलक्षणवाला कर्म है। समझ में आया? कर्म के कारण से अपने में

दृष्टि जाती है या कर्म का क्षयोपशम हो तो (दृष्टि) जाये, ऐसा नहीं। क्योंकि वह तो अजीवलक्षणवाली चीज़ है। समझ में आया? सम्बन्ध है न? सम्बन्ध हो तो उसका अचेतनपने के साथ निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, स्वभाव सम्बन्ध है नहीं। राग के साथ, कर्म के साथ (स्वभाव सम्बन्ध नहीं है)।

नोकर्म (अर्थात्) शरीर। भगवान आत्मा के साथ शरीर का जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण सम्बन्ध है। अजीवलक्षण का सम्बन्ध है। चैतन्यलक्षण से लक्षित भगवान, उसके साथ शरीर का जीव सम्बन्धवाला अजीवलक्षण स्वरूप अजीव है। यह तो बहुत विस्तार से स्पष्ट (हो रहा है)। पाँच बोल डाले हैं। पहले पद में कहा है न? शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, भावार्थ। प्रत्येक गाथा में वह बात करते हैं, समझ में आया? सब निकालने का समय कहाँ और ताकत कहाँ? एक-एक गाथा में चार ले तो पूरा कब हो? समझ में आया? सन्तों की शैली सर्वज्ञ की फरमाई (हुई है)। एक-एक की महत्ता और गम्भीरता की क्या बात!

★ ★ ★

गाथा - ३०

दूसरा अजीव सम्बन्धी। ऐसा और कहीं जगह कहा है? पाठ में तो इतना है,

३०) जीवाजीव म एक्कु करि लक्खण भेएँ भेउ।
जो परु सो परु भणमि मुणि अप्पा अप्पु अभेउ॥ ३०॥

उसमें से निकाला।

मुमुक्षु : जीव का और उसका समावेश करना है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसी में समावेश करना है न! दो ही प्रकार हैं। '**जीवाजीव म एक्कु करि**' दूसरा क्या करना? राग, शरीर, कर्म भी अजीव और बाहर की चीज़, अपने अलावा सब अजीव। यह जीव नहीं है, इस अपेक्षा से। तो एक न कर, एक न कर। लक्षणभेद से भेद कर, ऐसा कहते हैं। लक्षणभेद से भेद कर, एक न कर। एक न कर का अर्थ लक्षणभेद से भेद है। लक्षणभेद से भेद है, उसका लक्षण। समझ में

आया? भगवान आत्मा, अपनी चैतन्य शान्ति निर्मल पर्याय से ही अनुभव में आनेवाली चीज़ है। किसी रीति से वह दूसरी चीज़ नहीं है। क्यों? कि रागादि सम्बन्ध में दिखते हैं, परन्तु अजीवलक्षण वाला है। शरीर, कर्म सम्बन्ध में दिखते हैं, वे अजीव प्रत्यक्ष जड़ लक्षण सम्बन्ध है। **दूसरा अजीव सम्बन्धी।** समझ में आया?

और पुद्‌गलादि पाँच द्रव्यरूप अजीव जीवसम्बन्धी नहीं है,... देखो! पुद्‌गलादि पाँच द्रव्यरूप अजीव जीवसम्बन्धी नहीं है। दूसरे पुद्‌गल भिन्न हैं। पैसा, लक्ष्मी, नोट, रुपये, हीरा, माणेक। सेठी! हीरा, माणेक के साथ जीव का क्या सम्बन्ध है? हीरा, माणेक का अस्तित्व है। भेदरूप अजीव लक्षणवाला—जीव के सम्बन्ध बिना का अजीव लक्षणवाला, अपने से भिन्नरूप अजीवलक्षणवाला उसका तत्त्व है। अजीव सम्बन्धी अजीव। जीव का निकट सम्बन्ध बिना, भिन्न रहनेवाला, अजीवलक्षणवाला, अजीवलक्षणवाला वह अजीव है। ये जीवसम्बन्धी लक्षणवाला अजीव, वह जीव से सम्बन्ध बिना का अजीवलक्षणवाला अजीव। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु ही इस प्रकार है। समझने की वस्तु जिस प्रकार से है, उस प्रकार से समझे या दूसरे प्रकार से? सत् ही इस प्रकार है, सत् ही इस प्रकार है। समझ में आया? मूलचन्दभाई! **पुद्‌गलादि पाँच द्रव्यरूप...** यहाँ समीप में है न? वहाँ कहाँ सम्बन्ध है? जीव जाता है तो धर्मास्ति के प्रदेश साथ में जाते हैं? राग, कर्म और शरीर तो साथ-साथ होते हैं। समझ में आया? नहीं तो यहाँ तो धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश सब है। उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् वास्तव में जीव सम्बन्ध बिना का अजीवलक्षणवाला वह द्रव्य है। आहा! समझ में आया?

इसलिए अजीव हैं, जीव से भिन्न हैं। भले जीवसम्बन्धवाला राग, कर्म और नोकर्म कहा, है तो अजीव। और लक्षण से अजीवलक्षण है, भगवान का चैतन्यलक्षण है। दोनों भिन्न हैं। ओहोहो! समझ में आया? यहाँ तो अभी व्यवहार, विकल्प, शुभभाव से आत्मा को संवर, निर्जरा होती है (ऐसा अज्ञानी कहते हैं)। अजीव से जीव की शान्ति मिलती है, (ऐसा अर्थ हुआ)। पैसे से होता है। ...भाई!

व्यवहार, राग जीव सम्बन्धी की अजीव वस्तु। ये भिन्न जीव सम्बन्ध बिना की अजीव वस्तु। कोई कहे कि पैसे से मुझे धर्म होगा, मन्दिर बनवाने से मुझे धर्म होगा। वह जैसे झूठ है, वैसे राग से मुझे धर्म होगा, वह भी झूठ है। राग अर्थात् शुभराग।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ शरीर आया? क्या सुना? भिन्न-भिन्न स्वभाव का साधन होता है या अभिन्न हो, वह साधन हो सकता है? इसीलिए तो यह बात बताते हैं। वह लक्षण ही नहीं है, उसका तो प्रश्न क्या? वह तो अजीवलक्षण चीज़ है। अजीवलक्षण चीज़, राग अजीवलक्षण चीज है, उससे आत्मा की प्राप्ति नहीं होती है, वह तो चैतन्यलक्षण से प्राप्ति होती है, ऐसा तो यहाँ कहना है। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का विकल्प जो शुभभाव उठता है, वह अजीव अचेतनलक्षण है। भले जीव के साथ निमित्त सम्बन्ध दिखता हो। क्या उससे आत्मा का लाभ होता है? क्या उसका वह लक्षण है? उसका लक्षण तो चेतना है। समझ में आया?

इस कारण जीव से भिन्न अजीवरूप जो पदार्थ हैं, उनको अपने मत समझो। देखो! उनको अपने मत समझो। क्योंकि उसका अजीवलक्षण है। भले जीव के सम्बन्ध में देखने में आवे या भिन्न देखने में आवे, परन्तु है अजीव। ओहोहो! पंच महाव्रत का परिणाम अजीव अचेतन लक्षणवाला है। मांगीरामजी! विकल्प है, अचेतन है, पुण्य परिणाम है। वह जीव सम्बन्धी अजीवलक्षण अजीव है। उससे आत्मा का लक्षण और आत्मा की प्राप्ति होती है, ऐसा तीन काल—तीन लोक में उससे होती नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अजीवलक्षण है फिर प्रश्न (कहाँ है)। लक्षण से लक्ष्य होता है या लक्षण उसका नहीं है, उससे लक्ष्य होता है? यहाँ प्राप्ति का अर्थ यह किया कि राग अचेतन लक्षण है, तो वह लक्षण अपना है या उससे लक्ष्य हो? समझ में आया? अपना लक्षण चेतन है तो चैतन्य से लक्ष्य होता है अर्थात् द्रव्य की प्राप्ति होती है। लक्षण से लक्ष्य प्राप्त होता है तो लक्षण तो अजीव का है। उसमें अजीव प्राप्त

होता है। अजीव की प्राप्ति होती है, जीव की प्राप्ति नहीं होती। कहो, समझ में आता है या नहीं?

यद्यपि रागादिक विभाव परिणाम जीव में ही उपजते हैं, उससे जीव के कहे जाते हैं, परन्तु वे कर्मजनित हैं,... कर्मजनित उपाधि सम्बन्ध है। **परपदार्थ (कर्म) के सम्बन्ध से है, इसलिए पर ही समझो।** पर ही समझो। विकार, विकल्प उठते हैं, वह पर ही समझो। स्वभाव में से उत्पन्न हुआ नहीं। चैतन्यलक्षण नहीं है, इसलिए पर समझो। **यहाँ पर जीव-अजीव दो पदार्थ कहे गये हैं, उनमें से शुद्ध चेतना लक्षण का धारण करनेवाला शुद्धात्मा ही ध्यान करनेयोग्य है,...** लो, देखो! शरीर, कर्म का लक्ष्य छोड़कर। क्योंकि उससे भिन्न है। राग का लक्षण छोड़ दे। क्योंकि राग आत्मा से भिन्न है। अपने ज्ञानलक्षण से चेतनालक्षण का धारण करनेवाला शुद्धात्मा ज्ञान से ही प्राप्त होता है। वही आत्मा उपादेय है। वही आत्मा ध्यान करनेयोग्य है, दूसरा कोई उपादेय, ध्यान करनेयोग्य है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १, सोमवार, दिनांक ११-१०-१९६५
गाथा - ३१ - ३२, प्रवचन - २१

गाथा - ३१

* पहले मन लिया है, बाद में इन्द्रिय लिया है। भगवान आत्मा... ज्ञानस्वरूप बाद में कहेंगे। अभी तो यहाँ अमन, अनीन्द्रिया ऐसा कहते हैं। मन, जो संकल्प-विकल्परूपी मन है, शुभाशुभभाव से उत्पन्न होना, उससे वह परमस्वरूप भगवान भिन्न है। ऐसे आत्मा का क्या लक्षण है, वह कहते हैं। समझ में आया? संकल्प-विकल्पमय वृत्ति, शुभाशुभ भाव उठते हैं, ऐसा जो मन, उससे आत्मस्वरूप शुद्ध चिदानन्दमूर्ति बिल्कुल अलग है। वास्तव में जैसे देह को स्पर्शता नहीं, वैसे आत्मस्वरूप विकार को भी स्पर्शा ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : कब की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी की। कब की क्या, अभी की बात है। समझ में आया? वस्तु... लक्षण तो बाद में विशेष कहेंगे। दूसरे पदार्थ में नहीं है, ऐसा विशेष। विशेष शब्द डाला है न? '**ज्ञानमयादिलक्षणं विशेषेण कथयति।**' उसके उपोद्घात में ऐसा है।

भगवान आत्मा, अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, प्रमेयत्व आदि गुण तो अपने में भी है और दूसरे पदार्थ में भी हैं। परन्तु उससे वह भिन्न जानने में नहीं आता। इसलिए इस गाथा में ज्ञानादि विशेष गुण से आत्मा कैसा है, उसका यहाँ वर्णन करने में आया।

भगवान आत्मा,... पहले तो इतना लिया कि मन जो यहाँ है, संकल्प-विकल्प (होते हैं), जड़मन है, वह अजीव है और उसके साथ जुड़ान से संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते हैं, वह भावमन का विकल्प-मन है। उससे चैतन्य द्रव्यस्वभाव भिन्न है। क्या लक्षण है, वह बाद में विशेष कहेंगे। उससे भिन्न आत्मा है। और अनीन्द्रिय है।

* प्रवचन का प्रारम्भिक अंश 3 मिनिट तक अस्पष्ट है। इसलिए 3 मिनिट 17 सेकेण्ड से शुरु है।

शुद्धात्मा से भिन्न इन्द्रिय-समूह से रहित है... ऐसे गुलांट मार के बात करते हैं न? क्या? **परमात्मा से विपरीत विकल्पजालमयी मन से रहित...** तीन शब्द हैं। एक तो वस्तु ज्ञानानन्दस्वरूप है, उससे विपरीत संकल्प-विकल्प है, उससे रहित आत्मा है। समझ में आया? और अनीन्द्रिय है। कब की बात चलती है? अभी (की)। ...भाई! आहाहा! सम्यग्दर्शन में ऐसा आत्मा, दूसरे पदार्थ से विशेष लक्षणमयी अभिन्न पदार्थ अनुभव में प्रतीति में आता है, उसको आत्मा कहना, उसकी यथार्थ प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहना। समझ में आया? इसलिए यहाँ वर्णन करते हैं। अन्दर आयेगा (कि) ग्रहण कैसे हो सकता है। शुद्धात्मा से भिन्न, भगवान शुद्धस्वरूप वस्तु चैतन्यपिण्ड, उससे यह इन्द्रियाँ भिन्न हैं। इन्द्रिय समूह से रहित। समझ में आया? तीन प्रकार से वर्णन करते हैं। वस्तु आत्मा उससे इन्द्रिय भिन्न और उस भिन्न से आत्मा रहित है।

चैतन्यप्रभु बिल्कुल अपना शुद्ध ध्रुव चैतन्य विराजमान है। संकल्प-विकल्प मन परमात्मा से भिन्न है, उससे आत्मा भिन्न है। भगवान आत्मा वस्तुस्वरूप से भिन्न ये पाँच इन्द्रियाँ, उस इन्द्रिय से भिन्न। पहले ही स्वरूप से भिन्न वह (और) उससे भिन्न (स्वरूप)। समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बात है। पहले समझ में यह चीज़ नहीं आये तो उसका अनुभव कैसे कर सके? समझ में आया? क्या चीज़ है, सर्वज्ञ परमात्मा कैसी चीज़ कहते हैं, उसकी खबर बिना अनुभव कैसे करे? वह चीज़ ही ऐसी है कि अपने शुद्धस्वरूप से भिन्न इन्द्रियाँ जो हैं, उससे वह रहित है। अध्यात्मशैली में ऐसी कथन पद्धति है। समझ में आया? भगवान आत्मा, उससे रहित इन्द्रियाँ और इन्द्रिय से रहित वह (आत्मा)। ऐसा। समझ में आया या नहीं? नहीं आया समझ में? तुम तो बहुत वर्ष से आते हो। तुम्हारे छोटे भाई कहते हैं, हम नहीं समझे।

आत्मा है न, आत्मा? जैसे एक मणिरत्न डिब्बी में पड़ा है और डिब्बी में काट... काट समझे? क्या कहते हैं? काई.. काई। जंग। पहले वह मणिरत्न जंग से भिन्न है और मणिरत्न से जंग भिन्न है और जंग से मणिरत्न भिन्न है। समझ में आया या नहीं? तुम्हारे छोटे भाई ऐसे क्यों कहते हैं? थोड़ा-थोड़ा नकार करते हैं कि स्पष्ट लाईये।

भगवान आत्मा चिद्घन वस्तु, वस्तु जिसको आत्मा कहें, वह तो शुद्ध घन चैतन्य है। उससे भिन्न संकल्प-विकल्प मन है। उससे भिन्न कहो या रहित कहो, वह

आत्मा है। दोनों के परस्पर भिन्नता है। ऐसी अध्यात्म शैली पण्डित जयचन्द आदि ब्रह्मदेव (आदि) की पद्धति उसमें है। समझ में आया? और पद्धति का हेतु है कि उससे वह भिन्न है तो वह उससे वह रहित है कहो या भिन्न है (कहो)। समझ में आया या नहीं? ऐसा आत्मा अन्तर में अनुभव में दृष्टि में लेना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन की बात चलती है, चौथे गुणस्थान की। बाद में पाँचवाँ श्रावक का और छठा मुनि, का वह तो कहीं दूर रह गये। सम्प्रदाय में मानते हैं ऐसी यह चीज़ नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप प्रभु, उससे भिन्न इन्द्रियाँ। उससे भिन्न नहीं कहकर उससे रहित आत्मा (कहा)। समझ में आया? परस्पर दो चीज़ भिन्न है। दोनों का अस्तित्व है, ऐसा सिद्ध करना है। दोनों का अस्तित्व है। समझ में आया? वेदान्त (कहता है कि) एक ही आत्मा है, दूसरा अस्तित्व नहीं है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। शुद्धात्मा से भिन्न इन्द्रियाँ हैं। समझ में आया? सुमेरमलजी! इन्द्रियाँ हैं कहाँ? है तुम्हारे उसमें (सम्प्रदाय में)? तुम्हारा ही कहा जाये न, तुम पहले उसमें थे न? भूतनैगमनय से। कहो सेठियाजी! भाई तो पहले उसमें थे न। कहते हैं... तो वह यहाँ कहते हैं।

वस्तु, दो का अस्तित्व है। एक आत्मा का ही अस्तित्व है (अथवा) दूसरे का अकेला अस्तित्व है, ऐसा नहीं, भाई! अस्तित्व समझे? मौजूदगी, अस्ति। अस्ति दोनों की है, ऐसा यहाँ कहना है। परमात्मप्रकाश की व्याख्या है। परमात्मा ज्ञान चैतन्यसूर्य प्रभु, वह निज आत्मा। उससे पाँच इन्द्रियाँ भिन्न हैं। वस्तु है, अस्ति है, सत्ता—मौजूदगी इन्द्रियाँ की हैं और उससे भिन्न है तो यह भगवान उससे रहित है। समझ में आया? कथनपद्धति ही कोई अलग जाति की है। ऐसा नहीं है कि अकेला आत्मा है और अकेले संकल्प-विकल्प और इन्द्रियाँ ही हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? इतनी बात कहकर अब (कहते हैं), उसका विशेष लक्षण क्या है? कि जो दूसरे द्रव्य में नहीं है, ऐसा क्या उसमें विशेष—खास—खास, खास लक्षण है? जो आत्मा में ही है, दूसरे में नहीं है। (तो कहते हैं), ज्ञानमयी। भगवान तो लोकालोक का जाननेवाला ज्ञानमयी आत्मा है। समझ में आया? तो स्वभाव का वर्णन किया, स्वभाव।

शुद्धात्मा से संकल्प-विककल्प रहित—भिन्न (है और) संकल्प-विकल्प से वह भिन्न है। शुद्धात्मा, उससे इन्द्रियाँ भिन्न हैं, उससे भगवान भिन्न है। अब है क्या? ज्ञानमय। ज्ञानमय अर्थात् मात्र चैतन्य पुंज ज्ञानमय है। अभेद का वर्णन करना है न। ज्ञानवाला ऐसे नहीं। भगवान आत्मा ज्ञानवाला, ऐसे नहीं। ज्ञानमय, ऐसा शब्द पड़ा है न। भगवान आत्मा ज्ञानमय। तद्रूप ज्ञान तद्रूप। वह कैसा? यह तो इतना कहा, परन्तु शक्ति कितनी उसकी? वह तो ज्ञानमय है। संकल्प, विकल्प से रहित है। इन्द्रियों से रहित है। उसमें नहीं है। तो उसमें क्या सामर्थ्य है? सामर्थ्य कितनी है? विशेष लक्षण क्या है? विशेष ज्ञान। कितनी सामर्थ्य है? लोकालोक जानने की सामर्थ्य है। सारी पूर्ण चीज को जानने की सामर्थ्य है, परन्तु अपने से रहित अनन्त चीज़ हैं, उससे रहित है। समझ में आया? रहित होने पर भी अनन्त चीज़ को जानने की सामर्थ्य रखता है। अनन्त चीज़ अपने में नहीं रखता। समझ में आया? अनन्त चीज़ अपने में नहीं रखता और अनन्त चीज़ में वह नहीं है। परन्तु अनन्त चीज़ जानने की सामर्थ्य रखता है। जानने की सामर्थ्य है, ऐसा बताना है। समझ में आया?

भिन्न है इसलिए उसको जानने की शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं। भिन्न है तो उसको छूता नहीं, छूता नहीं। अपनी भाषा में कहते हैं न, अडतो नथी। छूता नहीं, इसलिए उसका ज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं। छूए तो ही ज्ञान होवे, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप, दूसरे पदार्थ से चैतन्य ज्ञान विशेष-खास लक्षण उसी में है। ऐसा लक्षणस्वरूप ज्ञानमय। **लोक और अलोक के प्रकाशनेवाले केवलज्ञानस्वरूप है,...** समझ में आया? कोई चीज़ बाकी न रहे, ऐसा ज्ञानस्वभाव है। त्रिकाल सामर्थ्य उसमय आत्मा है। आत्मा अर्थात् चैतन्यसूर्य, चैतन्यसूर्यस्वरूप। स्वरूप ही वह है। कैसा? तीन काल-तीन लोक की चीज़ से भिन्न है, परन्तु तीन लोक और तीन काल को एक समय में जानने की सामर्थ्य है। यह आत्मा कितने स्वभाववाला है, यह बताते हैं। विशेष लक्षण और विशेष लक्षण की सामर्थ्य कितनी! समझ में आया? प्रत्येक में अज्ञानी एकान्त माननेवाला है, उससे रहित तत्त्व क्या है, यह बताते हैं। आहाहा!

'**मूर्ति विरहित**' देखो ! कैसा है भगवान ? ज्ञानमय तो कहा। पहला खास लक्षण। बाद में अमूर्तिक कहा। नहीं तो अमूर्तिक तो दूसरे पदार्थ भी हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल अमूर्त अरूपी है। परन्तु यह ज्ञानमय अरूपी है। दूसरे पदार्थ जड़ अरूपी है। समझ में आया ? **अमूर्तिक आत्मा से विपरीत...** देखो ! भगवान आत्मा अरूपी अमूर्ति वर्तमान है। उससे विपरीत **स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली मूर्ति...** है। वर्णवाली मूर्ति है। पहले कहा न ? आत्मा से विपरीत वह वस्तु है। अमूर्तिक आत्मा से विपरीत स्पर्श, रस, वर्ण वस्तु है। परन्तु आत्मा से वह भिन्न है, उससे वह भगवान रहित है। साथ में दो-दो बात लेते हैं। अकेला आत्मा-आत्मा ऐसे नहीं। शशीभाई !

कहते हैं, विपरीत स्पर्श, रस, गन्ध, रंग, वर्ण इस शरीर का या अनन्त स्कन्ध आदि का। ऐसे मूर्तिकपने से (भिन्न) भगवान आत्मा तो अमूर्तिक है, उससे मूर्तपना भिन्न है। और मूर्त से भगवान रहित है। समझ में आया ? दोनों हैं, ऐसा सिद्ध किया। अमूर्तिक ज्ञानमय है, दूसरे मूर्त (पदार्थ) वर्ण, गन्ध... जड़मय है। दोनों है सही, है सही। अस्ति है। समझ में आया ? भगवान ज्ञानमय से वह भिन्न है, उससे भिन्न है, ऐसा नहीं कहकर रहित है, (ऐसा कहा)। समझ में आया ? ऐसे आत्मा को, जैसा है ऐसे आत्मा को **अन्य द्रव्यों में नहीं पायी जाये, ऐसी शुद्धचेतनास्वरूप ही है,...** समझ में आया ? ज्ञानमय कहा, शुद्धचेतनास्वरूप मात्र। शुद्ध जानना-देखनामय चैतन्यस्वरूप है। अन्य द्रव्यों में नहीं। मन में, वाणी में, कर्म में, शरीर में नहीं पायी जानेवाली **ऐसी शुद्धचेतनास्वरूप ही है,...** '**चिन्मात्र**' लिया न ? ज्ञानमय कहा और चिन्मात्र में दर्शन और ज्ञान दोनों को समा दिये। समझ में आया ? शुद्ध चेतनास्वरूप दर्शन-ज्ञान शुद्ध चेतनास्वरूप। समझ में आया ?

ज्ञानमय (कहा), वह उसके असाधारण लक्षण वर्णन में ज्ञानमय कहा। फिर चिन्मय कहा। चेतना। अकेले दर्शन और ज्ञान चेतनामय स्वरूप है। साथ में सामान्य और विशेष ऐसी चेतना, वह वस्तु आत्मा है। समझ में आया ? क्या अन्तर पड़ा, पहले और दूसरे में ? ज्ञानमय में और चिन्मात्र में अन्तर क्या पड़ा ? ऐई धर्मचन्दजी ! क्या अन्तर पड़ा ? उसे बफम् हो जाता है। सामने पूछे तो उसे ऐसा लगता है अपनी कुछ भूल हो जायेगी। दुकान में ऐसा नहीं करते होंगे। फट-फट कोई ग्राहक आये तो ये दवा, वह

दवा (दे)। भले ही गलत दवाई हो। इंजेक्शन देना हो और किसी का कुछ ले जाये, जल्दी में कुछ का कुछ हो जाये। परन्तु वहाँ जल्दी बात ख्याल में आ जाती है। (क्योंकि) रुचि है। समझ में आया?

भगवान आत्मा, देखो! आत्मा की चीज़ कैसी स्वतन्त्र! भगवान आत्मा है। उससे रहित दूसरी और उससे रहित भगवान है। ऐसा दोनों का अस्तित्व सिद्ध करके भगवान ज्ञानमय है और चेतनामय है। सबका सामान्य और विशेष देखनेवाला है। समझ में आया? **इन्द्रियों के गोचर नहीं,...** क्योंकि पहले कहा था, इन्द्रियरहित है। जो इन्द्रियरहित है, उससे गम्य नहीं। पहले कहा था कि आत्मा से इन्द्रियाँ पर हैं और पर से भगवान भिन्न है। तो भिन्न से गम्य है, ऐसा होता नहीं। वह तो उसके साथ जो ज्ञानमय चेतना अभिन्न है, उससे गम्य होता है, ऐसा यहाँ बताना है। समझ में आया? कपूरभाई! बहुत सूक्ष्म। ऐसा वीतराग का मार्ग? वह सब स्थूल था न। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया... उसमें कुछ था समझना? हो गया, जिन्दगी मुफ्त में चली जाये। ...भाई!

यह तो सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर सौ इन्द्र के पूजनीक। उनके ज्ञान में जो पूरा लोकालोक आया और दिव्यध्वनि में फरमान आया कि भाई! प्रभु! तुझे तो हम ऐसा कहते हैं और तू दूसरी तरह से मान तो तेरी मान्यता में बड़ा अन्तर है। तुझे तो हम ऐसा कहते हैं और तू ऐसा है। समझ में आया? तुझे हमने सर्वज्ञज्ञान में ऐसा देखा है, तुम संकल्प, विकल्प, मन से भिन्न और तुझसे वह भिन्न। इन्द्रियाँ तुझसे भिन्न और इन्द्रियों से तुम भिन्न। और ज्ञानमय और शुद्ध चेतनामय ऐसा (स्वरूप) हमने तेरा देखा है। तू दूसरी तरह से मान कि संकल्प, विकल्प और साधारण मन से यह होता है, तो कहते हैं कि इन्द्रिय से गम्य नहीं है। हम कहते हैं कि ऐसा तेरा स्वभाव है। तेरा स्वभाव इतना सामर्थ्य रखता है कि वह इन्द्रिय द्वारा गम्य हो, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। और इन्द्रिय में सामर्थ्य है कि उससे जानने में आये, ऐसी इन्द्रिय में सामर्थ्य नहीं। क्या कहा, समझ में आया? संकल्प-विकल्प में सामर्थ्य नहीं, इन्द्रियों में सामर्थ्य नहीं है कि तू उसके सामर्थ्य द्वारा जानने में आये। और तेरा सामर्थ्यस्वभाव ऐसा नहीं है कि संकल्प-विकल्प और इन्द्रिय से तू जानने में आये, ऐसा तेरा स्वभाव नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐ ज्ञानचन्दजी! ज्ञानमय की बात चलती है, देखो! आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! तू तो चिन्मात्र **'इन्द्रियविषयः नेव'**। ऐसा कहकर क्या कहा? कि आत्मा से मन भिन्न कहा, आत्मा से इन्द्रियाँ भिन्न कहा, उससे भगवान भिन्न कहा तो उसका विषय उससे हो सके (– ऐसा नहीं)। भिन्न है, उससे विषय कैसे हो सके? समझ में आया? भगवान से जो चीज़ भिन्न है, उससे वह गम्य कैसे हो सके? तब क्या है?

वीतराग स्वसंवेदन से ही ग्रहण किया जाता है। देखो! यह पद्धति ही अलग प्रकार की है। भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यब्रह्म आनन्दस्वरूप, उससे विकल्प, मनरहित, उससे इन्द्रियाँरहित है (और) उससे यह (आत्मा) रहित है। तो कहते हैं, जिससे वह रहित है, उससे वह ज्ञानगम्य हो जाये, उससे आत्मा ख्याल में आ जाये, ऐसी वह चीज़ नहीं, वह चीज़ ऐसी नहीं है। और तू ऐसे मान कि विकल्प से, मन से, इन्द्रियों से गम्य हो, तो तेरा स्वभाव है, ऐसा तूने जाना, माना ही नहीं। समझ में आया? माँगीरामजी! आहाहा! सामर्थ्य में दो–दो बात बताने का हेतु है। उसमें विकल्प में, मन में, इन्द्रियों में सामर्थ्य नहीं। क्योंकि भिन्न है तो उससे भिन्न चीज़ ख्याल में आवे, ऐसी उसमें सामर्थ्य नहीं। तेरा स्वभाव भी ऐसा नहीं है कि तेरे से जो भिन्न है, उसके द्वारा तू ख्याल में आ जाये, ऐसा तेरा स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! तब क्या है?

वीतराग स्वसंवेदन से ही ग्रहण किया जाता है। ओहोहो! क्या कहा? कि तेरा स्वरूप ही निर्दोष शुद्ध वीतरागस्वरूप ही है। तो वीतरागपर्याय से ही ग्रहण करने में आता है। आहाहा! क्योंकि जो शक्ति में पड़ा है, वस्तु पड़ी है, उसमें जब एकाग्र हो तो, एकाग्रता तो वीतराग की पर्याय से उसमें एकाग्र हो सकता है। समझ में आया?

वीतराग स्वसंवेदन। अकेला स्वसंवेदन ऐसा नहीं लिया है। वैसे तो ज्ञान है, पाँच इन्द्रिय के विषय का (ज्ञान तो है, परन्तु) वह ज्ञान नहीं। भगवान ज्ञानमय शुद्ध चेतनामय प्रभु, वह इन्द्रिय, विषय से भिन्न है तो भिन्न से जानने में आवे, ऐसी चीज़ नहीं। तो यह चीज़ ही ऐसी है। अविकारी, चिद्घन, आनन्दस्वरूप, वीतराग शान्तस्वरूप है। वह वीतरागी शुद्ध परिणति द्वारा ही गम्य है। वस्तु है, वह उसके अंश–परिणति द्वारा ही गम्य है। आहाहा! समझ में आया? रागादि तो उसके द्रव्य–गुण में नहीं है और उसके अंश

में भी नहीं है। संकल्प-विकल्प तो उसके द्रव्य-गुण में नहीं है और उसके अंश में भी नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा चेतनास्वरूप दर्शन-ज्ञान अर्थात् वह निर्दोष (स्वरूप है)। समझ में आया? यह तो सीधी-सादी बात है। कल सोभागचन्दभाई कहते थे कि सादा-सीधा है। ऐसी सादी-सीधी बात है। सेठियाजी! लौकिक में सज्जनता सादा-सीधा है, सेठ ऐसा कहते थे। वैसे सादा-सीधा आत्मतत्त्व है।

भगवान! सज्जन—सत् जन है न? सत्-जन है न? सज्जन में दो 'ज' डबल है तो सत् जन (हुआ)। लौकिक में लौकिक सज्जन है, यह आत्मा भाव—सत्-जन है। सत् समुदाय, ज्ञान का सत् जन आत्मा है। सत् जन की पर्याय से सत् जन ख्याल में आता है। पुण्य-पाप का विकल्प, इन्द्रियाँ असत् है। स्वभाव में नहीं है, इस अपेक्षा से असत् है। समझ में आया? ... अरे! भगवान! तेरे घर की बात हो और उल्लास नहीं आवे, ऐसी यह चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तेरी चीज़ में गम्य होने में प्रमोद की पर्याय आती है, तब उसके गम्य होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अमरचन्दभाई! वे कहते थे, समकित बहुत ढूँढ़ते थे, समकित है कहीं? समकित किसे मानना? अमरचन्दभाई पूछते थे, ये सब किस-किस को समकित कहते हैं। ऐसा एकबार कहते थे।

भगवान! समकितपर्याय समकितस्वरूप गुण है तेरा। समझ में आया? गुणस्वरूप है। ज्ञानस्वरूप शुद्धचेतनास्वरूप, सम्यक् स्वरूप शक्ति—स्वभाव है। उसकी परिणति राग का लक्ष्य छूटकर उस पर लक्ष्य जाये तो तेरी शुद्ध परिणति, स्वभाव जैसा है, ऐसी शुद्ध परिणति से ही शुद्ध आत्मा गम्य होता है। आहाहा! ...भाई! बहुत सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म। लोगों को लगा दिया है, जाओ! भगवान की मूर्ति को पूजो, मन्दिर कराओ, हो गया कल्याण। प्रसन्न-प्रसन्न जाओ। भगवान! वह तो शुभभाव आता है तो होता है। उसकी मर्यादा शुभभाव जितनी है। परन्तु जो जिसमें नहीं है, उससे कैसे प्राप्त होता है? यह तो यहाँ कहना है। जो शुभ विकल्प है, वह भी उसमें नहीं है। भगवान वीतरागस्वरूप से विकल्प भिन्न है और विकल्प से भगवान भिन्न है। तो मन्दिर और मूर्ति तो कहीं भिन्न रह गये। सम्मेदशिखर तो कहीं भिन्न रह गया। समझ में आया? आहाहा! ये बहुत अवरोधक है।

मुमुक्षु : सम्मेदशिखर....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये सम्मेदशिखर है। वह स्मृति के लिये कहा था। सम्मेदशिखर (जाने का) हेतु क्या? सम्मेदशिखर देखने का नहीं है। वहाँ परमात्मा सिद्ध जिस क्षेत्र में हुए उस क्षेत्र में ऊपर विराजमान होते हैं, ऐसी लम्बी दृष्टि कर तेरे में ध्यान कर, विचार कर। यहाँ विराजते हैं, परन्तु ऐसी दृष्टि लम्बी करे। अस्तित्व ऐसा (है)। जो अनन्त सिद्ध यहाँ से मुक्ति में विराजमान हैं, वे बराबर वहीं ऊपर ही विराजमान हैं। यहाँ से मुक्त हुए वे वहाँ विराजमान हैं। असंख्य योजन दूर भले हो। काल मत (गिनो)। अनन्त-अनन्त सिद्ध की पर्यायवन्त परमात्मा हैं। यहाँ हूँ मैं, वहाँ ऊपर विराजते हैं। मेरे सिर पर विराजते हैं। समझ में आया? उनका स्मरण करने की चीज़ है। उससे आगे लेकर उसे यह हो जाता है, विकल्प होता है, उससे यह हो जाता है, वह सब समझने की चीज़ है। समझ में आया? (ऐसी) बात! तभी तो लोग कहते हैं, महाराज मूर्ति स्थापते हैं, सब करते हैं, मूल में तो उनकी श्रद्धा झूठ है, परन्तु लोगों को उस ओर मोड़ने को कहते हैं। अरे! भगवान! ये तू क्या कर रहा है? प्रभु! तुझे ऐसी बुद्धि कहाँ से सूझी? आहाहा! समझ में आया? अरे! सामनेवाले के अभिप्राय में क्या है, उसकी खबर बिना ऐसा (बोल रहा है)। वह भी शक्तिवान है न? उल्टा गिरनेवाला भी शक्तिवान है। अनन्त तीर्थंकर हो, समवसरण में जाये तो भी डिगे नहीं, ऐसा वह है।

यहाँ भान हुआ, अनन्त अग्नि के अंगारे में शरीर पड़ा। (फिर भी) डिगे नहीं ऐसा यह आत्मा है। शान्तरस का फब्बारा। (परन्तु) अग्नि में पड़ा है न? हम कहाँ अग्नि में है? हम तो आनन्दकन्द में है तो हम तो आनन्द के फब्बारे में हैं, अग्नि में है नहीं। अग्नि में है कौन? कौन कहता है? हम अग्नि को छूते भी नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कौन डाले? ऐसे कुतर्क। समझ में आया?

भगवान आत्मा... देखो क्या कहते हैं? ओहो! कषाय अग्नि के अन्दर शीतल चैतन्यपिण्ड वीतरागी वीतरागघन शान्तरस, ऐसी शिला है। समझ में आया? वह उसकी शुद्ध परिणति द्वारा ही परमात्मा ख्याल में आता है। उसकी जातिवाली दशा द्वारा

उस जाति का भान होता है। उसकी जाति से विरुद्ध विकल्प आदि से उसका अनुभव नहीं होता। ओहो! ऐसी चीज़ है, (उसे) ऐसे नहीं मानना और दूसरी तरह से मानना वह तो मिथ्याभ्रम और मिथ्याशल्य है। समझ में आया? यहाँ तो परमात्मप्रकाश चलता है।... पहले आया था न? अन्यथा मार्ग में लगे हैं। अरे! लोक अन्यथा मार्ग में लगे हैं। मार्ग कहाँ रह गया (और) अन्यथा में लगे हैं।

कहते हैं, पाठ में है, हों! '**वीतराग स्वसंवेदनज्ञानेन ग्राह्यो।**' उसके सामने डाला। वीतराग स्वसंवेदन। क्योंकि पाठ में '**इन्द्रियविषयः नैव**' है, उसमें से निकाला। इसका विषय नहीं है तो किसका विषय है? भगवान आत्मा शुद्ध ब्रह्म आनन्दमूर्ति प्रभु, वह अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय है। बराबर है? ... जाति वस्तु है, जिस जाति का मणिरत्न हीरा हो, उसी जाति की उसमें से किरण निकलती है या नहीं? उसी प्रकार भगवान आत्मा विकल्प की जाति से भिन्न निर्विकल्प शान्तरस प्रभु है। ज्ञानमय शुद्धचेतनामय कहा, उसको बढ़ाकर यहाँ पर्याय में वीतरागता कहा। अर्थात् वस्तु भी वीतरागस्वरूप है, ऐसा कहा। समझ में आया? पहले ज्ञानमय चिन्मय (कहा)। वहाँ वीतराग स्वसंवेदन से ग्राह्य करके वस्तु ही वीतरागस्वरूप है। अकषायस्वरूप परमानन्दमूर्ति प्रभु, रागरहित स्व-अपना वेदन, शान्तरस के वेदन से ही ग्राह्य, ग्राह्य शब्द पड़ा है, ग्रहण किया जाता है। दूसरी कोई चीज़ से ग्रहण किया जाये, ऐसी वह चीज़ नहीं है। समझ में आया? यह प्रथम (सम्यग्दर्शन) की बात चलती है, हों! आठ, नौ, दसवें (गुणस्थान) की यह बात नहीं है। आहाहा!

ये लक्षण जिसके प्रगट कहे गये हैं... देखो! पाठ आया न? '**इन्द्रियविषयः नैव**' और अरागी वीतरागी स्वसंवेदन से ग्राह्य **ये लक्षण जिसके प्रगट कहे गये हैं...** है? '**निरुक्तम्**'। भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी में ऐसा आया। परमात्मा परमेश्वर एक समय में त्रिकाल ज्ञान का असंख्य प्रदेशी अनन्त सूर्य प्रगट हो गया है। असंख्यप्रदेश में अनन्त चैतन्यसूर्य प्रगट हो गया है। ऐसे भगवान की वाणी में ऐसा आया है। आहाहा! समझ में आया? '**निरुक्तम्**' प्रगट कहा है। भगवान की वाणी में ऐसा प्रगट कहा है। पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म पड़े। सारा दिन व्यापार-धन्धे में पड़ा हो, उपाश्रय में जाये तो

दूसरा सुनने मिले, ये करो, दया पालो। ये बात दूसरी, जिन्दगी में (सुनी नहीं हो)। ये तो पुराने हैं। है न ? समझ में आया ? आहाहा !

अरे ! भगवान तेरी जाति की भात ही कोई अलग है। ऐसा पहले श्रद्धा-ज्ञान में लिये बिना उसके स्वरूप का अनुभव तीन काल में कभी होता नहीं। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि वह इन्द्रियगम्य नहीं है, ऐसा स्वभाव है। उसका अर्थ क्या ? कि तेरा स्वभाव ही अराग ज्ञान से जानने में आये, ऐसा तेरा स्वभाव है। समझ में आया ? जैसा है, वैसा नहीं माने और दूसरी तरह से माने तो उसकी निर्मल पर्याय से ग्राह्य (हो), ऐसी पर्याय उसे प्रगट होगी नहीं। समझ में आया ? राग से, विकल्प से, इससे, उससे (प्राप्त होगा, ऐसा मानेगा तो) स्वभाव का सामर्थ्य है, उस ओर उसकी दृष्टि जायेगी नहीं। समझ में आया ?

यह भगवान आत्मा शुद्ध चिद्घन वीतरागस्वभाव से पड़ा शान्तरस का कन्द है पूरा। वह शान्तरस की पर्याय से ही अनुभव में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? अकेला ज्ञान नहीं, परन्तु उस ज्ञान के साथ अरागी ज्ञान, उसको वीतराग स्वसंवेदन कहा। ज्ञान कहा, शुद्ध चेतना कहा था तो ज्ञान लक्षण कहा। परन्तु ज्ञान लक्षण के साथ **'एतत् लक्षणं' 'इन्द्रियविषयः नैव'।** अतीन्द्रिय वीतराग ज्ञान पर्याय से ग्राह्य। ऐसे उसके लक्षण प्रगट कहे गये हैं। आहाहा ! समझ में आया ? ...भाई ! जिन्दगी में कभी सुना नहीं हो। आहाहा !

देखो ! **उसको ही तू निःसन्देह आत्मा जान।** उसे तू आत्मा जान कि जो वीतरागी पर्याय द्वारा ग्राह्य था वह आत्मा, उसको तू आत्मा जान। समझ में आया ? अमरचन्दभाई ! आहाहा ! ऐसे आत्मा को जान। कैसा (आत्मा) ? इन्द्रिय, विकल्प से रहित। तो इन्द्रिय, विकल्प से ग्राह्य नहीं ऐसा। ज्ञानमय शान्तरससहित है तो ज्ञान की, शान्ति की पर्याय से ग्राह्य हो, ऐसा आत्मा है, ऐसा तू जान। समझ में आया ? **उसको ही तू निःसन्देह आत्मा जान।** निःसन्देह निःशंक हो जाओ। ज्ञान की वीतरागपर्याय द्वारा ग्राह्य होता है। समझ में आया ?

इस तरह जिसके ये लक्षण कहे गये हैं,... इस तरह जिसके ये लक्षण कहने में

आये हैं, **वही आत्मा है,...** वह आत्मा है। आहाहा! न्यालभाई! राग शुभभाव से आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है। भगवान! आत्मा ऐसा है नहीं। है नहीं और तू मानता है, कहाँ से लाया? आहाहा! शुभ विकल्प से तो भिन्न भगवान है और भगवान से शुभ विकल्प भिन्न है। तो भिन्न से वह जानने में आये, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! और उस विकल्प में सामर्थ्य नहीं है कि वह अपने स्वसंवेदन में सहायता करे। क्योंकि विकल्प राग है, वह आत्मा की चीज़ से विरुद्ध है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

प्रभु में तो प्रसन्नता भरी है न! प्रभु में कहाँ शोक पड़ा है? समझ में आया? भगवान प्रसन्नता का पिण्ड, शान्तरस का पिण्ड है। वह शान्तरस की प्रसन्नता से ही जानने में आता है। आहाहा! समझ में आया? बाह्य की प्रसन्नता से भी जानने में आता नहीं। आहाहा! कहो, धीरुभाई! यह आत्मा। लोग अभी आत्मा... आत्मा करते हैं। आत्मा के नाम पर बहुत जगह चलता है। चलाते हैं, ये आत्मा। सोनगढ़ में महाराज जो आत्मा कहते हैं, ऐसा आत्मा है। ऐसी बातें अब सब जगह चलती है। अरे! सुन रे सुन, भगवान! भाई! आत्मा कैसा है और कैसे हैं, कैसे प्राप्त होता है, उससे भिन्न चीज़ क्या है, भिन्न से वह भिन्न, उससे वह भिन्न, भिन्न से प्राप्त न हो और अपनी अभिन्न चीज़ है, उसकी निर्मल पर्याय से प्राप्त होता है। समझ में आया? आहाहा!

वही उपादेय है, आराधनेयोग्य है,... वही आदरणीय है, वही देव सेवा करनेयोग्य है। ऐसे आत्मा की सेवा करनेयोग्य है। आहाहा! **यह तात्पर्य निकला।** देखो! पाँच-पाँच अर्थ करते हैं न? तो अन्त में तात्पर्य कहते हैं। उसमें यह आया, यह आया ऐसा कहकर अन्यमत से भिन्न भी बताया, नय भी बताया, समझे? शब्दार्थ भी बताया और आगमार्थ—आगम के अर्थ में क्या है, राग से भिन्न आस्रव क्या है—वह भी उसमें आ गया। एक-एक गाथा में बात बहुत आती है। ३२ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ३२

आगे जो कोई संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होके शुद्धात्मा का ध्यान करता है, उसी के संसाररूपी बेल नाश को प्राप्त हो जाती है, इसे कहते हैं :—

३२) भव-तणु-भोय-विरत्त-मणु जो अप्पा झाएइ।
तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टइ॥ ३२॥

संसाररूपी गुरु—बड़ी—लम्बी बेल। बेल... बेल। उदयभाव की बड़ी बेल। आहाहा!

अन्वयार्थ :- जो जीव... 'भवतनुभोगविरक्तमनाः' ओहो! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा वर्तमान समय में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग एक समय की उदयभावरूप संसार पर्याय, (उससे भिन्न है)। समझ में आया? भगवान आत्मा, एक समय का मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग ये पाँच बन्ध के कारण कहे हैं। वह एक समय की पर्याय है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग ये संसार है। इस संसार से भगवान रहित है। समझ में आया? कब?

भव... भव। संसार कहा न? भव अर्थात् संसार। संसार अर्थात् अपनी पर्याय में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग जो एक समय की विकृत अवस्थारूप संसार है, उससे भगवान रहित है। समझ में आया? वर्तमान मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग पाँच जो विकृत पर्याय है, उससे (भगवान आत्मा) रहित है। आहाहा! समझ में आया? **'भव-तणु-भोय-विरत्त-मणु'।** है न? भगवान आत्मा वस्तु परमानन्द की मूर्ति है। उसका विकृत एक समय का उदयभाव, ऐसा संसार, उससे रहित है।

शरीर। यह शरीर दिखता है, उससे भगवान अशरीरी भिन्न है। भोग। विशेष लिया। ये तो उसमें आता था परन्तु वेदन में दुःख का वेदन, भोग का वेदन है, भोग की मुख्यता लोगों को है न? अनुभव का वेदन, भोग का वेदन। तो कहते हैं, उदय की पर्याय संसार। यह शरीर भोग का वेदन, उससे भगवान रहित है। आहाहा! समझ में आया? इसे आत्मा कहते हैं। शशीभाई! वह चीज़ है ऐसे सिद्ध किया। संसार है, शरीर है, भोग है।

अनुभव राग का वेदन है। परन्तु उन तीनों से भगवान रहित है। समझ में आया? आहाहा! ओहो! क्यों भैयाजी? बराबर है? एक बार न कहा था, अब बराबर दृढ़ कराओ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार क्या है? संसरण इति संसार। शुद्ध चिदानन्दस्वरूप से हटकर पर्याय में भ्रान्ति, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग है, वह संसार है। संसार कोई स्त्री, पुत्र संसार नहीं है। मकान, पैसे-बैसे संसार नहीं। संसार का आयुष्य समय का। भगवान का त्रिकाली आयुष्य। भगवान आत्मा त्रिकाली टिकनेवाली चीज़। संसार एक समय का आयुष्यवाला-स्थितिवाला है। यह स्थिति है। उससे भगवान त्रिकाली भिन्न है। संसार था ही नहीं, उसकी पर्याय में अशुद्धता है नहीं, ऐसे नहीं है। समझ में आया?

भगवान संसार इसे कहते हैं कि तेरा स्वरूप अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य, पूरा पदार्थ द्रव्यवस्तु, उससे हटकर वर्तमान पर्यायदृष्टि में भ्रम, राग-द्वेष में तुम आये, वही पर्याय संसार है। समझ में आया? जो उसमें है नहीं, ऐसा पर्याय में निकाला। द्रव्य और गुण में है नहीं। ऐसा अंश में निकाला भ्रम, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग। समझ में आया? संसार, शरीर, भोगों से विरक्त मन हुआ। देखो! '**भवतनुभोगविरक्तमनाः**'। अरे! भगवान! वह तो साधु हो, त्यागी हो तब (होगा)? सुन तो सही। समझ में आया?

भगवान परमात्मा वस्तु है या नहीं? परमानन्द की मूर्ति, स्वभाव का कन्द। अकेला द्रव्य और स्वभाव वस्तु का कन्द चैतन्यदल है या नहीं? शिला। शीतल शिला भगवान की आत्मा की। अकषाय शिला। उसकी एक समय की पर्याय में मिथ्यात्व आदि पर्याय है वह स्वभाव में है नहीं। उससे तो रहित भगवान है। वह तो आस्रवतत्त्व हुआ। अथवा बन्धपर्याय का अंश लो तो भी आत्मा अबन्धस्वरूप में बन्ध नहीं है। अनास्रवी भगवान आत्मा में वह आस्रव नहीं है। ऐसा आत्मा है। समझ में आया?

भोग। उसे अनुभव है न? अनुभव। ऐसा कहते हैं। अनुभव है न? अनुभ्व करता है न? राग का, विषय का, भोग का, विकार का, हों! भोग तो पर रहा। परन्तु उस भोग के भोगने का विकल्प जो वेदन में है, उससे भगवान भिन्न है। उत्पन्न कर्ता की पर्याय

मिथ्यात्व आदि, भोक्ता की विकारी पर्याय और शरीर, तीनों से मन विरक्त होकर आत्मा तीनों से विरक्त है। ओहोहो! समझ में आया?

भगवान आत्मा... अभी की बात चलती है, हों! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने उसको आत्मा देखा है और ऐसा कहा है, ऐसा है। ऐसा है, ऐसी अन्तर दृष्टि में आवे तब आत्मा की दृष्टि और प्रतीति, आस्तिक्य हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! भगवान आत्मा संसार, शरीर, भोगों में '**विरक्तमनाः**'। भाषा कैसी है? कोई बाह्य से स्त्री, पुत्र, परिवार से विरक्त हो, (ऐसा नहीं)। समझ में आया? देखो! विरति हो गयी। स्त्री, पुत्र, परिवार छोड़ दिया। अरे! सुन तो सही। वह तो भिन्न ही है, तेरी चीज़ में कब घुस गया है? पोपटभाई! पैसे-बैसे अन्दर में घुसे हैं? पैसे वहाँ कलकत्ता में पड़े रहे हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ममता है। वह तो पर्याय में ममता है। भगवान ममता से रहित है। समझ में आया?

मुमुक्षु : डंका बजा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ तो डंके ही बजते हैं न! डंके की चोट पर भगवान कहते हैं और ऐसा (भगवान) है तेरा।

ऐसे शुद्धात्मा का चिन्तवन कर। चिन्तवन का अर्थ एकाग्र हो। ऐसा भगवान आत्मा, उसमें एकाग्र हो। विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण २, मंगलवार, दिनांक १२-१०-१९६५
गाथा - ३२ - ३३, प्रवचन - २२

(परमात्मप्रकाश) पहले भाग की ३२वीं गाथा चलती है। थोड़ा शब्दार्थ बाकी है न? देखो!

अन्वयार्थ :- जो जीव... यह परमात्मप्रकाश है। अर्थात् आत्मा, उसका द्रव्यस्वरूप, वस्तुस्वरूप परमात्मस्वरूप ही है। परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप, परमस्वरूप। ऐसा परमात्मा **संसार, शरीर, भोगों में विरक्त मन हुआ...** जो अनादि से संसार अर्थात् उदयभाव, शरीर अर्थात् यह वस्तु, शरीर वस्तु और भोग... भोग (अर्थात्) वेदन। उससे मन विरक्त हुआ। उससे विरक्त। अनादि से भव, तन, भोग रंजित। अन्दर चार शब्द पड़े हैं।

भव, उदयभाव में अनादि से मिथ्यात्व भाव से रंगा हुआ है। मूर्च्छित है, वासित है और आसक्त है। यह है, ऐसी बात सिद्ध करनी है। अनादि से अपना शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, उसको भूलकर उसका चित्त शरीर, राग अर्थात् उदयभाव और भोग, उसमें रंजित है, वासित है, मूर्च्छित है, आसक्त है। है, इतना पहले सिद्ध करना है। समझ में आया? उसकी पर्याय में भूल ही नहीं थी और शुद्ध था, ऐसा है नहीं।

कहते हैं, जो जीव संसार, शरीर, भोगों में मूर्च्छित, रंजित, वासित, आसक्त चित्त था, उससे विरक्त मन हुआ। देखो! वह पलट सकता है। आसक्त है, वह स्वभाव की ओर दृष्टि करने से परमात्म-सन्मुख होने से मन, भोग, राग और शरीर से विरक्त हो सकता है। समझ में आया? तो कहते हैं, देखो! विरक्त मन हुआ।

शुद्धात्मा का चिन्तवन करता है,... जो शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा उसके सन्मुख होकर उसकी चिन्तवना, विचक्षणता से ध्यान करता है, अन्तर्मुख होता है **उसकी मोटी संसाररूपी बेल...** संसाररूपी बेल, उदयभाव की लम्बी बेल **नाश को प्राप्त हो जाती है।** कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- संसार, शरीर, भोगों में अत्यन्त आसक्त हुआ... चार शब्द की एक भाषा ली। संसार अर्थात् उदयभाव है। राग... राग... राग... राग... राग... राग, वह संसार है, स्वभाव, वह असंसार है। समझ में आया? दो है। राग, संसार में उदयभाव का एकत्व, शरीर में राग वह मैं, भोगों में आनन्द, आसक्ति। **अत्यन्त आसक्त (लगा हुआ) चित्त है, उसको आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए...** देखो! भगवान आत्मा में संसार, शरीर, भोग का उत्पन्न करना, ऐसा आत्मा में कोई गुण नहीं है। समझ में आया? संसार का उत्पन्न करना, (ऐसा कोई गुण नहीं है)। परन्तु उसके गुण में आत्मज्ञान में आत्मा का ज्ञान करने से आत्मा में ऐसा एक गुण है कि जो संसार का कारण न बने और संसार से अपने में कार्य न रचे, ऐसा उसमें गुण है। समझ में आया? अकार्यकारण नाम की शक्ति।

आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए, आत्मा वस्तु है शुद्ध चिदानन्द, उसकी दृष्टि करने से आत्मा में ऐसा गुण है कि जो विकार को उत्पन्न करे, ऐसा आत्मा में गुण नहीं है, परन्तु संसार, शरीर, भोग का अभाव करे और संसार, शरीर, भोग को कारण बने नहीं, ऐसा आत्मा में गुण है। तो उसका अभाव करने का उसमें गुण है। समझ में आया? आत्मज्ञान से आत्मवस्तु में स्वाभाविक अनन्त गुण पड़े हैं। उसमें एक अकार्यकारण नाम की एक शक्ति भी है और प्रभुत्व नाम का गुण भी प्रभुता पड़ा है। तो प्रभुत्व के कारण से और अकार्यकारणगुणरूप आत्मा के कारण उसका ज्ञान होने से, कि यह आत्मा है, ऐसे ज्ञान से **उत्पन्न हुए...** देखो! **वीतराग परमानन्द सुखामृत के आस्वाद से...** आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का सुखामृत उत्पन्न करना, ऐसा गुण है। समझ में आया?

देखो! **आत्मज्ञान से...** भगवान आत्मा वस्तु है। उसमें अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका अन्तर बोध होने से उससे उत्पन्न हुआ, उससे उत्पन्न हुआ। संसार उत्पन्न हुआ, वह कोई आत्मज्ञान या आत्मगुण से ऐसा कोई भाव है नहीं। वह तो एक समय का भ्रम उत्पन्न करके राग में, संसार में, भोग में ऐसा मान रखा है। समझ में आया? वस्तु आत्मा में ऐसी कोई शक्ति नहीं कि संसार को उत्पन्न करे। भोग को वेदे, ऐसा कोई आत्मा में गुण नहीं है और शरीर मेरा माने, ऐसा कोई आत्मा में गुण नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शरीर का कंटाला दिखाता है।

मुमुक्षु : कौन मानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रमणा मानता है मूढ़ जीव। क्या कहा? भाई! उस मूढ़ को अपने स्वरूप की खबर नहीं है। मेरा स्वरूप चिदानन्द है, वह संसार का कारण बने और संसार से, मेरे राग से उदय से मेरे में कार्य हो, ऐसा उसमें गुण है ही नहीं। परन्तु मूढ़ होकर विकार करता है और अपना स्वरूप मानता है, वह विभ्रम का कारण है। क्यों रतनलालजी? आहाहा! चैतन्यरत्न तो ऐसा है। रतन लाल है, चैतन्यरत्न है या नहीं? उसमें ऐसा कोई गुण नहीं, स्वभाव नहीं, त्रिकाल शक्ति नहीं कि जो उदय विकार को उत्पन्न करे, ऐसा कोई गुण नहीं। मूढ़ अपने स्वरूप का, स्वभाव का अनजान होकर अज्ञानभाव से भ्रम करके मिथ्यात्व से राग-द्वेष उत्पन्न करता है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, जो आत्मज्ञान से... भगवान आत्मा, उसका जो स्वभाव है, उसके ज्ञान से। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह हमारा भ्रम कब टूटेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन तोड़े परन्तु? किसने किया कि तोड़े? जयचन्दभाई! किसने किया है कि तोड़े? जो तोड़े, वह जोड़े और जोड़े, वह तोड़े। क्यों भाई? राग के साथ उसने अज्ञानभाव से जुड़ान किया है। जोड़े, वह तोड़े। स्वभाव में उसका जुड़ान होने की कोई शक्ति है नहीं। स्वभाव में तो उसको तोड़ने की शक्ति है अर्थात् उसका अभाव होने की शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उसका स्वभाव है, उसकी खबर नहीं। पैर नहीं चले तो ऐं... ऐं... ऐं... हो जाता है। रात में ठीक नहीं रहे तो कहे, मर जाना है। कहाँ जाना है परन्तु? वहाँ मौसी बैठी है? (उसे) सवेरे उकताहट आती है। कहाँ है? आत्मा क्या है? कहाँ जाना है? आत्मा में जाना है या बाहर जाना है?

मुमुक्षु : ....परन्तु शरीर की अनुकूलता हो वैसे हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जड़ की अनुकूलता का अर्थ क्या? वह तो जड़ है, परपदार्थ है। मूढ़ अन्तर पर्याय में, द्रव्य-गुण में नहीं, ऐसा मानकर मेरी शरीर की अनुकूलता हो तो मुझे ठीक पड़े, ऐसी भ्रान्ति पर्याय में मिथ्यात्व का अंकुर उत्पन्न किया है। आहाहा! स्वभाव में है नहीं।

भगवान आत्मा संसार, शरीर, भोगों से अत्यन्त विरक्त मन हुआ। देखो! समझ में आया? विरक्त होने की सामर्थ्य त्रिकाल शक्ति में है तो विरक्त का परिणमन सादि-अनन्त रहता है। समझ में आया? संसार,... संसार अर्थात् स्त्री, पुत्र नहीं। अन्दर भ्रमणा होती है कि शरीर मेरा, राग मेरा, पुण्य मेरा, कर्म से मैं भटकता हूँ, कर्म मुझे नुकसान करते हैं, मैं कर्म बाँधता हूँ, ऐसी जो भ्रमणा, भ्रम उसकी पर्याय में है, वह संसार है।

उसके कारण से विकार का भोग वेदन है। यह शरीर तो बाहर प्रत्यक्ष दिखता है। अशरीरी चीज़ से शरीर भिन्न। तीनों में जो आसक्त, रंजित, वासित, एकत्व आसक्तबुद्धि मिथ्यात्वभाव से थी, असत्यबुद्धि से थी, सत्स्वभाव का अनादर करने से थी, वह सत्स्वभाव का आदर करने से मिट जाती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वयं अज्ञान करता है.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है? 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' माने कि किसी के कारण नुकसान (होता है)। शरीर प्रतिकूल है, इसलिए मुझे दुःख हो रहा है। मूढ़ है। समझे? आहाहा! भगवान मूढ़ हुआ। श्रीमद् कहते हैं, प्रभु में अनन्त गुण हैं। परन्तु उसमें अपलक्षण भी बहुत हैं। एक पत्र आता है, पत्र। पत्र श्रीमद् ने लिखा है। लोग कहते हैं, अरे! ये प्रभु में अपलक्षण कहते हैं। अरे! सुन तो सही। प्रभु अर्थात् आत्मा, उसमें अनन्त गुण हैं। परन्तु उसमें लक्षण नहीं, ऐसे अपलक्षण उत्पन्न करता है। लो, यह आया। है न वह? वस्तु में विकार, दोष करने का लक्षण नहीं है। ऐसा प्रभु है, अपना परमात्मस्वरूप है। लो, बात कहाँ की कहाँ गयी, देखो! ये शब्द याद आया। प्रभु आत्मा में अनन्त गुण हैं, फिर भी उसमें अपलक्षण का पार नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मूर्ख बन गया मूर्खता के कारण। समझ में आया? अपलक्षण अर्थात् उसमें लक्षण है नहीं। और अपलक्षण अज्ञान में शरीर मेरा, राग मेरा, स्त्री मेरी, कुटुम्ब मेरा, देश मेरा, मेरा... मेरा अन्दर रह गया और तेरा नहीं है, वह मेरा हो गया। मेरा रह गया अन्दर और तेरा नहीं है, वह मेरा हो गया। हेमचन्दजी! आहाहा! वह भ्रमणा की है, ऐसा यहाँ कहते हैं। यह भ्रमणा कोई करवाता नहीं। कर्म नहीं

करवाता। आत्मद्रव्य में भ्रमणा होने की शक्ति नहीं है। पर्याय में ऐसी भ्रमणा उत्पन्न करता है।

ऐसा जो चित्त, **उसको आत्मज्ञान से उत्पन्न हुए...** देखो! आत्मा में आत्मा के स्वभाव का भान होने पर उसमें ऐसा गुण है कि अपने आनन्द की उत्पत्ति करे, ऐसा उसमें कारण गुण है। आनन्दगुण आत्मा में है तो आनन्द उत्पन्न करने में वह आनन्दगुण कारण है। आत्मा सच्चिदानन्दमूर्ति ज्ञानानन्द सत् शाश्वत् है। सत् शाश्वत् ज्ञान, आनन्द है तो आनन्द उत्पन्न करने में वह कारण है। दु:ख का उत्पन्न करने का कारण द्रव्य-गुण में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ओहो!

भगवान आत्मा चित्त में जो राग में, शरीर में, भोग में भ्रमणा से लीन है, वह वस्तु में है नहीं तो वस्तु की दृष्टि करने से, वस्तु का ज्ञान करने से, वस्तु जैसी है, उसका आदर सत्कार करने से उसमें ऐसा स्वभाव है कि आनन्द का कारण बनकर आनन्दगुण है, इस आनन्द की पर्याय का कारण बनकर आनन्दकार्य उत्पन्न करता है। समझ में आया? **वीतराग परमानन्द...** देखो! रागरहित परमानन्द। दुनिया की कल्पना के सुख से पार ऐसा परमानन्द। **सुखामृत के आस्वाद से...** क्योंकि उसमें गुण है तो उस गुण को धारण करनेवाला भगवान, उसका आश्रय करने से, उसका अन्तर में अन्तर्मुख जहाँ वस्तु है, वहाँ पर्याय को अन्तर्मुख करने से (सुख उत्पन्न होता है)। समझ में आया? **सुखामृत के आस्वाद से...** क्योंकि सुखामृत का आस्वाद का कारणरूप गुण आत्मा में है। तो आनन्द का कार्य उत्पन्न होता है। तो आनन्द के कारण से राग-द्वेष से चित्त को हटाकर। है न राग-द्वेष? 'चित्त' शब्द पड़ा है न पहले? लगा हुआ चित्त है, उसको हटाकर। समझ में आया? यह तो संक्षिप्त भाषा है न?

परमात्मप्रकाश अकेला मक्खन वर्णन किया है। माल माल लड्डू बनाकर तैयार करके (देते हैं), लो। भगवान आत्मा, प्रभु! तुझे तेरा विश्वास नहीं। समझ में आया? तुझे तेरा विश्वास नहीं और तेरे में नहीं है, उसका तुझे विश्वास है, वह पर्याय में उत्पन्न किया है; वस्तु में नहीं है। समझ में आया? मांगीलालजी! आहाहा! प्रभु! तेरे में गुण तो आनन्द का कार्य करनेवाला गुण है। समझ में आया? तेरे में यह सामर्थ्य है। आनन्द अतीन्द्रिय का कार्य बने, ऐसा कारण है और इस कारण वह कार्य है। परन्तु राग का तुम

कारण बनाओ, राग उत्पन्न (हो), ऐसा कोई गुण तेरे द्रव्य में है ही नहीं। भ्रम से मान रखा था। 'निभ्रान्त' शब्द आयेगा। ३३ गाथा में आयेगा। '**णिभंतु**'। ३३ गाथा में अन्तिम शब्द है न? निभ्रान्त होकर। देखो! भ्रान्ति के सामने निभ्रान्त होकर भगवान आत्मा निभ्रान्त है। ऐसा होकर भ्रान्ति को छेदकर अथवा संसार बेल का छेद कर। जमुभाई! समझ में आता है यह? सूक्ष्म है बहुत, भाई! रुपये देकर होता हो तो... तो पाँच लाख में से पचास हजार दे दे। एकदम तो इतना नहीं दे दे, परन्तु कदाचित् पचास हजार, लाख दे देते हैं। पूर्व के पुण्य थे वह जल गये और पाँच लाख मिले। ऐसा है न? पोपटभाई! पूर्व के पुण्य थे वह जल गये तब मिले न? और नया पाप (बाँधा)। एक गया और एक आया। पाप हुआ और पुण्य गया।

मुमुक्षु : पैसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा पैसे में रहा। सच्चा है? मालचन्दजी! पुण्यतत्त्व गया और पापतत्त्व बाँधा। विचार आये कि पाँच-दस लाख की पूँजी है तो पचास हजार, लाख देते हैं। धर्म होता है या नहीं? नहीं। इससे धर्म नहीं होता। मोहनभाई!

मुमुक्षु : पाप तो कम होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का पाप कम नहीं होता। शरीर का बदला करे, ऐसे वेश को बदलाये, ऐसा पाप कम होता है। भगवान आत्मा का पाप जो मिथ्याभ्रान्ति है, उसका नाश नहीं होता। समझ में आया? उसका वेश बदल जाये, आत्मा का वेश बदल जाये। विकार का वेश मान रखा है, वह स्वभाव की दृष्टि से निर्विकार पर्याय का वेश संवर, निर्जरा की पर्याय हो जाये। वह भी समयसार में वेश लिया है न? संवर, निर्जरा भी आत्मा का एक भेष है, वेश है।

भगवान आत्मा विकार की एकत्वबुद्धि में जो वेश रखा है, वह गुलांट खाकर आत्मज्ञान से पर्याय में संवर, निर्जरा शुद्धता का वेश धारण किया। बाकी पुण्य-पाप में से तो बाह्य शरीर का वेश पलटता है। किसी का मनुष्य शरीर पलटकर देव हो, पाप से मनुष्य शरीर पलटकर नारकी का शरीर हो, परन्तु उसमें आत्मा की दशा नहीं पलटती। समझ में आया? भगवान आत्मा में जैसे अनन्त गुण हैं, वैसा अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु,

उसकी दृष्टि से अथवा उसके विश्वास से, उसकी रुचि से, उसमें एकाकार हो कि यही चीज़ मैं हूँ, ऐसे अन्तर परिणमन से उत्पन्न हुआ जो आनन्द, इस आनन्द के कारण से राग-द्वेष से चित्त को हटाकर। ऐसा। हठ से हटाकर, ऐसे नहीं। समझ में आया? चिन्ता निरोधो, कहते हैं न? ऐसे नहीं। वस्तु का स्वरूप दृष्टि में लेकर आनन्द का उत्पन्न कार्य बनाकर (रागादि से) चित्त को हटाकर ऐसा। आनन्द की उत्पत्ति, चित्त हटा, वह व्यय हो गया, समझ में आया? ध्रुव स्वरूप वैसा का वैसा पड़ा है। शाश्वत् प्रभु।

अपने शुद्धात्म-सुख में अनुरागी कर... देखो! जैसा विकल्प में एकाकार अनुरागी होकर भ्रम करता था, वह भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, पूर्ण प्रभु शक्ति से भरा हुआ, पूर्ण आनन्द से भरा हुआ, पूर्ण अकार्यकारण शक्ति से भरा हुआ। राग का कारण बने या राग से कार्य बने, उससे रहित ऐसी अकारणकार्यशक्ति से पूरा भरा हुआ। ऐसा भगवान अपने शुद्धात्म-सुख में प्रेमी होकर, प्रेमी होकर। **शरीरादिक में वैराग्यरूप हुआ...** ऐसा वैराग्य। ऐसे नहीं कि ये स्त्री, पुत्र खराब है, नुकसान करनेवाले हैं, छोड़ दो। वह तो द्वेष सब हुआ। स्त्री, परिवार नुकसान करनेवाले हैं। सपोलिया है। सपोलिया समझे? सर्प का बच्चा। क्या है? वह तो परद्रव्य है। वे नुकसान करते हैं, छोड़ दो। वह तो परद्रव्य पर द्वेष हुआ।

मुमुक्षु : जो कोई प्रतिकूलता देते हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : झगड़ा कौन करता है? झगड़ा तो उसकी पर्याय में वह करता है। पर कौन झगड़ा करता है? जमुभाई! क्या है? पर्याय में भ्रमणा, क्लेश उत्पन्न करता है, वह स्वयं आत्मा करता है। पर में कहाँ क्लेश है? पर का क्लेश तो तुझे छूता ही नहीं। पर का क्लेश तुझे छूता ही नहीं और तेरा भाव पर को कभी छूता नहीं। वह आयेगा उसमें। समझ में आया? बाद में आयेगा। छूआ भी नहीं। पर के कारण क्लेश को छोड़ दो। क्या छोड़े? छूटा ही पड़ा है। छोड़ूँ, उसका अर्थ हुआ कि ग्रहण किया है, ऐसी मिथ्याबुद्धि हुई। समझ में आया? सेठी! ध्यान रखते हैं बराबर।

शरीरादिक में वैराग्यरूप हुआ... देखो! भाषा कैसी है! वैरागय का अर्थ पर से हटकर, उदासीन होकर। स्वभाव का अमृत के आनन्द के कार्य से (रागादि से) चित्त को हटाकर अर्थात् वैराग्य उत्पन्न कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अन्दर पुण्य में

भी प्रीति हो तो उसे वैराग्य नहीं है। उदय से हटा नहीं है, भोग से हटा नहीं, शरीर से हटा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ...लालजी! ये समझते हो या नहीं? देखो! ऐसा समझना पड़ेगा। ऐसा अर्थ में कुछ नहीं चलेगा। अर्थ में भी विपरीत करते हैं तो फेरना पड़ता है। कहो, समझ में आया? यह तो आत्मपदार्थ है। आहाहा!

भगवान आत्मा... कहते हैं कि तेरे में तो भगवान! ऐसी शक्तियाँ पड़ी हैं, उसकी तो तूने सम्हाल की नहीं और जो शक्ति तेरे में नहीं है, उसको उत्पन्न करके वहाँ घुस गया। रंजित होकर घुस गया। समझ में आया? एक बार भगवान! तेरे स्वभाव में शुद्धता पड़ी है, उसमें सब कारण, प्रभुता आदि पड़ी है, उसको प्रेम से, उसका प्रभु का प्रेम से आनन्द उत्पन्न कर, पर से वैराग्य होकर। दूसरा छोड़ना-फोड़ना नहीं। पर से हट जाना, स्वभाव-सन्मुख हो जाना।

वैराग्य हुआ जो शुद्धात्मा को विचारता है,... ऐसी स्थिति में भगवान पूर्ण शुद्ध, उसमें चिन्तन करता है अर्थात् उस शुद्ध भूमिका में एकाग्र होता है तो शुद्ध भूमिका ध्रुव है, उसमें ऐसा आनन्द उत्पन्न कर। चित्त से हटकर, शुद्ध द्रव्यस्वरूप में एकाग्र होता है, **उसका संसार छूटा जाता है,...** उसकी संसार बेल उत्पन्न होती नहीं। उत्पन्न होती नहीं, वह छूट जाती है। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए जिस परमात्मा के ध्यान से... देखो! इस कारण से। इसलिए अर्थात् इस हेतु से। दोपहर को बहुत चलता है न। एक-एक शब्द का बहुत चलता है। हमारे पण्डितजी बहुत करते हैं। इसलिए, ऐसा, वैसा, तैसा... बहुत करते हैं। बात सच्ची है। तुम्हारी भाषा में थोड़ा सुधार हो जाता है। कहो, समझ में आया? **इसलिए जिस परमात्मा के ध्यान से...** जिस—जो परमात्मा के ध्यान से। जो अर्थात् आत्मा। अपना निज शुद्धस्वरूप, ऐसा जिस परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप जिसमें है, उसके ध्यान से **संसाररूपी बेल दूर हो जाती है, वही ध्यान करनेयोग्य (उपादेय) है।** अन्तर में दृष्टि लगाकर उसे ही उपादेय मानना और उसका ध्यान करना, वही संसार बेल का नाश करने का उपाय है। कहो, समझ में आया?

कोई पुण्य करते-करते संसार बेल टूट जाती है, शुभभाव से क्षायिक समकित होता है। क्षायिक समकित से तो संसार बेल टूट गयी। भगवान! तेरे में वह भाव नहीं

था, उस भाव द्वारा संसार का नाश किया, उसका अर्थ क्या हुआ? राग से राग का नाश किया। काँटे से काँटा निकलता है? काँटे से काँटा नहीं निकलता। काँटे (पकड़नेवाले के) जोर से निकलता है। समझ में आया? काँटा से काँटा नहीं निकलता। काँटा पकड़नेवाले का जोर है, ऐसा जोर देते हैं तो निकलता है? (वैसे) आत्मा में जोर है। रागरूपी काँटा निकालने का भगवान आत्मा में जोर है। उस जोर से निकलता है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा क्या है? आत्मा कैसी चीज़ है? उसको समझने में ली नहीं। 'अेगं जाणहि सव्वं जाणहि'। भगवान जाना, उसने सब जाना। उसे जिसने नहीं जाना, उसने कोई बात जानी है नहीं। ओहोहो!

जिस परमात्मा के ध्यान से संसाररूपी बेल... बेल... बेल। समझे? मूल पाठ बेलडी है। टूट जाती है, **वही ध्यान करनेयोग्य (उपादेय) है।** कोई दूसरी चीज़ में एकाग्र होनेयोग्य नहीं। जिसमें निधान पड़ा है, उसमें एकाग्र होनेयोग्य है। बस। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ३३

आगे जो देहरूपी देवालय में रहता है... देखो! देहरूपी देवालय में भगवान विराजमान आत्मा है। सिद्धालय में जैसे सिद्ध विराजते हैं, ऐसे देहालय देह-आलय देह आलय अर्थात् स्थान। देहरूपी आलय के स्थान में भगवान चैतन्य परमात्मा विराजते हैं। फिर भी देह से भिन्न है। देह को स्पर्श किया नहीं, देह ने उसको स्पर्श नहीं किया। समझ में आया? देह देवालय में भगवान विराजते हैं। (फिर भी) देह को एक समय और एक अंश से, पर्याय से, अंश से छुआ नहीं। भिन्न-भिन्न तत्त्व भिन्न-भिन्न अपनी पर्याय से परिणमन कर रहा है। समझ में आया? **देहरूपी देवालय में रहता है, वही शुद्धनिश्चयनय से परमात्मा है,...** तेरा परमात्मा तेरे देह में विराजमान है, वह तेरा परमात्मा है। सिद्ध परमात्मा तेरा नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

३३) देहादेवलि जो वसइ देउ अणाइ-अणंतु।
केवल-णाण-फुरंत-तणु सो परमप्पु णिभंतु॥ ३३॥

अन्वयार्थ :- जो व्यवहारनयकर... वह आया था न? असद्‌भूत अनुपचारनय से। व्यवहारनयकर पहले आया था और अब आयेगा। इसके बादवाली ३४वीं गाथा में है। अनुपचरित असद्‌भूतव्यवहारनयकर बसता हुआ। भगवान आत्मा अनुपचरित (अर्थात्) यहाँ करीब में सम्बन्ध है। दूसरी चीज़ का सम्बन्ध ऐसा करीब का नहीं है। सम्बन्धवाली झूठी व्यवहारनय से आत्मा देह में है। **निश्चयनयकर देह से भिन्न है,...** वस्तु दृष्टि से देखो तो भगवान आत्मा देह को तीन काल—तीन लोक में बिल्कुल छुआ नहीं। ओहो! समझ में आया? इस देह से भिन्न है, ऐसा कहते हैं। और ये देह के कारण चिल्लाते हैं। आहाहा!

निश्चयनय। निश्चय अर्थात् सत्य के सत्य स्वरूप की दृष्टि से देखो तो, जैसा सत् है, वैसा देखने से **देह की तरह...** देह से भिन्न है। **देह की तरह मूर्तिक तथा अशुचिमय नहीं है,...** भगवान आत्मा देह की तरह (मूर्तिक नहीं है)। देह मूर्तिक है। देह की तरह मूर्तिक नहीं है। वह तो अमूर्तिक है। देह अशुचि है। माँस, हड्डी, पेशाब, खून भरा है। भगवान ऐसा अशुचिमय है नहीं। भगवान तो पवित्र आनन्दगुण का धाम है। ओहोहो! समझ में आया? सिद्ध किया, हों! निश्चय देह से भिन्न है।

देह की तरह मूर्तिक तथा अशुचिमय नहीं है,... तो दोनों सिद्ध किये। देह जड़ है। मूर्त अशुचि है। वह वस्तु है। पुद्‌गल की पर्याय वस्तु है। तो भगवान अमूर्त अकेला शुचि पदार्थ, स्वभाव आनन्द आदि पवित्र गुण से भरा है। दो पदार्थ बिल्कुल विपरीत लक्षणवाले हैं। समझ में आया? है सही। अस्तिरूप से तो है। भाई! ऐसे सिद्ध करना है न? अस्तिरूप से तो है। देह भी अस्तिपने है और यह भी अस्तिपने है। अस्तित्व है। परन्तु जो मूल लक्षण है, उससे वह भिन्न है। समझ में आया?

महा पवित्र है,... देखो! भगवान आत्मा तो... ओहो! जिसकी पवित्रता का एक-एक गुण का अचिन्त्य और अमाप सामर्थ्य है। ऐसे अनन्त गुण की पवित्रता का वह धाम है तो यह भगवान आत्मा ही है। समझ में आया? **महा पवित्र है,...** कहा, देखो! समझे? **आराधने योग्य है,...** यह भगवान आराधनेयोग्य है। उसकी अन्तर दृष्टि लगाकर, उसका विश्वास लाकर उसमें लीन होनेयोग्य है। वही **पूज्य है,...** तुझे तो वही पूजनेयोग्य भगवान है। तेरा भगवान तुझे पूजनेयोग्य है। ओहोहो! भगवान सर्वज्ञ हो तो वे व्यवहार

से पूज्य है। समझ में आया? तेरा भगवान पूर्ण शुद्ध पवित्र धाम, वही तुझे पूजनेयोग्य देव है। समझ में आया? देवमन्दिर में देव जिन, देहमन्दिर में आत्मजिन। इसमें यह भगवान नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न। अपना स्वभाव जैसा है, ऐसा दृष्टि में लेकर बहुमान करना, वही अपना पूज्यपना है। रागादि का पूज्यपना, महत्ताई, अधिकपना छोड़ देना, वह परवस्तु की अपूज्यता है। निश्चय से तो ऐसी बात है। समझ में आया?

भगवान आत्मा... ओहोहो!

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में
कही सके नहि वह भी श्री भगवान जो,
उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे,
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जो

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कही सके नहीं... वाणी द्वारा क्या कहे? वाणी जड़, भगवान चैतन्य। आत्मा अरूपी, यह रूपी। दोनों विरोध धर्मवाले तत्त्व।

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कही सके नहि वह भी श्री भगवान जो,
उस स्वरूप को अन्य...

अन्य की वाणी और अन्य वाणी क्या कहे? भगवान की वाणी भी जिसके पूर्ण स्वरूप को कह सके नहीं। जिनमें सामर्थ्य है और वाणी की उनमें इतनी सारी योग्यता है। वह भी कह सके नहीं, तो जिसकी अल्पज्ञता है और जिसकी वाणी में अनेक प्रकार की विविधता है, वह वाणी इस स्वरूप को क्या कहे? 'अनुभवगोचर मात्र रह्युं ज्ञान।' वह तो स्वसंवेदन से जाना जा सके, ऐसा तत्त्व है। बाकी सब निमित्त की बातें हैं। समझ में आया? कैसा है?

देह आराधनेयोग्य नहीं है,... देह सेवन करनेयोग्य नहीं है, देह पूज्य नहीं है। देह पूज्य नहीं है। भगवान पूज्य हैं। '**अनाद्यनन्तः**' देखो! देह है, उसकी तो एक समय की

स्थिति तुझे सम्बन्ध में दिखती है। क्षणभंगुर है। भगवान आत्मा **जो परमात्मा आप शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर अनादि अनन्त है,...** जो भगवान अपना निज स्वरूप वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... अस्ति सत् शुद्ध द्रव्यार्थिक। त्रिकाल वस्तु जो है, उसको ज्ञाननय से देखनेयोग्य वह द्रव्य अनादि-अनन्त है। वस्तु है, है और है। अर्थात् आदि नहीं, अनादि है। वर्तमान है, भविष्य है, है और है। अनादि-अनन्त हो गया। 'है' में 'नहीं है' ऐसा कहाँ आया? अनादि-अनन्त है, यह तो क्षणभंगुर है, पलट जाती है। धूल पलटे। दूसरा शरीर हो जाये... दूसरा शरीर हो जाये... शुद्ध आप भगवान अपना स्वरूप शुद्ध वस्तु जो द्रव्य है, उसके प्रयोजनवाला जो ज्ञान है, उस ज्ञान से वह जाननेयोग्य वह चीज़ है। उससे भगवान अनादि-अनन्त है।

तथा यह देह आदि अन्तकर सहित है,... देखो! सामने लिया। समझ में आया? सामने उतारा। अब तनु—शरीर। शरीर स्वयं है। अपना शरीर कैसा है? **'केवलज्ञानस्फुरत्तनुः'।** ओहो! भगवान आत्मा का शरीर तो निश्चय से, यथार्थ से, सत्यनय से, सत्य के ज्ञान से देखो तो सत्यस्वरूप **लोक अलोक को प्रकाशनेवाले केवलज्ञानस्वरूप है, अर्थात् केवलज्ञान ही प्रकाशरूप शरीर है,...** केवलज्ञान प्रकाशरूप भगवान आत्मा का शरीर है। यह शरीर-फरीर आत्मा में है नहीं। अकेला केवलज्ञान का पिण्ड उसका—भगवान का तनु शरीर है। आहाहा! शरीर से भिन्न बताना है न। तो शरीर है या नहीं? वह भी एक शरीर है। वस्तु है न? पदार्थ है न? अस्ति है न? अनादि-अनन्त है न? अनन्त स्वभाव से भरा भगवान, अनन्त स्वभाव से भरा भगवान कैसा है? **'केवलज्ञानस्फुरत्तनुः'।** लोकालोक को जानने का शरीर है। शक्ति भी ऐसी है कि लोकालोक जाने, ऐसा इसका शरीर है। पर्याय में प्रगट होता है, तब लोकालोक जानने की सामर्थ्य है, ऐसा उसका शरीर है। समझ में आया? ओहोहो!

और देह जड़ है... एक समय का ज्ञान उसको (शरीर को) नहीं, पर का नहीं। क्या (कहा)? शरीर में एक समय का ज्ञान इसका नहीं, पर का नहीं (होता)। इस भगवान में तीन काल—तीन लोक को जानने की सामर्थ्य एक समय में है। आहाहा! समझ में आया? लोकालोक, उसकी शक्ति में जानने की सामर्थ्यवाला उसका शरीर पिण्ड है। उसमें से प्रवाहित पर्याय, द्रवित पर्याय होती है तो वह भी तीन काल—तीन

लोक को जानने की सामर्थ्यवाला शरीर है। शरीर की पर्याय (में) एक समय भी जानने की योग्यता नहीं है, उसको और पर को। जबकि आत्मा स्व और पर को तीन काल—तीन लोक को एक समय में पूरा जानने-देखने की सामर्थ्य रखनेवाला उसका शरीर है। देखो! आहाहा! समझ में आया?

शरीर वस्तु है बताया, अन्तवाली चीज़ बताया, जड़ कहा। समझ में आया? अशुचि कहा। अनपूज्य और अनाराध्य कहा। भगवान आत्मा वस्तु अनादि-अनन्त शुचि पदार्थ-पवित्र पदार्थ से गुण से भरा है। आराधनेयोग्य, पूज्य है। उसके शरीर में ही सामर्थ्य अर्थात् स्वभाव में सामर्थ्य है। लोकालोक में किसी को नहीं जाने, ऐसी सामर्थ्य उसमें नहीं है। सबको जाने। शरीर किसी को नहीं जाने, ऐसी सामर्थ्य (रखता है)। शरीर किसी को नहीं जाने। एक समय और किसी स्व को या पर को किसी को नहीं जाने, ऐसी सामर्थ्य है। भगवान में तीन काल—तीन लोक में स्व-पर को पूर्ण देखने की सामर्थ्य है। ऐसी विरुद्ध शक्तिवाले दो तत्त्व हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! परमात्मप्रकाश देखो न, आचार्य ने भी देखो न (क्या लिखा है)! **'केवलज्ञानस्फुरत्तनुः' 'स्फुरत्तनुः'।** अन्दर से तिनका फूटे। फुलझड़ी नहीं होती है दिवाली में? क्या कहते हैं? फुलझरी। वहाँ तो अन्त आ जाता है, हों! जलते-जलते सब जल जाये। यह तो ऐसा केवलज्ञान का तिनका पर्याय में फूटे कि सादि-अनन्त (रहता है)। कभी समाप्त नहीं हो ऐसा चैतन्यतन शरीर भगवान में भरा है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अनादि-अनन्त ऐसा ज्ञान का पिण्ड, जिसकी पर्याय में प्रवहे केवलज्ञान पर्याय। कभी समाप्त नहीं होता, कभी समाप्त नहीं होता। द्रव्य समाप्त हो जाये तो पर्याय निकलना समाप्त हो। समझ में आया? यह तो कुछ नहीं जानता, मुर्दा है। शरीर मुर्दा है। अभी? अभी?

यह (आत्मा) चैतन्य, यह (शरीर) मुर्दा। यह त्रिकाली जाननेवाला, यह एक समय भी नहीं जाननेवाला। त्रिकाली पवित्रधाम, इसमें एक समय भी पवित्रता नहीं, (ऐसा) अशुचि का धाम। परन्तु दोनों है, ऐसा सिद्ध करके दोनों की व्याख्या करते हैं। समझ में आया? **'सः परमात्मा' वही परमात्मा...** वही अर्थात् केवलज्ञान जिसका शरीर है, चैतन्यपिण्ड चैतन्यमूर्ति अरूपी पूरे शरीर प्रमाण, भिन्न भगवान है। शरीर को छुए

बिना की चीज़, शरीरप्रमाण होने पर भी, शरीरप्रमाण होने पर भी शरीर को स्पर्श नहीं करती, ऐसी चीज़ है। ओहोहो! समझ में आया? **वही परमात्मा... 'निर्भ्रान्त' निःसन्देह है, इसमें कुछ संशय नहीं समझना।** जैसी भ्रान्ति तुझे थे कि राग मैं हूँ, यह हूँ। तो कहते हैं कि हम ऐसा कहते हैं कि आत्मा निर्भ्रान्त ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कैसे होगा? कैसे होगा क्या, निर्भ्रान्त ऐसी चीज़ है। आहाहा! भ्रान्ति में बिल्कुल आत्मा की सामर्थ्य की खबर नहीं। मात्र राग, विकार या तो एक समय की अल्पज्ञ पर्याय, इतना माना वह भ्रान्ति थी। समझ में आया? वह भ्रमरहित अपने स्वभाव में जहाँ दृष्टि दी, ऐसा आत्मा निर्भ्रान्त ऐसा है।

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त अनन्त गुण सम्पन्न पूज्य आराधकदेव है। अपना-अपना पूज्य अपने कारण सेवन करनेयोग्य ऐसा भगवान चैतन्य-शरीर बिम्ब निर्भ्रान्त है। ऐसा कैसे होगा? इतने में रहना? शरीर में रहना तो बताया और शरीर को छुआ नहीं, (यह भी) बताया। समझ में आया? और इतने में इतना पवित्रधाम रहता है? निर्भ्रान्त रहता है। **'सो परमप्पु णिभंतु'।** वही परमात्मा निर्भ्रान्त तू जान। सुमेरुमलजी! आहाहा! उसे जानने से तुझे लोकालोक जानने में आ जायेगा। समझ में आया? क्योंकि वह लोकालोक जानने की शक्ति रखता है। और शक्ति का पिण्ड ही आत्मा है। **निःसन्देह है...** समझ में आया? **'निर्भ्रान्तः निःस्सन्देह इति'।**

भावार्थ :- जो देह में रहता है, तो भी देह से जुदा है,... दोनों सिद्ध किये। है इतने में, है इतने में, फिर भी उससे भिन्न—देह से भिन्न है। कथन पद्धति (ऐसी है)। आत्मा सर्व व्यापक है? नहीं, इतने में है। है इतने में, फिर भी उसे (देह को) कभी छुआ नहीं। ओहो! समझ में आया? इसके बादवाली गाथा में लेंगे, इसलिए यहाँ से लिया। देखा! बादवाली गाथा में वह आता है। अमृतचन्द्राचार्य जैसी शैली कभी-कभी (आती है)। आगे आनेवाला हो उसका पहले थोड़ा कहते हैं। बाद में आयेगा, स्पर्श करता नहीं। **'णवि छिवइ'** ३४ गाथा में आता है न? तो यहाँ से कहा।

भगवान आत्मा, डिब्बी में जैसे हीरा पड़ा है। हीरा के प्रकाश के पुंज वह हीरा का शरीर है। डिब्बी अकेले लोहे की जंग लगी हुई चीज़ है। कोई किसी को छूता नहीं। डिब्बी को हीरा नहीं और हीरे को डिब्बी छूती नहीं। समझ में आया? देह जंग से भरा,

अशुचि से भरा पदार्थ है। ऐसे देहरूपी देवालय अर्थात् डिब्बी में भगवान विराजमान है। डिब्बी कहते हैं न? डिब्बी... डिब्बी। परन्तु है भिन्न। किसी को छुआ है ही नहीं। ओहोहो! लाख रुपये का हीरा डिब्बी में पड़ा हो तो क्या हीरे की पर्याय उसमें घुस गयी है? (हीरा को) उठा ले तो डिब्बी तो ऐसी की ऐसी है। है? ऐसे भगवान आत्मा... ओहो!

एक हीरे की बात की थी न? (संवत्) २००० के वर्ष में। एक साठ हजार का हीरा था और एक अस्सी हजार का हीरा था। बेचरभाई दो हीरे लाये थे। ऐसी डिब्बी में मखमल की डिब्बी थी। खड्डा होता है न? खड्डा, वह लाये थे। खड्डे में पड़ी थी। एक लाये थे साठ हजार का हीरा। कितनी कीमत का है? आधा रुपयाभार। आधा रुपयाभार। कितनी कीमत है? साठ हजार। दूसरा लाये थे वह आठ रति का था, आठ रति का था। कितनी कीमत? अस्सी हजार रुपया। ऐसा क्यों? उसका तेज ही बहुत है। आठ रति का। एक रति का दस हजार रुपया। उसका प्रकाश... उसका... क्या कहते हैं? पहेल? पहेल कहते हैं? पहेल... पहेल। आठ रति का, हों! आठ रति। अस्सी हजार। एक रति का दस हजार। अरे! परमाणु के पिण्ड की इतनी कीमत! बड़ा क्षेत्र नहीं, खाने में काम आये नहीं, तृषा लगी हो तो पी सके नहीं। बराबर है? आहाहा! कोई रोग हो तो घिसकर लगा सकते नहीं। हीरा लगाते हैं? ऐसा आठ रति की अस्सी हजार की कीमत। बेचरभाई लाये थे। एक रति का। अरे! भगवान! इतना अंश, उसके दस हजार?

यह भगवान इतने अंश में चैतन्य-हीरा, उसमें अनन्तगुना अनन्त भरा पड़ा है। उसमें अनन्त पहेल हैं। उसमें तो थोड़े पहेल होंगे। आहाहा! समझ में आया? चैतन्य-शरीर हीरा आत्मा भगवान, अनन्त पहेल हैं। उसके एक-एक गुण की कीमत-मूल्यांकन हो सकता नहीं। समझ में आया? उसकी राग के विकल्प से प्राप्ति होती नहीं। इतने प्रमाण में कीमत देनी पड़ती है। विकल्प से प्राप्त हो, ऐसी कीमती चीज़ नहीं। ऐसी हल्की नहीं है, वह तो महा कीमती चीज़ है।

कहते हैं, **देह को यह देव छूता नहीं है, वहीं आत्मदेव उपादेय है।** देह देवालय में भगवान विराजमान है। अन्दर ज्ञान तन की पर्याय से अन्तर्मुख होकर द्रव्य को स्पर्श कर, पर्याय देह को छुई नहीं है। देह की पर्याय ने तेरी पर्याय को छुआ नहीं है। तेरी

वर्तमान पर्याय, चैतन्य-देह को, चैतन्य अनन्त गुण के पिण्ड को छुए तो परमात्मा को छुआ। वह परमात्मा को भेटा, उसे परमात्मा की भेंट हुई, परमात्मा का उसे स्पर्श हुआ। परमात्मा के स्पर्श में अतीन्द्रिय आनन्द आता है। समझ में आया? आहाहा! भैया! आहाहा! यह करो, यह करो... यह करो। दया, भक्ति, पूजा, व्रत ऐसा... ऐसा... (करते-करते) क्रमशः हो जायेगा। मांगीरामजी! राग के कोयले से धीरे-धीरे कोयला हीरा बन जायेगा। कोयले में से हीरा होता है, हों! लम्बे काल के बाद। परमाणु है न? परमाणु पलटे तब। वैसे यह राग, विकल्प से भगवान की प्रतीति नहीं होती। ऐसा महा कीमती प्रभु हीरा है। उसका तोल क्या? वह तो अरूपी है, तोलवाली चीज़ है। एक रति का दस हजार। उसका काँटा भी ऐसा होता है। तोला समझते हो? तराजू। वह काँटा ऐसा नहीं होता कि चार मण गेहूँ में से पाव सेर ऐसा हो जाये, वैसा हो जाये। नीचे थोड़ा मुलायम पीतल का खड्डा (होता है)। पीतल का थोड़ा खड्डा होता है। देखा है न। देखा है। यहाँ से थोड़ा ऊँचा होता है। काँटे में थोड़ा फर्क पड़ जाये तो एक रति का दस हजार (लग जाये)। ये तो साधारण हीरा (की बात है)। बड़ा हीरा हो तो एक-एक रति का लाखों, करोड़ों रुपये की कीमत। उसका तोलने का काँटा भी सूक्ष्म है। उसी प्रकार भगवान आत्मा की कीमत करने की दृष्टि सूक्ष्म है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ भी पड़ापड़ी होती है। अनन्त छह महीने और आठ समय में अनन्त सिद्ध हो जाते हैं। छह महीने और आठ समय में ६०८, ६०८ की हारमाला है। छह महीने और आठ समय में ६०८, ६०८ श्रेणीबद्ध सिद्ध में चले जाते हैं। श्रेणी लगी है। धारावाही मार्ग में चले जाते हैं।

वही आत्मदेव उपादेय है। ऐसे आत्मा को अन्तर आदरणीय करने का अर्थ— उसमें ही दृष्टि लगाना। दूसरे की कीमत छोड़कर वह कीमती चीज़ है, उसमें दृष्टि लगाना उसका नाम आत्मा उपादेय कहने में आता है। वही मोक्ष का मार्ग है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ४, गुरुवार, दिनांक १४-१०-१९६५
गाथा - ३४ - ३५, प्रवचन - २३

गाथा - ३४

परमात्मप्रकाश के पहले अध्याय की ३४वीं गाथा।

३४) देह वसंतु वि णवि छिवइ णियमैं देहु वि जो जि।
देहैं छिप्पइ जो वि णवि मुणि परमप्पउ सो जि॥ ३४॥

अन्वयार्थ - जो देह में रहता हुआ भी... यह आत्मा देह में रहता हुआ भी। यह आत्मा है, वह देह में रहता हुआ, ऐसा दिखता है। व्यवहार से, कहेंगे। **निश्चयनयकर शरीर को नहीं स्पर्श करता,...** निश्चय से आत्मा शरीर को छूता नहीं। आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध परमानन्द की मूर्ति आत्मा, वह शरीर को, कर्म को, विकार को स्पर्शता ही नहीं। समझ में आया? उसे आत्मा कहते हैं। जो आत्मा देह में रहा हुआ दिखाई देने पर भी शरीर को स्पर्शता नहीं। **देह से वह भी नहीं छुआ जाता।** देह से आत्मा भी स्पर्श नहीं किया जाता। अर्थात् क्या? आत्मा देह को स्पर्शता नहीं—छूता नहीं, देह से भी आत्मा स्पर्शा—छुआ जाता नहीं। दूसरी भाषा में कहें तो आत्मा शुद्ध चिदानन्द परमात्मा उसे कहते हैं कि जो विकार, कर्म, शरीर को स्पर्शता ही नहीं और विकार, कर्म और शरीर आत्मा को स्पर्शे ही नहीं। ...भाई!

मुमुक्षु : ....किस प्रकार से हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ है कहाँ? माना है। है नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा चिदानन्द ज्ञानानन्दमूर्ति, उसे आत्मा शुद्ध वस्तु कहते हैं। वह आत्मा देह को स्पर्शता नहीं। देह शब्द से यहाँ पुण्य-पाप, राग-द्वेष, शरीर, कर्म आदि सबको वह परमात्मा स्पर्शता नहीं। समझ में आया? और देह से वह स्पर्शा नहीं जाता। अर्थात् देह, वाणी, पुण्य-पाप के भाव द्वारा वह स्पर्शा अर्थात् अनुभव अर्थात् उसका

वेदन नहीं हो सकता। समझ में आया?

न तो जीव देह को स्पर्श करता और न देह जीव को स्पर्श करती, उसी को परमात्मा तू जान,... यहाँ शिष्य को कहते हैं कि हे आत्मा! तू उसे आत्मा जान, उसे परमात्मा जान। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो परमात्मप्रकाश की व्याख्या है। समझ में आया? परमात्मस्वरूप अपना शुद्ध ज्ञानानन्द परमात्मस्वभाव, जो शुद्ध ज्ञायक है, वह विकार, कर्म, शरीर को छूता ही नहीं, स्पर्शता ही नहीं। और विकार, कर्म, शरीर आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते। ...भाई!

आत्मा स्वरूप ही परमात्मा है। अपना आत्मा शुद्ध ज्ञानघन पूर्णानन्दस्वरूप ही आत्मा है। उस स्वरूप को और विकार और कर्म को कुछ सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? कर्म, शरीर, विकार को और आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं। यहाँ दो भाग करने हैं। एक ओर भगवान आत्माराम और एक ओर सब गाँव। समझ में आया इसमें? सेठी! ओहो! शुद्ध ज्ञानघन आनन्दमूर्ति आत्मा परमात्मा है। अपना, हों! अपना। और विकार, कर्म और शरीर / देह, वह सब गाँव, देह, वह सब देह। उस देह में आत्मा नहीं और उस आत्मा में देह नहीं। ऐसे दोनों भिन्न-भिन्न चीज़ वर्तती है। समझ में आया? कहो, अब तो यह सरल आया न? गुजराती सरल भाषा है। गुजराती सरल भाषा है।

भगवान आत्मा उसे कहते हैं, आत्मा उसे कहते हैं और आत्मा ऐसा है कि जो **शुद्धात्मा की अनुभूति...** अपना शुद्धात्मा। आत्मा, वह शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति ज्ञायकस्वरूप अनन्त-अनन्त शुद्ध स्वरूप का रूप, ऐसा आत्मा, वह निर्मल निर्विकारी दशा द्वारा अनुभव हो सके, ऐसा वह आत्मा है। ऐसा आत्मा शुद्ध वस्तु परमानन्द का पिण्ड प्रभु, वह अपनी अनुभूति (से ज्ञात हो, ऐसा है)। अनुभूति अर्थात् ऐसा शुद्धस्वरूप भगवान, उसे अनुसरकर, पुण्य-पाप के रागरहित दृष्टि, पुण्य-पाप के रागरहित ज्ञान, पुण्य-पाप के रागरहित शान्ति, स्थिरता—ऐसी जो अनुभूति। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र निर्विकारी परिणाम, ऐसा जो आत्मा का अनुभव, उस अनुभव से ही वह स्पर्श किया जा सकता है और जाना जा सकता है। आहाहा! समझ में आया?

उस **अनुभूति से विपरीत क्रोध, मान, माया, लोभरूप विभाव परिणाम...**

समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चिद्घन सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ ने जो यह आत्मा दूसरे का देखा, उनका तो देखा और जाना, परन्तु दूसरों का आत्मा, वह भगवान केवलज्ञानी तीर्थंकर ने ऐसा देखा कि शुद्ध चिद्घन आनन्दघन, वह निर्मल निर्विकारी अनुभूति से ही प्राप्त हो सके, ऐसा भगवान ने देखा। सेठी! आहाहा! गजब बात! और वह निर्विकार वस्तु निर्विकारी शुद्धस्वरूप परमात्मा निज स्वरूप, उसकी शुद्ध निर्मल परिणति, निर्मल—निर्विकारी दशा से प्राप्त हो, वह आत्मा प्राप्त हो। ऐसी अनुभूति से विपरीत क्रोध, मान, माया, लोभ, पुण्य-पाप के भाव, ऐसा जो विभाव परिणाम **उनकर उपार्जन किये शुभ-अशुभ कर्मों...** उनसे उत्पन्न हुए शुभ-अशुभ कर्म। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु, परमात्मा सर्वज्ञ को प्राप्त हुआ, ऐसा ही यह आत्मा भगवान ने देखा और कहा। वह आत्मा शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान निर्मल अनुभूति से आत्मा प्राप्त होता है। उस अनुभूति से विपरीत पुण्य-पाप के विकार द्वारा कर्म प्राप्त हों और कर्म से शरीर प्राप्त हो। समझ में आया? यह तो सादी-सीधी बात है। इसमें कहीं शास्त्रों का बहुत गूढ़ रहस्य और (ऐसा नहीं)। समझ में आया? मांगीरामजी! शास्त्रों के वे शब्द बहुत कठिन या ऐसा यह नहीं।

यह आत्मा, अन्दर आत्मा है, वह वीतरागी स्वभाव से भरपूर पिण्ड चैतन्यस्वरूप है। वह वीतरागी शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति से प्राप्त होता है। ऐसी निर्मल अनुभूति से आत्मा प्राप्त होता है। उस निर्मल अनुभूति से विपरीत शुभ-अशुभ, क्रोध, मान, माया, लोभ, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध इत्यादि शुभाशुभभाव, उनसे कर्म उपार्जन होते हैं। शुभ-अशुभकर्म होते हैं। **उपार्जन किये शुभ-अशुभ...** कर्म। उनसे बनी हुई देह। उनसे बनी यह देह। समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु से शुद्ध परमात्मा है। उसकी निर्मल वीतरागी पर्याय द्वारा उसकी प्राप्ति होती है। उसके द्वारा कर्म नहीं बँधते और कर्म द्वारा शरीर नहीं मिलता। कहो, समझ में आया? परन्तु यह आत्मा जो शुद्ध आनन्दकन्द वस्तु है, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द आत्मा है। जैसे बर्फ की शीतल ठण्डी शिला (होती है), इसी प्रकार

भगवान आत्मा अकषाय वीतरागी शीतल शान्त अनीन्द्रिय आनन्दमूर्ति स्वरूप है। आहाहा! यह सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं, ऐसा हमने जाना है, ऐसा कहते हैं। वह तुझे कैसे ज्ञात हो? शुद्धस्वरूप आनन्दमूर्ति की निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति... राग पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर, त्रिकाल स्वभाव शुद्ध की रुचि, शुद्ध का ज्ञान और शुद्ध की अनुभूति-स्थिरता, उसके द्वारा आत्मा अनुभव में आवे, ऐसा आत्मा, उसकी अनुभूति से विपरीत जो पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभ के विभाव, उनसे उपार्जन हुए कर्म, उनसे बनी हुई यह देह। कहो, समझ में आया? कहो, यह तो समझ में आता है या नहीं? कर्म से बनी देह और मानना मेरी। मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कर्मोंकर बनाई हुई देह में अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयकर बसता हुआ भी... क्या कहते हैं? कितनी बात की अस्ति बतलाते हैं, अस्ति से उसकी अस्ति भिन्न है, दोनों अस्ति है। भगवान आत्मा वस्तुरूप से शुद्धघन, ज्ञानघन परमात्मा निज स्वरूप है अभी। उसकी निर्मल वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान की अनुभूति द्वारा प्राप्त हो, वहाँ पर की समाप्ति हो गयी। वहाँ आत्मा प्राप्त हुआ। उसे मुक्ति होती है। उस आत्मा की अनुभूति से विपरीत पुण्य-पाप और भ्रान्ति—मैं राग हूँ, पुण्य हूँ, पाप हूँ, देह हूँ—ऐसी भ्रान्ति आत्मा की अनुभूति से विपरीत है और पुण्य तथा पाप के भाव, वह आत्मा का अनुभव, आत्मा का स्वभाव, उसकी जो अनुभूति, उससे विपरीत पुण्य-पाप भाव हैं। आहाहा! ऐसे पुण्य-पाप के भाव से उपार्जित पुण्य-पाप के जड़ कर्म। उन जड़ कर्म का निमित्त होकर हुई यह धूल-शरीर। उस शरीर में बसता है कहना, यह नजदीक के सम्बन्ध की अपेक्षा से अनुपचरित झूठे नय से वह आत्मा देह में रहता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

अनुपचरित। शास्त्रकार ने ऐसी शैली से दो अस्ति बतायी और उसमें रहा वह किस नय से? और वस्तु में रहा वह किस नय से? किस न्याय से? किस न्याय से? कि देह जड़ मिट्टी है, उसमें आत्मा रहा है, ऐसा कहना, (वह व्यवहारनय का कथन है)। क्योंकि वह तो आत्मा से देह तो भिन्न चीज़ है। भिन्न में रहा, ऐसा कहना वह नजदीक के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के लक्ष्य से जरा सम्बन्ध है, इतना। दूसरे के साथ सम्बन्ध

नहीं। परिवार के साथ, स्त्री के साथ ऐसा सम्बन्ध नहीं। क्योंकि वह तो भिन्न रह गये। परन्तु शरीर का सम्बन्ध यहाँ नजदीक में इतने क्षेत्र में है, जितने में भगवान आत्मा स्वयं विराजमान है, इतने में शरीर है। और उतने में शरीर प्रमाण भगवान आत्मा उसमें, उससे भिन्न (रहा है), परन्तु निमित्त सम्बन्ध की अपेक्षा से सम्बन्ध असद्भूत झूठे नय से उसमें रहा है (कहते हैं)। क्योंकि देह में रहा ही नहीं। आत्मा आत्मा में है। परन्तु झूठे नय से ऐसा कहा जाता है कि यहाँ है। वह असद्भूतनय से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? मकान में रहा कहना, वह उपचार असद्भूत व्यवहारनय है, झूठा नय है। घर में वह रहा नहीं, परन्तु बाहर में जरा दूर है, इसलिए उसे उपचार से झूठे नय से वहाँ रहा है, ऐसा कहा। यहाँ शरीर में रहा, ऐसा (कहना वह) अनुपचार अर्थात् नजदीक सम्बन्ध देखकर इतने क्षेत्र में व्यापक है, इसलिए उसे सम्बन्धवाला असद्भूत— झूठे नय से देह में रहा है, ऐसा कहा जाता है। शशीभाई! कायदा (नियम) भारी कठिन, भाई! समझ में आया? वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव अरिहन्त परमेश्वर की वाणी में यह आया। उसे खबर नहीं होती, जैन के वाड़ा में जन्मे, उसे खबर नहीं होती। क्या आत्मा और क्या कर्म कैसे हुए? और कर्म का फल यह शरीर क्या?

भगवान आत्मा, जो अपने भान बिना अज्ञानभाव से विकार करके शुभ या अशुभ दोनों विकार, उनसे बने शुभ-अशुभ जड़कर्म, उनसे बना देह। उसमें आत्मा रहा है, ऐसा कहना, इतने क्षेत्र में (रहा है), इसलिए अनुपचरित। बाकी उसमें नहीं, इसलिए असद्भूत व्यवहारनय से देह में रहा, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! गजब शैली है न शास्त्र की! समझ में आया?

निश्चयकर देह को नहीं छूता,... उसमें रहा होने पर भी भगवान आत्मा, उस देह को स्पर्शता नहीं, छुआ नहीं। भगवान चैतन्यमूर्ति अरूपी ज्ञानघन, यह धूल मिट्टी जड़। उस जड़ को कैसे स्पर्श करे? आहाहा! अडे, समझे न? छूते हैं। गुजराती भाषा थोड़ी-थोड़ी समझ लेना। यहाँ तो बहुत हिन्दी हो गयी, अब गुजराती में चलेगा। यहाँ कितनी ही महिलायें बेचारी समझे नहीं। लो! फिर शोर आवे, हम कुछ समझते नहीं। कुछ आत्मा... आत्मा करते हैं। फिर वह गोई मा, गोई मा जैसा हो जाये। आहाहा!

भाई! प्रभु! तू कहाँ और तू किसे छूता नहीं? देह क्यों हुआ और वह देह तुझे

क्यों नहीं छूता, उसकी बात यहाँ करते हैं। आहाहा! आत्मा देह में इतने क्षेत्र में है, इस अपेक्षा से अनुपचार कहा और दूसरे स्त्री, पुत्र, घर तो दूर क्षेत्र में है; इसलिए वह तो उपचार से उनके साथ सम्बन्ध है, झूठे नय से। उनके साथ इतना अनुपचार से सम्बन्ध, परन्तु उसमें रहा, वह झूठा कहना है। भगवान आत्मा अरूपी; रूप, रंग, गन्ध, अरे! विकाररहित चीज़ है। जिसमें पुण्य-पाप के विकल्प भी जिस स्वरूप में नहीं, उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा यहाँ रहा होने पर भी वह उसमें स्पर्शा नहीं और देह भी उसे स्पर्शा नहीं। भिन्न-भिन्न भाव में दोनों हैं सही। दो हैं, सही। दो हैं (तथापि) यह उसे स्पर्शे नहीं और यह उसे स्पर्शे नहीं। आहाहा! कठिन बातें! चन्द्रकान्तभाई! क्या यह वह ऐसी बात? जैनधर्म ऐसा होगा? हमने तो जैनधर्म में ऐसा नहीं सुना था। ... तस्स मिच्छामि दुक्कडम। एकेन्द्रिया, दोन्द्रिया.. ... अरे! भगवान! सुन तो सही, भाई! यह तो बातें दूसरी, यह तो तत्त्व की मूल चीज़ है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा, जिसे आत्मा कहते हैं, वह आत्मा जिसे कहते हैं, उसमें तो पुण्य-पाप का विकार भी नहीं, कर्म भी नहीं और शरीर भी नहीं। ऐसा भगवान आत्मा वह विकार, शरीर, कर्म को स्पर्शा नहीं। यहाँ शरीर को स्पर्शा नहीं, इसलिए अनुपचरित असद्भूत लिया है। समझ में आया? वास्तव में तो अध्यात्म से तो विकार, वह असद्भूत व्यवहारनय है। पुण्य और पाप के भाव, उनमें आत्मा है—ऐसा कहना, वह झूठे असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है। आहाहा! और भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति अनाकुल आनन्द की मूर्ति प्रभु, उसे शरीर, कर्म और पुण्य-पाप के भाव स्पर्श नहीं करते। स्पर्श नहीं करते। दोनों भिन्न-भिन्न चीज़ है। है ही इस प्रकार। अज्ञानी की मान्यता में भ्रम पड़कर यह देह मैं, पुण्य-पाप मैं, ऐसी मान्यता में अन्तर है। वस्तु तो भिन्न-भिन्न ही है। समझ में आया?

निश्चयकर देह को नहीं छूता,... भगवान आत्मा सत्य दृष्टि से उसके सत्य स्वभाव से देखे तो वह सत्य स्वभाव देह को स्पर्शता नहीं। क्योंकि देह, वह आत्मा की अपेक्षा से वह सब असत् है, परन्तु वस्तुरूप से वह सत्य है, ऐसी यहाँ बात सिद्ध करनी है। क्या कहा? यह आत्मा अन्दर ज्ञानघन, चिद्घन वस्तु, वह सत्स्वरूप है। सत् है। उसकी अपेक्षा से पुण्य-पाप, कर्म, शरीर उस स्व की अपेक्षा से असत् है। तथापि

उनकी अपेक्षा से सत् है। विकार विकाररूप से है; कर्म, कर्मरूप से है; शरीर, शरीररूप से है। अब वह कर्म कर्मरूप से, शरीर शरीररूप से है, उसे भगवान आत्मा स्पर्शता भी नहीं। क्योंकि भिन्न ज्ञायकमूर्ति चैतन्य है। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयकर देह को नहीं छूता,... भगवान सत्स्वरूप प्रभु, सच्चिदानन्द सर्वज्ञस्वभाव, सिद्धस्वरूप अपना है, वह विकार और कर्म को कैसे स्पर्शे? स्पर्शे तो दोनों एक हो जायें। समझ में आया? दो के दो रहे, दो के एक हो नहीं। आहाहा! एक ओर भगवान ज्ञानमूर्ति आत्मा। चैतन्य अनन्त-अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का कन्द परमात्मा, स्वयं, हों! एक ओर पुण्य-पाप विकल्प, कर्म, शरीर। उनमें यह नहीं और इसमें वे नहीं। आहाहा! शशीभाई! उसमें यह सट्टा का धन्धा करना और यह सब कौन करता होगा?

मुमुक्षु : बन्द हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्द हो गया? क्या हुआ और? भाव में नहीं, बाहर से बन्द हुआ होगा। सरकार ने बन्द किया, ठीक। यह सब लड़ाई है, इसलिए ऐसा सब (डाला होगा)। कौन करे यह? कहते हैं कि यह भाषा और यह व्यापार, उनसे तो आत्मा बहुत दूर है। जिनसे दूर उनका, वह दूर, दूर का कैसे करे? और यह भाषा आदि की क्रियायें जो भगवान आत्मा से दूर है, वह भाषा आदि भगवान आत्मा को कैसे स्पर्शे? आहाहा! ... भाई! यह अलग प्रकार का भगवान का तीर्थंकर का शासन है। किसी के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु : तीर्थंकर के साथ मिलान खाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके मार्ग के साथ मिलान खाये। वाडा के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं अभी तो। शशीभाई! आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ देवाधिदेव तीर्थंरप्रभु, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे और उन्होंने पदार्थ की जो व्याख्या और स्वरूप कहा, कहते हैं कि भाई! हमने तो ऐसा देखा और ऐसा जाना और अनुभव किया। तेरा (और) सभी आत्मायें, जिसे भगवान, आत्मा कहते हैं और वह आत्मा है, वह तो शुद्ध चिद्घन

आनन्द की मूर्ति है। वह विकार, कर्म, शरीर को स्पर्शता नहीं। भले रहा हुआ दिखाई दे। असद्भूत नजदीक सम्बन्ध की अपेक्षा से। झूठे प्रकार से। परन्तु वह उन्हें छूता नहीं, वे इसे छूते नहीं। अज्ञानी भ्रम करके, विकार मेरा, कर्म मेरे, शरीर मेरा ऐसी भ्रमणा भ्रान्ति से ऐसा मान रहा है। उसमें और वस्तु के बीच, सम्बन्ध भिन्न है, उसे सम्बन्ध है, ऐसा मानता है, वह मिथ्याभ्रम से मानता है। समझ में आया? आहाहा! अब भी इसमें करना क्या? ऐसा है और ऐसा है।

करना यह कहते हैं कि भाई! तू चिदानन्दस्वरूप है। उसके अन्तर सन्मुख देख निर्मल पर्याय द्वारा और उससे विमुख विकारादि को स्पर्श नहीं, वह तेरी चीज़ नहीं। ऐसा उसे करनेयोग्य है। आहाहा! करने जैसा हाथ आता नहीं। करना क्या इसमें? भाई! तू प्रभु है न! और विकार तो पामर, दोष, अचेतन है। शरीर, कर्म अचेतन है। वे सब अचेतन देहस्वरूप है। भगवान ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द ज्योति है। वह चिदानन्द ज्ञायकज्योति अचेतन को स्पर्शती नहीं। उस अचेतन द्वारा चेतन स्पर्शा नहीं जाता। आहाहा! कहो, समझ में आया? इसका अर्थ यह हुआ कि पुण्य, दया, दान, व्रत के परिणाम से आत्मा अनुभव में आ सके, ऐसा वह है नहीं। वे तो विकल्प हैं, राग है। राग को भगवान चैतन्यस्वरूप स्पर्शा नहीं। और राग उसे स्पर्शा नहीं। स्पर्शे बिना उससे कैसे प्राप्ति हो? आहाहा! समझ में आया? यह अभी ऐसे धड़ाका (चोट) लगते हैं। हाय... हाय...! सोनगढ़वालों ने क्या किया? सोनगढ़वालों ने नहीं, भगवान को कह। देखा न! आया न! कितने लेख आये हैं? विस्तार से आया, विस्तार से। विस्तार करे या नहीं? आहाहा!

उसको तुम परमात्मा जानो... लो, यह जानने का कहा, देखो! यह क्रिया कही। जो आत्मा ज्ञानस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु है, वह कर्म को, विकार को स्पर्शता नहीं और कर्म तथा शरीर उसे स्पर्शते नहीं। ऐसे आत्मा को तू परमात्मा आत्मा उसे जान, अन्दर में जान। उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और धर्म कहा जाता है। आहाहा! कहो, रतिभाई! है कहीं? सुनी थी बात वहाँ? दान दो तो होगा, ढींकणा दो तो होगा, दया पालो तो होगा। कपूरभाई! इसमें है या नहीं? देखो! सामने पुस्तक रखी है उसमें। बहियों के नामा तो मिलाते हैं या नहीं बनिये, दीवाली के दिनों में। कितना लेना-देना है हमारे और

तुम्हारे ? यह दीपावली। नामा तो मिलाओगे या नहीं ? तेरे और मेरे क्या अन्तर है, ऐसा भगवान कहते हैं। तुझे नामा मिलाना आता नहीं। आत्मा का मेल निकालना तुझे आता नहीं।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द की, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। वस्तु किसे कहें ? वस्तु दुःखरूप होगी ? वस्तु विकाररूप होगी ? वस्तु कर्मवाली होगी ? वस्तु शरीरवाली होगी ? वस्तु तो चिदानन्दमूर्ति निर्मल आनन्द है। उस आत्मा को तू आत्मा जान कि जो आत्मा अपनी निर्मल अनुभूति से प्राप्त होता है। और निर्मल अनुभूति से विपरीत विकार द्वारा या कर्म और शरीर द्वारा, वह प्राप्त नहीं होता। ऐसा जो आत्मा, उसे अन्तर में आत्मा जान। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : अन्तर में जान, ऐसा कहा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहे परन्तु ? आत्मा अन्तर में वस्तु शुद्ध है, उसे इस प्रकार से शुद्ध जान। ऐसा कहते हैं। श्रद्धा, ज्ञान द्वारा निर्णय कर। सिर फँसा है देह में। धूल में भी नहीं। सिर में आत्मा नहीं और आत्मा में सिर नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। सिर में आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं और आत्मा में सिर नहीं। किसका सिर फिर गया ? कहते हैं। समझ में आया ?

उसी स्वरूप को वीतराग निर्विकल्पसमाधि में तिष्ठकर चिन्तवन करो। यह जानने की व्याख्या की। वह जानने की व्याख्या ही यह। जानना अर्थात् ? **उसी स्वरूप को...** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यपिण्ड, उसे वीतराग निर्विकल्प शान्ति (द्वारा जाना)। राग, पुण्य-पाप के कर्म का फल और उससे रहित भगवान, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसकी शान्ति—ऐसी निर्मल वीतरागी परिणति द्वारा इसमें स्थिर होकर उसकी एकाग्रता कर। चिन्तन कर अर्थात् एकाग्रता कर। आहाहा ! अरे ! एक गाथा समझे तो एक में पूरा हो। आहाहा ! अब लड़के और बहुएँ कहाँ रही होंगी ?

मुमुक्षु : सब सबके घर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबके घर में ? परन्तु अपने घर में आते हैं न ? याद करे, तब आवे राग। वह चीज़ तो कहाँ आती है इसके घर में ? राग आवे। राग भी तेरी चीज़ नहीं,

भगवान अन्दर से भिन्न है। गजब बात, हों! दुकान याद आवे। याद आवे तो क्या हो? यहाँ आ जाती होगी? याद आवे। याद आवे ज्ञान, परन्तु उसके साथ 'यह मेरी' ऐसा भाग आवे, वह राग। जानने जितनी वह अलग चीज़ है। यह तो कहे, यह मेरी। यह और कहाँ से घुसाया? जानने में तो सब चीज़ें आती हैं। उनमें सबमें 'यह मेरी' कहाँ से लाया तू? खण्ड कहाँ से किया तूने? समझ में आया? जाननेवाला भगवान जाने सबको। जानना तो सब जाने। परन्तु उसमें जानने से यह मेरा पुत्र और यह शरीर मेरा, उसमें आया कहाँ से? मूढ़ता के कारण ऐसी भ्रमणा तूने उत्पन्न की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करावे-पड़ावे? धूल? मात्र राग और मोह किया था। भीखाभाई! क्या होगा यह सब? गये न मलूकचन्दभाई अभी? आहाहा!

यह आत्मा जड़रूप देह में व्यवहारनयकर रहता है,... अनुपचरित कहा न? **सो देहात्मबुद्धिवाले को नहीं मालूम होती...** टीकाकार ने तो ऐसी बात ली है जिसे पुण्य-पाप के भाव, देह, कर्म की क्रिया मेरी है, ऐसा माननेवाले को आत्मा हेय वर्तता है। अन्दर है न? हेय-उपादेय की व्याख्या तो देखो! भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघन आनन्दकन्द पूर है, आनन्दपूर आत्मा है, ज्ञान का पूर है। ऐसे आत्मा को पुण्य-पाप, राग-द्वेष, शरीर, कर्म मेरे हैं—ऐसा जिसने माना, वह हेय चीज़ है, उसे उपादेय माना, उसे आत्मा हेय हो गया। समझ में आया?

दो चीज़ें कही। एक ओर शुद्ध भगवान आतमराम तथा एक ओर पुण्य-पाप, कर्म, शरीर। अब जिसे पुण्य-पाप, शरीर मेरा—ऐसी ममत्वबुद्धि है, उसे पुण्य-पाप, शरीर उपादेय हुए। भगवान शुद्धात्मा उसे हेय हो गया। श्रद्धा में उसने छोड़ दिया। हेय अर्थात् छोड़नेयोग्य। अज्ञानी को छोड़नेयोग्य आत्मा है और अज्ञानी को आदरनेयोग्य पुण्य-पाप और देह है।

वही शुद्धात्मा देह के ममत्व से रहित (विवेकी) पुरुषों के आराधने योग्य है। धर्मी जीव को पुण्य-पाप, शरीर आदि हेय वर्तते हैं। तब ज्ञानानन्दस्वरूप उसे उपादेय वर्तता है। भाई! यह तो लॉजिक से बात है, हों! न्याय से बात है न? ऐसा नहीं कि

खींच-तान के बात (की है - ऐसा) नहीं। वीतरागदेव न्याय-लॉजिक से बात करते हैं। समझ में आया? ओहोहो! जिसे भगवान आत्मा शुद्ध पवित्र आनन्दधाम परमस्वरूप परमात्मा, परमस्वरूप परमात्मा, उसकी जिसे रुचि और उपादेय है, उसे पुण्य-पाप, शरीर, वाणी, कर्म हेय हो गये हैं। वे छोड़नेयोग्य हैं। यह स्वरूप, वह आदरणीय है।

जिसे शुद्ध चिदानन्दस्वरूप उपादेय, आदरणीय, अंगीकार करनेयोग्य नहीं, ऐसे अज्ञानी को पुण्य-पाप, देह मेरे हैं, वह अंगीकार करनेयोग्य है, उसे आत्मा हेय वर्तता है। कहो, जेठाभाई! आहाहा! यह राम की क्रीड़ावाले को, आत्माराम की श्रद्धा-ज्ञानवाले को आत्मा उपादेय है। उसे पुण्य और पाप और शरीर, कर्म वे आदरणीय नहीं परन्तु हेय हैं। राम की क्रीड़ा छोड़कर पुण्य और पाप, शरीर, वाणी मेरे माननेवाले वह सब उपादेय वर्तता है, तब भगवान पूरा परमात्मा उसे हेय वर्तता है। आहाहा! वाह रे! परमात्मप्रकाश! यह परमात्मप्रकाश है। छोटाभाई! आहाहा! वैराग्य के पद को ... बहुत। आता है न इसमें?

यह तो कहते हैं, एक चोट में दो टुकड़े। भगवान शुद्ध चैतन्य वस्तु ज्ञायकभाव आत्मा अर्थात् परमस्वरूप आत्मा, परम शुद्ध स्वरूप विकार, शरीर, कर्म रहित, परमस्वरूप आत्मा, वह जिसे उपादेय, दृष्टि में आदरणीय वर्तता है, ऐसे धर्मीजीव को शुद्ध आत्मा—परमात्मा, वही मेरी चीज़ मानी है। उसे पुण्य-पाप, शरीर, कर्म मेरे नहीं, ऐसा हेय माना है। कहो, सेठी! शशीभाई! ऐसी सीधी-सादी बात है। कपूरभाई! व्यापार की उसमें न समझ में आये, ऐसा नहीं यह। आहाहा!

यह कहते हैं कि जितनी शरीर की क्रियायें, बाहर की क्रियायें, बाह्य पदार्थ, आत्मा के अतिरिक्त बाह्य के सब पदार्थ और उनमें होते कर्म बँधे हुए, यह देह और होते पुण्य-पाप के भाव, उसमें जिसे उपादेय, यह ठीक है, मुझे ठीक है, मेरे हैं—ऐसा जिसने माना है, उसे भगवान परमात्मा अनादेय—हेय—छोड़नेयोग्य आत्मा है, ऐसा उसने माना है। और जिसने भगवान शुद्ध चैतन्यघन आत्मा ज्ञानमूर्ति वस्तु, वही मैं, अर्थात् कि वही मुझे आदरणीय चीज़ है, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान द्वारा वही आत्मा उपादेय है अर्थात् कि वही मैं हूँ। वह मैं हूँ, वह आदरणीय है और राग-द्वेष, वे मेरे नहीं, इसलिए आदरणीय नहीं। इसलिए ज्ञानी को विकार से लेकर देह हेयरूप से दिखाई देती है और

आत्मा उपादेयरूप से दिखाई देता है। आहाहा! उपादेय का अर्थ (यह कि) अपनी यह चीज़ इतनी है, ऐसा उसे दिखाई देता है। अज्ञानी को पुण्य-पाप, शरीर, कर्म, इतना ही मैं हूँ, उसे ऐसा दिखाई देता है। मोहनभाई! आहाहा! योगीन्द्रदेव ने भी जंगल में कैसी गाथायें ली हैं! देखो! आहाहा!

योग, योग—जुड़ान। जिसने भगवान आत्मा में जुड़ान किया कि मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ, उसके अस्तित्व को स्वीकार किया, वह निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान द्वारा, अनुभूति द्वारा स्वीकार हुआ। वह आत्मा उसे उपादेय है। उसे पुण्य और पाप, शरीरक्रिया, जितनी सब क्रिया हो, वह जानने में है, परन्तु आदरनेयोग्य है नहीं। आहाहा! अज्ञानी को पूरे परमात्मा की आड़ डालकर, भगवान पूर्णानन्द का कन्द प्रभु अन्दर, उसके महान अस्तित्व, महासत्ता, महासत्तारूप अनन्त गुण का धाम, उसका अनादर करके, आदर नहीं करके अर्थात् अनादर करके, पुण्य और पाप के विकल्प, शरीर, कर्म, एक वर्तमान समय की दशा, वह मेरी, उनका आदर किया, उसे भगवान का अनादर हो गया है। आहाहा! समझ में आया? कहो, इसमें समझ में आये ऐसा नहीं? लक्ष्य में तो आवे ऐसा है न? प्रयोग करने में भले इसे मेहनत पड़े। ऐ... भीखाभाई! आहाहा! चन्द्रकान्तभाई! मुश्किल भी आ जाये, यहाँ देश में हो तो आ जाये। गोता मार जाये। देखो! यह खीर परोसी जाती है। यह दीवाली के दिन की खीर है। आहाहा! अरे! भगवान! भरे आनन्द के बर्तन में खाता नहीं और तुझमें नहीं, उसे खाने जाता है, मूर्ख है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह गुजराती आया इसलिए? इनकी माँ को बराबर समझ में आये, ऐसा।

भगवान आत्मा आनन्द के बर्तन से भरपूर प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञायक से भरपूर भगवान, ऐसे बर्तन को छोड़कर जिसमें तू कहीं नहीं, ऐसे पुण्य-पाप, विकार, शरीर को 'मेरा' मानकर तू हार गया है, भाई! आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहो, रतिभाई! बराबर न्याय से बात है या नहीं? आहाहा! और जिसने भगवान आत्मा के बर्तन में देखा आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ, ऐसी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान से जिसने

आत्मा का आदर किया, उसे पुण्य-पाप के भाव हेय, जहर वर्तते हैं। तो फिर यह पैसा-फैसा, और पैसेवाले, धूलवाले, यह तो ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! देवशीभाई! क्या होगा यह? यह मकान-बकान बनावे, उसमें बराबर बनाते हैं या नहीं? अच्छा बनावे। वे इन मगनभाई के मित्र हैं तो बराबर ध्यान रखते हैं। अरे... अरे! यह गजब बात, भाई! राम की क्रीड़ा... क्या आता है? 'कंचन और कामिनी चौकी आडी शामनी, राम की रमत को वही लूटे...' ऐसा उन लोगों में आता है। उसे खबर नहीं वस्तु की, वह तो बातें करे। 'कंचन और कामिनी चौकी आडी शामनी, राम की रमत को वही लूटे...'

यहाँ कहते हैं, यह राम-आत्माराम भगवान ज्ञान की मूर्ति शुद्ध चैतन्य। शुद्ध अर्थात् आनन्द, शुद्ध अर्थात् कि दुःख नहीं, शुद्ध अर्थात् कि अपूर्णता नहीं, शुद्ध अर्थात् कि पवित्रता का पूर्ण धाम भगवान, उसे आत्मा कहते हैं। उसकी क्रीड़ा में पुण्य और पाप मेरे, यह माननेवाला आत्मा की क्रीड़ा को लूट लेता है। आहाहा! यह व्यवहार मेरा, कहते हैं, (उसमें तू) परमात्मा का अनादर करता है। प्रभु! क्या हो? उसकी—पुण्य की क्रिया करते... करते... करते... आत्मा प्राप्त होगा। मांगीरामजी! दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभ परिणाम करने से (हो जायेगा)। यहाँ तो कहते हैं, शुभ जहर है। चैतन्य अमृत से विपरीत है। उसका आदर किया, उसने भगवान आत्मा का अनादर किया है। भगवान आनन्द से भरपूर, लोग नहीं कहते? भरे बर्तन से पेट भराया नहीं और जूठन चाटने जाये। समझ में आया? कितने ही लोग ऐसे होते हैं न? घर में रूपवान स्त्री है और भरे बर्तन हुआ नहीं और वहाँ कोलिन और वाघरण के पास जाये, तुझे कुछ भान नहीं।

भगवान परमात्मा पुकार करते हैं कि हे आत्मा! तुझमें अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति भरे पड़े हैं। उन्हें छोड़कर तू पुण्य-पाप की जूठन चाटने जाता है। मोहनभाई! आहाहा! अर्थात्? कि जो तुझमें नहीं, उन्हें 'मेरा' मानना, वह जूठन चाटने जाता है। जूठन है, दुःखदशा है, विकार का अनुभव करता है। आहाहा! समझ में आया?

दो बातें ली हैं। पाठ में—टीका में देखो! '**शुद्धात्मानुभूतिरहितदेहे वसन्नपि देहममत्वपरिणामेन सहितानां हेयः स एव शुद्धात्मा देहममत्वपरिणामरहितानामुपादेय**'

एक की दो बात की। शब्दार्थ बराबर किया नहीं। कितना करने जाये? हिम्मतभाई को कहना कितना? करे कितना? वरना यह तो .... लो। समय कहाँ मिले? वह यहाँ पूरा होता नहीं। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ३५

आगे जो योगी समभाव में स्थित हैं, उनको परमानन्द उत्पन्न करता हुआ कोई शुद्धात्मा स्फुरायमान है... क्या कहते हैं? जो कोई योगी अर्थात् भगवान आत्मा, शुद्धस्वरूप की दृष्टि—सम्यक् दृष्टि, वह योगी है। अपने शुद्धस्वरूप में जुड़ान करनेवाला, उसे योगी कहते हैं। और पुण्य-पाप तथा शरीर में एकाकार करनेवाला, उसे भोगी कहते हैं। समझ में आया? जो कोई योगी **समभाव में स्थित हैं,...** अपने आनन्दस्वरूप में शान्ति द्वारा स्थित है, **उनको परमानन्द उत्पन्न करता हुआ...** वह भगवान आत्मा। **परमानन्द उत्पन्न करता हुआ कोई शुद्धात्मा स्फुरायमान है...** यह आत्मा, उसे एकाग्र होने से परमानन्द उत्पन्न करता हुआ यह आत्मा प्रगट होता है। यह स्फुरायमान अतीन्द्रिय आनन्दवाला वह मैं हूँ। शुद्धात्मा प्रगट होता है, परम आनन्द लेता हुआ शुद्धात्मा प्रगट होता है। समझ में आया? ओहोहो!

३५) जो सम-भाव-परिट्ठियहँ जोइहँ कोइ फुरेइ।
परमाणंदु जणंतु फुडु सो परमप्पु हवेइ॥ ३५॥

परमात्मा किसे कहना? परमात्मा अर्थात् यह आत्मा, हों! परमात्मा, परमात्मा हो गये, वे उनके घर के परमात्मा। वे परमात्मा ऐसा कहते हैं कि मेरे पास कहीं तेरा परमात्मा नहीं कि तू मेरे सन्मुख देखने से तुझे परमात्मपद मिले। ऐसा परमात्मा तीर्थंकर कहते हैं, तेरा परमात्मा तेरे पास है। उसके सन्मुख देख, वह आनन्द से स्फुरायमान होकर प्रगट होगा, यह आत्मा। आहाहा! समझ में आया?

अन्वयार्थ :- 'समभावप्रतिष्ठितानां' समभाव अर्थात् जीवित, मरण,... शरीर का जीवन हो, मरण हो, उसके कारण से मुझे कुछ नहीं। जिसमें दोनों में समभाव है।

और विषमभाव करे तो भी जीवन कहीं घट जाये, बढ़ जाये, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! **जीवित, मरण, लाभ, अलाभ,...** बाहर की चीज़ की प्राप्ति या अप्राप्ति—दोनों में जिसे—सम्यग्दृष्टि को समभाव है। बाहर की चीज़ के लाभ से, अलाभ से मुझे कुछ लाभ है नहीं। अलाभ से मुझे कुछ नुकसान नहीं और बाहर के लाभ से मुझे लाभ नहीं। बाहर की चीज़ें धूल आवे और जाये। कपूरभाई! कठिन बात यह, भाई!

सुख, दुःख,... सुख-दुःख संयोग प्रतिकूल और अनुकूल। अनुकूल संयोग हो या प्रतिकूल हो, उसमें धर्मी को समभाव है। क्योंकि अनुकूल वह सुखरूप नहीं, प्रतिकूल, वह दुःखरूप नहीं। वह तो कल्पना थी कि अनुकूल, वह ठीक; प्रतिकूल, वह अठीक। कल्पना थी, वस्तु में ठीक-अठीकपना है नहीं। ऐसा जो धर्मीजीव समभाव, अनुकूल-प्रतिकूल में एकरूप जानता हुआ समभाव रखता हुआ (परिणमता है)। **शत्रु, मित्र इत्यादि इन सबमें समभाव...** आहाहा! शत्रु-मित्र धर्मी को है नहीं, परन्तु जगत की दृष्टि से माने हुए अनिष्ट और इष्ट ऐसे पदार्थ, उनके प्रति धर्मी को समभाव है। शत्रु-मित्र कोई जगत में है ही नहीं। ऐसे शत्रु-मित्र के जोड़े में समभाव है।

जीवित-मरण में समभाव है। जीवन हो या इस समय में मृत्यु हो, उसमें मुझे कुछ लाभ-अलाभ का कारण नहीं। सुख-दुःख, संयोग अनुकूल-प्रतिकूल हो। अरे! अवसर आया संयोग भोगने का और अब मृत्यु आयी। कितने ही ऐसा कहते हैं। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। लड़के ठीक जगे और पैसा-बैसा हुआ, वहाँ मुझे उठना (मरना हुआ)। वह तो बात दूसरी थी। दूसरे कहे, अब तुम नियम लो, नियम। तब कहे, अरे! परन्तु अवसर आया भोगने का, अब नियम लो। यह लो। ऐसी एक बात थी। सेठी! मुश्किल से अवसर आया। पुत्र हुए ठीक, दो-पाँच लाख रुपये आये, अब खा-पीकर... क्या कहलाता है? ऐशो-आराम में रहूँगा। तब कहे, अब नियम लो, फलाने का, भोग का। हाय.. हाय..! होली उसे आयी यह बाहर की अनुकूल भोगने की। जयचन्दभाई!

मुमुक्षु : वहाँ डोला उठा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ डोला उठा, पूरा हो गया। हाय.. हाय! क्या है परन्तु अब

तुझे ? अपने को और पर को दोनों के लिये, हों ! दूसरे को लाभ-अलाभ देखकर प्रसन्न हो, अलाभ देखकर नाराज हो, तो वह भी मूढ़ है। उसे कब बाह्य चीज़ के कारण लाभ-अलाभ आत्मा में था ? आहाहा ! अनुकूल-प्रतिकूल संयोग को देखकर दूसरे के लिये भी ऐसा कहता है कि अरे ! उसे अनुकूल, मुझे प्रतिकूल। किसी को अनुकूल-प्रतिकूल है ही नहीं, वह वस्तु समभाव रखनेयोग्य है। आहाहा ! समझ में आया ? सवेरे याद कराया था। आठ बजे जायें तब याद रखना। भाई को कहा था। कहो, समझ में आया ? सवा आठ का पहला व्याख्यान है न ?

जीवित-मरण। आहाहा ! शरीर का आयुष्य हो या छूट जाओ, उसमें आत्मा को क्या ? वह चीज़ ही मुझमें नहीं, उसे (और) मुझे क्या सम्बन्ध ? बाहर की चीज़ में... साठ वर्ष में पुत्र (हुआ), बाँझ का लांछन टूटा। समकिती को जिसमें समभाव है। एक राग जरा हुआ था, उसका यह फल ? नहीं, वह राग और वह चीज़ मेरी नहीं न ! आहाहा ! समझ में आया ? साठ वर्ष में पुत्र हो। पाँच लाख, दस लाख और पचास लाख की पूँजी हो (तो वह) सम्हाले। वरना भतीजा ले जायेगा। मूढ़ ! परन्तु तेरा भी कहाँ है और उसका भी कहाँ है ? किसकी होली लगायी तूने ? जेठाभाई ! आहाहा ! उसमें उसे भतीजे के साथ बनती न हो और इसको पुत्र न हो। स्वयं के पास पच्चीस लाख की पूँजी हो। हाय... हाय ! मर जाने के बाद उसको जायेंगे। यह रहा वैरी। कहाँ वैरी-दुश्मन, किसका माना परन्तु तूने ? शत्रु कौन और मित्र कौन जगत के अन्दर ? समझ में आया ?

जिसे आत्मा शान्तमूर्ति प्रभु है, ऐसी दृष्टि हुई है, उसमें जिसका जुड़ान है, उसे बाहर की दो चीज़ में कहीं विषमता-समता है नहीं, ठीक-अठीक है नहीं। वह जाननेयोग्य चीज़ है। आहाहा ! **इत्यादि...** ऐसे शरीर में रोग-निरोग ले लेना। पुत्र, परिवार में रोग-निरोग। सब आनेवाला हो, वह आता है और न आनेवाला हो, वह नहीं आता। मुझे तो उसके लिये पर से कुछ लाभ-अलाभ है नहीं। ऐसी जिसकी दृष्टि पर के जुड़ान से छूट गयी है और चैतन्य भगवान के जुड़ान में दृष्टि समभावी हुई है, उस समभाव में **परिणत हुए...** आत्मा शान्ति... शान्ति, श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति। सम्यक्श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान। सच्चा स्वरूप है, उसे प्रतीति में लिया। खोटा उसमें चाहे जो हो, मुझे कुछ है नहीं। ऐसे श्रद्धा-ज्ञान और समभाव में परिणत पर्याय से प्रगट होता हुआ।

जिनके शत्रु-मित्रादि सब समान है,... परम योगीश्वर लिये हैं। कहो, समझ में आया? पर की अनुकूलता से आत्मा को क्या सुख है? प्रतिकूलता से क्या दुःख है? बाँझ मरे, उसमें आत्मा को क्या नुकसान है? और दस पुत्र जीवे, उसमें आत्मा को क्या लाभ है? मोतीरामजी! नहीं? इनको दस पुत्र हैं। जीवित दस हैं। नौ विवाहित और एक बालब्रह्मचारी।

मुमुक्षु : पैर दबावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैर क्या (दबावे)? वह तो एक व्यक्ति अभी है, वरना कहाँ अकेले थे दो जने। वहाँ वे सब लहर करे। वहाँ उन्हें क्या है यहाँ? किसके कारण से कौन? अरे! गजब। पुत्र-बुत्र बराबर हो तो सेवाचाकरी करे। मूढ़ है। किसकी सेवाचाकरी? देह की? देह की पर्याय बदलती होगी पर के कारण? और देह की पर्याय बदले, उसमें तुझे लाभ होगा? समझ में आया? कठिन भाई यह! यह इंजैक्शन अलग प्रकार का, हों!

उस जीव को ऐसी शान्ति प्रगट होती है। किसके द्वारा? वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन की बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ५, शुक्रवार, दिनांक १५-१०-१९६५
गाथा - ३५ - ३६, प्रवचन - २४

३५वीं गाथा चलती है। देखो! यहाँ आया। यह आत्मा, अन्तर वस्तु आत्मा है, वह परमात्मास्वरूप है, परमस्वरूप है। उसका शुद्ध आनन्दकन्द (स्वरूप है)। परमात्मा जो पर्याय में परमात्मा अरिहन्त और सिद्ध हुए, ऐसी ही परमात्मा की शक्तिस्वरूप यह आत्मद्रव्य है। प्रत्येक वस्तु ऐसी है आत्मा की। वह परमात्मस्वरूप कैसे प्राप्त हो? कि **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप अभेदरत्नत्रय जिसका स्वरूप है, ऐसी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में तिष्ठे हुए हैं, उन योगीश्वरों के हृदय में वीतराग परम आनन्द को उत्पन्न करता हुआ जो कोई स्फुरायमान होता है, वही प्रकट परमात्मा है, ऐसा जानो।** शब्दार्थ किया। क्या कहते हैं? यह भगवान आत्मा अन्दर है, यह उसका काम... उसे—आत्मा को आत्मा काम में कब आवे? समझ में आया? आत्मा, आत्मा को काम कब आवे? आत्मा परमानन्द शुद्ध वस्तु, उसकी अन्तर्मुख की दृष्टि सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसका रमणतारूप चारित्र, ऐसे अभेद निश्चय—सच्चे दर्शन, ज्ञान, चारित्रस्वरूप ऐसा जो अभेद समाधिभाव, निर्विकल्प भाव उसमें जो रहे, उन्हें परमात्मा अर्थात् आत्मा, परमानन्द की स्फुरणा द्वारा प्रगट होता है।

यह आत्मा वस्तु है पूर्णानन्द प्रभु। उसे शरीर, वाणी, कर्म, पुण्य-पाप के विकल्प राग, उसमें दृष्टि को समेटकर दृष्टि को अन्तर में... पूर्णानन्द प्रभु आत्मा वस्तु है, पदार्थ है। जिसकी खान में अनन्त आनन्द और ज्ञान पड़े हैं। ऐसा आत्मा सब विकल्प मन, वाणी, देह आदि के लक्ष्य से (विमुख होकर), उसके अपने स्वभाव सन्मुख लक्ष्य को मोड़कर जिस लक्ष्य से, जिस श्रद्धा से और जिस स्थिरता द्वारा वह आत्मा लक्ष्य में, दृष्टि में आवे, तब वह आत्मा परमानन्दसहित स्फुट होकर प्रगट होता है। उसे आत्मा अथवा परमात्मा कहते हैं। ओहोहो! क्या कहा? समझ में आया इसमें?

इत्यादि से कहा है,... देखो! दूसरे में कहा है। इष्टोपदेश में। जो कोई आत्मा

स्वरूप शुद्ध चैतन्य में जिसका जुड़ान है अन्तर में... जो अनादि का पुण्य-पाप के भाव, शरीर, कर्म और संयोगी चीज़, उसमें जिसका अन्तर जुड़ान है, जुड़ान अर्थात् उसकी ओर एकत्व है, उसे पर विकार की प्राप्ति होकर संसार की प्राप्ति होती है। आहाहा! परन्तु जिसे आत्मा एक समय में शुद्ध पूर्ण आनन्द वस्तु है, वह तो वस्तु है, उसमें जिसने अन्तर में जुड़ान—योग करके श्रद्धा, ज्ञान और लीनतारूपी योग द्वारा आत्मा की सन्धि की है, आत्मा को दृष्टि में लिया है। समझ में आया?

जो योगी आत्मा के अनुभव में तल्लीन हैं,... ऐसा आत्मा का स्वभाव शुद्ध-सन्मुख होकर उसकी ओर एकाग्र है। **और व्यवहार से रहित...** पुण्य-पाप के भाव, कर्म, शरीर ऐसा जो पूरा व्यवहार, उससे दृष्टि को बदलकर पूर्णानन्द प्रभु की ओर दृष्टि की, निश्चय में स्थिर है, व्यवहार से परान्मुख है। पूर्ण स्वभाव शुद्ध चैतन्य द्रव्य की जिसमें सन्मुखता है और विभाव, शरीर से जिसकी अन्तर में विमुखता है, उसे आत्मा कैसा है, वह प्रगट होता है। आहाहा! बहुत सादी संक्षिप्त भाषा में यह अकेला माल है। पकवान, अकेला पकवान है। आहाहा!

मुमुक्षु : निरोगी को पाचन हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा निरोगी ही है।

मुमुक्षु : तीनों काल?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल निरोगी है, पाचन होने के योग्य ही है। मात्र दृष्टि बदलने से दौलत नजर में आवे ऐसी है। जिसकी दृष्टि में पुण्य-पाप के भाव, कर्म, शरीर और यह धूल संयोग, उनमें सन्मुख दृष्टि है, उसे संसार के परिभ्रमण का लाभ होता है।

जिसकी दृष्टि वस्तुस्वरूप परमानन्द की मूर्ति द्रव्यस्वभाव पूरी चीज़ है। एक ओर पूरा गाँव पुण्य-पाप, शरीर, कर्म आदि; एक ओर भगवान पूरा पूर्णानन्द प्रभु। उसके अन्तर सन्मुख अर्थात् जुड़ान। अन्तर सन्मुख की दृष्टि, अन्तर सन्मुख का लक्ष्य और अन्तर सन्मुख की एकाग्रता—ऐसे निश्चय स्वभाव द्वारा जो स्वभाव में स्थित है, वह व्यवहार से परान्मुख है, परान्मुख है, पर से मुख मोड़ लिया है। स्वसन्मुख मुख

दृष्टि का किया है। आहाहा! समझ में आया?

जिसको अन्तर में (ऐसा है कि) पुण्य-पाप के भाव, शरीर आदि संयोग मुझे किसी काम के नहीं। मेरे काम के लिये वह चीज़ मुझे कोई मददगार नहीं। शुभ-अशुभभाव, शरीर-कर्म यह देहादि, वे सब साधन, वे मेरे शान्ति के काम के लिये बिल्कुल मददगार—सहायक जरा भी नहीं। उस ओर के सहायक मानने की दृष्टि में उस दु:खरूपी भाव को वे निमित्त और सहायक हैं। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वस्तु-वस्तु परमात्म पिण्ड प्रभु है। जिसमें से अनन्त केवलज्ञान और अनन्त आनन्द की नदियाँ जिसमें से बहती है, नदी, ऐसा चैतन्यपूर वस्तु के सन्मुख में दृष्टि, ज्ञान और लीनता द्वारा जुड़ान (करे) तो व्यवहार से परान्मुख, स्वभाव से सन्मुख है। उसे आत्मा दृष्टि में आनन्दसहित प्रगट आता है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बातें! यह तो अवलदोम आकाशगंगा को नीचे उतार दिया।

यह कहते हैं, जहाँ है वहाँ है वह सब। शुभाशुभभाव हो, कर्म हो, शरीर को, संयोग जहाँ है, वहाँ भले हो। मेरे आत्मा के काम के लिये वे मुझे बिल्कुल सहायक—मददगार बिल्कुल नहीं। आहाहा! मेरी शान्ति और मेरी स्वतन्त्रता के आनन्द की प्राप्ति के लिये विकल्प से लेकर कोई चीज़ मुझे मददगार—सहायक नहीं। मुझे सहायक मेरी श्रद्धा, ज्ञान स्वभाव-सन्मुख करने से वस्तु मुझे सहायक होती है। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहार से रहित शुद्ध निश्चय में तिष्ठते हैं,... इतने में सब डाल दिया। यह इष्टोपदेश की गाथा है। '**व्यवहारबहि:स्थिते:**' '**व्यवहारबहि:स्थिते:**' इष्टोपदेश गाथा ४७। भगवान आत्मा वस्तु, वस्तु। आत्मा है न? वस्तु है न? पदार्थ है न? चीज है न? अनादि-अनन्त है न? उसमें अनादि-अनन्त ज्ञान आदि महान स्वभाव का वह भण्डार आत्मा है। उसकी ओर की दृष्टि करने से... ऐ! हिम्मतभाई! बहुत अस्थिरता लगती है तुम्हारी, हों! ऐसे से ऐसे देखा करते हैं। क्या है यह? उस समय भी। पहले तुमको बहुत बार कहा है। कुछ समझ गये, ऐसा धारकर ऐसा नहीं करना, ऐसे समझो। एक

बार कहा था। हमको कहना आता है। अब कहने के लिये अब सुनने में अपने ध्यान रखो। अभी यह बहुत हो गया है। यह पचा नहीं जगत को। समझ में आया? ऐई! धरमचन्दजी! बात तो भाई! यहाँ ऐसी कठिन है। जहाँ धर्मात्मा की बात चले वहाँ दूसरे के सामने देखना और ऐसे-ऐसे देखा करना, इसका अर्थ न्याय नहीं, बिल्कुल विरुद्ध है। समझ में आया? यहाँ किसकी बात चलती है, यह तुमको आता है, ऐसा धारकर अब हो गया, जाओ। छोड़ दो। ऐ देवानुप्रिया! चन्दुभाई! यहाँ तो ऐसी बात है जरा।

बापू! श्रीमद् एक बार कहते हैं कि तुझे आया हो तो मैं कहता हूँ, उस शब्द को फिर से सुन और विचार। क्योंकि इस समय कोई दूसरे प्रकार का समय है। ऐसा करके उसे सत्य का विनय कराते हैं और असत्य का जो आदर है और सत् का अनादर होता है, यह अन्दर महा दोष होता है। खबर नहीं पड़ती, लोगों को इसकी खबर नहीं। छोटाभाई! यहाँ तो ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! क्या निकलता है और कैसे है, यह हमको आता है, यह हमको आता है और यह तो हमने धारा है। ऐसा रहने दे। समझ में आया? मगनभाई! भारी कठिन काम, भाई!

भगवान! तू कहाँ है? वह किस प्रकार से लक्ष्य में आवे, यह बात चलती है। समझ में आया? प्रभु! ओहोहो! यह पहले धारा, सुना, वह सब सुना और धारा नहीं तूने। सब खोटा है। समझ में आया? यह वर्तमान समय की पर्याय में उसकी स्थिति क्या वर्तती है, ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, वह वस्तु.. वस्तु... वस्तु है। ऐसे अनादि-अनन्त और स्वभाव ऐसा कहने से वहाँ ... नजर गयी, कि अरे! यह क्या? यह नजर उसके ऊपर नहीं। समझ में आया? ऐई! धरमचन्दजी! बहुत कठोर कसौटी, बापू!

भगवान आत्मा... आहाहा! अरे! जिसके सन्मुख देखना जहाँ है, उसकी ओर देखा नहीं और दूसरे की ओर देखकर उसका आदर किया है, उसे आत्मा आदर में और अन्तर में नहीं। समझ में आया? आहाहा! शशीभाई! क्या कहते हैं यह? यह तो अकेला मक्खन आया है।

कहते हैं, ओहोहो! यह एक टुकड़ा है इतना। **व्यवहार से रहित शुद्ध निश्चय में**

तिष्ठते हैं,... यह देखा और सुना है बहुत कि व्यवहार छोड़नेयोग्य है, ऐसा नहीं। समझ में आया? उसे पल-पल में उसके समय में भगवान आत्मा की सन्मुखता की दृष्टि और ज्ञान (वर्तते हैं)। जगत के सब चलते विकल्प और संयोग मुझमें है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? जमुभाई!

बीस वर्ष का एक पुत्र, यह दो वर्ष के विवाह में पुत्र बिना मर गया हो और घर में पचास लाख की पूँजी (हो), उसका मुख लाल कैसा हो? खून से लथपथ ऐसा लगे। उसे उस समय पूरी दुनिया उदास, उस समय चैन का रस उड़ जाये।

इसी प्रकार यहाँ भगवान आत्मा तेरी एक-एक पल, बापू! जाती है, भाई! कहते हैं कि वह स्वरूप ऐसा जो अनादि-अनन्त गुण का ढ़ेर शान्त आनन्द का कन्द प्रभु है, उसकी अन्तर की दृष्टि वर्तमान ज्ञान और उसकी लीनता द्वारा वह आत्मा अनुभव में आनन्दसहित प्रगट हो, उसे आत्मा और परमात्मा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! वह शुद्धस्वरूप भगवान, जिसकी नजर में एक बार दृष्टि में लेने से, समस्त विकल्प पुण्य, पाप, शरीर, वाणी सब जहाँ विमुख हो जाते हैं और एक ही स्वभाव की सन्मुखता में स्थिर होने से जो आत्मा ध्यान में, ज्ञान में, आनन्द की दशासहित आवे, उसे—आत्मा को परमात्मा कहते हैं। समझ में आया? ओहोहो! सन्ध्या के रंग जगत के, तब यह चैतन्यरत्न ध्रुव पिण्ड प्रभु, जिसकी अन्तर में नजर डालने से पूरी दुनिया विकल्प आदि सब हो, सब उपेक्षा हो गयी। अकेला भगवान आत्मा अन्तरदृष्टि में अपेक्षा करके अन्तर सन्मुख हुआ, उस काल में आनन्दसहित जो पर्याय प्रगट हुई, उसे परमात्मा आत्मा कहते हैं। तब उसे आत्मा प्रतीति में, सम्यग्दर्शन में आया—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? अब तो गुजराती भाषा हो गयी है। यहाँ बहुत महिलायें बेचारी समझे नहीं। हिन्दी कितने दिन से चलती थी। कहो, यह भाषा तो समझ में आये ऐसी है या नहीं? आहाहा!

मुनि होने को जब राजकुमार तैयार होते हैं। ऐसे नीलमणि की शिलाओं की जिनके घर में... वह क्या कहलाता है? टाईल्स हो जिसके घर में। (वे ऐसा कहे), माता! मेरा एक क्षण लाखों का जाता है, माँ! मुझे यह समय मिला, अरे! मेरे सन्मुख देखने में यह निमित्त बीच में मुझे विघ्न करते हैं। माता! फिर से माँ नहीं बनाऊँगा और

स्वभाव-सन्मुख होकर मुझे जन्म-मरण न रहे, ऐसी सावधान दशा के लिये, माता! मैं निवृत्ति लेता हूँ। माता! आज्ञा दे, माता! माँ! तुझे ऐसा करना पड़ेगा, हों! जब सुख चाहिए हो तो यह करना पड़ेगा। आहाहा! शास्त्र में यहाँ तक चलता है, बेटा! जा तेरे रास्ते, वह रास्ता हमको होओ। आहाहा! जेठाभाई! आहाहा! उस रास्ते जा भाई, जिसमें तुझे निर्भयता प्रगट होगी। उस रास्ते बेटा! हम भी आने के इच्छुक हैं, हों! आहाहा! इस प्रकार से आज्ञा देती है। जेठाभाई! आहाहा!

उन योगियों के ध्यान करके अपूर्व परमानन्द उत्पन्न होता है। देखो! उस योगी को अन्तर में स्वरूप की एकाग्रता करके, पुण्य-पाप के भाव आदि से लेकर पर में से लक्ष्य और एकाग्रता छोड़कर, भगवान आत्मा में एकाग्रता होती है। उसे **अपूर्व परमानन्द उत्पन्न होता है।** ऐसा कहते हैं कि उस भगवान सन्मुख को दृष्टि और ज्ञान में लेने से, वह भगवान आनन्द की धारा बहता हुआ आत्मा प्रगट होता है। वह आत्मा पुकार करता है कि यदि मैं यह ऐसा आनन्दमय हूँ। समझ में आया? ऐसे संकल्प, विकल्प के जाल जो दुःखरूप के जाल, उसे लक्ष्य में, दृष्टि में, रुचि में छोड़कर, भगवान आत्मा की दृष्टि में जाकर, वर्तमान, वर्तमान पर्याय में उसके सन्मुख होकर, वर्तमान में पर से विमुख होकर, जो आत्मा में आनन्दसहित पर्याय प्रगट होती है, वह आत्मा हूँ, वह परमात्मा हूँ, ऐसे आनन्द में, ध्यान में प्रगट होता है। आहाहा! इसने कभी प्रीति से बात सुनी नहीं। धरमचन्दजी!

हे प्रभाकरभट्ट! जो आत्मस्वरूप योगीश्वरों के हृदय में स्फुरायमान है,... देखो! योगी अर्थात् स्वरूप में एकाग्र होनेवाले योगीश्वर। चाहे तो चौथे में हो, पाँचवें में हो, छठवें में हो। आहाहा! जिसने भगवान आत्मा पूर्णानन्द में दृष्टि का योग जोड़ा है, ऐसे धर्मात्मा को **हृदय में स्फुरायमान...** जो आत्मा हृदय में—ज्ञान की पर्याय में स्फुरायमान यह आत्मा, हे योगीश्वर! वह उपादेय है, वही एक आदरणीय है। समझ में आया?

जो योगी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लगे हुए हैं,... ओहो! एक-एक समय जिनका, स्वरूप की सन्मुखता की रुचि, ज्ञान और रमणता में जिनका लगा है, वे वीतराग शान्ति में **लगे हुए हैं, संसार से परान्मुख हैं,...** संसार शब्द से शुभ-अशुभ विकल्प और पर की सन्मुखता के भाव और परवस्तु। आहाहा! जिससे परान्मुख है,

उन्हीं के वह आत्मा उपादेय है,... क्या कहा ? यह क्या कहा ? किसे आत्मा आदरणीय है ? किसे आत्मा उपादेय है ? जिसे ज्ञान में अकेला पूर्णानन्द आदरणीय अन्तर में वर्तता है और पुण्य-पाप से लेकर सब भाव जिससे दृष्टि में परान्मुख हो गये हैं, उसे आत्मा उपादेय है। समझ में आया ? उसने आत्मा पकड़ा है, उसने आत्मा को जाना है, उसे आत्मा अन्तर आदरणीय हुआ है कि, जिसे उस क्षण सब विकल्प से लेकर (समस्त) संसार हेयरूप वर्तता है। आहाहा! समझ में आया ?

जो योगी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लगे हुए हैं, संसार से परान्मुख हैं, उन्हीं के वह आत्मा उपादेय है,... यह क्या कहा है ? देखो! पाठ है, हों! यह। '**अत्र वीतराग-निर्विकल्पसमाधिरतानां स एवोपादेय**' उसे वह आत्मा आदरणीय है। जिसे भगवान आत्मा जिसके सन्मुख की पर्याय में, आनन्द की पर्याय प्रगट होकर जिसे विकल्प के व्यवहार से लेकर हेय वर्तता है, ऐसे आत्मा को यह आत्मा उपादेय है। उसे विकल्प से लेकर सब भाव हेय वर्तते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

'**तद्विपरीतानां हेय**' आहाहा! क्या कहते हैं ? जिसे भगवान आत्मा अन्तर्मुख की दृष्टि, ज्ञान और उपादेय आत्मा नहीं, उसे पुण्य-पाप, विकल्प और परपदार्थ उपादेय है, उसे भगवान आत्मा हेय वर्तता है। समझ में आया ? सेठी! आहाहा! यह आत्मा प्रभु पूर्ण अनाकुल आनन्द का कन्द, उसके सन्मुख में जिसकी दृष्टि, ज्ञान से आत्मा का आदर किया है, उसे ही यह आत्मा उपादेय आदरणीय है, ऐसा अनुभव में माना और ज्ञात हुआ है। उसे विकल्प से लेकर सब संसार ज्ञान में हेयरूप वर्तता है। आहाहा! ऐसी तो वस्तु की स्पष्ट बात है, अब इसमें गड़बड़ कहाँ है कहीं ? आहाहा!

और जो देहात्मबुद्धि विषयासक्त हैं,... देखो! जिसे अन्दर में राग की रुचि और प्रेम वर्तता है, शरीर के प्रति सन्मुखता का प्रेम वर्तता है, कर्म आदि बाह्य सामग्री का प्रेम और रुचि वर्तते हैं, विकल्प से लेकर बाह्य पदार्थों के प्रति जिसे आसक्ति अर्थात् 'वह मैं' ऐसा जिसे अन्तर में 'यह मैं' ऐसा करके मजा लगता है, ऐसे आत्मा को परमात्मा, वह हेय है। आहाहा! कपूरभाई! यह तो एक चोट के दो टुकड़े। बराबर, लो! देखो! यह परमात्मा का अन्तर मार्ग, यह वीतराग ने कहा हुआ मार्ग है। यह वीतराग ने कहा हुआ मार्ग कहीं बाहर में नहीं रहता। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपने सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान को छोड़कर विकल्प पुण्य-पाप के परिणाम और बाह्य पदार्थ में सन्मुखता की दृष्टि की रुचि में पड़ा है, उसे परमात्मा स्वयं दृष्टि में हेय वर्तता है। समझ में आया? और विकल्प से लेकर यह पूरा संसार उसे उपादेयरूप से वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक (गया)। नग्न दिगम्बर मुनि अनन्त बार बाहर स्त्री, परिवार छोड़े, ग्यारह अंग का पठन किया। गहराई में उसे वह विकल्प जो वर्तता है न, उसके सन्मुखता की दृष्टि गयी नहीं, स्वभाव सन्मुख की दृष्टि हुई नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी देहात्मबुद्धि अथवा उस राग की बुद्धि जिसे रुचि में वर्तती है। देह की सुविधा, बाहर की सुविधा, संयोग की सुविधा, उसमें आसक्त का अर्थ वही वर्तमान रागादि सब चीज़ें, उनके ऊपर जिसके ज्ञान का थाप पड़ा है, जो 'यही मैं हूँ' ऐसा पड़ा है। आहाहा! **वे अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं,...** अर्थात् वह अपने स्वरूप को उपादेय नहीं मानता। ऐसा इसका अर्थ यह है, टीका में ऐसा है, भाई! वह तो ऐसी भाषा वास्तव में उपादेय हेय करके वह स्थिति अच्छी है। परन्तु बराबर करना आयी नहीं। सब कितना करना परन्तु? वरना मन को हो गया कि, यह परमात्मप्रकाश (का अनुवाद) हिम्मतभाई करे तो कैसा... हो। अभी मुश्किल से अष्टपाहुड़ होता नहीं, उसमें यह कहाँ हो? कहो, समझ में आया? यह होना हो वह होता है। यह तो एक बात है। आहाहा! यह हेय-उपादेय जो सम्बन्ध रखा है... आहाहा! गजब काम किया है।

कहते हैं, आठ वर्ष की बालिका हो, जानपना बहुत थोड़ा हो, और... समझ में आया? परन्तु जिसे, अन्तर स्वरूप चिदानन्द भगवान पूरा द्रव्य स्वरूप है, उसके सन्मुख का उपादेय भाव आत्मा का हो गया है, उसे विकल्प से लेकर सब चीज़ दृष्टि में हेय, वर्तमान दृष्टि में हेय वर्तती है। आहाहा! वह कदाचित् विवाह करे, शादी करे। आहाहा! तथापि वह भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जो स्व के सन्मुख होकर दृष्टि में, अनुभव में आया, वही उपादेय है। जितने शुभ-अशुभ विकल्प आदि उठें, वे सब मेरे लिये हेय हैं। आहाहा! समझ में आया?

और बाह्य का त्यागी होकर घूमता हो, अन्तर में एक विकल्प के राग को, कण को, विकार को उपादेय (माना हो) अर्थात् वहाँ ही दृष्टि की छाप पड़ी है, वहाँ दृष्टि की

जमावट पड़ी है। वहाँ ही पूरा सर्वस्व मानकर यह राग अथवा यह मैं, ऐसा भले उसे (ख्याल न आवे), परन्तु पूरा आत्मा पूर्णानन्द की ओर उसकी सन्मुखता नहीं, इसलिए उसकी विमुखता होकर उसके विरुद्ध रागादि भाव में जिसकी वर्तमान में सन्मुखता में लीनता पड़ी है, उसे पूरा आत्मा परमात्मा दृष्टि में हेय वर्तता है। आहाहा! समझ में आया?

संसार से परान्मुख हैं, उन्हीं के वह आत्मा उपादेय हैं,... अर्थात् क्या कहा? जिसके अन्तर ज्ञान और दृष्टि में भगवान आत्मा अकेला उपादेय आदरणीय है, उसे पूरा संसार हेय है। समझ में आया? और जिसे **देहात्मबुद्धि विषयासक्त हैं,...** विषयासक्त का अर्थ ऐसा नहीं कि छियानवें हजार स्त्रियों का भोग और उसमें लीनता। ऐसा प्रश्न नहीं। छोटे में छोटा राग हो और संयोग भले थोड़े हों, परन्तु उस राग और संयोग में जिसकी रुचि के परिणाम जो ऐसे स्थापित कर पड़ा है, स्वसन्मुख, सन्मुखता का माहात्म्य जिसे आया नहीं, उसे राग और पर का जिसे माहात्म्य वर्तता है। बस, वह माहात्म्यवाला भगवान को भूल गया, वह भगवान को हेय मानता है। समझ में आया? आहाहा!

अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं,... नहीं जानता का अर्थ? '**तद्विपरीतानां हेय**' जिसे एक शुभराग का भी ऐसे वहाँ लक्ष्य होकर सन्मुखता और प्रेम वर्तता है, उसे विषय की आसक्ति ही वर्तती है। विषय अर्थात्? स्वविषय जो भगवान आत्मा श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का स्वविषय आत्मा, उसे उपादेयरूप से छोड़कर, परविषय जो विकल्प आदि व्यवहारनय का जो विषय, उसमें जिसकी रुचि, लीन और आसक्त है, वह विषय में ही आसक्त है। भगवान आत्मा में उसकी दृष्टि नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

उनको आत्मरुचि नहीं हो सकती... यह अन्त में हेय की व्याख्या की। '**तद्विपरीतानां हेय**' भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन की जिसकी रुचि नहीं, उसका लक्षण क्या? समझ में आया? कि, जिसे स्वचैतन्य भगवान स्व-विषय को छोड़कर और राग पुण्य-पाप विकल्प और शरीरादि जिसके ज्ञान के पर विषय हुए हैं, उनमें जिसकी दृष्टि पड़ी है, उस विषयासक्त जीव को आत्मा परमात्मा की रुचि है नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! जेठाभाई! नहीं अभी आते, यह तो बहुत महँगा किया, ऐसा

कहा करते थे। मुश्किल से समकित में आये, वहाँ तो कहे, अभी महँगा है। ऐई! कहते हैं न? बापू! भाई! आहाहा! भगवान! तेरा मार्ग कोई अलौकिक है, प्रभु! वह कहीं बाहर से मिले, ऐसा नहीं। आहाहा! यह ३५ गाथा (पूरी) हुई। प्रत्येक गाथा में उपादेय—हेय लिख रखा है। ऊपर अन्दर पड़ा है और नीचे नहीं।

★ ★ ★

गाथा - ३६

३६। यह अमृत की बातें चलती है। आहाहा! बाकी सब जहर घुलता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह परमात्मप्रकाश की बात है। भगवान प्रकाश में आया और बहिरात्मबुद्धि हेय हो गयी। अन्तरात्मबुद्धि जहाँ प्रगट हुई, वहाँ बहिरात्मबुद्धि हेय हुई। बहिरात्मबुद्धि की रुचि जहाँ रागादि और यह ठीक, ठीक, यह हो तो मुझे ठीक है, यह हो तो मुझे ठीक। ज्ञान में गहरे-गहरे ऐसे, ऐसे हो तो... ऐसे हो तो... ऐसे हो तो... यह देखूँ, यह जानूँ, यह पढ़ूँ, यह इससे मुझे ठीक—ऐसा जहाँ पड़ा है, उसे आत्मा-परमात्मा हेय वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? सुजानमलजी! कहो, दो और दो=चार जैसी बात है। आहाहा!

आगे शुद्धात्मा से... यह तो गुजराती है, हों! अब तो समझ में आये ऐसा है या नहीं? यह महिलायें इनकार करती थीं, कितने ही कहे, समझ में नहीं आता। **आगे शुद्धात्मा से जुदे कर्म...** भाई! वस्तु तो जैसी हो, वैसी आवे न? गुजराती हो तो कहीं वस्तु कुछ हल्की हो जाये दूसरी? भाषा गुजराती हो परन्तु भाव तो जो हो वह आवे। दूसरा क्या हो? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक। बहुत अच्छा। इसकी माँ की अनुकूलता सही। बहुत महिलायें हैं। यह है। हमारे यहाँ गोदावरी बहिन है, वे कहाँ वहाँ... ? वहाँ भठियारा में थे। कहा गये? मुश्किल से निकले हैं। भठियारी को ... हों! खबर है? चूल्हे के पास पकाया करे। अरे! भगवान ऐसा आत्मा प्रभु तेरे पास ऐसा (पड़ा है), आनन्द का पाक

हो, ऐसा आत्मा पड़ा है। आहाहा! 'नजर के आलस्य से रे तूने निरखा न नयन से हरी।' अरे! तेरी नजर के आलस्य से तूने भगवान को देखा नहीं, प्रभु! आहाहा! अन्दर आनन्दकन्द परमात्मा साक्षात् शुद्ध चैतन्य द्रव्य पड़ा है पूरा। उसकी अस्ति के आश्रय से आनन्द (होता है), ऐसा तूने कभी स्वीकार नहीं किया। समझ में आया? उसकी नजर की नहीं। जहाँ निधान के ऊपर नजर करनी थी, वहाँ इसने कभी देखा नहीं। जहाँ धूल, राग और पुण्य और पाप तथा उनके फल और कर्म धूल बाहर, वहाँ नजर करके सन्तोष पालिस चढ़ गया। कपूरभाई! है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। ऐई! जयचन्दभाई! आहाहा!

शुद्धात्मा से जुदे कर्म और शरीर इन दोनोंकर अनादिकर बँधा हुआ... कर्म डाला अब जरा। शरीर था न? अब कर्म डाला। **यह आत्मा है, तो भी निश्चयनयकर शरीरस्वरूप नहीं है, यह कहते हैं—**

३६) कम्म-णिबद्धु वि जोइया देहि वसंतु वि जो जि।
होइ ण सयलु कया वि फुडु मुणि परमप्पउ सो जि॥ ३६॥

आहाहा! '**कर्मनिबद्धोऽपि योगिन्**' अब जरा कर्मनिबद्ध को समझाते हैं। देह में रहा होने पर भी भिन्न समझाया। अब कर्म में रहा है न? कि नहीं। प्रत्येक गाथा में अन्तर है, हों! ऐसा समझना नहीं कि बात वह की वह आती है यह।

कर्मनिबद्धोऽपि योगिन् देहे वसन्नपि य एव।
भवति न सकलः कदापि स्फुटं मन्यस्व परमात्मनं तमेव॥ ३६॥

आहाहा! लसलसते लड्डू परोसे हैं अकेले। कली के लड्डू हों और फिर दाँत न हो तो खा जाये एकदम। तुम्हारे क्या कहते हैं? कळी... कणी। कळी के लड्डू कहते हैं न? बूँदी, बूँदी। ऐसे घी में तली हुई बूँदी। दाँत की आवश्यकता नहीं, दाढ़ हो तो चले जाये ऐसे लड्डू हैं यह। लो! आहाहा!

हे योगी! अर्थात् कि हे आत्मा-सन्मुख देखनेवाले! हे भगवान आत्मा! तेरे सन्मुख देखनेवाले और जगत से विमुख पड़ा हुआ आत्मा। **जो यह आत्मा यद्यपि कर्मों**

से बंधा है,... यहाँ बदला। ध्यान रख कि, तुझे ऐसा लगता है कि कर्म से बँधा हुआ है न, रजकण धूल से और **देह में रहता भी...** समझ में आया? कर्म से बँधा हुआ देह में रहता। एक बात को बदला। **परन्तु कभी देहरूप नहीं होता,...** वह देहरूप हुआ नहीं, कार्मणशरीररूप भी हुआ नहीं। आहाहा! भगवान ज्ञानमूर्ति चैतन्यप्रभु, वह वस्तु तो चैतन्यसूर्य है, वह कहीं एक कर्म के रजकण से बँधे? सूर्य के तेज के सामने आड़ डालो तो वह कहीं ऐसे आडा रहता होगा? बादल आर-पार दिखाई दे कि यह सूर्य है। भगवान चैतन्य का सूर्य है न प्रभु! तुझे तेरी खबर नहीं। मैं कितना और कैसा और कहाँ?

कहते हैं, **यद्यपि कर्मों से बँधा है, और देह में रहता भी है,...** यह बँधा हुआ देह में रहता है, ऐसा तुझे दिखता है, ऐसा कहते हैं अभी, हों! बात बदलते हैं। **परन्तु कभी देहरूप नहीं होता,...** याद रख कि कर्म से बँधा हुआ तत्त्व तुझे दिखता है, देह में रहा हुआ दिखता है, परन्तु यह तत्त्व देह और कर्मरूप से हुआ है ही नहीं। **उसी को तू परमात्मा निश्चय से जान।** भगवान आत्मा द्रव्य कर्म के संयोगरूपी बन्धन जड़ का दिखता है, तथापि उससे रहित ऐसा जो परमात्मा है, उसे तू आत्मा जान। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी दुकान के बन्धन, फलाना के बन्धन, ढींकणा के बन्धन। धूल के भी नहीं, कहते हैं। यह कर्म का बन्धन नहीं तुझे, कहते हैं। वस्तु चिदानन्द ज्योति पड़ी है, प्रभु! उसके जड़कर्म के बन्धन, उसके सहित देह में दिखता है। हम कहते हैं कि कर्मरूप और शरीररूप वस्तु हुई ही नहीं। ऐसी भगवान चिदानन्द ज्योति निराली पड़ी है। तू दृष्टि में लेता नहीं, वह तेरी नजर का आलस्य है। धरमचन्दजी! आहाहा! यद्यपि कहा न? **'कर्मनिबद्धोऽपि'** समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। **'कर्मनिबद्धोऽपि'** वस्तु सिद्ध करनी है। वापस कर्म का निमित्तपना, जड़पना है, देह है, ऐसा है, वैसा है, तथापि ऐसे भिन्न हैं। चिदानन्दप्रभु, परमानन्द की ज्योति वस्तु हूँ। (तूने) तेरी कभी खबर की नहीं। कितना और कैसा और कहाँ और कैसे हूँ, उसकी तूने कभी सम्हाल की नहीं। ऐसे का ऐसा यह बाहर में

प्रयासरत रहा। पुण्य-पाप, शरीर, वाणी, मन धूलधाणी, सन्ध्या के रंग जैसे फिर से घड़ीक में कुछ हो जाये। आहाहा! भाई ने ऐसा कहा कपूरभाई ने कि, सुनने को मिला नहीं। आहाहा!

बँधा हुआ, बसता हुआ दिखाई दे परन्तु बसा नहीं, कहते हैं। कर्म से बँधा हुआ दिखाई दे, वह बँधा हुआ नहीं। शरीर में बसता हुआ दिखाई दे, वह शरीर में बसा हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? गाय की गर्दन में वह डोरा नहीं डालते? डोरा... डोरा। उस डोरे से गाय पृथक् ही है। कि नहीं? पृथक् न हो तो पृथक् निकलेगी (किस प्रकार)? ऐसे-ऐसे निकाले तो ऐसे ऊपर से निकल जाये। गले में डोरा रखते हैं न? उस डोरे में होने पर भी गला डोरे से भिन्न है, डोरे से बँधा हुआ नहीं। आहाहा!

इसी प्रकार आत्मा अनन्त-अनन्त ज्ञान की महा पूँजी प्रभु, वह कर्म के डोरे में बँधा हुआ दिखाई दे, तथापि वह बँधा हुआ नहीं। समझ में आया? यह गाय ऐसे-ऐसे करके करे तो डोरा निकाल डाले, एकदम। एक हुआ नहीं। डोरा और गला एक हुआ है? तब तो गला पृथक् पड़े नहीं और डोरा बाहर निकले नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य के नूर के तेज से भरपूर भगवान पूरा, वह बन्धन में रहा होने पर भी बन्धन से बँधा हुआ तत्त्व नहीं। देह में रहा होने पर भी आत्मा में बसा हुआ है, देह में बसा नहीं। आहाहा! अरे! इसने कभी सुना नहीं इसने, हों! इसने इसे कभी सुना नहीं। बाकी सब बातें सुनीं। कहो, जमुभाई!

कहते हैं, **परन्तु कभी देहरूप... 'कदापि'** देखो! भाषा। **देहरूप नहीं होता,...** कभी वह कर्म से बँधे हुए में रहा है, ऐसा है ही नहीं। वह तो पृथक् ही रहा है। देह में रहा है, ऐसा है ही नहीं। देहरूप नहीं। कभी हुआ ही नहीं। तीन काल-तीन लोक में कर्म और शरीररूप से वस्तु हुई नहीं। कर्म कर्म में, शरीर शरीर में, भगवान भगवान में है।

मुमुक्षु : अद्भुत बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्भुत बात है, कहते हैं। मान्यता से मानकर बेड़ी डाली। यह मुझे, यह कर्म मुझे, यह शरीर मुझे, वह यह मुझे, यह यह मुझे, परन्तु यह मुझे

पूरा चिदानन्द है, उसके सामने इसने देखने की कभी दरकार नहीं की। आहाहा! समझ में आया?

उसी को तू परमात्मा निश्चय से जान। क्या कहते हैं? परमात्मा भी **निश्चय से जान।** स्फटं शब्द है न? वास्तव में वह भगवान तेरा, वह वस्तु भगवान तेरी अन्दर विराजमान चीज़ है, वह कर्म से बँधा हुआ होने पर भी उस रूप हुई नहीं, शरीर में बसने पर भी बसा नहीं। वह अपने में अबन्धस्वरूप से भगवान अपने स्वरूप में विराजमान है। उसे तू आत्मा और परमात्मा जान। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- परमात्मा की भावना से विपरीत... अपना स्वरूप जो शुद्ध आनन्दकन्द, ज्ञान की ज्योति वस्तु स्वयं है वह परमात्मा। स्वयं परम-आत्म अर्थात् परम स्वरूप। परम स्वरूप द्रव्य। उसकी भावना, उसकी अन्तर एकाग्रता, उससे विपरीत। भगवान शुद्ध चैतन्य वस्तु से, एकाग्रता से विपरीत, ऐसा लिया है, हों! यह क्या कहा? यह वस्तु, वह वस्तु परमानन्द शुद्ध चैतन्य वस्तु, उससे विपरीत न कहकर, उसकी भावना से विपरीत, (ऐसा कहा है)। वह भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु की जो श्रद्धा, ज्ञान और लीनता की एकाग्रता, वह भावना। उससे विपरीत **राग, द्वेष, मोह...** शुभ-अशुभभाव और पर में सावधानभाव, उस स्वसावधानी की भावना से, स्वस्वभाव की सावधानी की भावना से, परसावधानी का भाव स्वसावधानी से विपरीत है। क्या कहा? भगवान आत्मा... आहाहा! न्यालभाई! यह तो न्यालकरण की बात है। देखो न! अब ऐसी लगी है न! कल बोलते थे। वे स्वामीनारायण के लोग न्यालकरण कहते थे। स्वामीनारायण हुए न! शराब छुड़ावे, ऐसा छुड़ावे। न्यालकरण, न्यालकरण (कहे)। न्यालकरण तो आत्मा है, भाई! उसके सामने देखे वह न्याल कर दे, ऐसा वह आत्मा है, परन्तु पर सामने देखना छोड़े तो। समझ में आया? क्योंकि भगवान आत्मा के सन्मुख की जो एकाग्रता है, ऐसी जो पर्याय, शुद्ध परमात्मा निज स्वरूप पूर्ण द्रव्य-वस्तु, उसकी जो सावधानी की भावना—एकाग्रता अर्थात् कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान निर्मल पर्याय, उससे पुण्य-पाप के राग-द्वेष के भाव, वे विपरीत हैं। कहो, समझ में आया?

आत्मा से तो विपरीत (है ही), अभी यहाँ तो वर्तमान पर्याय जो स्वभाव की

एकाग्रता चाहिए, उसकी एकाग्रता की पर्याय से यह एकाग्रता भिन्न पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी भगवान आत्मा वस्तु है या नहीं महान पदार्थ? एक हीरा देखने जाये तो ऐसे नजर ऐसी स्थिर करता है वहाँ। दूसरे से नजर छोड़ देता है। फिर भले उस समय चूरमा के लड्डू तैयार हों। समझ में आया? भूख लगी हो परन्तु हीरा यदि आया ऐसे पाँच हजार का देखने, अपने पिता घर में गहने लाये। संयुक्त है, जिसे पहनना हो वह पहने घर में। आहाहा! कैसा है! लड्डू पड़े रहें एक ओर। पड़े रहते हैं या नहीं? दूधपाक पड़ा रहे। और सौगाद आया हो। क्या कहलाता है वह? सौगाद। पैसे और सब गहने लेकर, यह दस हजार के गहने। ओहोहो! समधि वे लाये हैं न। लड़की के लिये ऐसे गहने विचारे नहीं थे, हों! हमने विचारे थे पाँच-सात हजार के। परन्तु यह तो एक हीरा पचास हजार का साथ में। और दूसरे गहने तीस-चालीस (हजार) के। आहाहा! सब इकट्ठे हों। लड्डू पड़े रहे। न बुलाये तो भी देखने आवे वहाँ। आहाहा! तेरा चैतन्य परमात्मा हीरा देखने तो आ, कहते हैं। सब छोड़कर, अब छोड़ और छोड़ और इसे देख।

मुमुक्षु : सौगाद आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। गहने चढ़ाने आया है वह। आहाहा! सब प्रसन्न हो, वह लड़की प्रसन्न हो। अब अपने गहने पहनूँगी। उसकी माँ प्रसन्न, उसका बाप प्रसन्न, ढीकणा और... धूल में धूल प्रसन्न। आहाहा!

भगवान परमात्मा, ऐसा अपना निज स्वरूप, उसकी जो एकाग्रता की भावना, श्रद्धा, ज्ञान की, उससे विपरीत पुण्य-पाप के भाव से लेकर सब विपरीत। यहाँ तो अकेला विकार लेना है। **जो राग, द्वेष, मोह हैं, उनकर यद्यपि...** अशुद्धनिश्चयनय से बँधा है, ऐसा लेना। व्यवहारनय के बदले। टीका में है, भाई! **'कर्मभिरशुद्धनयेन'** है। इन्होंने व्यवहार किया है। परन्तु यहाँ अशुद्ध चाहिए। भगवान आत्मा, देखो! वह कर्मबन्धन लिया था न? वह नहीं लिया, यहाँ विकार की अशुद्धता ली है। बस। कर्म जड़ रह गये, शरीर पर रह गया। भगवान हीरा चैतन्य भिन्न रहा। अब उसकी एकाग्रता नहीं, उसके स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान नहीं। इसलिए उसकी श्रद्धा, ज्ञान से उल्टे मिथ्याश्रद्धा,

यह पुण्य-पाप में मजा / ठीक, ऐसा मजा वह मुझे ठीक, वह मुझे शान्ति, उससे मुझे सावधानपना, मुझे समाधान रहता है—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और ऐसा जो राग-द्वेष भाव, वह आत्मा को अशुद्ध निश्चयनय से पर्याय में बँधा हुआ दिखता है। क्या कहा यह ?

अशुद्ध निश्चय। सिद्ध करना है, जड़कर्म सिद्ध करना है, कर्म सिद्ध करना है, भगवान सिद्ध करना है और उसके साथ उसकी सन्मुखता की पर्याय से विरुद्ध पर्याय सिद्ध करनी है। आहाहा! कथन पद्धति! यह भाव पुण्य-पाप के विकल्प भाव, राग-द्वेष, पर में ऐसे विकल्प करूँ तो ठीक, ऐसे पर के सन्मुख देखूँ तो ठीक, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष उसकी पर्याय में, शुद्ध स्वभाव से भिन्न पर्याय में अशुद्धपने की पर्याय से बँधा हुआ वह दिखता है। समझ में आया ?

देह में तिष्ठ रहा है, तो भी निश्चयनय से शरीररूप नहीं है,... आहाहा! देह में रहा है, अशुद्ध बन्धन पर्याय में दिखता है। देह में रहा है तो (भी) निश्चयनय से शरीररूप नहीं। वास्तव में सत्य स्वरूप से देखो तो वह शरीर और अशुद्धरूप हुआ नहीं। **उससे जुदा ही है, किसी काल में भी यह जीव जड़ तो न हुआ,...** ऐसे काल में भी भगवान चैतन्य द्रव्य अशुद्धरूप से पर्याय में रहा होने पर भी, **किसी काल में भी यह जीव जड़ तो न हुआ, न होगा, उसे हे प्रभाकरभट्ट! परमात्मा जान।** समझ में आया ? वह भगवान अशुद्ध पर्याय से वहाँ बँधा हुआ होने पर भी, शरीर में रहा हुआ दिखने पर भी, भगवान स्वयं अशुद्ध पर्याय और शरीर में रहा ही नहीं। ऐसा शुद्ध भगवान आत्मा, उसे तू आत्मा और परमात्मा जान। उसकी बात करेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ६, शनिवार, दिनांक १६-१०-१९६५
गाथा - ३६ - ३८, प्रवचन - २५

परमात्मप्रकाश अर्थात् 'निश्चयनयकर यह आत्मा ही परमात्मा है।' इस देह में बसता भगवान, वह आत्मा स्वयं ही परमात्मा है। यदि स्वरूप से शक्ति से परमात्मा न हो तो उसकी वर्तमान पर्याय में सर्वज्ञ हुए, वे कहाँ से हुए? समझ में आया? यह आत्मा ही परमात्मा है, ऐसा दृष्टि में लेने से पुण्य-पाप विकार आदि, शरीर-कर्म आदि उस बन्ध में होने पर भी, यह गाथा 'बन्ध में होने पर भी' की है। अब इसके बाद 'निर्बन्ध होता होने पर भी' ऐसा कहेंगे। शरीर और कर्म के सम्बन्ध में होने पर भी आत्मा शरीर, कर्मरूप कभी हुआ नहीं। और शरीर और कर्म, वे आत्मारूप कभी हुए नहीं। समझ में आया?

'**बद्धोऽपि**' शब्द है इसके अन्दर में। '**निर्बद्धोऽपि**' बाद में कहेंगे। कर्म के रजकण और यह शरीर, मिट्टी—यह अजीवतत्त्व होने पर भी इनके सम्बन्ध में यह कर्म और शरीररहित चीज़ है। उसरूप हुआ नहीं और कर्म और शरीर, वे आत्मारूप हुए नहीं। ऐसे आत्मा के स्वभाव को तू तेरी दृष्टि में लेकर उसे परमात्मा जान। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि आत्मा वस्तु है, ज्ञान की मूर्ति आनन्दस्वरूप वस्तु और पुण्य-पाप के भाव, कर्म और शरीर दोनों के बीच सांध है। दो की एकता कभी हुई नहीं। समझ में आया? गाथा '**बद्धोऽपि**' पृथक् है, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐ सेठी!

चैतन्यसम्पदास्वरूप आनन्दमूर्ति वह वस्तु आत्मा पदार्थ है। वह पदार्थ कर्म, शरीररूप हुआ नहीं, इसलिए उसकी भिन्न ही दशा वर्तती है। वास्तव में तो पुण्य-पाप के विकल्प में और स्वभाव के बीच सन्धि है, दोनों एक हुए नहीं। आहाहा! एक हुए हों तो भिन्न पड़े नहीं। भिन्न हैं इसलिए भिन्न पड़ते हैं। गजब बात, भाई! समझ में आया?

निश्चयकर आत्मा ही परमात्मा है,... भाई! तेरी दृष्टि में तेरा आत्मा पूर्ण आनन्द

कर्म, राग से भिन्न है, ऐसा तू अन्तर में श्रद्धा-ज्ञान में ले। वही परमात्मा तेरा तू है। तेरे लिये दूसरा कोई परमात्मा नहीं। तेरा परमात्मा तेरी दृष्टि से तुझे अलग हो गया है, उसे दृष्टि के समीप में ले। बस, यह बात करते हैं। समझ में आया?

उसे तू वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर... ऐसा भगवान आत्मा अन्दर वस्तु परमानन्द की मूर्ति, उसे तू पुण्य-पाप और शरीरादि की रुचि छोड़कर और वह वीतराग परमानन्द मैं हूँ, ऐसी रुचि, रागरहित रुचि करके और रागरहित अपने ज्ञान को पकड़ने की पर्याय प्रगट करके, वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर उसका ध्यान कर। ज्ञान कर, उसका ध्यान कर। आहाहा! समझ में आया? **सारांश यह है कि यह आत्मा सदैव...** आत्मा सदैव। सदैव अर्थात? तीनों काल में। वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों काल में भगवान वस्तु। **वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लीन...** वह वस्तु तीनों काल ऐसी है कि उसके ओर की रुचि श्रद्धा और ज्ञान में एकाग्र होने से, वह आत्मा उसे प्रिय है, वह आत्मा उसे उपादेय है। समझ में आया?

भगवान वस्तु परमानन्द की मूर्ति आत्मा स्वयं परमात्मा का स्वभाव धारण करता है। उसे राग की पर्याय से हटकर (ग्रहण करे)। क्योंकि उसमें वह नहीं और उसके द्वारा, उसके ऊपर लक्ष्य और आश्रय हो सकता नहीं। इसलिए पुण्य-पाप के विकल्परहित, निर्विकल्प वीतरागी परिणति द्वारा वह आत्मा सन्तों को, धर्मी को उपादेय है, वह आत्मा प्रिय है। धर्मी को पुण्य-पाप, शरीर, वाणी, वे अन्तर में प्रिय नहीं। उपादेय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मूढ़ों को नहीं। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य पिण्ड प्रभु, उसका जिसे प्रेम नहीं और पुण्य-पाप, शरीर, कर्म का जिसे प्रेम है, उसे वह भगवान अन्तर में अनादररूप से, हेयरूप से वर्तता है। समझ में आया? सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान द्वारा वह आत्मा उपादेय है, वही आत्मा परमात्मा है, ऐसे धर्म की दृष्टि में, धर्म की दृष्टि में धर्मी ऐसा जो भगवान आत्मा, वही उपादेय है। समझ में आया? अधर्म दृष्टि में पुण्य-पाप के, शरीर, कर्म के प्रेम में वही आत्मा अज्ञानी ने हेय किया हुआ है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो एक चोट और दो टुकड़े की बात है।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्दमूर्ति, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा जो चैतन्यपद

आत्मा स्वयं, उसके सन्मुख का आदर करके जो आत्मा की एकाग्रता करता है, उसे उस दृष्टि में आत्मा ही आदरणीय है, प्रिय है, हितकर है। दूसरा कोई हितकर नहीं। सम्यग्दृष्टि के ध्येय में आत्मा ही आदरणीय है, दूसरा कोई आदरणीय नहीं। समझ में आया? परन्तु राग और पुण्य-पाप और कर्म और शरीर के प्रेमी को, उनकी रुचिवन्त को, उनकी श्रद्धा करनेवाले को कि उनमें मैं, वह मैं हूँ—ऐसा माननेवाले ने भगवान पूरा हेयरूप से दृष्टि से छोड़ा है उसने। कहो, समझ में आया? आहाहा! कहो, यह समझ में आये ऐसा है या नहीं अब इसमें?

दो भाग है। तुझे पोषावे वह भाग ले। लड़के का भाग (हिस्सा) नहीं करते पिता? तरबूज का भाग करते हैं या नहीं? कि देख यह दो टुकड़े, देख यह। यह ऊँचा भाग है, परन्तु नीचे छोटा है। वह नीचे चौड़ा है, ऊँचा थोड़ा है, परन्तु दोनों भाग समान हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध चैतन्यदल आनन्द है, वह भाग तुझे पोसाता हो तो उसे दृष्टि में यह आत्मा ही तुझे उपादेय है, दूसरा कोई अंगीकार करनेयोग्य नहीं। और वह भाग तुझे न पोसाता हो और उससे विरुद्ध के शुभ-अशुभ परिणाम, उनका बन्धन और उनका फल, वह तुझे प्रीति में रुचिकर लगता हो तो भगवान का भाग तूने छोड़ दिया है। मांगीरामजी! कहो, बराबर है?

यह समझना, यह अमल में लाने जैसा है, ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐ देवानुप्रिया! आहाहा! यह शरीर—मनुष्य का देह, देव को वल्लभ है। कब हम मनुष्यदेह पायें और हम आत्मधर्म को धारण करें! इसलिए आचार्य शास्त्रकार मनुष्य को कहते हैं, हे देवानुप्रिय! हे देव को वल्लभ! यह आत्मा तुझे रुचता है? या विकार और शरीर तुझे रुचते हैं? दो में से एक भाग ले। मांगीरामजी! माँग, कहते हैं वह माँगना हो, उन दो में से एक। आहाहा! भगवान वस्तु...

एक ओर काले कोयले की खान, गोदाम भरा है बड़ा, एक ओर हीरे का बड़ा गोदाम भरा है। अब जिसके ऊपर नजर कर, वह तुझे आदरणीय है, इसी प्रकार यहाँ आत्मा में अनन्त आनन्द आदि के हीरा भरे हुए भगवान आत्मा पूरा गोदाम भरा है, गोदाम है। वह शुद्ध शक्ति के रत्न, चैतन्य रत्नाकर गोदाम है। आहाहा! यदि उसे दृष्टि में लेकर उसका आदर मान, तो पुण्य-पाप और शरीर-कर्म की रुचि तुझे छूट जाये,

उनका प्रेम रहेगा नहीं। और वह पुण्य-पाप और यह सब गोदाम कोयले के हैं, यदि तुझे इनका प्रेम है, रुचि है, पोसाण है (तो) भगवान पूरी हीरा की खान तुझे हेयरूप से वर्तती है। तुझे सन्मुख की देखने की दरकार नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह तो कहते हैं। भाई! तेरी दृष्टि में भगवान को बिठलाना है? या तेरी दृष्टि में विकार, कर्म और शरीर को बिठलाना है? कह, तुझे घर में किसे बैठाना है? आहाहा!

भगवान आत्मा। यहाँ तो दो, दो ही बात एक-एक गाथा में ली है। हेय और उपादेय, हेय और उपादेय। थोड़ी बात में महान सिद्धान्त! कब? अभी। इसका वायदा नहीं वापस। यह कहा है न प्रवचनसार में? आज ही यह कर, भाई! यह वायदा कर तो इसका अर्थ यह कि तुझे आत्मा रुचता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिसे रुचे, उसका वायदा नहीं होता, वायदा वाफल करे।

भगवान आत्मा... ओहोहो! शान्त अविकारी चैतन्यरस की खान पड़ी है, प्रभु! वह परमात्मा तू स्वयं है। वह तुझे तेरी दृष्टि में यदि रुचे, तो वही आदरणीय और उपादेय है। उस साधन से जो उपादेय है, वह साधन मोक्ष का कारण है। पृथक् है, उसे पृथक् करने का वह साधन है। आहाहा! समझ में आया?

अर्थात् यह पुण्य-पाप के भाव और व्यवहार, विकल्प आदि से यह लक्ष्य नहीं होता। इसलिए वे छूटने के साधन नहीं। भगवान आत्मा जो श्रद्धा, ज्ञान द्वारा, जो शान्ति द्वारा यह आत्मा उपादेयरूप से स्वीकार किया जाये, वह आत्मा मुक्तस्वरूप है, धर्मी है। ऐसे धर्म की दृष्टि में ऐसा धर्मी का आदर हुआ, उस धर्म की पर्याय के फलरूप से धर्मी की पूर्ण मुक्तदशा प्राप्त होगी, वह उसकी धर्मदशा साधन है। समझ में आया? यह सब उसी और उसी में समाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात सुनना मुश्किल पड़े।

मूढ़ों को नहीं। अरे! जिसे भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप रुचता नहीं, उसने वह भगवान आत्मा झटक दिया है जिसने श्रद्धा में से, हेय किया है जिसने मान्यता में से। दूसरा तो हेय क्या हो? समझ में आया? यह ३६वीं गाथा हुई। ३७वीं इससे सुलटी है।

★ ★ ★

गाथा - ३७

३७) जा परमत्थेँ णिक्कलु वि कम्म-विभिण्णउ जो जि।
मूढा सयलु भणंति फुडु मुणि परमप्पउ सो जि॥ ३७॥

है न? उसमें बन्धन था। '**कम्म-णिबद्धु वि जोइया देहि वसंतु**' था। अब निश्चय अर्थात् सच्ची दृष्टि से देखने पर **आत्मा देह और कर्मों से रहित है,...** भगवान आत्मा को सत्य स्वरूप को जैसा सत्य है, उस प्रकार से दृष्टि से देखने पर, वह भगवान कर्म और देह से बँधा हुआ नहीं। उसमें था कि बँधा हुआ होने पर भी पृथक् है। यहाँ (कहते हैं), बँधा हुआ ही नहीं। आहाहा! प्रत्येक गाथा में न्याय बदलते हैं। समझ में आया? आहाहा! निश्चय अर्थात् सच्चा, सत्य स्वभाव में, जो सत्यस्वरूप है, जैसा चैतन्य का और रागादि तथा कर्म आदि भिन्न हैं जिस प्रकार से, उस प्रकार से दृष्टि से देखने पर, वह देह और कर्मों से तो रहित ही वर्तमान है। आहाहा! समझ में आया?

तो भी मूढ़ों... अरे! स्वरूप की मुक्तता, विकार, कर्म, शरीर रहितता होने पर भी, उसके स्वरूप के अजान जीवों को, **शरीर स्वरूप मालूम होता है,...** उन्हें तो यह कर्म और शरीर ही दिखता है, ऐसा कहते हैं। वह पूरा है, वह दिखता नहीं। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य की ज्योति ज्ञान की मूर्ति, ऐसा आत्मा शरीर, कर्म और राग से वर्तमान में रहित होने पर भी, उसकी ओर की दृष्टि के अभाव के कारण, मूढ़ों को वह आत्मा उसकी अस्ति दृष्टि में आती नहीं। उन्हें तो अस्ति में यह आता है कि यह शरीर, यह पुण्य-पाप, यह कर्म वह मैं, यह मैं, ऐसा मूढ़ को उसके अस्तिपने का राग, द्वेष, शरीर और कर्म का अस्तित्व मूढ़ों को भासित होता है। भगवान कर्म और शरीर, रागरहित होने पर भी उस स्वरूप के अनजान को, उसके आदर बिना के जीव को, वह विकार, कर्म और शरीर ही मैं हूँ, ऐसा भासित होता है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

अमृत बरसा! ऐसी है यह अमृत की बात। आहाहा! देखो न! अकेला अमृत बरसाया है। आहाहा! ... जिसमें से अमृत का झरना झरे, ऐसे भगवान का तूने अनादर किया, उसे दृष्टि में ऐसी अस्ति को लिया नहीं और जिसमें वह विकार, कर्म, शरीर नहीं, उसकी अस्ति में तेरा सर्वस्व स्वीकृत हो गया, ऐसे मूढ़ को आत्मा आदरणीय नहीं

हो सकता। उसे तो यह शरीर, राग, यह... यह... यह... यह... (ही दिखता है)। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शरीर से धर्म माने उसे क्या कहा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर क्या? राग से धर्म माने, वह राग को ही आत्मा माननेवाला है। राग से, पुण्य से धर्म माननेवाला, वह आत्मा मूढ़ है। भगवान आत्मा राग से भिन्न पड़ा हुआ चैतन्यदल पूरा है, उसका वह अनादर करता है। ओहो! समझ में आया? यह बात की बात नहीं, हों! भाव में इसे बैठना चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान में अन्दर दो भाग पड़े हैं। एक ओर प्रभु अनन्त गुण का धाम, एक ओर पुण्य, पाप, विकार, कर्म और शरीर। मूढ़ों को, ऐसी पृथक् चीज़ पड़ी होने पर भी भासित नहीं होती और इस चीज़ में वे नहीं, वे उसमें इसे भासित होते हैं। आहाहा! अरे! पुण्यभाव में सुख-मजा माने, वह शरीर की पर्याय में मजा माने, लक्ष्मी में मजा माने, ऐसे मूढ़ जिसमें मजा है, उसका वह अनादर करता है। समझ में आया? जिसमें मजा है—आनन्द है, वास्तविक तत्त्व की शान्ति है, ऐसे तत्त्व को दृष्टि में, विश्वास में, आदर में न लेकर, जिसे यह पुण्य और पाप में सुख है, मजा है शरीर में, कर्म में, स्त्री में, पुत्र में, उसे—मजा माननेवाले मूढ़ को आत्मा हेय वर्तता है। आहाहा! समझ में आया?

उसने श्रद्धा में से आत्मा को छोड़ दिया है, उसने श्रद्धा में विकार, शरीर और संयोग में सुख है, ऐसा मानकर मूढ़ ने आनन्दमूर्ति (आत्मा की) दृष्टि में से छोड़ दिया है। आहाहा! समझ में आया? और जिसे आत्मा में आनन्द और मजा-सुख है, ऐसी दृष्टि से आत्मा का स्वीकार किया है, उसे पुण्य, पाप, शरीरादि में मजा है, यह बात उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? उस सम्यग्दृष्टि को भोग के काल में आनन्दमूर्ति उपादेय वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अन्तर प्रतीति दृष्टि में लिया, शुद्ध चिदानन्द आनन्दमूर्ति हूँ, उसे उपादेय वर्तता है। भोग के काल में अशुभ वासना और देह की क्रिया, वह दृष्टि में हेय वर्तते हैं। आहाहा! समझ में आया? और जिसे उस मिठास में आनन्द—मजा वर्तता है, राग में, देह की क्रिया में ठीक समाधान, उसमें ठीक है, ऐसा जिसे वर्तता है, ऐसे मूढ़ ने भगवान आत्मा छोड़ दिया है। आहाहा! उसे आत्मा हेयरूप से वर्तता है। समझ में आया?

अन्वयार्थ :- जो आत्मा निश्चयनयकर... निश्चय अर्थात् सत्य, सत्य है उस दृष्टि से देखें तो जैसा सत्यस्वरूप आत्मा का है, विकार, कर्म, शरीर से भिन्न, उस दृष्टि से देखे तो, **शरीर रहित है,...** भगवान तो वर्तमान में शरीररहित है। आहाहा! ...भाई! वर्तमान में शरीररहित होगा? यह सब लोचा है न साथ में? यह शरीर, यह हीराभाई, अरे! हीराभाई भाई करे वहाँ कितना हो जाये, लो! आहाहा! कहते हैं कि वे सब पर हैं। एक ओर कोयले की खान तथा एक ओर भगवान आनन्द के हीरा की खान। लूटना हो उतने लूट, यदि आदर करे तो। समझ में आया? दरवाजा खोल हीरा की खान का। धड़ाधड़ हीरा माणेक अधिक हो न ऐसे अधिक? दरवाजा खोले वहाँ ऐसा ढ़ेर हो पड़े। उस दरवाजे की आड़ में पड़ा हो और ऊपर से डाला हो वापस। दरवाजा बन्द करे और ऊपर से खिड़की हो उसमें से डाले हीरा। ऊपर की खिड़की हो न ऊपर की? वहाँ से डाले हों। दरवाजा बन्द रहे और वहाँ ढ़ेर (हों)। दरवाजा जहाँ उघाड़े तो धड़ाधड़ निकले।

भगवान आत्मा। अरे! चैतन्य रत्नाकर प्रभु का दरवाजा खोल—दृष्टि दे तो उसमें से हीरा निकला ही करेंगे तुझे। आहाहा! समझ में आया? और यह दरवाजा बन्द करना पड़े परन्तु पुण्य-पाप और पुण्य-पाप का बन्धन और उनके फल धूलवाले संयोग, प्रतिकूल-अनुकूल आदि सब जिसकी दृष्टि में हेय वर्तते हैं। हेय अर्थात् ज्ञेयरूप से भी हेयरूप से वर्तते हैं। जानने में आते हैं तो भी वे छोड़नेयोग्य हैं, छोड़नेयोग्य अर्थात् वह कहीं छोड़ने का विकल्प, ऐसा नहीं। इस ओर जहाँ आदर है, तो उस ओर आदर नहीं, इसका नाम हेय है। समझ में आया?

और कर्मों से भी जुदा है, तो भी... शरीररहित है, कर्मों से भी जुदा है। भगवान जुदा रत्न पड़ा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! जिसके ख्याल में आवे नहीं, सुनने में आवे नहीं, वह प्रयोग कब करे? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, **निश्चय व्यवहार रत्नत्रय की भावना से विमुख मूढ़...** मूढ़ की व्याख्या की। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, ऐसे निश्चयरत्नत्रयरहित और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र ने जो तत्त्व कहे, उनकी श्रद्धा का विकल्प आदि उन दोनों से मूढ़। प्रमाण का ज्ञान कराया।

शरीरस्वरूप ही प्रगटपने से मानते हैं,... देखो! **'स्फुटं'** हमारा भगवान तो शरीर

ही है, ऐसा प्रगटरूप से मानता है। आहाहा! प्रगटरूप से शरीर, वही मैं हूँ। और दूसरा अन्दर आत्मा है, (ऐसा कुछ नहीं)। शरीर से सुखी, वह हम सुखी, शरीर से दु:खी तो दु:खी, पैसे से सुखी तो सुखी, निर्धन से तो दु:खी। वह मूढ़ शरीर को ही आत्मा मानता है। आहाहा! प्रगटरूप से, हों! वापस भाषा ली है। '**स्फुटं**' आहाहा! जिसे बाह्य पदार्थ की सुविधा से सुविधा भासित होती है, जिसे बाह्य की असुविधा से असुविधा भासित होती है, वह भगवान को उस स्वरूप—शरीररूप ही मानता है। वह साधन स्वरूप ही, वह साधन स्वरूप ही जीव को मानता है। समझ में आया?

प्रगटपने से मानते हैं,... प्रत्यक्ष। उसे तो यही प्रत्यक्ष हो पड़ा है। वह ज्ञायक चिदानन्द प्रभु, महान प्रभु, चैतन्य महान प्रभु ऐसा भगवान, जिसे प्रेम जिसकी रुचि में वर्तता नहीं, उसे प्रगटरूप से यह शरीर आदि मैं हूँ, वही उसे प्रगटरूप से वर्तता है। समझ में आया? आहाहा! **सो हे प्रभाकरभट्ट!...** देखो! यह शिष्य को योगीन्द्रदेव कहते हैं। अरे! भगवान! **उसी को परमात्मा जान...** मूढ़ों को दृष्टि में आता नहीं और शरीरसुख जिसने माना है। ज्ञानी को पर से भिन्न वर्ते, ऐसा आत्मा, उसे हे शिष्य! तू परमात्मा जाना। इस जगत में तेरा परमात्मा दूसरा है, ऐसा है नहीं।

वीतराग सदानन्द निर्विकल्पसमाधि में रहकर अनुभव कर। लो! हे आत्मा! हे शिष्य! ऐसा कहते हैं, हों! भाई! यह करवट बदल। पहलू बदल, करवट बदल। ऐसे पुण्य-पाप, शरीर, कर्म को माना है, वह करवट बदल। बायें का दायां पहलू हो गया है, ऐसा। मुख ऐसे था वह ऐसे हो गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा हो वहाँ ऐसा हो, ऐसा हो तो ऐसा हो।

इस प्रकार भगवान आत्मा जो शरीर और कर्मरूप माननेवाला होने पर भी वह भगवान तो उनसे भिन्न ही है। ऐसा आत्मा, उसे तू परमात्मा जान। कोई दूसरा जगतकर्ता परमात्मा है और तेरे लिये बड़ा कोई ईश्वर है, महान कोई हजार हाथवाला कोई ईश्वर होगा, ऐसा है नहीं। वह अनन्त गुण के हाथवाला आत्मा है। हाथ अर्थात् अवयव, अवयव अर्थात् गुण और अवयवी अर्थात् गुणी। गुणी ऐसा भगवान अनन्त गुण के

अवयववाला, अनन्त हाथवाला वह भगवान है। आहाहा! वे तो हजार हाथ कहते हैं। ऐ... बापू! हजार हाथवाला भगवान है। आहाहा! अरे! कहाँ हजार हाथ ... ? यह कहेंगे यहाँ, हों!

भावार्थ :- वही परमात्मा शुद्धातमा के वैरी... आहाहा! हे भाई! तेरा प्रभु तेरे पास, तू स्वयं है। वह दृष्टि को बदलने से, नजर को बदलने से निधान दिखाई दे ऐसा है, कहते हैं। आहाहा! कहते हैं, उसे रागरहित शान्ति से अनुभव कर। ऐसा भगवान आत्मा, दूसरी चिन्ता छोड़कर उस भगवान के ओर की एकाग्रता की भावना द्वारा भगवान को अनुभव कर। वह परमात्मा तू ही है। समझ में आया? यह क्या करने का, ऐसा आया इसमें।

उस भगवान आत्मा के वैरी। मिथ्यात्व (अर्थात्) पुण्य-पाप में लाभ है, पर में लाभ है, पर साधन हो तो मुझे ठीक पड़े। ऐसे भगवान के, भगवान आत्मा के वैरी मिथ्यात्वभाव और **रागादिकों के दूर होने के...** उनकी ओर का पहलू छोड़ दे। ऐसा होने से, **दूर होने के समय ज्ञानी जीवों को उपादेय है,...** क्या कहते हैं? ऐसे पहले साधारण श्रद्धा में यह आत्मा, यह आत्मा उपादेय है और रागादि हेय है, यह बात नहीं। अन्तर में जब ज्ञानस्वरूप चिदानन्द की ओर ढलकर, एकमेक होकर आदरणीय में अभेद हुआ, आदरणीय में अभेद हुआ, उस काल में उसे उपादेय वर्ता। समझ में आया?

विपरीत शत्रु। यह पुण्य-पाप में मुझे मजा है, ऐसा मिथ्यात्वभाव, शरीर की अनुकूलता से मजा है, यह पैसे की अनुकूलता से मजा है, यह शरीर के सुन्दर अवयवों से मुझे मजा है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह भगवान परमात्मा का वैरी मिथ्यात्वभाव है। ऐसे रागादिभाव वे परमात्मस्वरूप में नहीं, इसलिए रागादि वैरी हैं। ऐसे भाव को दूर हटाकर स्वरूप सन्मुख के उपादेयभाव में रहे तब, उस जीव को यह उपादेय है, ऐसा निर्णय होता है। यह तो उस काल में सम्यग्दर्शन नाम पड़ता है, हों! यह शैली सब ली है। १४४। उस काल में सम्यग्दर्शन और ज्ञान, श्रद्धा में और मानने में आते हैं। (समयसार) १४४ गाथा। ओहोहो! सन्तों की वाणी की पद्धति तो एक ही प्रकार की सबकी है।

और जिनके मिथ्यात्वरागादिक दूर नहीं हुए... जिसे पुण्य-पाप की रुचि का प्रेम

हटा नहीं, शरीरादि संयोग में मजा है, ऐसा मिथ्यात्वभाव टला नहीं, ऐसे जीव को उपादेय नहीं। उस जीव को वह आनन्दमूर्ति हेय वर्तता है। ओहोहो! अद्भुत बात की है न परन्तु! दो बातें। ऐसे रागादि के प्रेमी को प्रभु का भाव हेय वर्तता है। प्रभुभाव के आदरणीय को यह रागादि के प्रेम का भाव दूर हो गया है। समझ में आया? यह तो सादी भाषा है और गुजराती है, अब इसमें नहीं समझ में आये, ऐसा है?

अरे! ऐसा नहीं मानना कि हम अनपढ़ हैं, ऐसा नहीं मानना कि हम स्त्री हैं, ऐसा नहीं मानना कि हम यह सब दीन और वीर्यहीन हैं। यह माननेवाले का भाव परमात्मा से वे सब भाव वैरी हैं। अपने परमात्मा से वे भाव वैरी हैं। समझ में आया? अरे! हम निर्बल। क्या कहते हैं यह स्त्री को? अबला। अबला और नबला और सबला। खोटी गड़बड़ की। हम अबला हैं, निर्बल हैं। भगवान! यह मान्यता तेरे परमात्मा से वैरी भाव की है। अरे! हमको पठन नहीं होता। अरे! भाई! पठन किसका करना है तुझे? यह भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु ढोर के जीव को भी भान में आ जाता है। पशु कहाँ पढ़ने गये थे? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक-एक की भी जरूरत नहीं, ऐसा अभी सिद्ध करते हैं। यह पशु को, मेंढ़क को कहीं शब्द की खबर नहीं। ऐसे भगवान अन्दर वस्तु ख्याल में लिया कि, यह तो आत्मा आनन्दमूर्ति है। उसे पुण्य-पाप के विकल्प आदि हेयरूप से सहजरूप से वर्तते हैं। समझ में आया? आहाहा! और बड़े चक्रवर्ती राजा मानधाता अरे! ग्यारह अंग के पढ़े हुए, नौ पूर्व के पढ़े हुए, जिसे अन्तर में भगवान आत्मा वर्तमान पूर्णानन्द रागरहित भिन्न तत्त्व है, उसका प्रेम नहीं, उसके उस पठन को, राग को अपना मानकर मूढ़ को आत्मा की खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह ग्यारह अंग और नौ पूर्व के पढ़े वह मेरा ज्ञान है। वह मैं हूँ अर्थात् इसका अर्थ कि शरीर, वही मैं हूँ। समझ में आया? वह पठन भी परसन्मुख के, वह पर की ओर का राग, शरीर, कर्म, वह सब चीज़ परसन्मुख जाती है। भगवान आत्मा से पर में जाता है। उस पर का जिसे प्रेम, उसे भगवान का प्रेम नहीं। उसमें कोई दूसरी चीज़ का काम नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

रागादिकों के दूर होने के समय... कहा है न? वह सब परसन्मुख का पठन, चतुराई, राग, सब बहिरात्म भाव है। उसमें हम हैं, उसे माननेवाले शरीर को ही, कर्म को ही, विकार को ही, स्वभाव से विरुद्ध भाव को ही अपना मानकर, जो आत्मा के वैरी हैं, उसमें टिके, उसे ज्ञानस्वरूप चिदानन्द उपादेय वर्तता नहीं, उसे हेय वर्तता है। आहाहा! कहो, नेमिदासभाई! इसमें कहीं बड़े पाट में धूल डालकर ऐकड़ा घूँटना और ऐसी यह बात नहीं यह कहीं। यह तो सीधी सट्ट जैसी बात है।

एक ओर यह भगवान आत्मा वस्तु है या नहीं? वस्तु है या नहीं? है तो अनादि -अनन्त है या नहीं? है तो कोई अन्दर शान्ति आदि गुण भरे हुए हैं या खाली है वह चीज़? वह विकार, कर्म से खाली है, परन्तु अपने अनन्त गुण से वह भरी हुई असंग चीज़ है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं, **जिनके मिथ्यात्व-रागादिक दूर नहीं हुए...** जिसे यह बाहर के विकारीभाव, पुण्यभाव, शरीरभाव, मजाभाव, अरे! बाहर के क्षयोपशम के भाव में भी जिसे अधिकपना दृष्टि में माना गया है, उसे भगवान आत्मा हेय वर्तता है। समझ में आया? **परवस्तु का ही ग्रहण है।** स्पष्टीकरण किया। '**सम्यगुपादेयो भवति तदभावे हेय**' ३७ है न? '**तदभावे हेय**' बहुत संक्षिप्त व्याख्या।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारी माँ के कारण या तुम्हारे कारण? आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ३८

आगे अनन्त आकाश में... अब देखो! इसकी—प्रभु की महिमा वर्णन करते हैं। **आगे अनन्त आकाश में एक नक्षत्र...** अनन्त आकाश। जिसका माप नहीं दशों दिशा में इतना व्यापक आकाश। उसमें एक इतना नक्षत्र। एक नक्षत्र तारा। (उसकी) **तरह जिसके केवलज्ञान में तीनों लोक...** इतने नक्षत्र जैसे। समझ में आया? ऐसे आकाश कितना है? है कहीं माप? कहीं उसमें अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... कोई भी दसों दिशा में। ओहोहो! उसमें एक यह बीच में ध्रुव तारा। एक नक्षत्र। समझ में आया?

शान्ति, शान्ति नक्षत्र। अब एक तारा का क्या है ? समझ में आया ? एक का है ? अट्ठाईस में कोई नहीं होगा। ... सब दो-दो के हैं।

पूरे आकाश में एक नक्षत्र जैसे दिखता हो। एक तारा इतना, इतना तारा पूरे आकाश में। उसी प्रकार यह भगवान के ज्ञान की अन्तर स्वभाव की महिमा में तीन लोक एक नक्षत्र जितने हैं, ऐसा ज्ञान में भासित हो, ऐसा आत्मा का ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया ?

३८) गयणि अणंति वि एक्क उडु जेहउ भुयणु विहाइ।
मुक्कहँ जसु पए बिंबयउ सो परमप्पु अणाइ॥ ३८॥

यह तो क्या कहना चाहते हैं जरा ? ... ! तेरे यह मकान और पैसे, शरीर और धूल और यह... इतने में, इतने में तेरा ज्ञान जानने में इतने में समा गया ? मुझमें तो नहीं, परन्तु जानना इतना ज्ञान नहीं। वह ज्ञान तो तीन काल-तीन लोक से अनन्तगुणा जाने, ऐसा वह ज्ञान है। मेरा मानकर यहाँ अटका, इतना तो है नहीं परन्तु उसे इतने को जाने, इतना भी ज्ञान नहीं। समझ में आया ? जितने में पड़ा है, वहाँ ऐसा कहते हैं कि, यह मेरा, यह शरीर मेरा, राग मेरा, पुण्य मेरा, कर्म मेरा, यह मेरा, यह मेरा। वह तो है नहीं, परन्तु इतने का ज्ञान करनेवाला जीव नहीं। आहाहा! वह तो तीन काल-तीन लोक को एक नक्षत्र जैसे आकाश में हो, वैसे तीन काल-तीन लोक को जिसके ज्ञान की महिमा में एक नक्षत्र जैसे समाहित करके पड़े, ऐसा यह आत्मा है। ऐसा जिसका ज्ञान का स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया ?

राग, पुण्य, पाप, वे तो नहीं, परन्तु इतने पदार्थ को जानने की जो पर्याय है साधारण, इतनी पर्याय जितना वह आत्मा नहीं। आहाहा! अरे! बारह अंग के, चौदह पूर्व के जानपने की पर्याय, वह तो इतना भी आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? इन सबको इतने को जाने, इतने को माने, वह तो मिथ्यात्व, परन्तु इतने को जाने इतना ज्ञान, वह भी मिथ्यात्वभाव है। ऐसी शैली ली है। मुफ्त नहीं उठायी गाथा में। समझ में आया ?

भाई! तेरे ज्ञान की अचिन्त्य अनन्त महिमा की क्या बात करना! जिसके—

आकाश के अमाप में एक नक्षत्र (है, उसकी) कहीं गिनती नहीं होती। अनन्त आकाश में एक नक्षत्र। उसी प्रकार भगवान आत्मा के ज्ञान की इतनी अत्यन्त महिमा, स्वभाव की और प्रगट हो पर्याय की, दोनों की। समझ में आया? तुझे जितना यह जानपने में आवे, यह बारह अंग का जानने का, वह पर्याय जाने उतना वह आत्मा नहीं। ओहोहो! समझ में आया? वह राग, विकल्प, शरीर, कर्म और उसे जानने जितनी वर्तमान पर्याय, उतना वह (आत्मा) नहीं। भगवान तो आकाश में एक नक्षत्र हो। ओहोहो! परमात्मा वर्णन करते हैं न? परमात्मा, परमस्वरूप। वह परमस्वरूप, वह तेरी दूसरी सब क्षयोपशम की, उदय की पर्यायें तो गयीं, परन्तु क्षयोपशम की पर्याय और उसकी श्रद्धा, इन सब पर्यायों को कहीं गोपन करके पड़ा, इतनी सामर्थ्यवाला आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

अन्वयार्थ :- जैसे अनन्त आकाश में एक नक्षत्र है, उसी तरह तीन लोक जिसके केवलज्ञान में प्रतिबिम्बित हुए,... तीन लोक जिसके ज्ञान में प्रतिबिम्बित होते हैं, उसमें केवलज्ञानी भी आ गये। आहाहा! भाई! तेरे ज्ञानस्वभाव की महत्ता का माहात्म्य क्या कहें? तू कितना बड़ा, इसकी तुझे क्या बात करना! अनन्त केवली सिद्ध लोक में विराजते हैं। उनके ज्ञान में, जैसे आकाश में एक नक्षत्र है, उसी प्रकार भगवान के ज्ञान में यह अनन्त केवली नक्षत्र की भाँति ज्ञात हो गये। लो! आहाहा! क्या कहते हैं यह? समझ में आया? भाई! तेरे स्वभाव का माप क्या? तेरा ज्ञान, इसी ज्ञान का वर्णन किया है, उठाया है, हों! आहाहा! भाई! तेरे एक ज्ञानस्वभाव का माप क्या? उसका माप अकेला यह बाहर का ज्ञान, या बारह अंग का ज्ञान, चार ज्ञान। समझ में आया? ऐसे-ऐसे केवली जगत में भरे हुए हैं। अनन्त सिद्ध, केवली लाखों पूरा लोक आकाश में जैसे नक्षत्र... अरे! भगवान! तेरे ज्ञानस्वभाव वह नक्षत्र की भाँति बहुत थोड़ा है। आहाहा!

इतना बड़ा चैतन्यप्रभु तुझे माहात्म्य में आता नहीं? और यह सब माहात्म्य में जाता है, तुझे क्या हुआ है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जहाँ पाँच शब्द आये या पाँच, पचास शास्त्र सीखा, वहाँ इसे (हो जाता है), आहाहा! अरे! भगवान! तुझे दृष्टि में मिथ्यात्व है। ऐसा यहाँ कहते हैं। भगवान के ज्ञान में, लोकाकाश आकाश में नक्षत्र

इतना, प्रभु! (उसी प्रकार) तेरे ज्ञान के स्वभाव में यह लोकालोक नक्षत्र जितने, उसमें तुझे कहाँ ज्ञान की पर्याय की अधिकता लगी? समझ में आया? ऐसा भगवान अधिक जिसके ज्ञान में लोकालोक आकाश, यह नक्षत्र जैसे ज्ञात हो, उसकी अधिकता तुझे दृष्टि में न आवे, उसे तू हेयरूप से जाने और उसे उपादेयरूप से जाने, प्रभु! तेरी कितनी विपरीतता। आहाहा! समझ में आया? नेमिदासभाई!

जिसके केवलज्ञान में प्रतिबिम्बित हुए दर्पण में मुख की तरह भासता है... दर्पण में मुख, यह लाख मुख सामने हो तो भी दर्पण में भासे। इससे अनन्त-अनन्त हों तो दर्पण में भासे। देखो! पार आता है? देखो! भगवान के दोनों ओर दर्पण हैं न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाईन ऐसी। वह तो इसकी नजर पहुँचती नहीं। लाईन वह लाईन वह अपार... यह एक दर्पण की स्वच्छता में, जड़ की पर्याय में यह इसके हार का पार नहीं आता, यह हार का पार नहीं आता। आहाहा!

तेरे ज्ञान में, स्वभाव में, माहात्म्य में, शक्ति में केवलज्ञान की पर्याय यद्यपि, तेरा ज्ञान स्वरूप ही है। यह जगत के अनन्त-अनन्त लोकालोक और ऐसे के ऐसे अनन्त और अनन्त हों, तो वहाँ वह निगल जाये ऐसा तो उसका ज्ञान है। इतने भगवान को तूने छोटा करके माना, भाई! यह बड़े को महत्ता नहीं दी और बड़े को छोटा माना, यह तेरी दृष्टि में विपरीतता है। समझ में आया?

दर्पण में मुख की तरह भासता है, वह परमात्मा अनादि है। यह भगवान आत्मा चैतन्य दर्पण समान ऐसा का ऐसा अनादि है। तूने कभी नजर की नहीं। तूने ज्ञान और श्रद्धा में लेनेयोग्य चीज़ है, उसे कभी ली नहीं। आहाहा!

भावार्थ :- जिसके केवलज्ञान में एक नक्षत्र की तरह समस्त लोक-अलोक... देखो! भाषा वापस। '**लोकः प्रतिभाति**' वह तो लोक तो शब्द रखा है। बाकी सब दिखता है। वह क्या? ज्ञान की बात क्या कहना? तेरे एक ज्ञानस्वभाव की क्या कैसी हद, क्या कहना! आहाहा! वे कहते हैं न, वह ऐसा नहीं भासित होता, और इतने गुण नहीं भासित होते। फलाने धर्म को भासित हो। भगवान! तुझे ज्ञान के स्वभाव की

अचिन्त्यता की खबर नहीं। ऐसा आत्मा अधिकरूप से सब पर्याय से वर्ते, ऐसी तुझे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? अपेक्षित धर्म नहीं ज्ञात होते। यह सोनगढ़ नहीं ज्ञात होता, इसके मनुष्य ज्ञात होते हैं। आहाहा! भगवान! तुझे आत्मा की श्रद्धा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जिसके केवलज्ञान में... एक नक्षत्र की भाँति लोक-अलोक जिसे भासित हो, लोक-अलोक नक्षत्र की भाँति भासित हो। गजब बात है! किसका तुझे एक समय की इस उघाड़ की पर्याय का तुझे अभिमान हो गया! आहाहा! यह हमने जाना, ऐसा हमने जाना, भाई! तुझे स्वभाव की विपरीत दृष्टि है। आहाहा! **जिसके केवलज्ञान में एक नक्षत्र की तरह समस्त लोक-अलोक भासते हैं, वही परमात्मा रागादि समस्त विकल्पों से रहित...** वह भगवान आत्मा परसन्मुख के विकल्पों से रहित, स्वभाव के सन्मुख के भाव से आदरणीय है, ऐसे सन्तों को वह आत्मा आदरणीय है। सम्यग्दृष्टियों को वह आत्मा आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया?

उसके ज्ञान में सहजरूप से प्रयास बिना, प्रयास बिना, हों! यह प्रयास अर्थात् ऐसा करूँ, ऐसा नहीं। तेरा ऐसा सहज स्वभाव, प्रभु! लोकालोक को नक्षत्र जैसा जाने, उससे अनन्तगुना तेरा ज्ञान। भगवान! उसकी महत्ता तुझे नहीं आती? और किसकी दूसरी महत्ता तुझे आती है? इस प्रकार से भी जिसे ऐसा आत्मा उपादेय वर्ते, उसे दूसरा सब ज्ञान, श्रद्धा आदि हेय वर्तते हैं। और दूसरा सब उघाड़ रागादि जिसे उपादेय वर्तते हैं, जिसे ऐसा भगवान आत्मा हेय वर्तता है। कहो, समझ में आया? लो! यह ३८ गाथा (पूरी) हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ७, रविवार, दिनांक १७-१०-१९६५
गाथा - ३८ से ४०, प्रवचन - २६

३८ (गाथा) की थोड़ी लाईन बाकी है। भावार्थ फिर से, देखो! यह परमात्मप्रकाश, पहला भाग, इसकी ३८वीं गाथा है। जैसे अनन्त आकाश में,... जो क्षेत्र से आकाश अमाप है, जिसका कहीं माप नहीं, उसमें एक नक्षत्र, एक नक्षत्र। फिर एक तारा का हो या एक नक्षत्र सौ तारा का हो। वह एक नक्षत्र अनन्त-अनन्त योजन का जहाँ माप नहीं, ऐसे क्षेत्र में, एक नक्षत्र जैसे है, **उसी तरह तीन लोक जिसके केवलज्ञान में प्रतिबिम्बित हुए...** समझ में आया? तीन काल-तीन लोक जिसके... '**मुक्तस्य**' का कहाँ अर्थ आया? '**मुक्तस्य**' का अर्थ नहीं आया। '**मुक्कहँ**' टीका में है '**मुक्तस्य यस्य पदे केवलज्ञाने**'। अर्थात् जैसे वह आकाश सर्वव्यापक है, जिसके क्षेत्र का पार नहीं, उसमें एक नक्षत्र जैसे बहुत ही प्रमाण में छोटा, इसी प्रकार जिसके ज्ञान में भगवान आत्मा, ज्ञान स्वभावभाव में **तीन लोक जिसके केवलज्ञान में प्रतिबिम्बित हुए...** केवलज्ञान शब्द से अनादि उसका स्वभाव ही, अनादि आत्मस्वभाव ऐसा है कि, जिसके ज्ञान में लोकालोक तो आकाश के अमाप क्षेत्र में जैसे एक नक्षत्र, छोटा इतना नक्षत्र होता है। यह चलता चित्रा नक्षत्र है। इस चित्रा नक्षत्र का एक तारा होता है, एक तारा। अनन्त-अनन्त व्यापक क्षेत्र में एक तारा। उसी प्रकार इस ज्ञान का ऐसा स्वभाव आत्मा का, अनादि आत्मा का स्वभाव। नया नहीं कहीं। ज्ञानस्वरूप, ज्ञानरूप, ज्ञानभाव, अनन्त ज्ञानस्वभाव सामर्थ्य, जिसके ज्ञान में लोकालोक, जैसे आकाश में एक नक्षत्र होता है सर्वव्यापक में, उसी प्रकार लोकालोक नक्षत्र के समान भासित होते हैं। ओहोहो! समझ में आया?

लोकालोक में एक विकल्प आदि भी जिसकी चीज़ नहीं। विकल्प शुभराग आदि भी जिसकी—आत्मा की चीज़ नहीं। परमाणु कर्म, शरीरादि, यह लोकालोक कोई उसकी चीज़ नहीं। तथापि उसका स्वभाव ऐसा है कि जिसके ज्ञान के अपरिमित—

बेहद स्वभाव में लोकालोक, मानो आकाश में एक नक्षत्र हो, इसी प्रकार जिसके ज्ञान में लोकालोक एक नक्षत्र की भाँति भासित होता है। आहाहा!

ऐसा कहकर यह कहना चाहते हैं कि अमाप चैतन्य भगवान आत्मा अनादि वह है, उसे दृष्टि में उपादेय ले और विकल्प से लेकर सब चीज़ों को हेय कर दे। समझ में आया? यह है अन्तिम योगफल में। ऐसा भगवान तेरा स्वभाव, स्वभाव भगवान अर्थात् स्वभाव भगवान। आत्म भगवान का ज्ञान भगवान स्वभाव अर्थात् महिमावन्त स्वभाव है। आहाहा! जिसके एक समय के ज्ञानस्वभाव सामर्थ्य के भाव में लोकालोक प्रकाशित हो ऐसा प्रभु, उसे लोकालोक आदि आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ें, वे सब विकल्प से लेकर शरीर, कर्म सब ही दृष्टि में हेय करके ऐसा भगवान आत्मा दृष्टि में उपादेय कर। समझ में आया?

महन्त आत्मा महान पदार्थ जिसके एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, जिसके स्वभाव की भूमिका के सामर्थ्य में, लोकालोक मानो एक नक्षत्र हो, ऐसा उसका सामर्थ्य है, ऐसे भगवान चिदानन्दस्वभाव के सामर्थ्य में अन्तर दृष्टि कर, उसे आदर मान। विकल्प से लेकर सब चीज़ को हेय जान। कहो, समझ में आया? कहो, बल्लभभाई! ओहोहो! भगवान! तेरी महिमा, कहते हैं, कितनी कहना? आकाश की उपमा देकर नक्षत्र का एक इतना भाग वहाँ अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... आकाश चारों ओर, उसमें एक यह नक्षत्र। उसी प्रकार भगवान आत्मा जिसके स्वभाव के अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... सामर्थ्य में यह लोक और अलोक जिसे एक नक्षत्र जैसे हो, वैसे ज्ञात हो जाता है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, वह वीतरागी दृष्टि से उपादेय—आदर करनेयोग्य है। समझ में आया?

दर्पण में मुख की तरह भासता है,... लो! दर्पण में मुख दिखता है, उसी प्रकार जिसके ज्ञान में लोकालोक प्रत्यक्ष भासित होता है। उसे लोकालोक के सामने देखे बिना स्वभाव के सामर्थ्य में इतनी ताकत है, एक नक्षत्र जैसे लोकालोक आकाश में हो, वैसे भगवान आत्मा में लोकालोक नक्षत्र की भाँति (जाने), प्रभु! ऐसा आत्मा तेरा स्वभाव है। भाई! तुझे दृष्टि में वही उपादेय—आदरनेयोग्य और दृष्टि वहाँ स्थापित करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया?

वह परमात्मा अनादि है। भगवान! तू ऐसा अनादि का है। समझ में आया? केवलज्ञानरूप से पर्याय में भले प्रगटे। वस्तु स्वभाव तो उसका अनादि ऐसा का ऐसा और ऐसा है। आहाहा! ऐसे चैतन्य के महासागर के अनन्त स्वभाव के समक्ष सभी चीज़, रागादि तो ठीक, परन्तु जिसकी अल्प ज्ञान की अवस्था—चार ज्ञान आदि की अवस्था भी जिसके समक्ष तुच्छ है। अरे! केवलज्ञान एक समय का प्रगटे ऐसे एक समय की पर्याय से भी अधिक भगवान आत्मा अनन्त पर्यायें ऐसी संग्रह कर स्थित, ऐसा केवलज्ञान (स्वरूप) भगवान आत्मा, वही दृष्टि में आदरणीय करनेयोग्य है। समझ में आया? कहो, माँगीरामजी! समझ में आता है या नहीं? आहाहा!

एक ओर भगवान तथा एक ओर पूरा गाँव। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। गाँव अर्थात्? शुभराग और विकल्प से लेकर पूरी दुनिया लोकालोक। एक ओर भगवान उनको—सबको जाननेवाला, वह कैसा? एक अल्प मानो हो, वह चीज़ तो मानो अल्प हो, और सामर्थ्य जैसे ग्रास कर गया हो, मुख में जैसे ग्रास कर जाये, मुख बड़ा और ग्रास छोटा। (ऐसे) केवलज्ञान के स्वभाव में लोकालोक तो ग्रास कर गया। ऐसा तेरा स्वरूप, भगवान! उसके माहात्म्य की दृष्टि कर। समझ में आया? ऐसे स्वभाव की दृष्टि करनेयोग्य है। वही करनेयोग्य है, दूसरा करनेयोग्य नहीं है। आहाहा!

शास्त्र का पठन, लौकिक का पठन, वैद्यों का पठन, यह डॉक्टर का, औषध का, फलाना का, विज्ञान का, सभी कलाओं का कहीं थोथा उड़ गया है तेरा। समझ में आया? जिसे चार-चार ज्ञान प्रगटे, वे भी जिसके समक्ष थोथा। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में स्वभाव के सामर्थ्यवाला ऐसा तत्त्व, जिसे लोकालोक तो एक नक्षत्र जैसा जिसके ज्ञान में ज्ञात हो। आहाहा! ऐसा चैतन्यस्वभाव, वह परसन्मुख की दृष्टि छोड़, राग-द्वेष के विकल्प छोड़ और स्वभाव सन्मुख दृष्टि कर। इसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

यह परमात्मा अनादि है, भाई! प्रभु! तू ऐसा अनादि का है, नया ऐसा नहीं, वह है ही ऐसा वह। आहाहा! उसके साथ अनन्त आनन्द की क्या बात? ऐसा इकट्ठा कहते हैं। उसे फिर ध्यान का कहेंगे। ओहो! बेहद ज्ञान! ऐसा ही तेरा भगवान बेहद अनन्त...

अनन्त... अनन्त... अनन्त... बेहद अमाप अतीन्द्रिय आनन्द का रस तेरे धाम में जमकर पड़ा है ऐसा का ऐसा। आहाहा! कहीं सुनने को नहीं मिलता। सुनने को मिलता नहीं, क्या कौन और कहाँ? कहाँ तुझे नजर करनी है? यह भगवान माहात्म्य अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आनन्द का धाम भगवान स्वयं वर्तमान, हों! ऐसे आनन्दमय भगवान पर दृष्टि कर, बाकी सब हेय है। समझ में आया? पुण्य-पाप के राग तो हेय, चार ज्ञान की पर्यायें भी तुझे हेय है; उपादेय नहीं, अंगीकार करनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? कोई इसका पिता छोड़ गया (हो) पचास लाख, करोड़, पाँच करोड़। उसके पुत्र को खबर न हो, और उसका कोई ननिहाल को सौंपा हो और उसे कहे कि देख, तेरा पिता यह छोड़ गया है, हों! हम तो ट्रस्टी रूप से हैं। देख, यह तेरी पूँजी पचास करोड़ की। देखकर प्रसन्न होगा या नहीं?

मुमुक्षु : सुनकर प्रसन्न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनकर प्रसन्न हो। पोपटभाई! आहाहा! इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं कि भाई! तेरा आत्मा अन्दर अनन्त आनन्द और ज्ञान का निधान पड़ा है। सन्त कहते हैं कि हम उसके प्रतिनिधि हैं। आहाहा! हमको सौंप गये हैं भगवान कि देख, यह तेरा आत्मा ऐसा तुझे कहने के लिये मुझे सौंप गये हैं। आहाहा! कहो, शशीभाई! भाई! तेरे आनन्द के एक समय के आनन्द की क्या बात! यह हमारा निजी मनुष्य है, ऐसा कहे। पहचानते हैं, कहते हैं। ऐई! पोपटभाई! यह हमारे निजी और मुझे पहिचानते हैं। मेरे घर का-घर का अन्दर परिचित है, जाननेवाला है। तब तो उसमें प्रसन्न प्रसन्न हो जाये। अरे! देह के नाम की प्रशंसा, वह जड़ नाम तुझमें नाम भी नहीं और देह भी नहीं। उसके नाम की प्रशंसा से तू प्रसन्न और उल्लसित हो जाये, भगवान! तेरे निधान की बातें सुनकर उल्लसित न हो? आहाहा! कहो, समझ में आया? कहो, जयन्तीभाई! पचास हजार का लोन आया तब कितना हुआ होगा अन्दर से? यह तो कहते हैं कि, धूल में भी उसमें कुछ नहीं मिलता, दुःख था उसका लक्ष्य करने से तो। यह भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की हम प्रशंसा करते हैं। वह तेरी, तेरी प्रशंसा करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वह परमात्मा अनादि ऐसा तू है। ऐसा का ऐसा आनन्दकन्द की बर्फी पड़ा है।

अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द धाम शिला आत्मा है। और पूर्ण... पूर्ण ज्ञान का पिण्ड प्रभु आत्मा कि **जिसके केवलज्ञान में एक नक्षत्र की तरह समस्त लोक-अलोक भासते हैं, वही परमात्मा रागादि समस्त विकल्पों से रहित...** यह उसका सार। ऐसा ही भगवान परसन्मुख के शुभ-अशुभ विकल्पों रहित होकर, उस दृष्टि में से विकार को खाली करके, उस दृष्टि को भगवान आत्मा की ओर ढाल। आहाहा! समझ में आया? यह श्रद्धा में जहाँ विकल्प और यह और उसकी महत्ता जहाँ ऐसे वर्तती है, उसे छोड़। ऐसे ढाल (झुका)। जिसमें केवलज्ञान और आनन्द के महा परम निधान पड़े हैं।

वह परमात्मा **विकल्पों से रहित योगीश्वरों को...** अर्थात् उस काल में रागादि से दृष्टि खाली करके उस दृष्टि को निधान में स्थापित करने से, उस काल में सन्तों को वह आत्मा आदरणीय है। आहाहा! कहो, समझ में आया? **उपादेय है।** उस काल में सम्यग्दृष्टि को तो उस काल में वही उपादेय है। उस काल में भी सर्वथा वही उपादेय काल में है। आहाहा! धर्मी जीव की दृष्टि त्रिकाल अनन्त ज्ञानानन्द भगवान का आदर करके पड़ी है, वह किसी भी काल में उसे वही उपादेय है, कोई (अन्य) चीज़ उसे आदरणीय है नहीं। समझ में आया?

धर्मी जीव को कोई भी विकल्प से लेकर जगत की कोई चीज़, उसे शोभनीक प्रिय—सुन्दर, उसे दृष्टि में दिखती ही नहीं। आहाहा! धर्मी की दृष्टि में भगवान अनन्त आनन्द और ज्ञान का प्रभु, ज्ञान का प्रभु स्वयं महा सामर्थ्यवाली सुन्दरता दृष्टि में आने पर दूसरा कोई आदरणीय दिखाई नहीं देता। आहाहा! समझ में आया? अब ३९वीं गाथा। ध्यान की विशेषता बताते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ३९

आगे अनन्त ज्ञानमयी परमात्मा... यह भगवान आत्मा **योगीश्वरोंकर...** अर्थात् स्वरूप का अन्तर जुड़ान करने में मुख्य प्रधान। **निर्विकल्प समाधि...** रागरहित स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान में रहनेवाले, ऐसे **काल में ध्यान करने योग्य है,...** अर्थात् उस समय ही आत्मा उपादेय हो सकता है। कहने का (तात्पर्य) ऐसा है कि भाई! लक्ष्य में लिया कि

ऐसा आत्मा और ऐसा आत्मा, ऐसा धार रखा—ऐसा नहीं। समझ में आया? वह भगवान आत्मा परमानन्द और ज्ञान के स्वभाव की मूर्ति प्रभु, वही विकल्परहित दृष्टि करके धर्मी को वही ध्यानेयोग्य है। समझ में आया? देखो! बात को बदलते हैं।

उसी परमात्मा को कहते हैं— कारण बताते हैं। मोक्ष के कारण से आत्मा को सेवन कर। मोक्ष का कारण कौन, ऐसा बतलाना है।

३९) जोइय-विंदहिँ णाणमउ जो झाइज्जइ झेउ।
मोक्खहँ कारणि अणवरउ सो परमप्पउ देउ॥ ३९॥

देखो! क्या बात समाहित करते हैं? **जो... 'योगिन्द्रवृन्दै'** भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका जिसे अन्तर जुड़ान दृष्टि से हुआ है, उस महान चिदानन्द की पेढी में जिसने रुकावट पैदा कर दी है अन्दर। समझ में आया? **'योगिन्द्रवृन्दै'** भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति, अनन्त ज्ञान का स्वभाव सागर, उसमें जिसने दृष्टि को स्थापित किया, उसे वह मोक्ष का कारण है। देखो! **'मोक्षस्य कारणे'** कोई ऐसा कहे कि भाई! यह राग, पुण्य, शरीर और फलाना और फलाना मोक्ष का कारण, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम मोक्ष का कारण, भाई! वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

यह बात की न, उस मोक्ष का कारण वह भगवान आत्मा है। रागादि, विकल्प आदि तीन काल में पूर्ण मुक्तस्वरूप, पूर्ण मुक्त पर्याय का कारण उसके स्वभाव का आदर, वह पर्याय ही मोक्ष का कारण है। समझ में आया? मोक्ष का कारण, परन्तु वह कारण कैसा? निरन्तर, वह आत्मा एक समय में पूर्ण ज्ञान और आनन्दमय मूर्ति है, वह निरन्तर आदरनेयोग्य है। क्योंकि वह निरन्तर मोक्ष का एक ही कारण है। निरन्तर। किसी समय बीच में विकल्प दया, दान का आवे, वह भी मोक्ष का कारण और यह भी कारण, ऐसा है नहीं। आहाहा! एक तो मोक्ष का कारण और वह भी **निरन्तर... 'अनवरतं'** विश्राम लिये बिना। उसका एकाकार भगवान आत्मा, उसकी ओर का जो आश्रय भाव जो लिया, वही आश्रय वही निरन्तर मोक्ष का कारण है। समझ में आया? बीच में दया, दान, व्रत, भक्ति का व्यवहार आओ, परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! जगत को अभी ऐसा कठिन पड़ता है। समझ में आया?

जो भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, दल है पूरा। जैसे शक्करकन्द को ऐसे सेंककर मिठास से खाते हैं या नहीं? क्या कहलाये तुम्हारी? १४, माघ शुक्ल १४, शिवरात्रि। शिवरात्रि। यह शिव दिवस। यह रात्रि और यह शिव दिवस है। शिव अर्थात् भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, उसके ओर की दृष्टि की एकाग्रता, बस वही आत्मा मोक्ष का कारण है। उसमें आनन्द पड़ा है, उस आनन्द को सेवन कर, सेवन कर, उसे खा, उसका अनुभव कर। यह शिव का मार्ग है। शिव अर्थात् मोक्ष। अर्थ भी आते न हों, भाई! वह आते हैं न! नमोत्थुणं में, नहीं? 'सिवमलयमरु' भगवान जाने, वह तो शिवमय वहाँ रह गया। नमोत्थुणं में आता है। 'सिवमलयमरुमणंत'। 'सिवमलयमरुम' ऐसा शब्द है। शिवम। वह परमात्मा शिवस्वरूप है, निरुपद्रव है, कल्याण की मूर्ति है। 'सिवम-अलयम्' अचल है। 'सिवम्-अलयम्-अरुवम्' उपमारहित चीज़ है और रोगरहित वह चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ वह सिद्ध भगवान की व्याख्या की है, यहाँ यह आत्मा की व्याख्या है। ...भाई! सीखे थे? बाद में आये न बाद में। कहो, समझ में आया?

ओहो! यह धर्म के धारक धर्मी जीवों के वृन्दों को। धर्म ऐसा जो निर्मल पर्याय, उसे धर्मी ऐसा जो पूर्णानन्द भगवान, उसके ओर दृष्टि करके, आदरणीय मानकर, वही मोक्ष का कारण है, ऐसे धर्मीजीव के वृन्दों—संघ का समुदाय, वह धर्म का धारक संघ का समुदाय, उन सब समुदाय को यह भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान, आनन्द, वह मोक्ष के कारण सेवनयोग्य है। आहाहा! मगनभाई! उसको चिपका दिया बेचारे को। हैरान होकर मर जाये परन्तु कुछ पता लगता नहीं।

एक श्रद्धा की आड़ पक्की दृढ़ डाले अन्दर में कि भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी ओर का झुकाव, वही एक मोक्ष का कारण है, दूसरा कोई नहीं। ऐसी श्रद्धा को दृढ़ करे तो उसका वीर्य स्वभाव सन्मुख ढले बिना रहे नहीं। समझ में आया? आहाहा! जिसकी खान में अनन्त आनन्द पड़ा, अनन्त ज्ञान पड़ा, वहाँ खोदने से निकले या राग में खोदने से निकले? पुण्य-पाप के विकल्प उठें, वह तो राग है, लोहे की खान है। वहाँ कहाँ आत्मा था? समझ में आया? आहाहा!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग सीमन्धर परमात्मा वर्तमान

विराजते हैं, (वे) इस प्रकार से फरमाते हैं। अनन्त तीर्थंकर इस प्रकार से जगत को फरमाते हैं। कि भाई! प्रभु! तेरा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु तू स्वयं है। उसका माहात्म्य करके अन्तर में एकाग्र हो। उसे निरन्तर ज्ञानमय चिन्तन किया जाता है। वह भगवान त्रिकाल ज्ञानमय, आनन्दमय, ऐसा ध्यान करनेयोग्य है। राग और पुण्य-फुण्य उसमें है नहीं तीन काल-तीन लोक में। समझ में आया? ओहोहो! ऐसा कहते हैं कि हम भगवान को भजते हैं, भगवान को भजते हैं। णमो अरिहंताणं। भगवान क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं होती। ओढ़ना पति का और पति की आज्ञा माननी नहीं, ओढ़ना पति का, पति आवे तो पहिचानना नहीं। ऐसा आया था कि इसके साथ सम्बन्ध किया है और यह पाँच, पचास लाख के आसामी हैं, पच्चीस वर्ष का जवान, आया, पहिचाना नहीं। यह कौन है? पोपटभाई! आहाहा!

इसी प्रकार भगवान चिदानन्द प्रभु शुद्ध अनन्त आनन्द का कन्द, जिससे विरुद्ध विकल्प रागादि मैल, दुःख, दुःखदायक है। उसकी रुचि छोड़कर परमात्मा पूर्णानन्द की दृष्टि करके एकाग्रता (करना), वह निरन्तर एक ही मार्ग मोक्ष का है, दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। लो! मोक्ष के मार्ग दो, दो। कि नहीं, नहीं।

मुमुक्षु : दूसरा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा तो कथन आता है। दो मोक्ष के मार्ग का कथन— निरूपण आता है। निमित्त को देखकर, उसे आरोप करके व्यवहार मोक्षमार्ग कहा जाता है। वस्तु वह एक है, उसमें दो होते नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानमय क्यों कहा? कि, उसमें कोई विकल्प भी नहीं, रागरहित ऐसा ज्ञान का मय चैतन्यबिम्ब प्रभु! उसे '**ध्यायते**' वह ध्यानेयोग्य है, वह चूसनेयोग्य है, ध्यान करनेयोग्य है। अरे... अरे..! बात भी कुछ अजब-गजब की! कहीं कभी सुनी न हो कितनों ने तो। ऐई! भाई! वीतराग के वाड़ा में जन्में। वह कहे स्थानकवासी, वे कहे मन्दिरमार्गी, वह कहे दिगम्बर।

'**सः परमात्मा देवः**' है। देखो! वह तेरा पूर्णानन्द प्रभु, वही तेरा देव है। **वह परमात्मदेव आराधने योग्य है,...** समझे? यह सन्त, धर्मात्मा, धर्मी आत्मा को जो ध्याते

हैं, (उनको) वह ध्यानेयोग्य है, दूसरी कोई ध्यान करनेयोग्य चीज़ है नहीं। भाई! परन्तु मक्खन रखा है अकेला।

भावार्थ :- जो परमात्मा मुनियों को ध्यावने योग्य कहा है... सन्तों को, धर्मी को, समकिती को, सच्चे श्रावक को, जो परमात्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति कन्द आनन्द का कन्द प्रभु, अन्तर्मुख होकर ध्यान करनेयोग्य, आदरनेयोग्य, सेवनयोग्य कहा है। **वही शुद्धात्मा के वैरी...** ध्यान की व्याख्या करनी है न जरा। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसकी एकाग्रता के वैरी, **आर्त-रौद्रध्यानकर...** वह वैरी है। आत्मा के स्वभाव की एकाग्रता में वह एकाग्रता, वह धर्मध्यान है। उसके वैरी आर्त और रौद्रध्यान है। शरीर की इष्टता, वह ठीक और अनिष्टता, वह ठीक नहीं न। समझ में आया? पैसे की, अनुकूलता की चिन्तवना और उसका ऐसा रखना और उसका ब्याज उपजाना और उसका यह करना, यह रौद्रध्यान है। आर्त और रौद्रध्यान के विकल्प भगवान आत्मा की एकाग्रता के वैरी हैं। आहाहा! वैरी से उत्साह से मिलता है, मिलता है। चल बापू! चल, मेरा सिर काट। आहाहा! धरमचन्दजी!

कहते हैं, अहो! भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का साहेबा प्रभु तो आत्मा अपना स्वयं का है। उसकी ओर की एकाग्रता, वह ध्यान, धर्मध्यान है, वह मोक्ष का कारण है। उसके वैरी आर्त और रौद्रध्यान के भाव, उन्हें छोड़कर आत्मा के स्वभाव की एकाग्रता कर। वही भगवान मोक्ष का निरन्तर कारण है। आहाहा! कहो, प्रवीणभाई! कठिन बात परन्तु, भाई! भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप, **वही शुद्धात्मा के वैरी...** आत्मा शुद्ध ज्ञान की एकाग्रता के विरुद्धवाले भाव। **आर्त-रौद्र ध्यानकर रहित धर्म ध्यानी पुरुषों को उपादेय है,...** ऐसे रहित धर्म ज्ञानी पुरुषों को उपादेय है। ऐसा धर्म शुद्ध चैतन्य, त्रिकाल निर्मल आत्मा है, उसकी एकाग्रता, ऐसा धर्मध्यान, उसके द्वारा भगवान आत्मा आदरणीय है। कहो, समझ में आया?

अर्थात् जब आर्तध्यान रौद्रध्यान ये दोनों छूट जाते हैं,... अर्थात् परसन्मुख की वासना की लार, आर्त और रौद्रध्यान, विकल्पों का जाल, उसे छोड़ता है, **तभी उसका ध्यान हो सकता है।** तब भगवान आत्मा के ओर की एकाग्रता हो सकती है। समझ में आया? वह उपादेय है। ऐसा कहा न? समझ में आया? '**रहितानामुपादेय**' ऐसा।

उपादेय, परन्तु रागरहित दशा से उपादेय है। राग का भाग जितने विकल्प हैं पुण्य–पाप के, उनसे रहित ऐसा जो आत्मस्वभाव उसके सन्मुख होकर, राग विकल्प रहित आत्मा शुद्ध चैतन्य उपादेय है। ऐसी धर्म दशा, वही आत्मा को मोक्ष का निरन्तर कारण है, दूसरा कोई मोक्ष का कारण नहीं।

यहाँ तो कहे, निश्चय का ग्रन्थ है, इसलिए इसमें निश्चय होता है। व्यवहार के ग्रन्थ में वहाँ निमित्त कैसा होता है, वैसा बतलाते हैं, इससे कहीं मार्ग दो हो जाये? व्यवहार के ग्रन्थ में आवे कि धर्मी को आत्मा आदरणीय परमात्मा अपना स्वरूप है। जब उसकी पूर्ण दशा नहीं, तब उसे ऐसा विकल्प देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा का (आवे)। आगे जाये तो मुनि को पंच महाव्रत का, सच्चे देव की आराधना का... समझ में आया? ऐसा उस जाति का राग आता है। और उस अपेक्षा से व्यवहार से उसे आदरणीय कहा जाता है अर्थात् कि वास्तव में वह आदरणीय नहीं। ऐसे लेख आवे वहाँ वह उलझे, ऐ... उसमें ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यह कहा, उस काल में भी आत्मा ही उपादेय है, ऐसा ध्यान रखकर उसे ज्ञान करना, सुनना—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब क्या कहते हैं? यह ३९वीं कही।

★ ★ ★

गाथा - ४०

४० वीं गाथा में क्या कहते हैं? ऐसा शुद्ध भगवान, वह जब अपने शुद्धस्वभाव की परिणति को न रचे, तो वह रचे क्या? समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध अनन्त आनन्दकन्द ज्ञान की मूर्ति प्रभु स्वयं, उसकी ओर का आदर न हो और उसका परिणमन शुद्ध न हो, तब अनादि का यह किया क्या? यह करता क्या है? समझ में आया? इसने किया है या नहीं कुछ? कि, हाँ। यह जगत का कर्ता हुआ है। आठ कर्म से हुए त्रस, स्थावर आदि भेद, उनके कारणरूप इसने वेद वासना बहुत सेवन की। अवेदी अविकारी स्वभाव की दृष्टि छोड़कर वेद वासना, विकार की वासना के भाव को सेवनकर इसने कर्म बाँधे और उसके कारण से यह सृष्टि हुई—त्रस और स्थावर। वह इसका यह कर्ता है, दूसरा जगत कर्ता है, वह है नहीं। कहो, समझ में आया?

आगे जो शुद्ध ज्ञानस्वभाव जीव ज्ञानावरणदिकर्मों के कारण से त्रस स्थावर जन्मरूप जगत को उत्पन्न करता है,... देखो! यह त्रस-स्थावर के शरीर को उत्पन्न करता है। किस अपेक्षा से? वह विकार उत्पन्न किया, उससे कर्म हुआ, उससे त्रस और स्थावर हुए। इसलिए यह त्रस-स्थावर के जगत को उत्पन्न करनेवाला आत्मा, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। जगत का कोई कर्ता दूसरा जीव है, ऐसा कोई नहीं। तेरे त्रस और स्थावर के देह को उत्पन्न करनेवाला। स्थावर अर्थात् एकेन्द्रिय। त्रस (अर्थात्) दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। त्रस अर्थात् दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय समझे न? एकेन्द्रिय। स्थावर अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति। त्रस अर्थात् दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय—नारकी, मनुष्य, देव, पशु। उनके शरीर की उत्पत्ति का करनेवाला तू जगत का कर्ता है। यह जगत है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति के शरीर। त्रस के दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय के शरीर। पंचेन्द्रिय में नारकी, मनुष्य, देव और ढोर के शरीर। उन शरीरों का रचनेवाला, तूने स्वभाव की रचना नहीं की, विरुद्ध परिणाम की रचना की, इससे कर्म हुए, उससे यह रचे। यह शरीर की, जगत की रचना का (करनेवाला)। स्वभाव की एकता रचना होकर पूर्णानन्द का नाथ होना चाहिए, ऐसा न होकर उसने इस शरीर की रचना अनादि से की है। समझ में आया?

वही परमात्मा है, दूसरे कोई भी ब्रह्मादिक जगत्कर्ता नहीं है,... कोई ब्रह्मा जगत का कर्ता, विष्णु उसका रक्षक और शंकर उसका संहारक—ऐसा कोई है नहीं। जगत ने कल्पित बातें की हैं। वस्तु के स्वभाव में ऐसा है नहीं। तू ही तेरे शरीररूपी जगत का रचनेवाला है। आहाहा! भगवान आत्मा ने अपने को भूलकर शरीर का जगत रचा। जिसे अन्तर स्वभाव का ध्यान करके परमात्मा होने की रचना करनी चाहिए, उसके बदले उल्टा पड़ा अनादि का, शुद्ध भगवान चिदानन्द की मूर्ति आत्मा का आदर छोड़कर, पुण्य और पाप के विकल्प, वेद की वासना, भोग की वासना का आदर करके कर्म बाँधे और शरीर का जगत इसने उत्पन्न किया है।

मुमुक्षु : जगत अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर। दूसरा क्या जगत अर्थात्? यह लो न अनन्त रजकण का बड़ा पिण्ड है न यह? जगत में क्या है? अनन्त आत्मा और अनन्त रजकण। उसमें

अनन्त रजकण, अनन्त अनन्त रजकण। एक जीव को अनन्त अनन्त रजकण हैं यह सब। मिट्टी... मिट्टी... मिट्टी। इस शरीररूपी जगत का रचनेवाला आत्मा है, अज्ञानभाव से, व्यवहारनय से। (पहले) सुलटे की बात की, (अब कहते हैं), यह उल्टा पड़ा, (तब) क्या किया अभी तक यह नहीं किया तब?

मुमुक्षु : जगत के कार्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरे भाव का रचनेवाला तू। उल्टे भाव, मिथ्यात्व भाव, राग-द्वेष भाव, विकारी भाव। उससे बना कर्म और उससे बना शरीर। इसलिए तूने शरीर जगत को उपजाया, ऐसा परम्परा से कहा जाता है। आहाहा!

वास्तव में तो भावजगत तो विकारी भाव ही है। पुण्य-पाप और मिथ्याश्रद्धा आदि भावजगत तो वह है। यह अज्ञानी ने उत्पन्न किया। परन्तु यह बाहर कोई कहे कि, शरीर का कोई कर्ता है? कि हाँ। वह तू। तेरे विभावी विकार का सेवन करनेवाला तू। उसमें से कर्म हुआ और उससे (हुआ) शरीर। वास्तव में तेरी लार ही उसे उत्पन्न करती है। आहाहा! उसके—भगवान के स्वभाव में ऐसा कोई शरीर को उत्पन्न करे या कर्म को बाँधे, ऐसा उसके स्वभाव में कोई भाव नहीं। परन्तु उस भगवान आनन्दकन्द को भूलकर उसकी बात, उसके आनन्द की महिमा उसे नहीं आयी। अर्थात् महिमा बँट गयी कहीं। शुभाशुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध। वहाँ महिमा गयी। उसके कारण से कर्म बँधे। वेद की वासना, भोग की वासना। यहाँ मूल तो वेद लेते हैं। त्रस, स्थावर, जगत का कारण वेद है। अर्थात् वेद को भी वह उत्पन्न करता है। इसलिए स्त्री, पुरुष, नपुंसक लिंग को भी वह उत्पन्न करता है, ऐसा कहते हैं। त्रस-स्थावर के शरीर को वह उत्पन्न करता है और शरीर का पुरुषलिंग, स्त्रीलिंग, पावैया का नपुंसकलिंग, वह भी जीव ने इस जगत को उत्पन्न किया है। समझ में आया? क्योंकि अपने निर्विकारी स्वभाव (की) रुचि छोड़कर वेद की वासना, भोग की वासना के प्रेम में बँधा है। इससे नये कर्म बँधे, उससे यह तीन लिंग स्त्री, पुरुष, नपुंसक के शरीर मिले। उस शरीर का रचनेवाला अज्ञानी आत्मा ही है, वह वेद का रचनेवाला आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

४०) जो जिउ हेउ लहेवि विहि जगु बहु-विहउ जणेइ।
लिंगत्तय-परिमंडियउ सो परमप्पु हवेइ॥ ४०॥

वापस सिद्ध (साबित) तो परमात्मा करना है। यह तेरा ही परमात्मा उल्टा पड़ा जगत को रचता है। आहाहा! समझ में आया? यह आत्मा **'विधिं हेतु'।** देखो! विधि अर्थात् आठ कर्म। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय (ये) आठ कर्म। यह विधि। उसके **कारणों को पाकर...** देखो! इन आठ कर्म के कारणों को पाकर **अनेक प्रकार के जगत को पैदा करता है,...** अनेक प्रकार। जगत अर्थात् त्रस, स्थावर शरीर और स्त्री, पुरुष और नपुंसक के लिंगरूपी देह। शरीर, परन्तु शरीर में वापस लिंग ऐसे क्यों आये, ऐसे दो बतलाये हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति का शरीर, यह निगोद के जीव अपने शरीर की सृष्टि को रचते हैं। दूसरे सब जीव भी उसके अपने शरीर की रचना करते हैं। किस अपेक्षा से? कि अपने स्वरूप को भूलकर कारण को—कर्म को कारण हेतु बनाकर, उससे शरीर उत्पन्न हुए और उसमें लिंगों का चिह्न उत्पन्न हुए। स्त्री के, पुरुष के और पावैया-हीजड़ा के। इन सब लिंगों का और शरीर का जगत। वह लिंग और शरीर वह जगत। उसका उत्पादक आत्मा अपने स्वभाव को भूली हुई दशा। आहाहा! कपूरभाई! यह सब समझ में आये ऐसा है, हों! कभी सुना न हो। वहाँ कलकत्ता में कहाँ समय हो। जयन्तीभाई! इन्हें गोदाम में अवकाश मिलता नहीं। वहाँ बड़ी (बन्दरगाह के पास) गोदाम लगाया है अन्दर, कहते हैं। अनन्त ज्ञान और आनन्द की। आहाहा!

भगवान आत्मा परमात्मा स्वयं ही अनन्त गुण का स्वामी महा सामर्थ्यवाला है। परन्तु उसी परमात्मा ने स्वयं अपने स्वरूप के माहात्म्य को छोड़कर, अपने अतिरिक्त का पुण्य-पाप, विकल्प, शरीर, वाणी, मन आदि परपदार्थ अथवा भोग, वासना आदि विकल्प, उनका माहात्म्य और आदर करके कर्म बाँधे और उस कर्म के कारण शरीर और लिंग मिले। उन शरीर और लिंग का कर्ता तू है। समझ में आया?

अनेक प्रकार के जगत को पैदा करता है, अर्थात् कर्म के निमित्त से... हेतु है न उनका? **त्रस स्थावररूप अनेक जन्म धरता है...** ओहो! ईयळ, कीड़ी, मकोड़ा,

नारकी, मनुष्य, देव, ढोर, शरीर भिन्न-भिन्न, निगोद के जीव। आहाहा! नित्यनिगोद के जीव, वे अपने नित्यनिगोद के शरीर को, भगवान को भूले, उसे रचते हैं। अपने भगवान को भूले, वह भ्रमणा करने के भाव से उस शरीर को रचते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या अर्थात्? आत्मा में नहीं, उसमें है। जगत जगत में है, वह अपना मानकर भ्रमण कर रहे हैं, ऐसा कहते हैं, उत्पन्न करते हैं। पुण्य, पाप, विकल्प, शरीर, वाणी, मन, कर्म अपने में नहीं। परन्तु है, वस्तु है। वह है, उसे अपना मानकर भ्रमण करके कर्म उत्पन्न करके, जगत अर्थात् शरीर को, लिंगों को उत्पन्न करता है। त्रस-स्थावर के शरीर और स्त्री, पुरुष, नपुंसक के शरीर के चिह्नों-निशान, उसे वह जीव स्वयं उत्पन्न करता है, इसलिए उनका कर्ता जीव है। यह सब जगत है धूल का, अनन्त रजकण का। उसे अज्ञानी आत्मा उत्पन्न करता है। व्यवहारनय से निमित्त सम्बन्ध से कहा जाता है। समझ में आया?

अनेक जन्म धरता है... 'लिंगत्रमयपरिमण्डित' देखा? **स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंग इन तीन चिह्नोंकर सहित हुआ...** भगवान में तो ये तीन वासना ही नहीं। स्त्री,पुरुष, नपुंसक का विकल्प जो भोग की वासना, वह वस्तु में नहीं। परमात्मा के मूल स्वरूप में वह नहीं। वैसे स्वरूप को छोड़कर भोग की वासना के विकल्प को उत्पन्न करके कर्म बाँधकर शरीर के लिंग उत्पन्न किये हैं। आहाहा!

यह स्व-विषय को छोड़ा अर्थात् विषय यह लिया। वास्तविक विषय यह। यह विषय अपना छोड़ा तो यह विषय—भोग का विषय जो इसने बनाया, उस विषय से जिसने बाँधे कर्म, उनसे फिर मिले त्रस-स्थावर और लिंगसहित के शरीर। निगोद के एकेन्द्रिय शरीर को नपुंसक शरीर है, नारकी को नपुंसक शरीर है, देव को स्त्री और पुरुष के चिह्न हैं, मनुष्य और पशु को तीनों चिह्न हैं। इन सब शरीर के आकारों के चिह्न, वे भगवान में उसके कारणरूप भाव भी नहीं। परन्तु ऐसे भावरहित परमात्मा को न सेवन कर, ऐसे विकारी भाव का सेवन करके इसने कर्म उपार्जित कर ऐसे सब लिंग उत्पन्न किये हैं। आहाहा! समझ में आया? प्रत्येक गाथा में भिन्न-भिन्न बात करते हैं।

कहते हैं, ओहो! वही **शुद्धनिश्चयकर परमात्मा...** ऐसा वापस। जो वेद की, भोग की वासना में पड़ा जो कर्म बाँधकर, जो शरीर और लिंग उपजाता है, वही शुद्धनिश्चयनय से तो परमात्मा स्वयं है। अशुद्धनिश्चय में पड़ा ऐसे भाव करता है। समझ में आया? **वही शुद्धनिश्चयकर परमात्मा है।** भगवान आत्मा बेहद अनन्त अचिन्त्य ज्ञान—आनन्द का कन्द धाम... आहाहा! वही परमात्मा है, हों! कहते हैं।

भावार्थ :- अर्थात् अशुद्धपने को परिणत हुआ जगत में भटकता है,... अशुद्धपने, विकारपने, पुण्य-पापपने विकार की वृत्तियाँ वह मैं, ऐसा मानकर परिणमता, अशुद्धरूप से परिणत अर्थात् पर्याय में विकाररूप से अकेला विकारमय हूँ, ऐसा परिणमकर—होकर, जगत में चौरासी में भटकता है। जहाँ-तहाँ भीख माँग रहा है। आहाहा! 'भटकत द्वार द्वार लोकन के, कुकर आशा धारी' आनन्दघनजी कहते हैं। 'भटकत द्वार द्वार लोकनके' यह कुत्ता नहीं होता कुत्ता? बेचारे को अवसर हो न दस बजे। जहाँ कहीं धुँआ दिखाई दे, कहीं गन्ध आवे चावल की या रोटी की, वह वहाँ मुख डाले। उसके चबूतरे पर जाकर ऐसे मुख करके डाले। दो पैर भले नीचे रखे परन्तु ऐसे मुख रखे। सुगन्ध आवे न सुगन्ध? यहाँ देंगे, यहाँ देंगे। 'भटकत द्वार द्वार लोकनके, कुकर ...' उसमें फिर कोई ऐसे घर हों, मुश्किल से खाये ऐसा हो, उसमें कहीं मिले नहीं बेचारे को।

इसी प्रकार कहते हैं, अरे! आत्मा! यह चौरासी के अवतार में कुत्ते की भाँति भटका। कहीं मुझे सुख, कहीं मुझे सुख, कहीं सुख (मिले।) 'भटकत द्वार द्वार लोकन के, कुकर आशा धारी' परन्तु चैतन्य भगवान अन्दर विराजता है आनन्दकन्द प्रभु! उसकी तूने शोध और नजर तूने अनन्त काल में की नहीं। आहाहा! माँगे, हों! कोई पैसा दोगे? आहाहा!

काल एक लड़का था। दिशा को गये थे न? उसे मारा होगा उसके माँ-बाप ने। हरिजन का होगा, ऐसा लगता है। यह सेठ का कौना है न? उस ओर खड़ा था। आड़ा खड़ा रहा। मुझे वहम पड़ा। जाते आते तक ऐसा का ऐसा खड़ा रहा। आड़ा खड़ा रहा ऐसे जाये... आड़ा खड़े रहे ऐसे जाये। क्या कहते हैं यह? लड़का ११-१२ वर्ष का था। ...! परन्तु क्या है? कहा, यहाँ क्यों खड़ा है? मुझे माँ-बाप ने मारा है, इसलिए मैं यहाँ

आया हूँ। अब गाँव में रोटी का टुकड़ा, रोटी का टुकड़ा माँगकर खाऊँगा। दस बजे का समय हुआ। अब मारा होगा न अब आया अब उस समय जाना, रोटी का टुकड़ा माँगकर खाऊँगा। तुम दोगे? ऐसा वापस मुझे कहे।

मुमुक्षु : वह तो गरजवान था।

पूज्य गुरुदेवश्री : और मैं उसकी ओर गया वापस उसे देखने। क्या है, कहा, यह वह कुछ? उन लड़कों को आदत होती है न किसी का चोरी करके आवे, फिर खड्डा करके दबावे। परन्तु यह तो जीथरी का है, यहाँ नहीं आवे। फिर तो बराबर लगा कि, यह माँ-बाप ने मारा है, अब मैं यहाँ खड़ा हूँ। मैं गाँव में रोटी का टुकड़ा माँगूंगा। रोटी माँगूंगा, ऐसा बोला नहीं। रोटी का टुकड़ा माँगूंगा और खाऊँगा। तुम दोगे? आहाहा!

.... है या नहीं ऐसी फिर उसे खबर रहती नहीं। समय हो गया दस बजे का। अब उसे कहाँ जाना? बराबर उस समय मारा हो और निकाला हो। अब उस समय तुरन्त कैसे जाना? वह तो उसके माँ-बाप फिर शोधने आवे। उस कौने में छुपा था। सेठ का मकान है न? एकदम उस कौने। इसलिए दो ओर ध्यान रहे। इस ओर का ध्यान रहे, ऐसे आड़ा हो तो यहाँ छुपे, ऐसे आवे तो ऐसे छुपे। उस कौने पर। बहुत बार जाते-आते देखा। यह क्या? अरे! भिखारी! और मूल जाति वह होगी तो रोटी का टुकड़ा माँगकर खाऊँगा। बनिया का लड़का हो तो ऐसा बोले नहीं। वह तो कोई था। परन्तु वह कौन जाने। वे कहे, हरिजन लगता है। भाई कहे। ऐसा कोई है। रोटी का टुकड़ा माँगूँगा, ऐसा कहा। रोटी माँगूँगा ऐसा नहीं कहा। क्योंकि पूरी रोटी कोई नहीं दे, टुकड़ा-टुकड़ा माँगूँगा और खाऊँगा, कहे। काली पहनकर आया हुआ... क्या कहलाती है वह? चड्डी और एक कुर्ता। यह दशा।

जगत इस प्रकार से भीख माँग रहा है। भगवान के साथ किया विवाद। अपना भगवान आनन्दमूर्ति, उसका भोजन जहाँ मिले, उसका अवसर उसमें उसके साथ किया विरोध, और विकारभाव अकेला पुण्य-पाप, काम-क्रोध, राग-विकार करके कहीं सुख, कहीं सुख, कहीं सुख माँगता रहता है। टुकड़ा माँगे। लाओ टुकड़ा तो टुकड़ा। बहुत घर में करूँगा पूरा। पोपटभाई! कहीं पैसे में सुख थोड़ा, कोई स्त्री में, कोई मकान

में, कोई इज्जत में, कोई पहनने में, कोई वस्त्र में, कोई नहाने में, कोई धोने में, कोई साबुन लगाने में। कहीं कहीं थोड़ा... थोड़ा... थोड़ा... थोड़ा... थोड़ा... टुकड़ा लूँगा सुख का। ऐसा करके पेट भरूँगा। वह टुकड़ा बोला न, इसलिए मुझे लगा, यह क्यों पूरी रोटी नहीं बोला? परन्तु उसे बेचारे को भरोसा न हो कि पूरी रोटी दे या नहीं दे। आहाहा!

यह दुनिया भिखारी। भगवान आत्मा भरा बर्तन पड़ा है अन्दर। वह अतीन्द्रिय आनन्द का भगवान परमात्मा स्वयं है। उसे चाटने न जाकर, यह पुण्य और पाप की वासना, भोग की वासना, स्त्री, पुरुष, नपुंसक की वासना, उसकी मिठास (ली है), उसमें बाँधे कर्म, उसके हुए शरीर, उसमें मिले उसके आकार / लिंग। फिर माँगा करे, कहीं यह करूँ तो ऐसा होगा, यह खाओ तो ऐसा होगा, यह करूँ ऐसा होगा। हैरान, हैरान भिखारी हो रहा है। ऐसे जगत को इसने उत्पन्न किया है, दूसरा कोई नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ९, मंगलवार, दिनांक १९-१०-१९६५
गाथा - ४०-४१, प्रवचन - २७

पहले भाग की ४०वीं गाथा चलती है। देखो! यहाँ आया। **वही... 'परमात्मा' शुद्धनिश्चयकर परमात्मा है।** अन्तिम शब्दार्थ, इसका अन्तिम शब्दार्थ। अर्थात् क्या कहते हैं? कि यह आत्मा वस्तुरूप से आनन्द और शुद्धस्वरूप है। शुद्ध दृष्टि के नय से देखने पर वह शुद्धस्वरूप ही है। वह वस्तु पदार्थ सच्चिदानन्द शुद्ध परमस्वरूप, वह शुद्धनिश्चयनय अर्थात् सत्य नय से देखने पर वह स्वयं ही आत्मा परमात्मा है।

अर्थात् अशुद्धपने को परिणत हुआ... वह आत्मा अपने आनन्द और शान्त रस को भूलकर... समझ में आया? स्वयं आनन्द और शान्त, अतीन्द्रिय शुद्ध चैतन्यमूर्ति, ऐसा शुद्ध निश्चय से परमात्मा स्वयं होने पर भी, अपने अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद को, शान्ति को भूलकर, **अशुद्धपने को परिणत हुआ...** वह मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप परिणत हुआ। शुद्ध आनन्दस्वरूप, शुद्ध शान्त वीतराग अकषायस्वरूप, उसकी प्रतीति न करके, आनन्द का वेदन न लाकर, उससे विरुद्ध पुण्य-पाप के भाव से जीव को डुबाया इसने। समझ में आया? शुभ-अशुभ परिणाम से आत्मा की शान्ति को इसने जलाया। इसलिए अशुद्धपने की परिणति से, अकेले पुण्य-पाप, काम-क्रोध, विकार परिणति से, **जगत में भटकता है,...** कहो, समझ में आया?

अपना निज स्वरूप अन्तर आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा, ऐसा भान न करके और अकेले विकार की—अशुद्ध विकार परिणतिरूप से विकाररूप से होता हुआ। शुद्धस्वभाव में भटकना, ऐसा नहीं, परन्तु उल्टी विपरीत परिणति करके जगत का कर्ता होकर जगत में भटकता है। समझ में आया? कर्ता अर्थात्? कि अशुद्ध पुण्य-पाप के मलिन भाव का कर्ता होकर, कर्म बाँधकर संयोग त्रस-स्थावर ऐसे शरीरादि की रचना, वह जीव करता है, इसलिए वह जगत का कर्ता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। समझ में आया?

और शुद्धपनेरूप परिणत हुआ... वह भगवान आत्मा विकार की एकतारूप से परिणत होता हुआ जगत में भटकता है और त्रस-स्थावर आदि शरीरों की रचना का व्यवहार से कर्ता होकर जगत अर्थात् शरीर का कर्ता कहा जाता है। वह आत्मा **शुद्धपनेरूप परिणत हुआ...** भगवान आत्मा मैं आनन्द और शुद्ध निर्मल हूँ। मेरे स्वरूप में पुण्य-पाप आदि विकल्प की भी जिसमें गन्ध नहीं और गन्ध हो तो अतीन्द्रिय आनन्द की जिसमें सुवास है। समझ में आया? पुण्य और पाप की मलिन अशुद्ध परिणति, वह भाव तो इसके स्वरूप में नहीं, है तो सुवास—अतीन्द्रिय आनन्द की सुवास से भरपूर भगवान है। ऐसी अतीन्द्रिय आनन्द के सुवास की श्रद्धा, ज्ञान की परिणति द्वारा, उसके शुद्धपनेरूप परिणति अर्थात् पर्याय, पर्यायरूप से परिणमता हुआ। **विभाव (विकार) परिणामों को हरता है,...** यह कर्ता में हर्ता जरा डाला है। समझ में आया? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसका प्रेम, रुचि छोड़कर अकेले मलिन पुण्य-पाप के भाव को अनादि से करता है। इसलिए उसे शरीर का, जगत का, यह त्रस-स्थावर का कर्ता कहा जाता है। दूसरा कोई ईश्वर जगतकर्ता है, ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : .... उसका ज्ञान किया जगत को?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन जीव? वह स्वयं प्रत्येक जीव का कर्ता, प्रत्येक अपनी-अपनी सृष्टि का कर्ता (होता है)। न्याय तो यह दिया। वेद वासना में पड़ा, निर्विकारी भगवान आनन्द की सुवास की—सुगन्ध की प्रतीति—ज्ञान नहीं करता, वेद का (भोग करता है)। मूल तो वेद लिया है। इसलिए शुरु किया भोग की वासना। वह वासना भोग की, आनन्द के भोक्ता से विरुद्ध, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव भोक्ता से विरुद्ध जो वेद की वासना स्त्री, पुरुष, नपुंसक के भोग की वासना से परिणमा, कर्म बाँधकर और शरीर को रचे, वह जगत का कर्ता, वही आत्मा है। समझ में आया? ऐसे अनन्त आत्मायें अपने शरीर की सृष्टि को, शुद्ध सृष्टि को उत्पन्न नहीं करके, अशुद्ध परिणति—मलिनभाव को उत्पन्न करनेवाला, शरीर की सृष्टि करनेवाला उस जीव को कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

कोई ईश्वर होगा या नहीं जगत में कर्ता दूसरा? आहाहा! भाई! तू ही तेरा ईश्वर

उल्टा पड़ा है। अशुद्ध। भगवान तो शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति शुद्ध निश्चय से तो वस्तु है। उसका अन्तर आदर नहीं, आश्रय नहीं, श्रद्धा नहीं, अवलम्बन नहीं। अकेले विकार के परिणमन अनादि एकेन्द्रिय से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक जो गया, वह जीव अपने अशुद्ध मलिन मिथ्यात्वसहित विकारी परिणाम से परिणमता हुआ, उस अशुद्ध परिणति का जीव कर्ता है, और उससे बँधा हुआ कर्म, उसका व्यवहारनय से कर्ता है। उससे त्रस-स्थावर के शरीर बने, उनका व्यवहारनय से कर्ता है। इस प्रकार अनादि से कर्ता होकर भटकता है। कहो, समझ में आया इसमें ?

यही भगवान आत्मा **शुद्धपनेरूप परिणत हुआ...** अपना आनन्दस्वभाव वेद वासनारहित है। तीन वेद और त्रस-स्थावर दो ही लिये हैं। भगवान! भाई! वेद वासना रहित, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव की सुगन्ध से भरपूर ऐसा भगवान अपने अन्तर में अपने अनुभव से आत्मा का विश्वास करता हुआ, शुद्धरूप से परिणमता हुआ— शुद्धरूप से होता हुआ, जैसा शुद्धस्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द है, वैसी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति शुद्धरूप से होता हुआ। **परिणत हुआ...** अर्थात् कर्ता वह स्वयं (होता है), ऐसा कहते हैं। जैसे अशुद्ध परिणति का कर्ता आत्मा था, इस प्रकार से शुद्ध परिणति का कर्ता भगवान आत्मा स्वयं ही है। समझ में आया ? उसमें कर्म-बर्म के कारण शुद्धपना आया या अशुद्धपना आया, वह यहाँ बात है ही नहीं। निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कहीं बात भले हो। समझ में आया इसमें ?

स्वयं ही अपने परमात्मा आनन्दस्वरूप को भूलकर, अकेले मिथ्याश्रद्धासहित के मलिन परिणाम से परिणमता हुआ, अशुद्ध का कर्ता होता हुआ कर्म और शरीर का व्यवहार से कर्ता, वह होता है। वही आत्मा अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप के अनुभव दृष्टि की परिणति से, अपने शुद्धस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की परिणति अर्थात् पर्याय अर्थात् अवस्था द्वारा, उस अशुद्धपने की परिणति का हर्ता वह आत्मा है, दूसरा कोई हर्ता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ? जगत का कोई नियंता कर्ता-हर्ता है या नहीं ? कि तू तेरा कर्ता और तू तेरा हर्ता है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ब्रह्मा ने क्या किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्रह्मा ने क्या किया ? यह ब्रह्मा आत्मा, उसने उत्पन्न किया

विकार, उसकी हुई यह सृष्टि शरीर आदि। अपने स्वरूप का भान करने से, परिणति करने से उस विकार की सृष्टि का संहार किया। उससे कर्म और शरीर नहीं मिले, (इसलिए) उनका संहार किया, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धपनेरूप परिणत हुआ... भगवान आत्मा अपने पवित्र आनन्दस्वरूप की सन्मुख की दृष्टि करके और शुद्धपने के परिणमन से (परिणत हुआ)। क्योंकि वस्तु शुद्ध है, उस शुद्ध के सन्मुख से शुद्ध का परिणमन, इसलिए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह शुद्ध परिणमन शुद्धता में से आया हुआ। ऐसे शुद्ध **परिणत हुआ...** अशुद्ध जो मिथ्यात्व राग-द्वेष आदि परिणति थी, उसके विकार का हर्ता हुआ। वह आत्मा विकार का हर्ता हुआ। शुद्धभाव का कर्ता हुआ। अशुद्ध का कर्ता था, वह शुद्ध का कर्ता होकर, अशुद्ध का हर्ता हुआ। कहो, समझ में आया? आहाहा! उसे कोई तार दे और कोई उभार दे और कोई मार दे, ऐसी कोई चीज़ जगत में नहीं। लो! यह कर्म ने हैरान किया, यह इनकार किया यहाँ। और परमात्मा जो उभार दे, उसका यहाँ इनकार किया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तू तुझे डुबा और तू तुझे तिरा। बाकी दूसरी बातों में कुछ माल है ही नहीं, ऐसा कहा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देव, देवला था? बड़ा देव तो यह है। भगवान को आराधना का जो विकल्प, उसके परसन्मुख के लक्ष्य से विकल्प है, भगवान ऐसा कहते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं कि तू तेरी शुद्ध परिणति से तू तेरे स्वभाव का कर्ता होकर विकार का हर्ता हो। ऐसा भगवान फरमाते हैं। कहो, सेठी! आहाहा!

यह जीव ही ज्ञान अज्ञान दशाकर कर्ता-हर्ता है... देखो! ज्ञानदशाकर शुद्ध का कर्ता और अशुद्ध का हर्ता, अज्ञानदशाकर अशुद्ध का कर्ता और शुद्ध का हर्ता। लो! समझ में आया? **और दूसरे कोई भी हरिहरादिक कर्ता-हर्ता नहीं है।** कोई हरिहरादि शंकर, ईश्वर, भगवान कर्ता-हर्ता नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- पूर्व जो शुद्धात्मा कहा था, वह यद्यपि शुद्धनयकर शुद्ध है,... अर्थात् कि सच्चे श्रुतज्ञान से देखने पर, सम्यक् श्रुतज्ञान से देखने पर, यह तो वस्तु शुद्ध ही है। वस्तु परमानन्द की मूर्ति अकेला अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर सागर है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर सम्यक् श्रुतज्ञान से देखो तो शुद्ध आनन्द से भरपूर तत्त्व आत्मा है। **तो भी...** तो भी **अनादि से संसार में...** अनादि से संसार में निगोद से लेकर **ज्ञानावरणादि कर्म बँधकर ढ़का हुआ...** लो! समझे? अपनी अशुद्ध परिणति से ढँका है, वह अशुद्ध निश्चय और कर्म से ढँका है, यह व्यवहारनय। यह असद्भूत, असद्भूत।

वीतराग, निर्विकल्प सहजानन्द, अद्वितीय सुख के स्वाद को न पाने से... देखो! भाषा। आगे एक आयेगा बाद में भी शंकर और हरिहर आदि, परन्तु वह वहाँ वीतराग निर्विकल्प उत्कृष्ट उस भव में मोक्ष जानेवाला ऐसा भाव लेंगे। यहाँ तो अनादि से यह नहीं पाया, ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ हुआ कि **अनादि से संसार में ज्ञानावरणादि कर्म बँधकर ढका हुआ वीतराग, निर्विकल्प सहजानन्द, अद्वितीय सुख के स्वाद को न पाने से...** क्या कहा? सम्यग्दर्शन की व्याख्या करते हुए यह कहा। अपना अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, वीतरागस्वरूप, निर्विकल्प सहज आनन्द, अजोड़ सुख, जिसके आनन्द की जोड़ जगत में नहीं मिलती, ऐसे सुख का स्वाद, वह सम्यग्दर्शन पाये बिना उसके सुख का स्वाद इसे आता नहीं। समझ में आया?

यहाँ वेद के सामने लेना है न? अपना आनन्द का स्वाद नहीं पाकर, ऐसा कहा है। ऐसा नहीं कहा कि, व्यवहार समकित हुआ तो पाया था और निश्चय समकित नहीं पाया था। समझ में आया? यह पहले सम्यक् जो है, वही पाया नहीं। अनादि से भटका, इसका कारण (यह कि) भगवान रागरहित निर्विकल्प शान्त ऐसा आत्मा का आनन्दरस, शान्तरस, उपशमरस, अविकारीरस के स्वाद को '**अलभमानो**' उसके स्वाद को नहीं पाता हुआ... उसके स्वाद को पावे तो सम्यग्दर्शन हुआ और उसे जन्म-मरण हो नहीं। समझ में आया?

अनादि काल से अपना अद्वितीय सुख जिसके अन्तर में आनन्द-अजोड़ आनन्द, तेज जैसा आनन्द। चक्रवर्ती और इन्द्रों के सुख की गन्ध, वह सब जहरवाली गन्ध। उससे यह विपरीत (सुगन्ध है)। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, उसके अन्तर

सम्यग्दर्शन में (होनेवाले) आनन्द के स्वाद को नहीं पाता हुआ। समझ में आया? **व्यवहारनयकर त्रस और स्थावररूप...** व्यवहारकर यह स्थावर-एकेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति के शरीर और त्रस के—दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, नारकी, मनुष्य, पशु-ढोर और देव।

स्त्री, पुरुष, नपुंसक लिंगादि... अरे! जिसमें अवेद निर्विकारी भगवान आत्मा वह अपने निर्विकारी आनन्द के स्वाद को नहीं पाता हुआ **स्त्री, पुरुष, नपुंसक लिंगादि सहित होता है,...** यह वेद के लिंग उसे मिलते हैं। अन्दर विकार की वासना और बाहर के यह देह के आकार। जो दोनों वस्तु में है नहीं। समझ में आया? यह स्त्रीवेश, पुरुषलिंग, नपुंसकलिंग, यह सब मिथ्यात्वभाव से आत्मा के आनन्द के स्वाद के अभाव में विकारी दुःखी के स्वाद से यह सब लिंग उसे प्राप्त होते हैं। कहो, समझ में आया? लो! पुरुषवेद हुआ, वह बहुत अच्छा हुआ। स्त्रीवेद की अपेक्ष पुरुषवेद अच्छा न, ऐसा कहते हैं न? यहाँ तो कहते हैं कि, भगवान आत्मा अपने अन्तर आनन्द के स्वाद को न प्राप्त करता हुआ ऐसे लिंग को प्राप्त करता है। कहो, समझ में आया?

एक बार कहते थे, बात आती थी। चक्रवर्ती की रानी की अपेक्षा कुत्ता महापुण्यवन्त। पुरुष वेद को प्राप्त। वहाँ वे बेचारे (भ्रमित हो जाये)... ओहोहो! क्या महासती परन्तु व्याख्यान (देती है)! स्त्रीवेद की अपेक्षा पुरुषवेद का पुण्य कितना! सुननेवाले को भान नहीं होता इसलिए यह क्या कहती है, इसकी खबर नहीं होती। परन्तु पुरुष है न कुत्ता भी, चक्रवर्ती की रानी स्त्री है। स्त्री की अपेक्षा पुरुष के कितने पुण्य कि कुत्ता का वेद बड़ा! वे कहे... आहाहा! व्याख्यान कुछ किया आज!

मुमुक्षु : .... प्रमाण कहते होंगे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण कहे। सब ऐसे ही हों वहाँ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा ही चला है अभी तक।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो! उसमें बहुत पॉइन्ट रखे हैं, हों! कल यह। पॉइन्ट बहुत रखे। ओहोहो! बहुत रखे हैं आज। वह था क्या यह? कानजीस्वामी से पहले था क्या अपने यहाँ? आमतौर पर... आमतौर अर्थात् क्या? पुण्य करो और यह करो और

व्यवहार करो और पुण्य करो, यह बात थी। आत्मा की शुद्धि, वह था कब ? यह जहाँ निश्चय आत्मा, निश्चय समकित और पुण्य हेय। यह तीन बातें आयीं वे लोग... हो जाये। खलबलाहट हो गयी। पॉइन्ट तो बहुत कठिन रखे। अभी फिर से पॉइन्ट के ऊपर एक-एक चिह्न किये वापस। समझ में आया ? आहाहा ! उपदेश के परिवर्तन की जवाबदारी दो को डाली है। दो कौन बदले ? ... आहाहा !

कहते हैं, भगवान आत्मा यह पुरुषलिंग पावे, वह आत्मा के आनन्द के स्वाद के अभाव में मिथ्यात्वभाव से पाता है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा ! समझ में आया ? वह पुरुषलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग के स्वाद लेने जाता है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा के आनन्द का स्वाद न लेकर, उस स्वाद को न प्राप्त कर, विपरीत स्वाद से बँधे हुए मिथ्यात्वभाव से बँधे हुए कर्म, उनसे प्राप्त तीन वेद, उस वेद के स्वाद में जाता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। इस जगत की यह सृष्टि उसने रची है। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा !

इसलिए जगत्कर्ता कहा जाता है... इसलिए उसे जगत का कर्ता कहा जाता है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद नहीं पाकर, उल्टी श्रद्धा-ज्ञान द्वारा कर्म बाँधकर जो शरीर और यहाँ लिंग प्राप्त हुए, और उन लिंगों में स्वाद लेने के लिये जो प्रयासरत है, वह नये लिंग उत्पन्न करने के कारण को सेवन करता है। मोक्ष के मार्ग की खबर नहीं कि छूटना कैसे, इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा ! गजब बात, भाई ! समकिती छियानवे हजार (स्त्रियों के) वृन्द में पड़ा, उस भोग के स्वाद को दुःख, जहर मानता है। वह अपने आनन्द के स्वाद की मिठास के समक्ष, वह अशुभभाव को जहर, दुःखदायक, आया हुआ बड़ा उपसर्ग मानता है। समझ में आया ?

मिथ्यादृष्टि विषय की वासना में मजा (मानता है)। भारी अनुकूल, भारी मजा। मूढ़ ऐसी वासना में एकत्व हुआ मिठास में पड़ा हुआ, नये वेदना के लिंग खड़े करता है और त्रस-स्थावर में भटक रहा है, ऐसा कहते हैं। कहो, भीखाभाई ! आहाहा !

सम्यग्दृष्टि को आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष छियानवें हजार (स्त्रियाँ) और करोड़ों अप्सराओं के भोग का विकल्प जहर, दुःख है। मानो बाण लगते हों गर्म-गर्म किये हुए, लोहे के गर्म धगधगते किये हुए बाण लगते हों, ऐसा ज्ञानी को लगता है।

अज्ञानी को उस भोग में मिठास में, मिठास में खिंचता हुआ, मिथ्यात्वभाव से स्वाद लेता हुआ, अनन्त नये वेद और त्रस-स्थावर के शरीर को उत्पन्न करता है। जगत का कर्ता वह आत्मा स्वयं। कहो, ...भाई! आहाहा! परमात्मप्रकाश प्रत्येक गाथा में बात ही अलग प्रकार की डालते हैं। समझ में आया?

अन्य कोई भी दूसरोंकर कल्पित परमात्मा नहीं है। यह विविध प्रकार के त्रस, स्थावर के शरीर और वेद, वे किसने किये? तूने तेरे आनन्द को भूलकर दुःखदायक अशुद्ध परिणति से सब किये। समझ में आया? दूसरा कोई कर्ता नहीं। उसे टालनेवाला दूसरे की कृपा से टले, ऐसा भी नहीं। लो! **यह आत्मा ही परमात्मा की प्राप्ति के शत्रु...** देखो! देखो! भगवान आत्मा के आनन्द से शत्रु, **तीन वेदों (स्त्रीलिंगादि) कर उत्पन्न हुए रागादि विकल्प जालों को...** देखो! देखो! आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से उल्टा। यह स्त्री, पुरुष, नपुंसक के राग से उत्पन्न हुआ वेदना भोग की वासना से। **निर्विकल्पसमाधि से जिस समय नाश करता है,...** ऐसे विकल्प को, राग को, मैलभाव को आत्मा के निर्विकल्प शान्त दृष्टि-श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति से, **नाश करता है, उसी समय उपादेयरूप...** उसी क्षण वह आत्मा उपादेयरूप, **मोक्ष-सुख का कारण होने से...** मोक्ष के आनन्द का वह आत्मा और आत्मा के आनन्द का अनुभव कारण होने से **उपादेय हो जाता है।** उस समय आत्मा अंगीकार करनेयोग्य हो जाता है। समझ में आया? यह क्या कहा?

वेद की वासना के भोग वासना जो विकल्प के जाल, उसे भगवान आत्मा शुद्ध अन्तर शुद्ध निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति द्वारा छेदता है। समझ में आया? नाश करता है। उस काल उस आत्मा को उस आत्मा की शान्ति का वेदन वह उपादेय है। उपादेय शान्ति आयी, तब आत्मा उपादेय हुआ। वरना तो दृष्टि में विकार उपादेय था। समझ में आया?

आत्मा उपादेय हुआ कब कहलाये? अकेली श्रद्धा में लिया कि आत्मा (ऐसा), ऐसे नहीं, कहते हैं। ...भाई! आहाहा! यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय प्रभु, अपनी अन्दर निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति द्वारा उस अशुद्धता का नाश करे और शुद्धता द्वारा आत्मा का आदर करता है, तब वह आत्मा उपादेयरूप से हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कितने .... हों? तुम कहो न! तुमने सेठाई बहुत की है। तब तुमने वहाँ कितनी विपरीतता घुसाई होगी? कलकत्ता में मन्त्री थे या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ का बहुत करते थे, लो! ठीक, देखो! ... किये, पैसे दो, ऐसा करो, भाषण करे। क्योंकि वक्ता स्वयं। दो गाँव, दो तालाब और दो तालाब ऐसे। कहो, कितने अपवास से होगा? तुम कहो न तुमने कितना किया था पहले से? एक तालाब ऐसे जाये और एक तालाब ऐसे जाये। पाल फटे इसलिए। उसकी ओर एक ओर ऐसे जाये, एक ओर ऐसे जाये। एक ओर पाप की महिमा करे, तो फिर एक ओर पुण्य की महिमा करे। देखो! आहाहा! समझ में आया?

उसी समय उपादेयरूप मोक्ष-सुख का कारण होने से... अर्थात् कि आत्मा परमानन्द की मूर्ति (स्वयं हूँ), ऐसा अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति हुई, तब वह उपादेय है, ऐसा अभेद हुआ तब उपादेय है, ऐसा हुआ। वरना उपादेय आत्मा इसकी दृष्टि में रहा नहीं। दृष्टि में तो राग और पुण्य के विकल्प का आदर जहाँ है, वहाँ आत्मा का आदर है, ऐसे दोनों साथ में नहीं हो सकते, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! परमात्मप्रकाश में बहुत संक्षिप्त और ऊँची बात की है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ४१

४१वीं (गाथा)। **आगे जिस परमात्मा के केवलज्ञानस्वरूप प्रकाश में...** भगवान स्वयं यह केवलज्ञान आत्मा, हों! चैतन्य सूर्य भगवान दिप्त, लसलसता चैतन्य सूर्य आत्मा विराजमान है। कभी नजर डाली नहीं, उसका विश्वास आया नहीं, उसके सन्मुख देखने के लिये निवृत्त हुआ नहीं। आहाहा! जो यह आत्मा परम अर्थात् परमस्वरूप, परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप ऐसा, **केवलज्ञानस्वरूप प्रकाश में जगत बस रहा है,...** ऐसे परमात्मा में, केवलज्ञान में पूरा जगत बसता है। जाननेरूप से जगत बसता है,

करनेरूप से जगत का कुछ नहीं। समझ में आया? आहाहा! एक विकल्प से लेकर कुछ करनापना चैतन्य में बिल्कुल नहीं और भगवान के ज्ञान में लोकालोक सब अन्दर बसता है, जानने की अपेक्षा से। ओहोहो! समझ में आया? **तो भी वह जगतरूप नहीं है,...** उसके ज्ञान में सब ज्ञात होने पर भी पररूप कभी होता नहीं। ऐसा यह भगवान आत्मा कैसा है, यह वर्णन करते हैं।

४१) जसु अब्भंतरि जगु वसइ जग-अब्भंतरि जो जि।
जगि जि वसंतु वि जगु जि ण वि मुणि परमप्पउ सो जि॥ ४१॥

जिस आत्माराम के केवलज्ञान में... ज्ञान की प्रकाशमय मूर्ति में पर्याय प्रगट हो तो भी... शक्ति कहो, सब एक ही है। **संसार बस रहा है,...** सारा संसार जिसमें जानने में आ गया है। उसके ज्ञान में स्व-परप्रकाश के सामर्थ्य में सब जाननेरूप सामर्थ्य उसका है। **प्रतिबिम्बित हो रहा है,...** जिसके केवलज्ञान की पर्याय में लोकालोक जानने में आया है। प्रतिबिम्ब का अर्थ जानने में आया। **प्रत्यक्ष भास रहा है, और जगत में वह बस रहा है,...** जगत में आत्मा व्याप्त है अर्थात् उसके ज्ञानरूप से व्याप्त कहा जाता है न?

संसार में निवास करता हुआ भी निश्चयनयकर किसी जगत की वस्तु से तन्मय (उस स्वरूप) नहीं होता,... भगवान ज्ञानस्वरूप सब चीज़ों को ज्ञान में जानने पर भी और आत्मा में जगत मानो ज्ञानरूप से आया, ऐसा होने पर भी, और उस जगत में आत्मा गया अर्थात् उसका ज्ञान किया, उसमें व्याप्त हुआ, ऐसा होने पर भी, वह जगत को (और) रागादि को कभी स्पर्श नहीं करता। **सबमें व्याप रहा है। प्रत्यक्ष भास रहा है, वह ज्ञाता है और जगत ज्ञेय है,...** क्या कहते हैं, समझ में आया? यह चैतन्यगोला, चैतन्यप्रकाश का रूप प्रभु, वह तो जाननेवाला—देखनेवाला है और विकल्प से लेकर सब ज्ञेय जगत है।

बस, दो बातें। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। भगवान चैतन्यप्रकाश का गोला, जिसे विकल्प से लेकर सब चीज़ का जानना अपने स्वभाव सामर्थ्य से वर्तता है। परन्तु वह भगवान जगत में बसे, जगत यहाँ बसे ज्ञानरूप से, तो भी जगत को बिल्कुल स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह पुण्य-पाप के भाव को स्पर्शता नहीं। अभी, हों! ज्ञाता

ऐसा वह है। उसने मान्यता में अन्तर किया है। समझ में आया? घर में गोला नहीं टाँगते? किसके काँच के कहलाते हैं या क्या कहलाते हैं वे? हरे और पीले। उनमें पूरा घर दिखे ऐसे खिड़की-बिड़की। वह पूरा घर मानो घुस गया हो। सरिया-बरिया दिखाई दे, हों! देखा है या नहीं? देखते-देखते नजर तो पड़ गयी हो न। सब देखा तो होगा या नहीं? सरिया दिखाई दे, खिड़की दिखाई दे, ऐसे आधी दिखाई दे, आधी बन्द हो तो आधी दिखाई दे, खुल्ली दिखाई दे। उसमें सब दिखाई दे। उसी प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में भगवान चैतन्यगोला लटकता अद्धर है, हों! अद्धर। निरालम्बी, कर्म और शरीररहित, शरीर और कर्म के आधाररहित। कपूरभाई! वह कहाँ होगा? ऐसा कहते हैं। ऐसी बातें! कभी इसने नजर की नहीं, मुफ्त का अन्ध होकर घूमता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : परन्तु अब साहेब! बता तो दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर कहाँ बैठा होगा? ऐसा कहे। वह अन्दर विराजता है, वह चैतन्य कहाँ बैठा होगा, ऐसी शंका करता है, वह स्वयं ज्ञान में बैठा है। वह शंका करता है, कहाँ बैठा होगा? वह स्वयं ही स्वरूप में बैठा है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

देखो! यह ज्ञान की वर्तमान प्रगट पर्याय, उसमें शरीर ज्ञात होता है या नहीं? रागादि ज्ञात होते हैं या नहीं? स्त्री-पुत्र ज्ञात होते हैं या नहीं? यह भूतकाल ऐसा हुआ, वह भी उसके ज्ञान में आता है या नहीं? भविष्य में ऐसा होगा... ऐसा होगा... ऐसा होगा... ऐसा होगा... वह भी ज्ञान में आता है या नहीं? तो उसके ज्ञान की वर्तमान पर्याय में सब जगत का ज्ञान आ जाता है। और जगत को मानो स्पर्शता हो, उसके स्वरूप में व्यापक हो, उसमें व्यवहार से कहा जाता है। तथापि वह विकल्प और कोई चीज़ को ज्ञान, ज्ञाता स्वभाव स्पर्शा ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर स्पर्शा या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शरीर की कहाँ बात लगायी? यहाँ तो विकल्प से लेकर। अभी, हों! आहाहा!

धीरे से विचार करो कि यह ज्ञानपर्याय ऐसा जानती है या नहीं? कि, यह अनादि

का हूँ, यह संयोग अनादि के हैं, यह राग है, यह कर्म है, ऐसा ज्ञान वर्तता है या नहीं? और भटकनेवाले ऐसे जीव भविष्य में ऐसे भटकेंगे, ऐसा होगा, ऐसा ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञान वर्तता है या नहीं? वह ज्ञान वर्तता है। ऐसा ही उस ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव का सामर्थ्यवाला सत्त्व और तत्त्व में वह बैठा है। परन्तु मानता है कि राग और शरीर में बैठा, उसकी भ्रमणा, मिथ्यात्व भ्रमणा है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो, तुम्हारी माँ के लिये या तुम्हारे लिये?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहा जाता है। नहीं, नहीं, यह तो साधारण, यह गुर करके तो देते हैं। बिना दाँत के लड़के खा जाये। बाजरे के आटे का। समझ में आया? एक तो मानो बाजरे का आटा किया हो, और उसे फिर चाळा हो, चाळकर ... करके उसके बनाये रोटला। उसमें से पड और नीचे का निकालकर बीच का (रहा) गुड़, वह उसे शक्कर और शक्कर डालकर ऐसा गुर दिया जाता है। लो! समझ में आया? ऊपर का पड निकाल डाले, नीचे का पड निकाल डाले, वह भी बाजरे का आटा कैसा? ऐसा ... डला ऐसा नहीं। पहले तो आटा अच्छा किया हुआ भारी चक्की में। बारीक हो गया हो। वह अधिक ऊँचे डाले तो बराबर न हो। भारी चक्की में दला हो, उसे फिर मलमल में चाळा हो। उसके बनाये रोटला, उसके पड के ऊपर को निकाला हो, बीच का, उसमें गुर शक्कर-घी को डाले ऐसी है यह बात, लो! सेठी! अब कहे, परन्तु खिलाओ, लो! परन्तु अब खाना किसे? ऐई! देवानुप्रिया! आहाहा!

अरे! भगवान! तू अस्ति है या नहीं? यहाँ तो यह सिद्ध करते हैं। परमात्मप्रकाश है न? एक ओर परमात्म है तथा एक ओर यह सब है। यह सब है, उसका ज्ञान वर्ते, ऐसा वह है। और मानो कि उसमें गया हो तो सब यहाँ आ गया तो उसमें गया, ऐसा कहा जाता है। ऐसा चैतन्य भगवान आत्मा ज्ञानसामर्थ्य का पिण्ड प्रभु! वह राग को, शरीर को कभी छुआ नहीं, स्पर्शा नहीं। वस्तुस्वभाव विकार को और पर को स्पर्शता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **निश्चयनयकर किसी जगत की वस्तु से**

तन्मय (उस स्वरूप) नहीं होता,... यह आत्मा ज्ञानमूर्ति चैतन्यबिम्ब प्रभु अरूपी गोला अन्दर भिन्न है। वह शरीररूप हुआ है ? शरीररूप हुआ (हो) तो पृथक् कैसे पड़ेगा ? रागरूप हुआ है ?

मुमुक्षु : थोड़ी देर तो हुआ है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी हुआ नहीं। माना है मान्यता में।

मुमुक्षु : परन्तु दुःखता है इतनी देर तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःखता है अज्ञान के कारण, पर के कारण नहीं। 'यह मुझे होता है' ऐसी भ्रमणा का ज्ञान है, तथापि उस भ्रमणा से मैं दुःखी हूँ, ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : छुरा लगे तो खड़ा हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : छुरे को छूता भी नहीं, मूढ़ कहता है (मुझे छुरा लगा)। वह तो यह छुरा और यह, उसका यहाँ ज्ञान, उस काल में यह क्या है ज्ञेय, उसका यहाँ ज्ञान वर्तता है। उसी प्रकार का ज्ञान, ज्ञान में वर्तता है कि यह छुरा गया शरीर में कुछ होता है, ऐसा ज्ञान वर्तता है। वह ज्ञान अनुभूति ज्ञान वर्तता है। परन्तु ऐसा न मानकर, यह मुझे होता है और उसमें मैं घुस गया हूँ, यह उसकी मिथ्याभ्रान्ति जगत को उत्पन्न करती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : .... कारण क्या ? प्रभु!

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी भ्रमणा की वह। कारण क्या ? भ्रमणा खड़ी करता है। अब करता है उसका कारण क्या ? परन्तु करता है न ? दिखता नहीं ? चिल्लाहट चिल्लहाट करता है अन्दर से। मर जायेंगे तो अब अच्छा। कहाँ जाना है ? वहाँ मौसीबा बैठी है ? समझ में आया ?

कहते हैं कि भगवान चिदानन्दमूर्ति तो जो है, वह चैतन्य का गोला अन्दर है पूरा। वह सब विकल्प से लेकर सब चीज़ों का ज्ञान करनेवाला है। वह ज्ञान करनेवाला है, परन्तु राग और पर का करनेवाला वह नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान परमात्मा अपने को उस रीति से न मारकर, दूसरे प्रकार से राग और पुण्य और यह... यह... यह... और

यह मेरे, यह मान्यता भ्रमणा, उसे नया संसार ऐसे शरीर को खड़ा करता है। कहो, समझ में आया इसमें?

यह तो परमात्मप्रकाश है। एक-एक गाथा में एकदम... भाई! दो अस्तित्व है। उसमें एक अस्तित्व में तू है और एक अस्तित्व में ऐसा जगत। एक ओर भगवान स्व-परप्रकाशक चैतन्य का गोला भगवान आत्मा, और एक ओर सब चीज़ें। उनका ज्ञान वर्ते, ऐसा तू है। परन्तु उनमें तू वर्ते और वे इसमें (तुझमें) वर्ते, उनके काम तू करे और उनके अस्तित्व में यह अस्तित्व और इस अस्तित्व में वह अस्तित्व, (ऐसा) है नहीं। ओहोहो! मनसुख! कहो, क्या होगा ऐसी भ्रमणा? क्या खड़ी हुई होगी? कहता था। यह तूने खड़ा किया उत्साह से—हर्ष से। हर्ष सन्निपात हुआ है इसे। आहाहा! इसके अस्तित्व में आनन्द है, आनन्द बिना की यह चीज़ हो नहीं।

मुमुक्षु : कितने भव की अज्ञानता भरी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की। कितने भव की नहीं, एक समय की। भाई! वे कहे, कितने भव की पड़ी होगी? एक ही समय की, कहा न! एक ओर पूरा भगवान चैतन्यगोला प्रभु स्व-परप्रकाश की मूर्ति अरूपी आनन्दकन्द। शान्त और आनन्द की शिला का पिण्ड प्रभु आत्मा। एक ओर विकल्प से लेकर सब चीज़। एक समय में यह मेरे, यह माना है बस, हो गया। एक समय में माना है कि यह मेरे। 'यह मेरे' छूट गया (तो) सब (छूट गया)। समझ में आया? आहाहा!

देखो! दृष्टान्त देते हैं। **अर्थात् जैसे रूपी पदार्थ को नेत्र देखते हैं,...** देखो! लो! आँख अग्नि को देखती है या नहीं? अग्नि को आँख देखती है या नहीं? बर्फ को आँख देखती है या नहीं? वह आँख देखे तो वह आँख गर्म, ठण्डी हो जाती है? ऐसे अग्नि को देखे तो यहाँ (आँख) गर्म हो गयी? ऐसे बर्फ को देखे तो आँख ठण्डी हो गयी? इसी प्रकार ज्ञाननेत्र आत्मा के चैतन्यचक्षु अन्दर है, जगत को देखे तो कहीं जगतरूप हो गया? समझ में आया? ओहोहो!

जैसे रूपी पदार्थ को नेत्र देखते हैं, तो भी उनसे जुदे ही रहते हैं, इस तरह वह भी सबसे जुदा रहता है, उसी को परमात्मा, हे प्रभाकरभट्ट! तू जान। लो! यह भगवान

आत्मा राग से, शरीर से, कर्म से सबसे (भिन्न) सबका जाननेवाला भिन्न वर्तता है, उसे तू हे शिष्य! परमात्मा जान, दूसरा कोई परमात्मा तेरा तुझसे भिन्न तुझे नहीं। समझ में आया? ओहोहो! पामरपना माना है न इसने? एक जरा पाँच पैसे मिले वहाँ हर्ष... हर्ष... हर्ष (हो जाये और कहे), लापसी का आंधण रखो। यह हुआ, फलाना हुआ, अच्छा कपड़ा आया, अरे! एक घर में क्या कहा? खांडणी। खांडणी और (इमाम) दस्ता ... घर में (आवे), वहाँ तो घर के दस मनुष्य प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। लो! यह तो खांडणी... अपने नया रास। क्योंकि मेहमान का घर हो, हरसमय कहाँ माँगने जाना? सौंठ तोड़नी हो, फलाना (करना हो तो काम आवे)। क्या है परन्तु अब यह? तेरी मूर्खाई का प्रदर्शन कितना करना है तुझे?

मुमुक्षु : नहीं था तब तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या नहीं था? सब ज्ञान वर्तता है उसमें, नहीं ... कहाँ? ज्ञान में सब वर्तता है कि यह है... है... है... है... मैं ज्ञान... ज्ञान... कहाँ नहीं? किसे कहना सांपड्युं और किसे कहना अभाव? सुन तो सही, कहते हैं। आहाहा! यह तो अलक-मलक की दूसरी बातें, यह तो अगम्य-गम्य की बातें हैं। कहो, पोपटभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने मान्यता की, भ्रमणा खड़ी की। भ्रमणा और भ्रमणा में लार में चला गया। ओहो! चैतन्यप्रभु ज्ञानानन्द का समुद्र, उसे एक बार... सवेरे याद आया (था)। कहीं है सही, श्रीमद् में। अरे! ऐसे आत्मा को विकल्प से दुःखी करना नहीं। ऐसा कुछ आता है। ऐसा आता है। रास्ते में विचार आया था। ऐसा भगवान आत्मा उसे ... किसी के प्रति लिखते हैं, उसे विकल्प से दुःखी करना नहीं। आहाहा!

विकल्प आवे, तथापि वह दुःखता है आत्मा, ऐसा जिसे भान नहीं, उसे विकल्प में आनन्द वर्तता है। समझ में आया? उसे शुभाशुभ विकल्प में अपना अस्तित्व भासित होता है। शुभाशुभ विकल्प से उसका जाननेवाला भगवान भिन्न है। उसे याद करने से, उसका माहात्म्य देखने से, उस विकल्प से, स्पर्श से अत्यन्त रहित है। उसे विकल्पवाला मानना, उस विकल्प से जीव को दुःखी करता है। वह आत्मा की शान्ति को घातता है।

घातता है, उसे मजा आवे, ऐसा मानना, अब यह किसके घर की भूल टालनी कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? वह शुभाशुभभाव हो, उसका जाननेवाला है। इसलिए जाननेवाले रूप से वह पृथक् तत्त्व है। उसे उस तत्त्व से मुझे शान्ति और मुझे ठीक समाधान होता है, उसका अर्थ कि आत्मा की शान्ति और वह श्रद्धा उसे घात डालती है। ...भाई! समझ में आया?

भावार्थ :- जो शुद्ध, बुद्ध सर्वव्यापक सबसे अलिप्त, शुद्धात्मा है,... देखो! जो भगवान शुद्ध अर्थात् निर्मल, बुद्ध अर्थात् अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु, ज्ञान का पुंज, ज्ञान की मूर्ति। सर्वव्यापक अर्थात् सबको जाननेवाला। सर्वव्यापक का अर्थ सबको जाननेवाला। वह भगवान आत्मा सबका जाननेवाला। **सबसे अलिप्त,...** वह रागादि सबसे अलिप्त भगवान वस्तु स्वरूप आत्मा का है। वह **शुद्धात्मा है...** समझ में आया?

उसे वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थिर होकर ध्यान कर। लो! भाई! जिसे लक्ष्य में लेना है, उसमें विकार नहीं। तो विकाररहित श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति द्वारा उसका ध्यान कर। समझ में आया? तो तूने आत्मा को प्राप्त किया, ऐसा कहा जाये। कठिन लगता है न? यह निश्चय वस्तु, निश्चय... देखो न, पुकारते हैं। उपदेश को परिवर्तन की आवश्यकता है, ऐसा लिखते हैं। उसे और हिम्मतभाई समझाते हैं। पण्डित पण्डित समझे तो खबर पड़े इसमें। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह ध्यान, वह तप है, दूसरा तप कौनसा था? तप का कहना क्या? यह अन्तर में भगवान अन्तर ज्ञान की दशा से मुड़े, वह तपस्या, वह ध्यान, वह संवर, वह निर्जरा, वह मोक्ष का मार्ग। वह सब सर्वस्व इसकी पर्याय में वर्तता है। आहाहा! भाई! परन्तु वह ऐसे कभी पाँच दिन, पन्द्रह दिन सुने तो खबर पड़े कि यह क्या है। अब यह तो किया, वह तो कहा ही करता है कि व्यवहार करना... करना। करना, वहाँ आत्मा कहाँ रहा? व्यवहार के विकल्प का भी जाननेवाला है, उसे करना, सौंपना, वह आत्मा को दुःखी कर देता है। होता है, वह अलग बात है। समझ में आया? बहुत तो यह चाहे तो वह हो, भूमिका प्रमाण राग होता है। परन्तु उसमें है, इसलिए यह है और यह है इसलिए वह है। दोनों भिन्न हैं। इसके कारण यह और उसके

कारण यह, ऐसा नहीं। जेठाभाई! अगम-निगम की बातें हैं यह, भाई! आहाहा! अरे! तेरा लेखा केवली जाने, बापू! और तू जान तब तुझे खबर पड़े।

ऐसा भगवान आत्मा,... कहते हैं, अपनी अन्तर दृष्टि द्वारा, शान्ति द्वारा स्व को ज्ञेय बनाने के काल में शुद्धता से जब अनुभव करे, तब वह ध्यान करे, तब वह उपादेय है। समझ में आया? **जो केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार है,...** अब लेते हैं मोक्ष का कारण। मोक्षरूप दशा, भगवान आत्मा की केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द (रूप) अरिहन्त भगवान की दशा या सिद्ध भगवान की दशा, ऐसा जो व्यक्त... शक्तिरूप से तो था भगवान, पूरा परमात्मा पूर्ण, उसे अन्तर में ध्यान द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वे तीनों पर्यायें ध्यान द्वारा कार्यसमयसार अर्थात् पूर्ण वीतरागता केवलज्ञान प्रगट किया, वह कार्य किया उसने, उसने कार्य किया वह। उस कार्य का कारण कौन?

उसका कारण वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानरूप निजभाव ही उपादेय है। लो! उसका **कारण वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानरूप निजभाव ही उपादेय है।** आहाहा! बात सुनते हुए कितनों को ऐसा लगे कि यह क्या होगा? इसने कभी घर की बात सुनी नहीं। यह कितना बड़ा महान प्रभु है (कि) जिनकी—वीतराग की वाणी में पूरा पड़ा नहीं। ऐसा भगवान अपने कार्यसमयसार जो मोक्ष का कार्य, उसे आत्मा शुद्ध चैतन्यदल, उसकी अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान द्वारा रागरहित स्वसंवेदन ज्ञान। आत्मा का, रागरहित ज्ञान से ज्ञान... ज्ञान से ज्ञान... ज्ञान से ज्ञान... राग से ज्ञान नहीं, व्यवहार से ज्ञान नहीं। ज्ञान से ज्ञान के वेदन द्वारा। समझ में आया? वह मोक्ष का कारण। वैसा **निजभाव ही उपादेय है।** ऐसा मोक्ष का मार्ग, वही आत्मा को कारणरूप से उपादेय है। कि जिसके कार्य में परमात्मा व्यक्तिरूप से प्रगट होता है। ओहोहो! समझ में आया? लो! ४१ वीं गाथा हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १०, बुधवार, दिनांक २०-१०-१९६५
गाथा - ४२-४३, प्रवचन - २८

गाथा - ४२

परमात्मप्रकाश। पहले भाग की ४२वीं गाथा। **आगे...** अब यहाँ शुद्धात्मा। **वह शुद्धात्मा...** अन्दर वस्तु, वस्तु है न पदार्थ? **यद्यपि देह में रहता है,...** देह में, असद्भूत व्यवहारनय से ऐसा कहा जाता है कि उसमें रहता है। **तो भी परमसमाधि के अभाव से...** परम समाधि जिससे अन्तर वीतरागता की जो दशा हो कि जिससे उस भव में मोक्ष हो। ऐसे अभाव के कारण, **हरिहरादिक सरीखे भी जिसे प्रत्यक्ष नहीं जान सकते, वह परमात्मा है, ऐसा कहते हैं**—विशेष स्पष्टीकरण देंगे, हों!

४२) देहि वसंत वि हरि-हर वि जं अज्ज वि ण मुणंति।
परम-समाहि-तवेण विणु सो परमप्पु भणंति॥ ४२॥

क्या कहा? इस **परमात्मस्वभाव से भिन्न शरीर में...** यह शरीर तो मिट्टी-धूल का है। आत्मा परमात्मा तो उससे भिन्न विपरीत चीज़ है दोनों। और **परमात्मस्वभाव से भिन्न शरीर में...** देखो! ऐसा लिया। परमात्मा अर्थात् अपना निज स्वभाव आत्मा आनन्द शुद्ध वस्तु, उससे भिन्न (वस्तु) वह शरीर, उसमें जो बसता है, ऐसा कहना, भिन्न में बसता है, ऐसा कहना, वह **अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयकर...** कहा जाता है। ऐसा कि इतने देह में है, ऐसा सम्बन्ध बतलाना है, और असद्भूत अर्थात् वास्तव में देह में वह है नहीं। समझ में आया?

'**वसन्तमपि**' अनुपचरित अर्थात् शरीर का सम्बन्ध इतने में आत्मा है, इस अपेक्षा से उसे अनुपचरित कहा। वह आत्मा कोई ऐसे बाहर में व्यापक है, ऐसा है नहीं। इसलिए शरीर में अनुपचरित इतने सम्बन्ध में व्यापक है, इस अपेक्षा से उसे अनुपचरित कहा। और असद्भूत—इस देह में है नहीं, इसलिए झूठे नय से शरीर में है, ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया? इसलिए कोई ऐसा कहता हो कि भाई! आत्मा है, वह

तो ऐसे सर्वत्र सर्वव्यापक है। ऐसा महान आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा नहीं। व्यापक तो शरीर प्रमाण ही है, इतना सम्बन्ध बतलाने के लिये इतने में ही पूरा पूर्णानन्द प्रभु आत्मा है। समझ में आया? इसलिए उसे अनुपचरित कहा और असद्भूत, शरीर जड़ में वह रहता नहीं परन्तु कहना, वह झूठी दृष्टि से है। ऐसा व्यवहार निमित्तनय से बसने से ऐसा कहा जाता है।

तो भी जिसको हरिहर सरीखे... हरि अर्थात् विष्णु, हरादि शंकर आदि। **सरीखे चतुर पुरुष अब तक भी नहीं जानते हैं।** समझ में आया? उसे—पूर्णानन्द को प्रत्यक्ष करना चाहिए, इस प्रकार से उन्होंने जाना नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह .... केवली जानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं जानते। केवली को... वीतराग निर्विकल्प समाधि, क्षपक श्रेणी की जो समाधि होनी चाहिए, उस प्रकार से उन्होंने जाना नहीं। समझ में आया इसमें?

किसके बिना? देखो, भाषा! '**परमसमाधितपस्या विना**' यह तपस्या की व्याख्या की। **वीतरागनिर्विकल्प नित्यानन्द अद्वितीय सुखरूप अमृत के रस के आस्वादरूप परमसमाधिभूत महातप के बिना नहीं जानते,...** यह महातप की व्याख्या है। महातप किसे कहना? आहाहा! कि रागरहित भगवान आत्मा जो शुद्ध पूर्णानन्द है, उसे रागरहित अभेद नित्यानन्द अद्वैत सुखरूप, दूसरा उस आनन्द का जोड़ नहीं जिसके साथ, ऐसे **सुखरूप अमृत के रस के...** ऐसा आत्मा के अमृत का स्वाद, उसके आस्वादरूप परम शान्तिभूत, उसे महातप कहा जाता है। ऐसे महातप बिना आत्मा अन्तर में प्रत्यक्ष हो, ऐसा उसे होता नहीं। समझ में आया? लो! यह तपस्या की व्याख्या। भारी तपस्या! अपवास कितने करना इसमें?

भगवान आत्मा चैतन्य देहदेवल में रहे, ऐसा कहना वह सम्बन्ध तो झूठे नय का विषय है। भगवान आत्मा अन्दर चिदानन्द वस्तु ज्ञानस्वरूप, आनन्द की मूर्ति, वीर्य का बल, प्रभुता का परमेश्वर, प्रभुता का परमेश्वर, सब सामर्थ्य-शक्ति का परमेश्वर स्वयं। ऐसा भगवान पूर्णानन्द का दल पूरा। देह में रहते हुए जो हरिहरो ने व्यवहाररत्नत्रय

आदि भेदाभेद का साधन किया, परन्तु वह साधन किये बिना, आहा! उग्र कितना! साक्षात् परमात्मा ऐसा उसी क्षण में, अल्प काल में पूर्णानन्द प्रत्यक्ष हो, ऐसी जो अन्तर में उग्र वीतरागी समाधि शान्ति द्वारा, वह वीतरागी—रागरहित वीतरागी शान्तिरूप, समाधिरूप तपस्या द्वारा जो ज्ञान आत्मा में भान आवे, ऐसा इसने किया नहीं। इसलिए उसे प्रत्यक्ष आत्मा हरिहर को हुआ नहीं। इस प्रकार से प्रत्यक्ष, हों!

मुमुक्षु : स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है, था। उसके बिना ऐसा पुण्य कहाँ से बाँधे? जो श्रीकृष्ण आदि ... हुए वे वे समकितदर्शन बिना—समकित बिना होते नहीं। समझ में आया? कहेंगे।

विशिष्टता तो यह कही, परम समाधि तपस्या नहीं की उन्होंने। अर्थात् कि जिससे बहुत ही निर्जरा (हो), अशुद्धता का नाश होकर शुद्धता का ऐसा भान अन्दर ऐसे चिदानन्द पूरी कातली (पड़ी है)। समझ में आया? गन्ने के छिलकों में जैसे रस, रस भरा है न पूरा? उसी प्रकार इस देह के छिलके में आनन्दरस पूरा आत्मा पड़ा है, पूर्ण। उसे प्रत्यक्ष आनन्द हो, ऐसी शान्तिरूपी समाधि की तपस्या नहीं की। कहो, वजुभाई!

नहीं जानते, उसको परमात्मा कहते हैं। उसे परमात्मा कहते हैं। पूर्ण स्वरूप भगवान अन्दर विराजमान स्वयं पूरा अखण्ड आत्मा, उसे ऐसे ध्यान बिना पूर्ण दशा प्रगट नहीं होती और पूर्णरूप से जानने में नहीं आता। उसे तू परमात्मा जान।

भावार्थ :- यहाँ किसी का प्रश्न है कि पूर्वभव में कोई जीव जिनदीक्षा धारणकर... जिनदीक्षा धारण की, नग्न मुनि हुए। **व्यवहार निश्चयरूप रत्नत्रय की आराधनाकर...** उन्होंने शुद्ध चैतन्य वस्तु की अनुभव दृष्टि की हुई और देव-गुरु-शास्त्र का विनय, विकल्प आदि व्यवहाररत्नत्रय भी हुआ। समझ में आया? **जिनदीक्षा धारणकर पूर्वभव में...** यह विष्णु कैसे होते हैं, यह बात की पहले। समझ में आया? **व्यवहार निश्चयरूप रत्नत्रय की आराधनाकर महान पुण्य को उपार्जन करके...** कारण कि आत्मा की सम्यग्दर्शन-ज्ञान भूमिका बिना ऐसा पुण्य विष्णु का हो अर्थात् यह वासुदेव, ऐसा पुण्य

हो नहीं सकता। यह सिद्ध करना है। क्या कहा? समझ में आया? आत्मा के सम्यक् शुद्ध के भान, अनुभव बिना, वासुदेव, चक्रवर्ती आदि हो, वे ऐसे पुण्य बिना नहीं होते। अकेले मिथ्यादृष्टि को ऐसा पुण्य हो नहीं सकता। समझ में आया?

महान पुण्य को उपार्जन करके... स्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान का अन्तर अनुभव किया हुआ। निश्चय, अभेद। व्यवहार का विकल्प का आराधन बराबर देव-गुरु-शास्त्र सच्चे, नौ तत्त्व भेदरूप इत्यादि शास्त्र का बराबर ज्ञान व्यवहाररूप, और पंच महाव्रत के विकल्प व्यवहार, उसकी आराधना की हुई। उसमें ऐसा पुण्य बँध गया। शुभभाव विशेष (हो गया)। वह शुद्धता तो एक ओर रही। पुण्य बँधे उसका प्रकार है।

अज्ञानभाव से निदानबन्ध करने के... उसमें निदान किया कि मैं जगत को वल्लभ होऊँ। समझ में आया? जितने वासुदेव होते हैं, उन्होंने सब निदान किये होते हैं। निदान अर्थात् की हुई क्रिया के फल में हेतु बाँधा हुआ होता है। मैं जगत को वल्लभ होऊँ, जो मुझे देखे, उसे वल्लभ लगूँ। जगत को प्रिय होऊँ, ऐसा उन्होंने निदानबन्ध बाँधा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयोजन क्या? यह प्रिय होने का। (दूसरा) कुछ प्रयोजन नहीं। यह हेतु निदान मिथ्यात्वभाव हो गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा न हो, तब तक यह मिथ्यात्वभाव न आवे वापस? ऐसा कहना चाहते हैं यहाँ तो। देवानुप्रिया! यहाँ तो अखण्ड धारा का आराधन न करे, तब तक अधूरा है और बदल जाये, यह बात सिद्ध की। उसका पुण्य सिद्ध किया, उसकी महान तपस्या की शान्ति द्वारा आत्मा को देखा नहीं, ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

निदानबन्ध करने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न होता है,... पुण्य बाँधे, स्वर्ग में जाये। दुनिया को वल्लभ होऊँ, ऐसा वासुदेव का पूर्व में भाव ऐसी भूमिका में हुआ। जगत को प्रिय होऊँ। आत्मा की प्रियता छोड़ दी। आहाहा! समझ में आया? **वही तीन खण्ड का**

स्वामी पीछे आकर मनुष्य होता है,... वहाँ से मनुष्य होता है। **वही तीन खण्ड का स्वामी वासुदेव (हरि) कहलाता है,...** देखो! यह श्रीकृष्ण, लक्ष्मण वे सब वासुदेव थे। बड़े। दुनिया की स्त्रियाँ तो देखकर फिदा हो जाये। भोगपुरुष कहलाये, वे भोगपुरुष। बहुत भोग, पाप बहुत। समझ में आया?

श्रीकृष्ण देखो न! छोटी उम्र में से ऐसे उस ग्वाले के यहाँ पले तो ग्वालिन फिदा अन्दर से। दूध लूटे, दही लूटे तो भी प्रसन्न हो। ऐसा पुण्य लेकर आये। स्वर्ग में पूर्व में बाँधा हुआ। आत्मभान था, फिर निदानबन्ध हो गया और दृष्टि बदल गयी। पहले पुण्य बहुत बाँधा हुआ। समझ में आया? स्वर्ग में गये, वहाँ से हुए। देखो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं। जागृत। ठेठ तक केवलज्ञान पावे, तब तक जागृत रहा करे। ऐसा कहना चाहते हैं। कहते हैं, वे लक्ष्मण, श्रीकृष्ण, उनका पुण्य इतना अधिक। रामचन्द्रजी और लक्ष्मण रावण को जीतने लंका गये हैं न? रावण ने ऐसी विद्या मारी (कि) लक्ष्मण को मूर्च्छा हो गयी। राम विलाप करते हैं। अरे! बन्धु! एक बार जवाब दे, भाई! यह सब हम पालेज में कहते थे, ऐई! मनसुखभाई! तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ था। स्वाध्याय करके, सायंकाल प्रतिक्रमण करें न? फिर यह बोलते थे। भगत कहलायें न हम तो। अन्दर यहाँ आता था और दूसरे सब ठोठ निशाळीया जैसे कुछ व्यापार-धन्धा करके आवे बैठने—सुनने। फावाभाई का मकान था न उस ओर? उस ओर था वह लोटियावाले का। वड़ोदरावाले का मकान था। अभी है न तुम्हारी दुकान? उस नीम के बीच में थी। वहाँ ऊपर प्रतिक्रमण करते थे।

भाई मरे भव हारिये और बहिन मरे दिश जाये,
लघुवय में जिसकी माँ मरे, उसे चारों दिशा के वा वाय बंधवा
बोल दे लक्ष्मण बोल दे एक बार जी।

ऐसा रामचन्द्रजी कहते हैं। हे भाई! एक बार बोल। यह भी भाषा उनकी शैली हो। एक बार जवाब दे, बापू! यह विद्या लगी। मैं तो बलदेव हूँ। मुझसे यह रावण नहीं जीता जायेगा, भाई! तुझे यह क्या हुआ? विलाप करते हैं। और फिर एक व्यक्ति ने

कहा—एक बहिन–महिला है। क्या नाम कहा ? विशल्या एक स्त्री है। पूर्व में महा पुण्य किया ऐसा महिला ने कि जिसके नहाने का पानी छिड़के तो यह लक्ष्मण जागृत हो जाये एकदम। और फिर उसकी रानी होनेवाली थी वह महिला। अभी ब्रह्मचारी थी, विवाह नहीं हुआ था। समझ में आया ? ऐसा पुण्य उपार्जित किया उस महिला ने।

पूर्व में चक्रवर्ती की पुत्री थी। कोई जंगल में ले गया, पूर्व में। अजगर ने पूरी निगल ली। उसमें वह चक्रवती आये, खबर पड़ी इसलिए। मारूँ अजगर को। महिला कहती है, पिताजी ! मैं तो बाहर निकलूँगी तो भी आहार तो लेनेवाली नहीं हूँ अब। मैंने तो समाधिमरण (करने का निर्णय किया है)। अजगर निगल गया इतना, इतना मुख बाहर रह गया। अजगर को मत मारो। मैं बाहर निकलूँगी तो अब जीनेवाली तो नहीं। उसमें ऐसा पुण्य बाँधा, (उसके फल में) यह विशल्या हुई।

किसी ने कहा कि भरत के राज्य में एक महिला है। भरत है न ? यह रामचन्द्रजी बाहर निकल गये न वनवास ? भरत को राज्य सौंपा था न ? भरत के राज में है, भरत को कहो तो दे। एकदम ... वह राजा की पुत्री है तुम्हारे राज में। कहो, हुकम करें। जाओ वहाँ। रात्रि के रात्रि में आवे, वरना सवेरे तो देह छूट जायेगी, ऐसी विद्या है। देह तो क्या छूटे, वे तो वासुदेव। एकदम महिला (विशल्या) जहाँ आयी अन्दर, करोड़ों मनुष्यों की सभा। अन्दर जहाँ घुसी वहाँ उसकी हवा लगी और, जितने चोट कितनों को लगी वह चोट भरने लगी (ठीक होने लगी)। लो ! ऐई ! और जहाँ अन्दर तम्बू में प्रविष्ट हुई, वहाँ लक्ष्मण सो रहे थे। तीन खण्ड के अधिपति—स्वामी—लाडा। रामचन्द्रजी जैसे भी ऐसे मानो नजरें करके बैठे थे। अरे ! भाई ! एक जवाब तो दे, बापू ! आये थे तब तीन जाने अरु जाऊँगा एकाएक। यह सीता वहाँ, तू यहाँ। वापस मैं जाऊँगा तो माता खबर पूछेगी, उसे मैं क्या उत्तर दूँगा ? वह तीन खण्ड का धनी बलदेव, हों ! मोक्ष जाना है उस भव में। भाई ! तू जवाब दे। यह सब बातें करते, हों ! तब वहाँ। कुंवरजीभाई और सब सुने भाई को।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा लगे। ऐसी बातें अच्छी लगे और वहाँ कही थी।

(बहुत) समझने की नहीं। जहाँ ऐसे आकर पानी नहलाया जहाँ, नहलाकर जहाँ छिड़का, आलस मरोड़कर खड़ा हुआ। कहो, समझ में आया? फिर युद्ध करके रावण को मार डाला। फिर उन्होंने बाई से (विशल्या से) विवाह किया। कितना पुण्य! कि, जो रानी उसे (छुआ हुआ) पानी छिड़के और ऐसे निरोग वासुदेव हों। ऐसा पुण्य उसका। समझ में आया? बाई का ऐसा पुण्य उसे आवे। उसका पुण्य कितना? यह सब पूर्व में भेदाभेद रत्नत्रय के आराधना में बाँधे हुए (पुण्य)। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य की दृष्टि का अनुभव (हुआ है), राग बाकी रहा है, पुण्य बँध गया। निदान हुआ, इसलिए फिर... कहते हैं कि मनुष्य होकर यह तीन खण्ड के स्वामी हुए। एक बात। यह हरि की बात की। अब हर की बात करते हैं। हरिहर दो शब्द है न?

कोई जीव इसी भव में जिनदीक्षा लेकर... इस भव में जिनदीक्षा ली। **समाधि के बल से पुण्यबन्ध करता है,...** पुण्यबन्ध किया, इतनी शैली की। समझ में आया? भेदाभेद दोनों रत्नत्रय का आराधन किया है, हों! हर नहीं परन्तु ऐसी कोई व्यक्ति। **उसके बाद पूर्वकृत चारित्रमोह के उदय से विषयों में लीन हुआ...** पुण्य बाँधा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि हुए, परन्तु जो वीतराग समाधि से, जिस शान्ति से तुरन्त केवल (ज्ञान) हो ऐसा उसे हुआ नहीं **पूर्वकृत चारित्रमोह के उदय से...** अर्थात् चारित्रमोह में जुड़ गये। फिर विषय की वासना में लीन हो गये। **रुद्र (हर) कहलाता है।** वह शंकर कहने में आते हैं।

इसलिए वे हरिहरादिक परमात्मा का स्वरूप कैसे नहीं जानते ? शिष्य ने प्रश्न किया। ऐसा है, ऐसे भेदाभेद रत्नत्रय के आराधक। ऐसा पुण्य बाँधा और ऐसा हुआ, जिनदीक्षा ली हुई। समझ में आया? वे क्यों आत्मा का—अपना, **परमात्मा का स्वरूप कैसे नहीं जानते ?** शिष्य ने प्रश्न किया। आहाहा! जितनी भी खटक रह गयी, कहते हैं कि, नहीं जाना उन्होंने पूर्ण जैसा जानना चाहिए, ऐसा सिद्ध करना है।

इसका समाधान यह है कि तुम्हारा कहना ठीक है। कहते हैं, तेरा कहना सच्चा है। नहीं जाना क्यों? ऐसा जाने बिना तो ऐसे पुण्य होते नहीं। दीक्षा ली, कहते हो, निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय आराधा कहते हो और ऐसा पुण्य कि जिसमें ऐसे पुण्य, वह

समकित बिना उपार्जन हो नहीं, और तुम कहते हो कि उसने आत्मा को जाना नहीं। **कैसे नहीं जानते ? कि तुम्हारा कहना ठीक है। यद्यपि इन हरिहरादिक महान पुरुषों ने रत्नत्रय की आराधना की,...** भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप, उसकी अन्तर श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति का आराधन-सेवन किया हुआ। **तो भी जिस तरह के वीतराग-निर्विकल्प-रत्नत्रयस्वरूप से तद्भव मोक्ष होता है, वैसा रत्नत्रय इनके नहीं प्रगट हुआ,...** बस, यह सिद्ध करना है। यह आत्मा परमात्मा को एकदम स्पर्शे, एकदम भगवान पूर्णानन्द को ऐसे स्पर्शे कि तुरन्त केवल (ज्ञान) हो, इस प्रकार से उन्होंने ऐसी ध्यान की तपस्या अन्दर में नहीं की। समझ में आया ? ध्यान योग से ही प्राप्त होत है, बाकी किसी प्रकार से प्राप्त नहीं होता। जो यह ध्यान उग्ररूप से अन्दर ध्यान में लीन स्वरूप शुद्ध चिदानन्द पूरा पिण्ड प्रभु, उसमें जो लीनता, उग्र वीतराग शान्ति से एकदम हो। आहाहा!

वीतराग-निर्विकल्प-रत्नत्रयस्वरूप से तद्भव मोक्ष होता है, वैसा रत्नत्रय इनके नहीं प्रगट हुआ,... वैसा इन्होंने प्रगट नहीं किया। इस प्रकार से नहीं हुआ, इसलिए इस प्रकार आत्मा को जाना नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ? अधूरा पोसाता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, न्यालभाई! पूर्ण न्याल लाओ, कहते हैं। आहाहा! बस, यह तो इन्होंने थोड़ा डाला है जरा सा। सराग रत्नत्रय अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय। वह तो एक समझाया है कि जैसा वह निश्चय समाधि का है, वैसा उन्हें नहीं था। इसलिए उन्हें फिर कम है, उसे वहाँ व्यवहाररत्नत्रय कहा। बाकी निश्चय तो था। समझे न ? निश्चयसहित का व्यवहार था। परन्तु जो निश्चय ऐसे अभेद एकाकार आनन्द में लीन होकर तत्काल एकदम केवल (ज्ञान) हो, ऐसा नहीं था। उसकी अपेक्षा से अधूरा था, उसकी अपेक्षा से कम कहा गया है।

सो यह तो हुआ, लेकिन शुद्धोपयोगरूप वीतरागरत्नत्रय नहीं हुआ,... समझ में आया ? आहाहा! जैसा वह भगवान आत्मा अन्दर है, पूर्ण शान्तरस से भरपूर वीतराग पिण्ड ही आत्मा है। अकेला वीतराग अर्थात् अकषाय स्वभाव का पिण्ड वह पुतली प्रभु है, यह आत्मा, हों! अकषाय स्वभाव की अकेली पुतली, उसे प्रगट करने के लिये जितनी अकषाय शान्ति की समाधि की उग्रता चाहिए, उस प्रकार से नहीं थी, इसलिए उसे उस प्रकार से जानना चाहिए, ऐसा जानना वहाँ कहा नहीं। इस प्रकार से जाना नहीं

इसलिए जाना नहीं, ऐसा कहा। इतने प्रकार से तो जाना है। समझ में आया इसमें? परमात्मप्रकाश है या नहीं वहाँ तुम्हारे? नहीं होगा। ठीक। पैसा है न वहाँ? पैसे तो बहुत हैं। परमात्मप्रकाश नहीं? हो रहे सुखी। पैसा संग्रह करे, इसकी अपेक्षा पुस्तक तो संग्रह करे। यह कहे, फिर वाँचने का समय मिले, न मिले। ऐई! धर्मचन्दजी! यह तो अकेला मक्खन परोसा है इसमें। तैयार लड्डू लसलसते बनाकर रखे हैं, देखो! यह लड्डू। खा अब।

मुमुक्षु : पचे नहीं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यह पचे नहीं, यह बात ही न कह इसमें। आत्मा ऐसा है ही नहीं। यहाँ कहने में आया नहीं? कल सुना नहीं? यह रामजीभाई कहते थे। (संवत्) १९८६ के वर्ष में रामजी हंसराज-अमरेली व्याख्यान चलते थे। वहाँ रहे थे न चातुर्मास में सब? ये तीन भाई (थे)। यह तो बात और जरा आवे अमुक वहाँ। यह हजमा पचन करे, ऐसी महाराज! यह बात नहीं, हों! कहा, हजमा पचन करे, ऐसी ताकत प्रगट करो। साधारण गरीब मनुष्य परन्तु, कहा, साधारण रोटी खतम फट-फट (करे)। उसे लड्डू खाने का मन हो जाता है। उसे कैसे हाजमा तैयार नहीं करता? पैसे थोड़े थे और दस लाख हुए। तब दस लाख थे उसके पास। तब तो १९८६ के वर्ष में। बाद में तो यह दो करोड़ हुए। यह सब पचाने का मन कहाँ से हो गया यह सब? जठर तैयार करो, कहा। ऐई! वजुभाई! हमारे तो सबकुछ प्रकार के लोग आवे या नहीं? तुम्हारा प्रश्न अभी नया नहीं। १९८६ में हुआ, ८६ में। रामजी हंसराज। जठर नहीं। आत्मा एक समय में परमात्मा हो, ऐसी ताकतवाला है। उसे कम ताकतवाला मानना, वह द्रव्य के स्वभाव की श्रद्धा नहीं। आहाहा! फिर कर सके (यदि) पुरुषार्थ निर्बल हो, वह अलग बात है, परन्तु वस्तु ऐसी है। धरमचन्दजी! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ की। यह तो भगवान आत्मा अन्दर है। स्त्री, पुरुष शरीर के लिंग को न देखो। अन्दर भगवान आत्मा विराजता है। उसकी इतनी ताकत है। उसे निर्बल मानना, वह द्रव्य की श्रद्धा उसे सच्ची है नहीं। आहाहा! समझ में आया? भरपूर ज्ञान से, बेहद स्वभाव से भरपूर है। आहाहा! उसे जितने जोर से जानकर स्थिर होना

चाहिए, उतने जोर से उसे जाना नहीं स्थिर होकर। इसलिए उसने नहीं जाना, ऐसा कहना चाहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? नहीं जाना था, ऐसा नहीं। स्पर्श तो हो गया कि, यह चीज़ आत्मा, अनुभव। परन्तु वह जो उग्र तप से उग्र शान्ति द्वारा ऐसे स्थिर... स्थिर... स्थिर... स्थिर (होना चाहिए, वह नहीं हुआ)। क्योंकि स्थिरता उसका स्वभाव है, उसका गुण ही स्थिरता है। समझ में आया? उस स्थिरता के कर्ता द्वारा, स्थिरता की पर्याय द्वारा पूर्ण पा सके, ऐसी उसमें सामर्थ्य है। परन्तु इतनी स्थिरता प्रगट नहीं की, ऐसा कहना चाहते हैं। वस्तु में तो पूर्ण स्थिरता है। वस्तु का स्वभाव तो पूर्ण स्थिर होना, वही उसका स्वरूप है। चारित्रगुण है न उसमें? और कर्तागुण है या नहीं? साधनगुण है या नहीं? आधारगुण है या नहीं? इस शान्ति के आधार से पूर्ण हो, ऐसा ही उसका स्वभाव है। परन्तु उसकी पर्याय में इतनी निर्बलता रही, ऐसा बताना चाहते हैं कि जिस प्रकार से उसे जोर चाहिए समाधि (का), शान्ति का, स्थिरता का, उस प्रकार से उसने जाना नहीं, इसलिए उसने आत्मा जाना नहीं, ऐसा इस अपेक्षा से कहना चाहते हैं। आहाहा!

'रण चढ़ा रजपूत छिपे नहीं।' यह जमींदार वे कहीं पकड़े रहते होंगे? भिखारी हो तो भी बनिया को ... करे। खड़े रहो। साधारण जमींदार को साथ में लिया हो। बनिया की बारात थी। लीमड़ी के पास क्या कहलाता है? जांबु। जांबु है न? जांबु के वोरा। बनिया, हों! उसमें बारात निकली, फिर उसने जमींदार को साथ में लिया। उसमें किसी को खबर पड़ी कि बारात में अच्छे पैसे हैं और उसमें निकले ऐसे वे बाहरवटीया— लूटेरे। बनिया को खबर पड़ी कि यह लुटेरे आये। ऐई! सेठियाओं! तुमने मुझे किस प्रकार से लिया यह? मैंने जान लिया तुमको। बैठे रहो। खड़ा हो गया, खड़ा। देखो मैं जमींदार हूँ, ध्यान रखना। उनको कहे। समझ में आया? सिर रखना हो तो यहाँ आना। हम बनिया टेंटा नहीं। भाग गये। दूसरा क्या? उसका जोर जहाँ देखा वहाँ। जोर देखकर भाग गये, भाग गये। लूटने आये थे। यह बनिया को शूर चढ़ गया था। चले गये। वे कहते थे। वे बात करते थे। हमने किसी से सुनी हुई बात हो न? कहो, समझ में आया इसमें?

इसी प्रकार अन्दर आत्मा में वीरता... वीरता... वीरता... वीररस पड़ा है। ऐसी

पूर्ण वीरता जिससे एकदम प्रगटे, ऐसी वीरता की कमी, इस प्रकार से उसने आत्मा को जाना नहीं था। वरना जाना तो था। समझ में आया? शुद्ध उपयोग। अन्दर विकल्प की बिल्कुल गन्ध नहीं पुण्य की। ऐसी अन्दर रमणता जो शुद्धोपयोग से भगवान आत्मा में होनी चाहिए। वह **नहीं हुआ, इसलिए वीतरागरत्नत्रय के धारक उसी भव से मोक्ष जानेवाले योगी जैसा जानते हैं, वैसा ये हरिहरादिक नहीं जानते।** समझ में आया? आहाहा! जैसे वे योगी मोक्ष तद्भव मोक्ष ले ऐसे तुरन्त, उस काल में ऐसा मोक्ष ले। ऐसे जो योगियों ने जुड़ान किया ऐसे अन्तर में, उतना जुड़ना उन्होंने नहीं किया था। इसलिए **जैसा जानते हैं, वैसा ये हरिहरादिक नहीं जानते। इसीलिए परम शुद्धोपयोगियों की अपेक्षा इनको नहीं जाननेवाले कहा गया है,...** परम शुद्धोपयोग, हों! ऐसे तो शुद्धोपयोग हुआ है परन्तु परम शुद्धोपयोग अन्दर। पूरी दुनिया एकओर भगवान आत्मा इतना स्थिर कि अबुद्धिपूर्वक राग रहा है, उसे टालने जितनी स्थिरता चाहिए उतनी स्थिरता की नहीं, इसलिए उसने जाना नहीं, ऐसा कहा जाता है।

क्योंकि जैसे स्वरूप के जानने से साक्षात् मोक्ष होता है,... जिससे स्वरूप को जानने से तुरन्त उस भव में ही मोक्ष अर्थात् मुक्तदशा, मुक्त स्वरूप है, वह पर्याय में मुक्तरूप हो जाये। मुक्तस्वरूप है द्रव्य से, वह पर्याय में मुक्त हो जाये। देखो! फिर द्रव्य और पर्याय लेते हैं, हों! बाद की गाथा में। **वैसा स्वरूप ये नहीं जानते।** ऐसा वह स्वरूप जानते नहीं थे।

यहाँ पर सारांश यह है कि जिस साक्षात् उपादेय शुद्धात्मा को तद्भव मोक्ष के साधक महामुनि ही आराध सकते हैं,... देखो! साक्षात् उपादेय शुद्धात्मा को तद्भव मोक्षगामी साधक महामुनि आराध सकते हैं। **और हरिहरादिक नहीं जान सकते, वही चिन्तवन करने योग्य है।** ऐसा परमात्मस्वरूप अपना अन्दर शुद्ध है, वही ध्यान करनेयोग्य है। समझ में आया? आहाहा! पावैया का पावर चढ़े, ऐसा है यह तो। पानी चढ़ जाये, ऐसा है।

★ ★ ★

गाथा - ४३

आगे यद्यपि... अर्थात् यद्यपि **पर्यायार्थिकनयकर....** भगवान आत्मा... अब देखो! ध्यान रखना। यह भगवान स्वरूप जो आत्मा का अन्दर है, शाश्वत् ध्रुव पिण्ड प्रभु, उसमें वर्तमान उत्पाद-व्यय अवस्था, उपजना-विनशना, उपजना-विनशना अवस्था। पूर्व की अवस्था का व्यय-अभाव, नयी अवस्था होना। कर्म साथ में, यहाँ शरीर के साथ का प्रश्न अब रहा नहीं। अब तो पर से भिन्न परन्तु पर्याय का परिणमन भी द्रव्य में नहीं, इतना सिद्ध करना है। समझ में आया?

भगवान वस्तु जो है अन्दर वस्तु, उसमें कर्म नहीं, शरीर नहीं, पुण्य-पाप के भाव नहीं। समझ में आया? परन्तु यह उत्पाद-व्यय की पर्याय है, वह भी वस्तु में नहीं। आहाहा! समझ में आया इसमें? भाई! ऐई! हसमुख! यह सब सुनना पड़ेगा, हों! अकेले वापस मनसुख को सौंपना, ऐसा नहीं चलता वहाँ।

यह आत्मा है न अन्दर? जैसे एक सोना है न सोना? पाँच रुपया भार, दस रुपिया भार, उसका एक गहना होता है न? एक कड़ा की अवस्था हो, और कड़ा की अवस्था मिटकर कुण्डल की अवस्था हुई। उस अवस्थारहित सोना होता नहीं। परन्तु कहते हैं कि, वह अवस्था जो कुण्डल की थी, कुण्डल की अवस्था उत्पन्न हुई और कड़ा की गयी। वह सोना है, उसरूप नहीं। वह सोना उसरूप हुआ नहीं। सोना तो उस उत्पाद-व्यय से रहित है। आहाहा!

आत्मद्रव्य में परिणमन नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! वह पिण्ड ध्रुव पड़ा है न ऐसे ध्रुव, स्तम्भ अकेला ध्रुव। यहाँ तो छोड़ दे लक्ष्य शरीर का, राग का, विकल्प का, परन्तु उत्पाद-व्यय है, वे उसके द्रव्य में, वस्तु में नहीं। वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु उत्पाद-व्यय के परिणमन रहित है। समझ में आया? उत्पाद-व्यय पर्याय में होता है न? पर्याय अवस्था। वह अवस्था, उस चीज़ में वह अवस्था नहीं। गजब बात, भाई!

पर्यायार्थिकनयकर उत्पाद-व्ययकर सहित है,... सहित है। वह संयुक्त शब्द पड़ा है न? इसलिए सहित किया। परन्तु अर्थ में फिर दूसरा लिया। **तो भी द्रव्यार्थिकनयकर उत्पाद-व्यय रहित है,...** भगवान वस्तु... वस्तु... वस्तु अनादि-अनन्त

है... है... है... है... है। ऐसा भगवान आत्मा अन्दर है... है... है... है। वह है, है ऐसी जो वस्तु, उसमें अवस्था का होना और जाना, वह अन्दर में ध्रुव में नहीं। बहुत सूक्ष्म है, भाई! यह तो उसके घर की बात करते हैं। तू तुझमें क्या हो रहा है, उसकी बात करते हैं। वह दल है। चिद्घन है, चिद्घन है। वह आत्मा चिद्घन है, अकेला ध्रुव है, ध्रुव है, कूटस्थ है, नित्य है, एकरूप है। जिसमें भाव-अभाव नहीं। भाव अर्थात् पर्याय का उत्पन्न होना और अभाव अर्थात् उस पर्याय का अभाव होना, वह वस्तु में अन्दर में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जिसके स्वभाव की अचिन्त्यता, अपरिमितता, बेहदता के स्वभाव का सागर पिण्ड ध्रुव। उस ध्रुव वस्तु में उत्पाद-व्यय (अर्थात्) नयी अवस्था होना, पुरानी जाना—ऐसी पर्याय के परिणमनरहित द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? **सदा ध्रुव (अविनाशी) ही है,...** वह वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु..., ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... सदा ध्रुव नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... है। **वही परमात्मा निर्विकल्प समाधि के बल से...** देखो! ऐसे अन्तर ध्रुव भगवान आत्मा को वीतरागी शान्ति द्वारा। यह पर्याय आयी। निर्विकल्प शान्ति द्वारा, उसके बल द्वारा, देखो! राग के बल द्वारा नहीं, निमित्त के बल द्वारा नहीं, शरीर के बल द्वारा नहीं, शरीर संहनन बहुत मजबूत था, इसलिए हुआ—ऐसा भी नहीं। आहाहा!

यह परमात्मा अपना स्वरूप ध्रुव, ध्रुव चिद्घन। वह निर्विकल्प शान्ति द्वारा, वीतरागी अन्दर निर्विकल्प समाधि द्वारा—शान्ति द्वारा। उसके बल से **तीर्थंकरदेवों ने देह में भी देख लिया है,...** तीर्थंकरदेवों ने ऐसे ध्रुवस्वरूप को देह में रहे हुए, देह में रहे ऐसा निमित्त से कहा। उसी में और उसी में भगवान आत्मा ऐसा है, ऐसा अन्तर (में) देख लिया है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा कहते हैं—**

४३) भावाभावहिँ संजुवउ भावाभावहिँ जो जि।
देहि जि दिट्ठउ जिणवरहिँ मुणि परमप्पउ सो जि॥ ४३॥

आहाहा! उसे परमात्मा कहते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। परमात्मप्रकाश है न?

अन्वयार्थ :- जो व्यवहारनयकर यद्यपि उत्पाद और व्ययकर... परिणत है।

देखो! यह व्यवहार। वह देह में रहा था, वह अनुपचरित असद्भूत व्यवहार। यह सद्भूत पर्याय के अंश का व्यवहार। समझ में आया? पर्यायार्थिकनय कहा न? इसलिए उसे व्यवहार कहा। द्रव्यार्थिकनय अर्थात् निश्चय। तब कहते हैं न बहुत से? कि देखो! यह वस्तु जो है, वह निश्चय। उसकी पर्याय है, वह उसमें है या नहीं? व्यवहार है या नहीं? परन्तु व्यवहार है नहीं, ऐसा किसने कहा? इसी प्रकार रागादि व्यवहार है नहीं, ऐसा किसने कहा? परन्तु उस व्यवहार के कारण, राग के कारण यहाँ निश्चय है, ऐसा नहीं। इसी प्रकार पर्याय के व्यवहार के कारण द्रव्य है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

स्वयं अनादि-अनन्त पदार्थ है या नहीं? ऐसी धूल शरीर तो अनन्त बार आये और गये। यह अन्दर के पुण्य-पाप के भाव वे आये और गये। उनकी बात छोड़ दे अब, कहते हैं यहाँ तो। यह तो भगवान आत्मा ध्रुव वस्तु है या नहीं अनादि-अनन्त? अनादि-अनन्त पदार्थ है या नहीं अन्दर आत्मा? उस आत्मा की वर्तमान दशा में, हालत में उपजना-विनशना होता है, वह व्यवहार है, वही व्यवहार है। इसलिए एक न्याय से उसे अभूतार्थ कहा है। वस्तुस्वरूप जो भूतार्थ है, उसमें वह कहाँ है? आहाहा! तथापि आश्रय लेनेवाली है, वह पर्याय है। परन्तु पर्याय का लक्ष्य करने से भेद है, इसलिए व्यवहार है। तब इसका अर्थ ऐसा नहीं कि पर्याय व्यवहार है तो व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है, ऐसा इसका आशय नहीं। ऐसा कहे, निश्चय का आश्रय तो व्यवहार ने किया न? परन्तु सुन न! क्या कहा जाता है?

'**भूदत्थमस्सिदो**' आता है न? यह प्रश्न उठा था न? वहाँ उसे उठा था। वडवा में सोमाभाई के साथ। ऐसे उस पाटिया में लिखा था। उसमें कहा, देखो! यह आश्रय है वह पर्याय है या नहीं? परन्तु पर्याय से आश्रय किया किसका? किसका किया? पर्याय व्यवहार है, यह निश्चय है, उसमें जो ढली है पर्याय (वह) अभेद हो गयी है। समझ में आया? आहाहा! चबूतरे के ऊपर था न पाटिया था। चबूतरे के ऊपर कौने में उतरते हुए। उसे उमंग से नाचना न उमंग से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अभेद सहित निश्चय लो, परन्तु विषय है द्रव्य अकेला।

परन्तु विषय किया है पर्याय ने। परन्तु वह पर्याय विषय करके, भूतार्थ के ऊपर गयी, इसलिए उसका विषय हुआ। पर्याय के आश्रय से भूतार्थ का विषय नहीं होता। सूक्ष्म बात है। इसलिए एकदम आत्मा ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... परिणमन-फरिणमन है नहीं उसमें।

न्यालभाई कलकत्तावाले ऐसी बातें बहुत करते न! लोगों को नहीं बैठता था, लोगों को खबर नहीं। ध्रुव अकेला है। परिणमना वह कहाँ है अन्दर में? समझ में आया? इसलिए फिर कितने ही तो कहे, वे निश्चयाभासी थे। अब तुझे भान नहीं होता, सुन न! ऐई! न्यालभाई थे एक। अजमेर के थे, कलकत्ता रहते हैं। बहुत ... समझ में आया? अकेली वस्तु, ध्रुव ही वस्तु है, बस। परिणमन निकाल डाले तो....

मुमुक्षु : अपरिणामी बोलते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपरिणामी बोलते थे। हाँ, तो यहाँ भी अपरिणामी कहा। द्रव्य-वस्तु अपरिणामी है। पर्याय परिणमन है, द्रव्य वस्तु में परिणमन कैसा? समझ में आया?

जो व्यवहारनयकर यद्यपि उत्पाद और व्ययकर सहित है... अर्थात् परिणत है, ऐसा शब्द पड़ा है संस्कृत में। '**उत्पादव्ययाभ्यां परिणतः**' समझ में आया? बापू! यह तो बादशाह के घर हैं। साधारण बादशाह के घर में भी व्यवस्थित होकर जाया जाता है तो यह तो परमात्मा स्वयं तीन लोक का नाथ आत्मा स्वयं है। समझ में आया? आहाहा! अकेला जहाँ ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... उसका लक्ष्य करनेवाली भले पर्याय है, परन्तु वह पर्याय ध्रुव में नहीं। भाई! यहाँ तो यह परमात्मप्रकाश है। वह परमात्मा कहते हैं। एक समय की पर्याय परमात्मा नहीं, द्रव्य परमात्मा। समझ में आया?

वह भाव-अभावकर रहित है। सहित कहा, हों! परिणत है ऐसा कहा, परिणत है। उत्पाद-व्यय परिणत है। **तो भी द्रव्यार्थिकनय से उत्पाद और विनाश से (रहितः) रहित है,...** वह आत्मा भगवान ध्रुव, ध्रुव एकरूप चिदानन्द घन वस्तु, वह परिणमन रहित है। जमुभाई! कहो, यह बैठता है या नहीं? माँ को क्या होगा यह? यह गुजराती

आया, भाई! अब। परन्तु गुजराती जो हो, वह आवे या नहीं? लड्डू, वे कहीं अकेले आटा के होते हैं? उसके प्रमाण में घी और गुड़ सब चाहिए या नहीं? आहाहा! अरे! आत्मा है। कैसे न बैठे? न बैठे, ऐसा शल्य ही इसने उल्टा डाला है अन्दर। वह शल्य इसे प्रविष्ट नहीं होने देता।

मुमुक्षु : लड्डुओं का नाम पडने पर जठराग्नि उदिप्त हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड्डू। यह सुने वहाँ जठराग्नि प्रज्वलित न हो?

अकेला वीर्य का पिण्ड प्रभु है। आत्मा अर्थात् कि बल का पिण्ड, अकेला बल का रूप। लो! ठीक, वीर्य आया और। आत्मा अर्थात् अकेला ज्ञान का गंज-पुंज। जिसमें से अनन्त केवलज्ञान चले आते हैं। आत्मा अर्थात् अनन्त आनन्द, जिसमें से अनन्त आनन्द चला आता है। ऐसा जो ध्रुव परिणमन रहित है। समझ में आया? आहा! तो भी द्रव्यार्थिकनय... द्रव्यार्थिक अर्थात्? जिसका प्रयोजन ध्रुव को देखने का है। जिस ज्ञान को देखने का प्रयोजन ध्रुव का है, जो ज्ञान की पर्याय ध्रुव को देखना चाहती है, उस ध्रुव में परिणमन नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, रतिभाई! ऐसा तुम्हारे कहाँ है वहाँ? खोटा-खोटा अभ्यास करावे सब। यह हिम्मतभाई इकट्ठे हैं या नहीं? आहाहा! शिक्षा बिना चले? फलाना बिना चले? और ऐसा कहे वापस। अब सुन न!

यह भगवान अकेला आत्मा शिक्षा का पिण्ड पड़ा है, अनन्त गुण का पिण्ड, जिसमें पर्याय का परिणमन—उसकी निर्मल अवस्था का परिणमन, क्षायिक समकित की पर्याय, यथाख्यात की पर्याय वस्तु में कहाँ है? केवलज्ञान पर्याय व्यवहार है। संसार पर्याय का व्यय और केवल (ज्ञान) का उत्पाद, दोनों जो ध्रुव में नहीं। ऐई! यह दीवाली आती है या नहीं अब यह? क्या कहलाता है, वह कुछ बनाते हैं, लड्डू नहीं बनाये गेहूँ के? दल-दल। यह हमारे पण्डितजी को तुरन्त मुखाग्र मानो। चाहे जो बात परन्तु... वापस दूसरा नहीं आता, ऐसा इसका अर्थ नहीं होता। दल दल होता है, वह गेहूँ के क्या कहलाते हैं गेहूँ के? दल, दल करे गेहूँ के लड्डू। तीन सेर, चार सेर। उसमें इतना अधिक तो घी न डाले। वह तो वह शक्करपारा बनावे। दल के जैसा। वह शक्करपारा बनाते हैं न गेहूँ का? गेहूँ का शक्करपारा बनावे, उसमें एक सेर आटा में चार सेर घी पिलावे। और मैसूर बनावे उसमें एक सेर चना के अटा में चार सेर (घी)। और इस दल

में साधारण हो। आटा-घी तो होता है न? देखा है न? लड्डू देखे हैं या नहीं? पहले खाये होंगे, अभी खाने-बाने का बन्द कर दिया है।

कहते हैं, ओहोहो! भगवान आत्मा, यह भगवान जो वस्तु अन्दर ध्रुव अनादि-अनन्त वस्तु, उसे जिनवर ने देह में रहे देख ली है, ऐसा कहते हैं। उस ध्रुव को देख लिया, हों! आहाहा! पूरे द्रव्य को एक समय में भगवान ने देख लिया, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! तब कहे, वह देखा तो पर्याय ने न? व्यवहार ने काम किया न? अरे! सुन न भगवान! व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है या नहीं? अरे! भगवान! तू क्या कहता है? भाई! वह द्रव्य की दृष्टि हुई, उस द्रव्य से द्रव्य प्राप्त हुआ है, ऐसा न्याय है वास्तव में। समझ में आया?

वस्तु में ध्रुव सच्चिदानन्द भगवान सिद्ध स्वरूप का पिण्ड ही आत्मा है। पर्याय में सिद्ध होना, इतनी उसकी बात। वस्तु तो सिद्धस्वरूप ही है। द्रव्य तो सिद्ध ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... अनादि-अनन्त सिद्ध है। अनादि-अनन्त परमात्मा ही स्वयं है। ऐसे अनन्त परमात्मा विराजते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जिनवर ने, **वीतरागनिर्विकल्प आनन्दरूप से समाधिकर तद्भव मोक्ष के साधक जिनवरदेव ने...** देखो! उसके सामने लेना है न? उन हरिहर ने ऐसा देखा नहीं था, वह यह बात है।

वीतरागनिर्विकल्प आनन्दरूप से समाधि... वह वस्तु वीतराग पिण्ड था पूरा, परिणमनरहित, उत्पाद-व्यय रहित वस्तु। उसे भगवान परमात्मा अरिहन्त जिनवरदेवों ने देख लिया (कि) यह द्रव्य, यह वस्तु। देखनेवाली भले पर्याय, परन्तु देखा ध्रुव। समझ में आया? आहाहा! **वीतरागनिर्विकल्प आनन्दरूप से समाधिकर तद्भव मोक्ष के साधक जिनवरदेव ने...** अर्थात् जिनवरदेव ने। **देह में भी देख लिया है,...** इस देह में यहीं का यहीं देखा। और तू कहे कि वहाँ मोक्ष होगा, तब देखेंगे, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। यहीं का यहीं परमनिर्विकल्प समाधि द्वारा यह ध्रुव है, ऐसा जान लिया। समझ में आया? (कोई) ऐसा कहे, और देहरहित हो, तब यह ज्ञात हो। देहरहित ही है। सम्बन्धरहित ही है। परन्तु सम्बन्ध में रहा होने पर भी, यहाँ ऐसा रहा होने पर भी, यहीं का यहीं पूर्णानन्द भगवान है, ऐसे उग्र वीतरागस्वभाव की शान्ति द्वारा देह में रहे, ऐसा यहाँ कहना है। देह में रहे का अर्थ तो इनकार किया पहले तो। सम्बन्धरूप है, झूठे में

है झूठे नय से। परन्तु यहीं का यहीं भगवान ध्रुव है ऐसा वीतराग ने शान्ति द्वारा देख लिया है। समझ में आया? आहाहा!

देख लिया है, उसी को तू परमात्मा जान,... लो! शिष्य को कहते हैं, भाई! आहाहा! जिसमें परिणमन नहीं, परिणमन नहीं। गजब बात है! यह वह कुछ क्या कहते हैं! ध्रुव परमात्मा, द्रव्य परमात्मा ऐसा का ऐसा परमात्मा त्रिकाल तू है। समझ में आया? **अर्थात् वीतराग परमसमाधि के बल से अनुभव कर।** लो! शिष्य को भी वापस ऐसा ही कहा। उसने कहा, भाई! हम पंचम काल में जन्मे हैं न? भगवान! आप तो तद्भव मोक्षगामी की बात वापस हमको सौंपते हो। बात आप ऐसी करते हो कि तद्भव मोक्ष जाने की। उसकी नहीं। सुन न अब। तद्भव... को कर ऐसे। समझ में आया? **'अनुभव इति अर्थ'** अर्थात् है न अन्दर? **'परमसाधिबलेनानुभवेत्यर्थः'** इसका भावार्थ कहा जायेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ११, गुरुवार, दिनांक २१-१०-१९६५
गाथा - ४४-४५, प्रवचन - २९

गाथा - ४४

४३ हो गयी। यह परमात्मा स्वयं आत्मा। **आगे देह में जिसके रहने से पाँच इन्द्रियरूप गाँव बसता है, और जिसके निकलने से पंचेन्द्रियरूप गाँव उज्जड़ हो जाता है, वह परमात्मा है, ऐसा कहते हैं—**

४४) देहि वसंतें जेण पर इंदिय-गामु वसेइ।
उव्वसु होइ गएण फुडे सो परमप्पु हवेइ॥४४॥

अन्वयार्थ :- जिसके केवल देह में रहने से... जिसके देह में रहने से—भगवान आत्मा का मात्र असद्भूत व्यवहारनय से। **इन्द्रिय गाँव रहता है,...** पाँच इन्द्रिय की समय-समय की पर्याय की जागृति इन्द्रिय के निमित्त के लक्ष्य से, वह स्वयं हो तो वह जागृति दिखती है। समझ में आया? भगवान आत्मा देह में बसने से, इन्द्रिय गाँव बसता है। अर्थात् कि पाँच इन्द्रिय के उस-उस समय के ज्ञान से जानती हुई इन्द्रियाँ बसती हैं, ऐसा कहा जाता है। **और जिसके परभव में चले जाने पर उजड़ निश्चय से हो जाता है...** भगवान आत्मा यहाँ से निकला, अर्थात् पाँच इन्द्रियों की ओर का ज्ञान वह उज्जड हो गया। इन्द्रियाँ हो गयी उज्जड़। समझ में आया? कहो, जमुभाई!

भगवान आत्मा जहाँ विराजमान है, वहाँ इन्द्रियों की जागृति में वह दिखाई देती है पर्याय, वे इन्द्रियाँ बसी हैं, ऐसा इन्द्रियज्ञान की अवस्था से वहाँ कहा जाता है। जहाँ आत्मा यहाँ से निकला तो सब शून्य—मिट्टी। यहाँ जागृति का जो भाग था, उसकी पर्याय, हों! वस्तु तो भिन्न पूरी। **इन्द्रिय गाँव रहता है,...** रहता है और जिसके जाने से उज्जड़ इन्द्रियाँ (हो जाती हैं)। **वह परमात्मा है।** वह परमात्मा है। क्या कहते हैं जरा? कि ज्ञानस्वभाव सर्वज्ञस्वभावी भगवान उसमें बसने से पाँच इन्द्रिय के लक्ष्य का ज्ञान उस उस काल में मानो इन्द्रियाँ जागती हों, ऐसा इसके कारण दिखाई देता है। यह

(आत्मा) गया तो इन्द्रियाँ जड़ हो गयीं, उस उस प्रकार के ज्ञान के अंश का जागृत पना वहाँ रहा नहीं। तथापि वह आत्मा इतना नहीं। समझ में आया? जो ज्ञान की मूर्ति, सर्वज्ञस्वभावी परमात्मा जहाँ बसा, वहाँ अकेली इन्द्रियों को जागृत किया। अर्थात् कि चैतन्य जहाँ बसा, वे इन्द्रियाँ बसी, ऐसा लगा, परन्तु इन्द्रियाँ गयीं वहाँ उज्जड़ हो गया। क्या कहा? समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : निमित्त है न बात?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त की बात नहीं। यह जड़ में जागृति का भाग है, ऐसा जो आत्मा, अंश की जागृति। उसके कारण यह इन्द्रियाँ बसी हैं, इसलिए मानो कि यह निमित्त सम्बन्ध में यह चैतन्य काम करता है, इसलिए इन्द्रियाँ बसी, ऐसा कहा जाता है। यह गया तो जड़ उज्जड़ हो गया। फांका पड़ा रहा जड़, मिट्टी, धूल। आहाहा! सिद्ध तो उसका अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप करना है। परन्तु इन्द्रिय में अन्दर यहाँ बसा, इन्द्रिय तो शरीर का अवयव है। समझ में आया? उसमें वह बसा, (ऐसा) सम्बन्ध रूप दिखाई देता है। परन्तु उसकी जागृति को—वर्तमान इन्द्रियज्ञान की जागृति के कारण इन्द्रियाँ बसी, ऐसा दिखता है। वह जागृति गयी तो जड़ मिट्टी हो गयी। ऐसा तो जिसकी वर्तमान इन्द्रिय की ओर की जागृत अवस्था का ख्याल, वह भगवान अतीन्द्रिय ज्ञानमय है। समझ में आया?

भावार्थ :- शुद्धात्मा से जुदी ऐसी देह में... भगवान आत्मा अकेली ज्ञान की डली, ज्ञान का स्वभाव, ज्ञान भगवान स्वभाव। ज्ञान भगवान स्वभाव। ऐसा भगवान ज्ञान महिमावन्त स्वभाव, वह **देह में बसते...** वह भगवान स्वभाव से देह भिन्न है। समझ में आया? देह की महिमा नहीं, उसकी महिमा नहीं। ज्ञानस्वभाव भगवान आत्मा से यह देह भिन्न है। शुद्धात्म भगवान... ओहो! ऐसा भगवान आत्मा महिमा स्वभाव, भगवान स्वभाव ऐसा शुद्ध स्वभाव, उससे यह देह भिन्न है।

ऐसी देह में बसते आत्मज्ञान के अभाव से... यह भगवान आत्मा कौन है, इसके ज्ञान के अभाव से। देखो! **इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में (रूपादि में) प्रवर्तती हैं,...** ऐसा कहना है। देखो? यह आत्म वस्तु, वस्तु अतीन्द्रिय ज्ञान पूर्ण कौन है, उसके भान बिना, यह आत्मा जहाँ बसा, वहाँ उतना इन्द्रियज्ञान जागृत का काम करता है। आहाहा!

समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप परमानन्द की मूर्ति उससे भिन्न यह देह जड़ मिट्टी, उसमें बसता अनुपचर से, असद्भूत से, व्यवहारनय से, वस्तु का पूर्ण स्वरूप, उसके ज्ञान के अभाव से, वस्तु अखण्ड ज्ञायकमय स्वभाव के भान के अभाव से, पाँच इन्द्रिय में बसता इन्द्रियज्ञान (काम) कर रहा है। इतना इन्द्रिय वह वर्तमान इतनी जागृति भी उस परमात्मा के कारण से है, ऐसा कहते हैं। यह इन्द्रियों के कारण से नहीं। समझ में आया?

वह भी स्वयं शुद्धस्वरूप ज्ञान का अकेला रस। 'ज्ञ' गोला, 'ज्ञ' गोला, स्वभाव ज्ञान गोला। बस जिसे जानना... जानना... जानना... जानना... अकेला स्वरूप। ऐसे स्वभाव के भान बिना वह परमात्मा इन्द्रिय में बसा अन्दर लक्ष्य करके, वह इन्द्रिय ज्ञान से इन्द्रिय जागृत दिखती है।

अपने विषयों में प्रवर्तती हैं, और जिसके चले जाने पर अपने-अपने विषय-व्यापार से रुक जाती हैं,... जानने का व्यापार... यह उसकी बात नहीं, ऐसा जो होता था, वह यह गया वहाँ रुक गया। उसके इन्द्रिय के विषय सम्बन्धी का ज्ञान करता था। स्वयं इन्द्रिय है, हों! भगवान यहाँ से जाने के बाद हो गया। समझ में आया? ऐसा जो यह आत्मा, **ऐसा चिदानन्द निज आत्मा, वही परमात्मा है।** देखो! पाँच इन्द्रिय के सम्बन्ध में वर्तमान ज्ञान जागृति से, इन्द्रिय की जागृति दिखती है अर्थात् मानो वह इन्द्रिय काम करती हो और इन्द्रिय मानो अन्दर जागता आत्मा, उसके कारण यह इन्द्रियाँ जागृत (दिखती है)। जगती है तो स्वयं से। यह जहाँ गया, जहाँ इतनी पर्याय सामर्थ्य है, उसका जिसे... वह तो पूरी चीज़ पूर्ण है। वह जहाँ गया, (वहाँ) वे इन्द्रियाँ जड़ हो गयीं, उज्जड़ हो गयी उज्जड़। ऐसा वर्तमान इन्द्रिय के लक्ष्य में भी जागृत अवस्था से बसा हुआ, इन्द्रियों में बसा हुआ और गया, वहाँ उज्जड़ हुआ, ऐसा भगवान पूर्णानन्द द्रव्यस्वभाव, उसे तू आत्मा जान। ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... काम करना बन्द हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : करना करना बन्द, वह तो काम ही करती नहीं थी, परन्तु ऐसे जागृत जहाँ लगती थी, ऐसे तेज लगता था। समझ में आया? यह कोडा तो ऐसे के ऐसे हैं, परन्तु वह ज्ञान था, वहाँ तेज लगता था। वह जानता है यहाँ से रूप को। यह कान

जाने शब्द को सुनता है, जानता है, शब्द को जानता है। ऐसा सब जागृत था, वह (आत्मा के) जाने के बाद में उज्जड़ हो गया। कहो, रतिभाई! ओहोहो! मात्र वर्तमान इन्द्रिय ज्ञान की जागृति से यह इन्द्रियाँ बसती थीं, ऐसा कहने में आता है। वे उज्जड़ हो गयीं। भगवान गया तो उज्जड़ हो गयी। ऐसा तो उसका इन्द्रियज्ञान है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। भाई! आहाहा! इसका स्वभाव इन्द्रियज्ञान नहीं। यह तो अकेले... यह जाने... जाने... जाने... जाने... जाने... जाने... ऐसा जाने। वह पूरा तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय है। समझ में आया? **ऐसा चिदानन्द निज आत्मा वही परमात्मा है।** देखो! अब। यह है न, इन्द्रियाँ थी इसलिए....

अतीन्द्रिय सुख के आस्वादी परमसमाधि में लीन हुए... इन्द्रिय के ओर की ज्ञान की जागृति के भाव से दृष्टि को बदला। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से भरपूर भरचक है। इन्द्रिय ज्ञान में, पर्याय में उसका दु:ख था। वह स्वरूप नहीं, इन्द्रियाान भी वह कहीं मूल स्वरूप नहीं। वह तो उसका जागृत अंश वहाँ बसा, ऐसा बताया था। ऐसी वस्तु जो है, वह अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द (स्वरूप है)। भगवान आत्मा इन्द्रिय से ऐसा कि जागृत के अंश से ऐसा जो ज्ञात होता था शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, उसके द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता, इन्द्रिय द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता। और इन्द्रिय का वर्तमान ज्ञान अंश जो परलक्ष्यी है, उसके द्वारा भी आत्मा ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अतीन्द्रिय सुख के आस्वादी... अरे! इन्द्रिय की ओर के लक्ष्य को, इतने ज्ञान को, इतने महत्त्व को छोड़कर। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसका जो आनन्द, पूर्ण ज्ञान में जहाँ पूर्ण ज्ञान हो, वहाँ दूसरा क्या हो? वहाँ आनन्द ही होता है। पर्याय में जहाँ पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... प्रगट हुआ। लो! पूर्ण प्रगट हुआ। वहाँ अकेला आनन्द ही है। ऐसा जहाँ पूर्ण ज्ञान भरा है अन्दर, वहाँ अकेला आनन्द ही है। समझ में आया?

अतीन्द्रिय सुख के आस्वादी... वह भगवान अतीन्द्रिय ज्ञान का आस्वादी, **परमसमाधि में लीन...** सन्त अपने स्वभाव की अन्तर महिमा करके लीन होनेवाले, परम शान्ति से लीन हुए। **मुनियों को ऐसे परमात्मा का ध्यान ही मुक्ति का कारण है,...**

अन्तर के ऐसे स्वभाव की एकाग्रता, वही मुक्ति का कारण है। कहो, नेमिचन्दजी! कथा चलती है क्या? कैसी चलती है? यह तो आत्मा की कथा है। परमात्मा की कथा है। ओहो! **वही अतीन्द्रियसुख का साधक होने से सब तरह उपादेय है।** वह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुख का साधन होने से अथवा पूर्ण अतीन्द्रिय सुख का साधन समाधि, उसका ध्येय आत्मा। पूर्णानन्द भगवान जिसकी अचिन्त्य महिमा लेकर एकाग्र हो, वह अतीन्द्रिय सुख, पूर्ण अतीन्द्रिय सुख का साधन है। कहो, समझ में आया? गजब बातें, भाई! यह सब।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ी-बड़ी बातें, परन्तु यह दिखाई दे उसकी बातें ही नहीं।

मुमुक्षु : दिखाई दे उसकी ही बातें हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखता है अंश, उसका पूरा भगवान दूसरा है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? वहाँ तू देखता नहीं। जहाँ देखना है, वहाँ देखता नहीं। और उस अंश द्वारा ऐसे देख रहा है, ऐसे... ऐसे... ऐसे... समझ में आया? आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा,... देखो! श्रीमद् में आता है एक। सर्वज्ञपद का ध्यान करो, ध्यान करो। समझ में आया? भगवान सर्वज्ञपदस्वरूप है। सर्व जाननेवाला स्वभाव है। समझ में आया? सर्व जाननेवाला स्वभाव, ऐसे अनन्त जीव परमेश्वर हैं। ज्ञ स्वभावी जीव अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी जीव अनन्त हैं। अज्ञ स्वभावी जड़ उनसे अनन्त हैं। समझ में आया? वह अज्ञस्वभावी जड़द्रव्य अनन्त, उन्हें जाननेवाला यह सर्वज्ञपद। सर्वज्ञ जीव अनन्त (तथापि) कम हैं और अज्ञ द्रव्य अनन्त हैं। परन्तु उन अज्ञ को 'ज्ञ' करनेवाले जीव द्रव्य कम होने से, परन्तु उसका भी एक-एक आत्मा सबको सर्वज्ञरूप से सर्व को जाने, ऐसा एक-एक द्रव्य है। समझ में आया?

यहाँ तो इन्द्रियज्ञान की कहाँ बात, कहते हैं, यह तो भगवान महान सर्वज्ञपद प्रभु अतीन्द्रिय ज्ञान का अकेला सत्त्व है, स्वत्व। जीव का स्वत्व ही वह है सर्वज्ञस्वरूप। समझ में आया? कुछ स्वत्व निकाला या नहीं? कहते हैं उसमें से निकाला या नहीं कुछ स्वत्व? सत्व नहीं, स्वत्व कहता हूँ, हों! स्वत्व, स्वपना। ऐसे भगवान आत्मा का

स्वपना इतना है कि अनन्त-अनन्त ऐसे और ऐसे सर्वज्ञस्वभावी जीव को जाने, उससे अनन्त गुणे अज्ञ स्वभावी जड़ को जाने, उससे अनन्त गुणे काल समय जो अज्ञ जड़ है, उन्हें जाने, उनसे अज्ञ जो असंख्य प्रदेशी, अनन्त प्रदेशी आकाश को जाने, उनसे अनन्त गुणे एक द्रव्य के गुण को जाने, ऐसे-ऐसे अनन्त गुणवाले अनन्त द्रव्यों के अनन्त गुण की संख्या कितनी होगी? आहाहा!

अनन्त गुण ऐसे-ऐसे अनन्त द्रव्य, अनन्त आत्मा, उससे अनन्त गुणे ऐसे परमाणु, ऐसे अनन्त गुण का दल पूरा सब। समझ में आया? उसे जो एक समय में जानने की पर्याय की सामर्थ्यवाला, और उसके स्वभाव में तो ऐसी अनन्त पर्याय के सामर्थ्य का रखनेवाला। सेठी! आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, जिसका पूर्ण ज्ञान इतना, उसमें पूर्ण ज्ञान में फिर दूसरा क्या हो? आनन्द ही है वहाँ। प्रगट पर्याय जहाँ पूर्ण जानने की अकेली प्रगट, उसे प्राप्त किया। जानना पूर्ण हो गया, पूर्ण जानना, वहाँ दु:ख क्या हो? वह तो आनन्द ही हो गया। समाप्त। समझ में आया?

यहाँ भी विकल्प को जानना, विकल्प को करना, शरीर को करना कुछ नहीं इसमें। यह तो जानना... जानना... जानना... एक समय में सब जानना। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड सर्वज्ञस्वभावी द्रव्य, उसके ध्यान में अतीन्द्रिय आनन्द आये बिना रहता नहीं। क्योंकि ऐसे पूर्ण ज्ञान में पूर्ण शान्ति और आनन्द भरा है। आहाहा! समझ में आया? उसे ऐसा कि इतना बड़ा यह कौन ऐसा? भाई! तेरी महत्ता को क्या (कहना)! कहते हैं।

अतीन्द्रिय सुख का आस्वादी जो परमात्मा, ऐसे पूर्ण ज्ञान और अन्दर ध्यान में पड़कर उस पूर्ण ज्ञान में नजर लगायी है, इसलिए आनन्द भी वहाँ पूर्ण पड़ा है। इतना सब ज्ञान और इतना अधिक ज्ञान के साथ रहा हुआ आनन्द, ऐसा जीव का स्वपना, उसका ध्यान करने से समाधि, शान्ति होती है, वह निर्विकारी शान्ति मोक्ष का कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : बेहद आनन्द...

पूज्य गुरुदेवश्री : हद क्या? जिसका स्वभाव, उसे हद क्या? जिसका स्वरूप

और स्वभाव, उसे माप क्या ? तथापि उसका सब ज्ञान आ जाता है। ज्ञान आया तो कुछ चीज़ मापवाली हो गयी ? समझ में आया ? ऐसा भगवान अतीन्द्रिय सुख के आस्वादी धर्मात्मा! आहाहा! ऐसे धर्मात्मा, ऐसे परमात्मा का, **ऐसे परमात्मा का ध्यान ही...** देखो! ऐसा ही परमात्मा अपना अन्तर स्वभाव, उसका ध्यान ही मुक्ति का कारण है। ऐसा कहकर क्या कहते हैं ? ऐसा जो स्वरूप, उसकी एकाग्रता, वही मुक्ति का कारण है। समझ में आया ? ऐ... न्यालभाई! यह धर्मध्यान यहाँ से प्रगट होता है। आहाहा! धर्म अर्थात् स्वभाव। बेहद भगवान स्वभाव, उसकी जो महिमा की एकाग्रता, वह धर्मध्यान। वह मुक्ति का कारण है। समझ में आया ?

वही अतीन्द्रियसुख का साधक होने से सब तरह उपादेय है। वह भगवान ही आत्मा अतीन्द्रिय सुख का साधन है। उसकी पर्याय प्रगट हुई, वह पूर्णानन्द का साधक है, परन्तु पूर्ण आनन्द का साधक का साधक, उसका साधक द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया ? क्या बात करते हैं यह वह ? कैसी होगी यह ? भाई! तू इतना है, ऐसा है, उसमें कहीं शंका को स्थान नहीं। ऐसी निःशंकता ज्ञान में लेकर आत्मा अपने स्वभाव की ओर ढलता है। बस, वहाँ वह मुक्तस्वरूप, वही मुक्ति की पर्याय का कारण है। समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - ४५

अब यह कहते हैं। **आगे जो पाँच इन्द्रियों से पाँच विषयों को जानता है,...** परन्तु स्वयं ज्ञात नहीं होता। **और आप इन्द्रियों के गोचर नहीं होता है, वही परमात्मा है, यह कहते हैं—**

४५) जो णिय-करणहिँ पंचहिँ वि पंच वि विसय मुणेइ।
मुणिउ ण पंचहिँ पंचहिँ वि सो परमप्पु हवेइ॥ ४५॥

जो आत्माराम... भगवान आत्माराम। आहाहा! जिसे पर से मान लेना नहीं, पर के अपमान सहन करना नहीं। वह तो अकेला ज्ञाता-दृष्टा का पिण्ड प्रभु है। समझ में आया ? जो खाये, जाये, (उसे) जाननेवाला वह भगवान आत्माराम है। समझ में

आया ? **जो आत्माराम...** ऐसा क्यों शब्द में आया, मस्तिष्क में ? कि, यह आत्माराम ही है, वह जाननेवाला, जाननेवाला, उसमें आत्म रमे। उसमें कहीं यह क्यों और यह क्यों और यह क्या .... वह सब जानने का ही काम करे आत्माराम। समझ में आया ? वह **शुद्धनिश्चयनयकर अतीन्द्रिय ज्ञानमय है...** वस्तु।

मुमुक्षु : इन्द्रियज्ञान स्वभाव नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रियज्ञान स्वभाव ही कहाँ है ? खण्ड-खण्ड वह स्वभाव है कहीं ? वस्तु जहाँ अखण्ड एक, अखण्ड एक, अखण्ड पूर्ण वस्तु है, उसका सामर्थ्य पूर्ण है। जो एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है। ऐसा कौने में चौका है। दिखता है ? धुँधला होता है। जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है। सम्पूर्ण वीतराग हो, वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है, श्रीमद् राजचन्द्र, देखो ! नीचे लिखा है। उन्हें भी यह मोक्षमाला में से सूझा सीधे। 'सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जाणी...' वहाँ से भणकार उठे, दो भणकार मूल—सर्वज्ञपद का और भव के अन्त का। समझ में आया ?

सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जाणी,
आराध्य आराध्य प्रभाव आणी;
अनाथ एकांत सनाथ थाशे,

एकान्त सनाथ होगा, कथंचित् अनाथ और कथंचित् सनाथ, ऐसा नहीं रहेगा। आहाहा !

अनाथ एकांत सनाथ थाशे,
अेना विना कोई न बाह्य स्हाशे।

तेरी बांह पकड़नेवाला दूसरा कोई नहीं, भाई ! सर्वज्ञ ने कहा हुआ सर्वज्ञस्वभाव आत्मा का, सर्वज्ञ ने कहा हुआ सर्वज्ञस्वभाव आत्माराम का, उसकी एकाग्रता कर। वह तुझे शरण है, बाकी कोई शरण है नहीं। समझ में आया ? और एक शब्द ऐसा आता है। सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा गुरुगम से जानना। वरना ऐसे आत्मा आत्मा तो सब कहते हैं, ऐसा नहीं। सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा। सर्वज्ञ ने अनन्त सर्वज्ञस्वभावी आत्मा देखे हैं

और हैं। समझ में आया? जिनके ज्ञान में, अनन्त सर्वज्ञ प्रगट हुए जिनके ज्ञान में वर्ते, ऐसी पर्याय सर्वज्ञ की। ऐसी अनन्त पर्याय जिसके गर्भ में पड़ी, ऐसा सर्वज्ञ आत्मा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जानना क्या? जाननेवाले को जानना क्या? जाननेवाले को जानना क्या? गुरुगम से जाननेवाले को जानना क्या? कि, भगवान आत्मा एक समय में पर्याय प्रगट हो, तब तो सब जाने। परन्तु उसके एक समय में उसका सत्त्व सत् स्वभाव ऐसे अनन्त सर्वज्ञों को और अनन्त-अनन्त केवली जो हो गये, केवली हुए, होंगे और होते हैं, उन सबको एक समय में (जाने), जिसकी ऐसी अनन्त शक्तियों का सरस आत्मा, उसे तू जान। लो!

मुमुक्षु : .... बतलाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं, परन्तु उसे जान किसे? जानना है किसे? जानना उसे। आहाहा! समझ में आया?

आत्माराम... यह द्रव्य की बात चलती है, हों! **शुद्धनिश्चयनयकर अतीन्द्रिय ज्ञानमय है...** वस्तु भगवान अकेला अतीन्द्रिय ज्ञान का पिण्ड है। ऐसा होने पर भी, **अनादि बन्ध के कारण...** बात वापस पर्याय को सिद्ध करते हैं। हाँ, ऐसा नहीं कि, वस्तु ऐसी की ऐसी है इसलिए पर्याय में कुछ मलिनता हुई ही नहीं, अटका ही नहीं। अटका न हो तो टालना रहता नहीं। ओहोहो! फिर यह कहेंगे। बन्ध नहीं और संसार भी नहीं, यह कहेंगे बाद में। समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु... वस्तु... वस्तु... चैतन्य हीरा वह तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय है, अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप ही है। तो भी अनादि बन्ध के कारण से असद्भूत, **व्यवहारनय से इन्द्रियमय शरीर को ग्रहण कर...** बसता है, ऐसा कहना है। '**असद्भूतव्यवहारेण**' ऐसा पाठ है। शरीर है न? वह व्यवहारनय शब्द लिया है। असद्भूत व्यवहार (से) इन्द्रियगम्य शरीर को, **इन्द्रियमय शरीर को...** इन्द्रियमय यह शरीर है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानमय है, तब यह शरीर है, वह इन्द्रियमय है। समझ में आया? यह आत्मा

अतीन्द्रिय ज्ञान स्वरूपमय है, शरीर इन्द्रियोंमय शरीर है। दोनों भिन्न चीज़ है। उसे ग्रहण करके अर्थात् उसमें रहता हुआ।

अपनी पाँच इन्द्रियों द्वारा... देखो! '**निजकरणैः**' यह पाँच इन्द्रियों द्वारा, '**पञ्चापि विषयान्**' **रूपादि (रूप, गन्ध, रस) पाँचों ही विषयों को जानता है,...** जानता है, हों! यह पाँच इन्द्रियाँ, समझ में आया? **अर्थात् इन्द्रियज्ञानरूप परिणमन करके इन्द्रियों से...** इन्द्रियज्ञानरूप निमित्त इन्द्रिय जड़, भावइन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमन करके पर्याय में, पर्याय में—अवस्था में **इन्द्रियज्ञानरूप परिणमन करके इन्द्रियों से रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श...** ऐसा ख्याल में लेता है। **और आप पाँच इन्द्रियोंकर तथा पाँचों विषयों से सो नहीं जाना जाता,...** भगवान आत्मराम, शुद्ध निश्चयनय से अतीन्द्रिय ज्ञानमय पदार्थ वस्तु, वह इन्द्रियोमय वर्तमान परिणमन ज्ञान का इन्द्रियमय कहकर, इन्द्रियों से रूप, रस, स्पर्श को वहाँ वर्तमान ऐसे जानता है। समझ में आया? परन्तु भगवान आत्मा इन विषयों से और इन्द्रियों से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। समझ में आया?

इन्द्रियज्ञानरूप परिणमन करके इन्द्रियों से रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श... उस-उस पर्याय में, क्षणिक में, उस द्वारा—क्षणिक द्वारा परिणमन से, क्षणिक के परिणमन से ऐसे रूप, रस आदि को जाने। **आप पाँच इन्द्रियोंकर तथा पाँचों विषयों से सो नहीं जाना जाता,...** परलक्षी इन्द्रिय का परिणमन और उसका विषय, उसके द्वारा भगवान जानने में आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा (आत्मा)! **नहीं जाना... 'मतो न'** उसका ज्ञान नहीं हो सकता। **अगोचर है...** इन्द्रिय के परिणमन ज्ञान से और उसके शब्द, रूप, रस, गन्ध से। यह तो ऐसा हुआ, दिव्यध्वनि शब्द से भी वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं। ऐसा हुआ। ऐई! वह भी यह तो आ गया है। परन्तु इसने विवाद उठाया है। यह तो एकसाथ में सब।

वस्तु गोला पूरा चैतन्यबिम्ब, रसकन्द, पूर्ण वस्तु अकेला सत्त्व, उसकी वर्तमान इन्द्रिय के परिणमन जितना भाग, उस भाग द्वारा यह लक्ष्य बीच में निमित्त और यह विषय इतना ऐसा जाने। उसके द्वारा आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं। ओहोहो! इन्द्रिय परिणमन से दिव्यध्वनि है, ऐसा ख्याल में आया। ऐई! इन्द्रिय परिणमन से ख्याल आया, ऐसा कहते हैं, भाई! इन्द्रियज्ञान का उस समय का इतना भावश्रुत जो इन्द्रिय का

परिणमन हुआ, उससे यह जाना। यह परिणमन और दिव्यध्वनि दोनों से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह खण्ड अंश परलक्षी और वह शब्द। यह पाँच इन्द्रियों के परिणमन का खण्ड अंश और सामने विषय शब्द, रूप आदि। भगवान की प्रतिमा से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं। यह पृष्ठ से और शब्दों से और वाणी से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। ले! ये शब्द और शब्द के परिणमन से, जिस परिणमन से शब्द को जाने, दोनों से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं। सेठी! आहाहा!

मुमुक्षु : तो किससे ज्ञात होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अन्तर अतीन्द्रिय ज्ञान से ज्ञात हो ऐसा है। आहाहा!

एक, दो, पाँच लाख का मणि आवे न मणिरत्न घर में तो सब देखने इकट्ठे हों ऐसे, हों! उसके पासा, उसका प्रकाश और उसकी गहराई और उसकी गम्भीरता और उसका तेज तथा उसके प्रकार और उसके भेद बहुत ... टकटक देखे तो कुछ दूसरा ख्याल भी न रहे, हों! ....! खाने को बुलाते हैं। तो कहे, अभी नहीं। परन्तु भूख लगी है न? वह दूधपाक बनाया फर्स्ट क्लास ऐसा बहुत खौला हुआ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी उतावल कहाँ? उसरूप से नजर पहुँची है।

यहाँ कहते हैं, अहो! भगवान चैतन्यमूर्ति, भगवान! तुझे ऐसे नजर से दिखाया जाता है। आहाहा! अरे! कहते हैं, उसे देखने में इन्द्रियज्ञान और परवस्तु काम नहीं आती, इसलिए वहाँ अटक जाता है एकदम यहाँ से। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह ऐसा कहते हैं। परमात्मप्रकाश है न? परमात्मस्वरूप, उसके देखने में जो प्रकाश प्रगटे, उस प्रकाश से भी उसमें से प्रगट हुए प्रकाश से प्रकाश प्रतीति हो। परन्तु इस इन्द्रिय की ओर के परिणमन और इन्द्रिय विषयों के शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श से वह भगवान ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। इसलिए एकदम अटक जाये सब, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

नहीं जाना जाता, अगोचर है, ऐसे लक्षण जिसके हैं, वही परमात्मा है। ऐसा जिसका लक्षण, ऐसा भगवान आत्मा है। आहाहा! वह तो अन्तर्मुख के लक्ष्य से ही

लक्ष्य में आ सकता है। बहिर्मुख की ज्ञान की परिणति और विषय (उनसे लक्ष्य में नहीं आता)। यह लोगों को बहुत ऐसा लगता है मानो कि यह तो भी एकान्त... एकान्त (हो जाता है)। भाई! वस्तु का सम्यक् एकान्त ही ऐसा है। आहाहा! **ऐसे लक्षण जिसके हैं, वही परमात्मा है।**

पाँच इन्द्रियों के विषय-सुख के आस्वाद से विपरीत... देखो! पाँच इन्द्रिय का ज्ञान करने से जो राग आवे, उसमें स्वाद आवे जहर का, दुःख का। उससे (विपरीत) **विषय-सुख के आस्वाद से विपरीत वीतराग-निर्विकल्प परमानन्द समरसीभावरूप, सुख के रस का आस्वादरूप परमसमाधि करके जो जाना जाता है,...** लो! किसमें ज्ञात हो वह, यह कहा। भगवान आत्मा अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... उसका क्या कहना! कहेंगे अभी। यह ४७ में आयेगा। वेलडी का दृष्टान्त। यह ४६ के बाद ४७ (गाथा में) आयेगा। समझ में आाय?

पाँच इन्द्रियों के लक्ष्यवाले ज्ञान में दुःख। उसके आस्वाद से रहित विपरीत। वीतराग आत्मा स्वरूप है, उसे रागरहित, निर्विकल्प अभेद, परमानन्द परम समरसीभावरूप, परम अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसा वीतरागभाव। वह राग और दुःख, यह वीतराग और सुख। अन्तर स्वभाव सन्मुख की दृष्टि में वीतरागता और आनन्द। इन्द्रिय के ओर के ज्ञान में इन्द्रिय विषय राग और दुःख। समझ में आया? सेठी! आहाहा!

वीतराग निर्विकल्प परम आनन्द समरसीभाव वीतरागी पर्याय, आनन्दवाली वीतरागी पर्याय, ऐसे सुख के रस के आस्वादरूप, ऐसे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादरूप परम शान्ति। वापस शान्ति वे समाधि-फमाधि कहते हैं, ऐसा और वैसा कहते हैं न बहुत? समाधि करो, ऐसा करो... वह समाधि नहीं। इसलिए ऐसे विशेषण दिये। भगवान आत्मा समाधि अर्थात् आनन्दस्वरूप है और वीतरागस्वरूप है। ऐसा आत्मा आनन्द (रूप) अस्तित्व है और वीतराग का अस्तित्व मौजूदगी पड़ी है, पूर्ण। उसकी एकाग्रता होने पर यहाँ वीतराग और आनन्द के आस्वादरूप पर्याय प्रगट होती है। उससे गम्य है, उससे जाना जाता है। आहाहा! समझ में आया?

वही परमात्मा है,... वह अन्दर ज्ञान—राग रहित ज्ञान और शान्ति अर्थात् आनन्द, उससे रागरहित पूर्ण वस्तु और पूर्ण आनन्द जानने में आवे, वह परमात्मा कहलाता है।

वह ज्ञानगम्य है, इन्द्रियों से अगम्य है,... इन्द्रियों से अगम्य है, ज्ञान से गम्य है। ज्ञान अर्थात् वह ज्ञान, हों! अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय पदार्थ का अतीन्द्रिय ज्ञान गम्य, वह आत्मा है।'और उपादेयरूप अतीन्द्रिय सुख का साधन अपना स्वभावरूप, वही परमात्मा आराधने योग्य है।' लो! अपना अतीन्द्रिय सुख का साधन जो अपना स्वभव, वही परमात्मा, वही सेवन और आराधनेयोग्य है। कहो, समझ में आया?

वही सुख रस का आस्वादरूप। कैसा आस्वाद? आहाहा! सुख के रस का आस्वाद। राग के ज्ञान के रस का आस्वाद, वह जहर है। आहाहा! सुख के रस का आस्वाद, ऐसी परम शान्ति, उसके द्वारा जाना जाता है। बाकी कोई विकल्प, मन, राग और शास्त्र-वास्त्र से ज्ञात हो, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें कहा, प्रवचनसार अलिंगग्रहण कहा है न जहाँ? थोड़े बोल। थोड़े अर्थ किये हैं न उसमें? पुराने प्रवचनसार में। वहाँ लिखा भाई! अलिंगग्रहण अन्त में पाँच-छह अर्थ करके, वह निमित्तमात्र सुनना है, बाकी वस्तु तो यह ज्ञानगम्य है। ऐसा लिखा है। कहो, समझ में आया? पुराना प्रवचनसार है न? उसमें बीस अर्थ नहीं। थोड़े अर्थ करके... निमित्तमात्र वह कब? यह कार्य हो तो निमित्तमात्र है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? वापस निमित्तमात्र अर्थात् यह है तो होता है, ऐसा नहीं। वह है तो हो तो निमित्त नहीं रहा। समझ में आया? उन्होंने लिखा है लो यह। श्रीमद् का मूल प्रवचनसार है न? उसमें लिखा है। अपने तो यहाँ बीस अर्थ किये। उसमें थोड़े अर्थ हैं। ओहोहो!

वीतराग शान्ति द्वारा। परन्तु वह वीतरागस्वरूप शान्त का रस ही है। उसे तो अन्दर में रागरहित दृष्टि, रागरहित ज्ञान और रागरहित शान्ति। शान्ति तो रागरहित ही होती है न? ऐसा आत्मा अन्दर में घोलन में जाये, वह अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति और अतीन्द्रिय सुख द्वारा साधन हो सके, ऐसा आत्मा है। बाकी सब बात। समझ में आया? आहाहा!

इन्द्रियों से अगम्य है,... यह इन्द्रिय के ज्ञान से अगम्य और इन्द्रिय से भी अगम्य। लो! इन्द्रिय से अगम्य (कहा), तो शब्दों से तो अगम्य कहीं हो गया। वे कहे, ऐई! दिव्यध्वनि से भी लाभ नहीं कहते, भगवान की दिव्यध्वनि को जड़ कहते हैं। अरे! भगवान! तेरे स्वरूप का साधन स्वतन्त्र पड़ा है, उसकी तुझे खबर नहीं। श्रद्धा ही नहीं,

श्रद्धा—भरोसा नहीं। यह वस्तु मेरी शान्ति, सुख के लिये कोई निमित्त, विकल्प और किसी के शब्द के साधन की मुझे आवश्यकता नहीं। समझ में आया? अच्छे मुख से बोला जाये तो सुख हो, लो! शशीभाई! बड़े मुख से बोला जाये। अहो! भाईसाहेब! आये। तुम्हारे हिन्दी में तो बहुत बोलते होंगे लम्बी भाषा। भाईसाहेब पधारे पधारे, भाईसाहेब पधारे, भाईसाहेब पधारे। ओहो! उसमें सुख हो। अहो! आज हमारे घर में भाईसाहेब पधारे। आँगन में सूर्य उगा, हमारा घर उजला किया, उजाला हुआ। अहो! ऐसे सब महिमा करे, हों! एक व्यक्ति कहता था। सेठिया गया था चाय पीने कि आज तो हमारे घर में आँगन उज्ज्वल। परन्तु किसका है क्या? समझ में आया? कभी काम आवे, ऐसा कहे वापस बड़ा हो तो। परन्तु वह काम नहीं आता, काम आवे आत्मा। सुन न! वह दुःख में काम आवे। सेठी! अच्छी सिफारिश किसमें काम आवे? दुःख में बाहर की। वह दुःख हो, उसमें निमित्त होता है। समझे? उस सिफारिश में दुःख होता है। वहाँ उसमें काम आती है वह।

भगवान आत्मा, आहाहा! जिसे किसी से काम लेना नहीं और किसी को साधन बनाना नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा! एक व्यक्ति पहले पूछता था कि यह पंचाध्यायी पाँच सौ, हजार बना दें तो उसका मोक्ष हो या नहीं? पंचाध्यायी बनानेवाला। ऐसा प्रश्न किया। लाख पंचाध्यायी बना तो भी मोक्ष नहीं होगा। यह प्रश्न किया था एक व्यक्ति ने। वह पंचाध्यायी जैसा ग्रन्थ बनावे तो? ऐई! भाई! यहाँ तो बहुत प्रकार के प्रश्न आवे कि मानो ऐसा पंचाध्यायी जैसा ग्रन्थ! ओहोहो! वह क्या है? कहा। समझ में आया? बनावे कौन? वह तो परमाणु की पर्याय। विकल्प उठा, वह राग। कहो, उससे आत्मा को कल्याण होता होगा? समयसार कुन्दकुन्दाचार्य ने रचा, इससे उनका कल्याण होगा वहाँ? आहाहा! परमाणु की पर्याय हुई, विकल्प उठा था। उसमें आत्मा को साधन क्या हुआ उसमें?

यह यहाँ कहते हैं कि इन्द्रियज्ञान का परिणमन और बाहर का विकल्प और यह विषय, बिल्कुल उनसे आत्मा गम्य नहीं। इन्द्रियों से अगम्य का अर्थ यह है। आहाहा! समझ में आया? वह तो ज्ञान स्व के ज्ञानगम्य है, पर के ज्ञान से भी वह गम्य नहीं। आहाहा!

उपादेय अतीन्द्रिय सुख का साधन अपना स्वभावरूप वही परमात्मा आराधने

योग्य है। आहाहा! वह तो परमात्मा। वह तो परमात्मा को... किया। वापस कहे कि, भाई! हम बारम्बार बात करते हैं, परन्तु यह पुनरुक्ति नहीं लेना, यह तो भावना का ग्रन्थ है। समाधि शतक की भाँति। बारम्बार भूख लगे तो बारम्बार कैसे खाने जाता है प्रतिदिन? उकताहट आती है? यह दस बजे यह और यह है। यह गेहूँ की रोटी और मूँग की दाल या उड़द की दाल या हरितकाय ऐसे जड़ के पत्ते सेंके हुए। पोपटभाई! क्या होगा प्रतिदिन?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़ के, जड़ के भिन्न-भिन्न। आहाहा! परन्तु प्रतिदिन रोटी या दूसरा कुछ है? यह गेहूँ के चूरे का आटा और उसका आटा करके (रोटी बनावे)। लकड़ी है, लकड़ी। उसका आटा, उसका चूरा। प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है मुझे। आहाहा! उसमें वहाँ उकताहट नहीं आती। प्रतिदिन वह का वह, वह का वह, रोटी वह की वह, दाल वह की वह और वह सब्जी। वह का वह चूल्हा और उसका पकाने का देखने का वापस वहाँ। ऐ... भीखाभाई! वह की वह यह आत्मा की बात आवे, उसमें उकताहट नहीं, कहते हैं। समाधि है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! दृढ़ता है उसकी वस्तु की। मजा आवे न वह खाने का, पीने का, इसे उसमें मजा लगता था, ऐसा कहते हैं। कपूरभाई! (मोटा) आंकड़िया के वकील हैं न? धूल में भी नहीं।

भगवान आत्मा अतीन्द्रियगम्य हैं, इन्द्रियगम्य नहीं। **और उपादेय अतीन्द्रिय सुख का साधन अपना स्वभावरूप वही परमात्मा आराधने योग्य है।** लो!

★ ★ ★

गाथा - ४६

अब कहते हैं, **जिसके निश्चयकर बन्ध नहीं हैं, और संसार भी नहीं है,...** ले! उपाय। भगवान परमात्मा उसे कहते हैं... अन्दर आत्मा, हों! जिसे बन्ध और संसार नहीं। बन्ध और संसार, वह परमात्मा नहीं। समझ में आया? जिसे वस्तु के सत्यस्वरूप की दृष्टि से वस्तु देखो (तो) भगवान वस्तु सत्... सत्... सत्... सत्... सत् का अकेला सत्त्व एकरूप वस्तु अनादि-अनन्त पदार्थ, अनादि-अनन्त एकरूप वस्तु। ऐसा परमात्मा

निज स्वरूप पूर्ण वस्तु पदार्थ, उसे बन्ध नहीं, उसे संसार नहीं। आहाहा! वे कहे, अभी संसार है। सुन न! परन्तु पर्याय के अंश में उदय है और अंश में बन्धन है; वस्तु में बन्ध और संसार कहाँ है ? आहाहा! लो! अभी से कहते हैं कि, उस आत्मा में संसार नहीं। अभी से ऐसा नहीं, परन्तु अनादि से (यह बात है)।

भगवान वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... अबन्धस्वभावी पदार्थ, पदार्थ घन वस्तु है न! पदार्थ है न ? अरूपी, परन्तु पदार्थ है न ? रूप नहीं, इसलिए अपदार्थ है ? वस्तु है, दल है, सत्त्व है, ध्रुव है, एकरूप शक्ति से रहनेवाला तत्त्व परमात्मा ऐसी वस्तु को एक समय का संसार और बन्ध वस्तु में नहीं। देखो! यह पर्यायनय का विषय संसार और बन्ध, वह द्रव्यदृष्टि में नहीं, (ऐसी) वस्तु नहीं, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। ओहोहो!

उस आत्मा को सब लौकिकव्यवहार छोड़कर... लौकिक शब्द यहाँ प्रयोग किया है। उसका अर्थ कि, व्यवहार अर्थात् साथ में यह विकल्प-फिकल्प आवे, वह सब लौकिक ही व्यवहार है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति यह उसमें सब विकल्प उठे, वह सब लौकिक व्यवहार है। व्यवहारनय ही लौकिक है। वह लोकोत्तर नहीं। आहाहा! समझ में आया ? उसमें था। भाई! नय नहीं ? नय है न, कहा न। उसका विषय है न ? अब वह विषय लौकिक है। उसे छोड़। समझ में आया ? सब लौकिकव्यवहार, हों! समझ में आया ?

मुमुक्षु : व्यवहारनय के .... निकाल डाला लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारनय अर्थात् क्या ? विकल्प आदि का भाग है, बन्ध आदि का भाग है, वह व्यवहारनय का विषय है। भेदरूप से उसे व्यवहारनय कहो। वह सब वस्तु में नहीं, इसलिए इसे भूतार्थ कहा और उसे अभूतार्थ कहा। समझ में आया ? भगवान आत्मा पदार्थ, महान पदार्थ, वह भूत—विद्यमान पदार्थ। समय का संसार अभूतार्थ है। खोटा पदार्थ है। त्रिकाली पदार्थ में वह नहीं। एक समय का है, वह नहीं।

सब लौकिकव्यवहार छोड़कर अच्छी तरह पहचानो,... ऐसे भगवान को भलीभांति देखना, **ऐसा कहते हैं—** यह गाथा लेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १३, शुक्रवार, दिनांक २२-१०-१९६५
गाथा - ४६-४७, प्रवचन - ३०

परमात्मप्रकाश। पहला भाग। ४६वीं गाथा। शब्दार्थ है।

अन्वयार्थ :- हे योगी,... अर्थात् कि आत्मा शुद्ध आनन्दघन चिदानन्दस्वरूप है, उसमें जिसका जुड़ान अर्थात् सम्बन्ध करना है, उसे यहाँ योगीरूप से सम्बोधन किया है। हे योगी! जो ऐसे जुड़ान है राग-द्वेष, विकल्प के साथ, वह जुड़ान छोड़कर चिदानन्द भगवान (के साथ जुड़ान करे)। देखो! **जिस चिदानन्द शुद्धात्मा के...** यह ज्ञान-आनन्द, लो! ज्ञानानन्द। ऐसा जो यह भगवान शुद्धात्मा **निश्चय करके...** वह कैसा है? उसके साथ तू सम्बन्ध कर, ऐसा कहना है। समझ में आया?

कैसा है वह वास्तव में चिदानन्द शुद्धात्मा वस्तु? कि **निज स्वभाव से भिन्न...** वह शुद्ध चिद्घन भगवान आत्मा पूर्ण सत् चिदानन्द अनादि-अनन्त स्ववस्तु। ऐसा स्वभाव, वस्तु का स्वभाव और स्वभाव से भिन्न। **द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पाँच प्रकार...** संसार है। यह भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघन, इससे द्रव्य अर्थात् परपदार्थ के संसर्ग में रमना, वह द्रव्यसंसार। क्षेत्र में परिभ्रमण करना, वह क्षेत्रसंसार; समय आदि काल में, वह कालसंसार; नारकी आदि भव में, (वह) भवसंसार; यह पुण्य-पाप के भाव में भटकना, वह भावसंसार। मूल उसमें भाव।

स्वरूप चिदानन्द शुद्ध भगवान आत्मा से उल्टा संसार अर्थात् कि मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेष भाव, वह भावसंसार। उसके कारण से द्रव्य संयोग में, क्षेत्र के संसर्ग में, काल में और भव में, ऐसे पाँच भव परावर्तनरूपी संसार। वह **'नैव' नहीं है,...** वह वस्तु में नहीं। कहो, समझ में आया? वस्तु जो आत्मा ज्ञानघन वस्तु है, अनादि-अनन्त है, ज्ञानघान है, आनन्द की मूर्ति है, ऐसा जो वस्तुस्वरूप, उससे विरुद्ध विकारभाव मिथ्यात्व आदि और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और (भाव)। यह पाँच संसार, वस्तु के स्वरूप में नहीं। समझ में आया?

और संसार के कारण जो प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेशरूप चार प्रकार का बन्ध भी नहीं है। भावसंसार है, उसके कारण से वह द्रव्यप्रकृति का बन्ध पड़ता है। नये कर्मों का दल, नये कर्मों का दल जो बन्ध पड़े, वह आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध मिथ्यात्व आदि भावसंसार। फिर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, उसका निमित्त, फल है वह तो। समझ में आया? उसका कारण भावबन्ध है, उसका भाव है, उसका कारण कौन? संसार का कारण प्रकृति बन्ध। कर्म की प्रकृति, कर्म की स्थिति, कर्म का रस और प्रदेश। यह चार प्रकार का बन्ध भी आत्मा में नहीं। कब? अभी?

भगवान वस्तु अकेला ज्ञान-आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है। उसमें वह संसार और संसार का कारण बन्धन—दोनों का उसमें अभाव है। संसाररहित मोक्षस्वरूप है, बन्धरहित अबन्धस्वरूप है। समझ में आया? लो! यह धनतेरस की लक्ष्मी आयी यह। पहले आया, देखो! शुरुआत में। लक्ष्मी पूजन किया था। केवलज्ञान भगवान मोक्ष जानेवाले थे न? मोक्ष की पूजन की देवों ने, ऐसा कहा जाता है। ऐसा यह मोक्ष है, हों! वह तुम्हारी पैसे की, धूल की नहीं।

मुमुक्षु : धन का अर्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धन अर्थात् यह चैतन्य धन, आत्मधन, केवलज्ञानरूपी धन। उसकी सम्पदा का पूजन, उसका नाम (लक्ष्मीपूजन है)। कहो, समझ में आया इसमें? यह बहियों में पूजन करेंगे न? लक्ष्मी। लक्ष्मी प्रसन्न हो। आलस जाओ, आलस जाओ और लक्ष्मी आओ, ऐसा करते हैं। यह आलस जाओ और लक्ष्मी आओ, इसका अर्थ कि स्वरूप चिदानन्द की मूर्ति प्रगट होओ और भवभाव का नाश हो। कहो, समझ में आया?

संसार का कारण, **जो बन्ध केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय को प्रगटतारूप मोक्ष-पदार्थ से जुदा है,...** देखो! यह बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश (बन्ध) परमाणु के आठ कर्म के फल, आठ कर्म का स्वरूप। वह केवलज्ञान आदि प्रगट पर्याय, उससे बन्धपदार्थ विरुद्ध है। स्वभाव से संसार विरुद्ध है और पूरी केवलज्ञानमय पर्याय से मोक्षपदार्थ से विरुद्ध है और वस्तु से भी बन्धपदार्थ विरुद्ध है। **उस परमात्मा को तू...** ऐसा परमात्मा अर्थात् तू, ऐसा परम स्वरूप द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव, पूर्ण स्वभाव, एकरूप स्वभाव। उसे, **'मनसि व्यवहारम् मुक्त्वा' मन में से सब लौकिक-व्यवहार को**

छोड़कर... क्या कहना चाहते हैं यह? बाहर से यह छोड़े स्त्री, पुत्र—ऐसा नहीं। **'मनसि व्यवहारम् मुक्त्वा'** मन में विकल्परूपी भाव पूरा संसार, उसे छोड़कर

तथा वीतरागसमाधि में ठहरकर... देखो! भगवान शुद्ध ज्ञानघन परमात्मा। एक समय में। यहाँ परमात्मप्रकाश है न? परमात्मा उसका स्वरूप ही शक्तिरूप से परमात्मा है। उससे विरुद्ध संसार और बन्ध, उनसे रहित भगवान आत्मा, उसे मन में पुण्य-पाप आदि विकल्प जो व्यवहार, उस व्यवहार को छोड़कर, स्वरूप के अन्दर में एकाग्र हो। किस प्रकार? कि रागरहित श्रद्धा, रागरहित ज्ञान और रागरहित शान्ति, ऐसी वीतराग शान्ति में ठहरकर जान, ऐसा ठहरकर आत्मा को जान। ऐसे अकेला जान (कि) आत्मा ऐसा है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

यह लक्ष्मीपूजन कर इस प्रकार से, कहते हैं। भगवान अनन्त गुण का धनी चिद्घन, पूर्णानन्द ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप पूर्ण है। संसाररहित स्वरूप है, बन्धरहित है। उसे मन में से विकल्प आदि का मन से त्याग करके, स्वरूप चिदानन्द ज्ञानानन्द में स्थिर, शान्ति, श्रद्धा, ज्ञान द्वारा, अरागी परिणति द्वारा स्थिर होकर उसे जान। अरागी परिणति पर्याय में स्थिर होकर उसे जान। समझ में आया? मार्ग तो यह है।

विकल्प आदि भाव, शुभभाव, उससे रहित चीज़ है, इसलिए भाव को छोड़कर। उस चीज़ में भावसंसार नहीं, उदयभाव पूरा नहीं। उस उदय भाव को मन में से छोड़कर स्वभाव में शान्त से, धीरज, श्रद्धा, शान्ति और स्थिरता द्वारा ठहरकर। वह इस आत्मा को जान। यह आत्मा लक्ष्मी सम्पन्न पूर्णानन्द है। समझ में आया? और इस प्रकार से उसका चिन्तवन अर्थात् ध्यान कर। बहुत बड़ी बात है। लोग कहे, परन्तु पहले, पहले क्या करना? पहले यही करना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह करना। वर्तन क्या? यह करना।

मुमुक्षु : वर्तन कैसा करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वर्तन। दूसरा वर्तन क्या करना था? अन्तर में परसन्मुख के पुण्य-पाप के भाव में उसका एकाग्र वर्तन है कि, जो उस स्वरूप वस्तु में नहीं।

समझ में आया ? शुभाशुभ विकल्पों का वर्तन, उसका मन में वर्तन अनादि का है। कि, जो विकल्प का वर्तन स्वरूप में नहीं। ऐसे विकल्प के वर्तन का पहलू बदलकर, यह स्वरूप जिसमें वह नहीं, उसमें दृष्टि एकाग्र करके, उस आत्मा को तू जान। कहो, समझ में आया ?

भावार्थ :- शुद्धात्मा की अनुभूति से भिन्न... भगवान शुद्धस्वरूप सच्चिदानन्द सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द। शाश्वत् अनन्त आया था न ? शाश्वत् अनन्त है आत्मा। वस्तु शाश्वत् अर्थात् अनन्त अर्थात् शाश्वत्—कहीं उसका अन्त न आवे। शाश्वत्—अन्त न आवे, ऐसा अनन्त। वस्तु है न, पदार्थ है न ? ज्ञानघन, आनन्दघन—ऐसी वस्तु वह शाश्वत्-अनन्त है। ऐसा शाश्वत् अनन्त अर्थात् शाश्वत् में कहीं उसका अन्त नहीं। ऐसा भगवान, उसकी अनुभूति। ऐसा शाश्वत् प्रभु, अपना स्वरूप, उसका अनुभव, उससे भिन्न यह संसार और संसार का कारण बन्ध। समझ में आया ? ओहोहो ! गजब ! लोगों को ऐसा लगे न कि, यह सब व्यवहार और इससे (होता नहीं) ? चिल्लाहट मचाये। पुकार पुकार करता है। अरे ! भगवान ! परन्तु तेरे घर में सन्तोष आवे, ऐसी आनन्द की बात है, भाई !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे वह रोग तो मिटे कहाँ से ? शोर—चिल्लाहट करे। यह हुआ, यह हुआ, यह हुआ। परन्तु यह सब उसमें नहीं। यह व्यवहार करते हैं। परन्तु अब व्यवहार जो विकल्प है, वह वस्तु में नहीं। अब क्या लगायी है तूने ? ऐसा कहते हैं यहाँ। जो विकल्प करके तू लाभ लेना चाहता है, वह विकल्प वस्तु में नहीं। वह व्यवहार वस्तु में नहीं। ऐसा दूसरी भाषा से कहें तो। आहाहा ! भाई !

ऐसा निर्णय कर कि मेरी वस्तु में वे भिन्न पुण्य-पाप के विकल्प और भावसंसार ही नहीं। ऐसा भावसंसार का भाव स्वरूप में नहीं, ऐसा वहाँ से लक्ष्य छोड़कर जिसमें वह संसार नहीं, परन्तु जिसमें अनन्त आनन्द आदि वस्तु स्वभाव है। संसार नहीं जिसमें पुण्य-पाप, व्यवहार, विकल्प नहीं, परन्तु पूर्णानन्द पूर्ण गुण से भरपूर पदार्थ है। आहाहा ! जिसका एक-एक गुण अनन्त शक्तिवान है। भले एक गुण की पर्याय त्रिकाल हो, परन्तु शक्ति तो अनन्त है। ऐसा शाश्वत् अनन्त द्रव्य और उसके गुण शाश्वत् अनन्त

हैं। ऐसा भगवान आत्मा, उसमें अन्तर नजर कर, उस नजर में शान्ति और श्रद्धा में स्थिर होकर उसे देख, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई!

यहाँ तो जिसे आत्मा प्राप्त करना हो अथवा परमात्मा है, ऐसा समझना हो, उसकी बात है। बाकी दूसरी है। शुभाशुभभाव आदि अनेक प्रकार होते हैं, भव। वे कहीं आत्मा नहीं और वे कहीं आत्मप्राप्ति का उपाय नहीं। अर्थात् कि मोक्षप्राप्ति का उपाय नहीं, धर्मप्राप्ति का वह कोई उपाय नहीं। शुभ आदि विकल्प हों, वह धर्मप्राप्ति का उपाय नहीं।

भगवान शुद्धात्मा का अनुभव, ऐसा लिया है यहाँ। पूर्णानन्द प्रभु की अनुभवदशा अर्थात् सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, स्थिरता से विरुद्ध संसार और संसार का कारण बन्ध, उससे रहित। **आकुलता से रहित ऐसे लक्षणवाला मोक्ष का मूलकारण...** देखो! ऐसा लक्षणवाला मोक्ष का मूल कारण तेरा आत्मा। समझ में आया? पूर्ण आनन्द की, पूर्ण शान्ति की प्राप्तिरूपी मुक्ति का कारण वह आकुलता और संसार और बन्धन से रहित ऐसे लक्षणवाला आत्मा, वह मोक्ष का मूल कारण शुद्धात्मा है। आहाहा! यह संक्षिप्त में तो बहुत (कहा)। कहो, समझ में आया इसमें?

ऐसा कहते हैं कि तुझे कहीं मोक्ष के लिये काम करना है या नहीं? मोक्ष के लिए काम करना है या नहीं? या बातें करनी हैं? मोक्ष अर्थात् परम शान्ति, सुख को प्राप्ति करने का कोई काम करना है या नहीं? उस काम के लिये तो यह भगवान शुद्धात्मा, जो संसार और बन्ध के रहित लक्षणवाला है। वह अबन्ध और असंसार लक्षणवाला है। बन्ध और संसार के लक्षणरहित है, और अबन्ध मुक्तस्वभाव और संसार के अभाव लक्षणवाला है। समझ में आया इसमें?

वस्तु है, जिसकी मुक्त अवस्था होती है, वह बन्धरहित है। जो संसाररहित अवस्था होती है, मुक्त में, तो वह वस्तु स्वयं संसाररहित है। समझ में आया? पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था में; यह शरीर, वाणी, मन तो एक ओर जड़पदार्थ पर में गये वे तो। वह भावसंसार जो विकल्प मिथ्याभ्रान्ति इतना मैं नहीं, इतना मैं नहीं, इतना यह, ऐसी भ्रान्ति और राग-द्वेष ऐसा जो भावसंसार वस्तु में नहीं। वस्तु में नहीं, भावसंसार उसमें नहीं, ऐसे लक्षणवाला आत्मा है। संसार के लक्षणवाला आत्मा नहीं। ....भाई!

और बन्ध जो है प्रकृति, स्थिति, अनुभाग (प्रदेश), ऐसे लक्षणवाला आत्मा नहीं। बन्ध के लक्षणरहित आत्मा अबन्ध लक्षणवाला है। आहाहा!

यह संसार और बन्ध लक्षणवाला स्वरूप उसमें नहीं, इसलिए उस लक्षणवाला नहीं। वह लक्षण तो बन्ध और संसार का है, वह इसमें (आत्मा में) नहीं। इसलिए बन्ध और संसार विकारीभाव, उस लक्षणरहित यह चैतन्य है। आहाहा! ऐसा यह आत्म भगवान जो संसार और बन्ध लक्षणरहित है अर्थात् कि मुक्त लक्षणवाला और संसार में संसरण— हट जाना, ऐसे लक्षणरहित, ऐसा स्थिर लक्षणवाला स्वरूप, मुक्तस्वरूप भगवान के ऊपर एकाग्र हो, एकाग्र होकर यह हूँ, ऐसा जानो, ऐसा कहते हैं। ऐसे अकेला, ऐसा नहीं। उसमें स्थिर होकर यह जान कि, यह आत्मा पूर्ण है। समझ में आया? कहो, कान्तिभाई! यह तो लॉजिक से बात है या नहीं? वकालत की भाँति कहीं आड़ी-टेढ़ी बात नहीं है।

ऐसी दो (बातें हैं)। एक भगवान और एक ओर ऐसे अभगवान। एक ओर भगवान आत्मा महिमावन्त पदार्थ शुद्ध अनादि-अनन्त आनन्दकन्द शुद्ध चिद्घन तथा एक ओर संसार और बन्धभाव, वह अभगवान, महिमा रहित चीज़। वह भाव इसमें नहीं और यह उसमें नहीं। कहो, समझ में आया? परन्तु इसे कुछ निर्णय करना नहीं, समझने की दरकार करना नहीं। और धर्म करना है। क्या परन्तु धर्म कौन? धर्म करनेवाली चीज़ कितनी है कि जिसमें से धर्म होगा? धर्म तो नया करना है न? धर्म हो, तब तो फिर करना रहता नहीं। तो धर्म करना है न? तो धर्म करना है, वह धर्मदशा करनेवाला कैसा है? वह सब धर्म हो, ऐसे सब स्वभाववाला है या अधर्म स्वभाववाला वह जीव है? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसमें आत्मा के साथ की बात है, इसमें कहाँ प्रश्न है? इसमें कहीं बहुत पठन की आवश्यकता कहाँ है? समझ में आया?

एक चीनी का गोला है पूरा इतना बड़ा। समझ में आया? अब साथ में एक मैल है। यह दूध से धोते हैं या नहीं? मैल है। तो वह चीनी है, वह मैलरहित है और चीनी में वह मैल नहीं तो भिन्न पड़ जाता है। चीनी में मैल नहीं और मैल उसमें नहीं। इसलिए आत्मा जो चिदानन्द शक्कर का अमृत गोला है आत्मा। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प

का मैल नहीं, इसका मैल उसमें नहीं तो उस लक्षणवाला भी नहीं। वह तो निर्मल लक्षणवाला है। चीनी मिठास लक्षणवाली है, मैल लक्षणवाली है? कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! अभी तो आयेगा, इसमें आयेगा। यह तो पहले अभी ४६ वीं का उपोद्घात होता है। ४७ में आता है। समझ में आया? आहाहा!

तेरा लक्षण क्या है, वह लक्षण जाने बिना लक्ष्य हाथ में किस प्रकार आयेगा? राग और द्वेष, पुण्य और पाप और बन्ध, वह लक्षण तेरे हैं? वे तो विकार के और बन्ध के लक्षण हैं। उनसे तो बन्ध और वह हाथ में आये ऐसा है। तू हाथ में आवे, उसका लक्षण क्या? कि भगवान उस चीनी का गोला जैसे पूरा बड़ा पिण्ड पड़ा है, उसी प्रकार आत्मा अकेला अमृत और ज्ञान के रस का पिण्ड प्रभु अरूपी निरालम्बी, कुछ भी शरीर, वाणी, मन के आधाररहित रहा हुआ अन्दर। पर के क्षेत्र के आधाररहित, हों! और यह विकल्प के आधाररहित तत्त्व पड़ा है। समझ में आया?

अद्धर पर के आधाररहित और भाव-विकार के आधाररहित। ऐसा भगवान आत्मा, उसे यह विकार और बन्ध के लक्षणरहित जान। कब? कि, यह ज्ञानानन्द, चिदानन्द लक्षण से लक्षित हो, ऐसा उसे जाने। विकल्प में स्थिर होने से यह क्या आत्मा, ऐसा लक्ष्य में नहीं आयेगा। क्योंकि उसका लक्षण नहीं है। उसका लक्षण ज्ञान और आनन्द है। ज्ञानानन्द में स्थिर, उससे यह आत्मा है, ऐसा प्रतीति में आयेगा, तब उसने आत्मा जाना, ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया या नहीं? इसमें कहीं बहुत पहाड़े पढ़ने पड़ें, ऐसा नहीं है।

वही सर्वथा आराधने योग्य है। ऐसा देव लक्ष्मी से भरपूर भगवान, उसकी पूजा करनेयोग्य है, लो! सेठी! यह लक्ष्मी पूजा। अब ४७

★ ★ ★

गाथा - ४७

आगे जिस परमात्मा का ज्ञान सर्वव्यापक है, ऐसा कोई पदार्थ नहीं है,... सर्वव्यापक अर्थात्? ऐसा कोई पदार्थ नहीं कि जो ज्ञान में ज्ञात हुए बिना रहे। सर्वव्यापक अर्थात् वह भगवान आत्मा का ज्ञान शक्तिरूप से या प्रगटरूप से। प्रगट की बात करेंगे

केवलज्ञान। परन्तु यह शक्ति और पर्याय प्रगट, उस ज्ञान का ऐसा सामर्थ्य है कि, सर्वव्यापक है। सर्वव्यापक अर्थात् सर्व को जाननेवाला। कुछ भी जाने बिना का रहे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं। यह ज्ञानलक्ष्मी। आहाहा! कहो, रतिभाई! यह ज्ञानलक्ष्मी, सरस्वती। क्या कहते हैं तुम्हारे? **'सा विद्या या विमुक्त्ये'** लिखते हैं या नहीं? आहाहा!

जिस परमात्मा का ज्ञान... देखो! यहाँ जरा सी बात, ध्यान रखना, इसमें से कुतर्क निकालनेवाले इसमें से निकालते हैं और इसमें से स्वभाव का माहात्म्य बतायेंगे। **ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो ज्ञान से न जाना जावे, सब ही पदार्थ ज्ञान में भासते हैं,...** भगवान ज्ञान ऐसा है कि, जिसका जानना ऐसा स्वभाव, उसमें किसी को न जाने, ऐसा कैसे हो? समझ में आया? ऐसा भगवान ज्ञानलक्ष्मी सम्पन्न प्रभु चैतन्य है, परन्तु ऐसी उसकी अनन्त काल में प्रतीति की नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा का ज्ञान, जानना ऐसा उसका स्वभाव। जानना ऐसा जिसका स्वभाव, उस जानने में, न जानना, इसे ही जाने—ऐसा कैसे हो? जानने में जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... आवे। समझ में आया? कितना-कितना आवे जानना, जानना? जरा बात करेंगे।

४७) णेयाभावे विल्लि जिम थक्कइ णाणु वलेवि।
मुक्कहँ जसु पय बिंबयउ परम-सहाउ भणेवि॥ ४७॥

ओहोहो! **जैसे मण्डप के अभाव से बेल (लता) ठहरती है,...** मण्डप होता है न मण्डप—मण्डप? मण्डप के ऊपर बेल नीचे से ऊपर चढ़े तो मण्डप के ठोंगा तक जाये। बाँस का जहाँ तक मण्डप हो, वहाँ तक जाये न? फिर आगे कहाँ जाये? जाने की शक्ति तो बहुत है, परन्तु मण्डप नहीं। इसमें से निकालते हैं। अरे, भगवान! क्या कहना है, सुन तो सही! मण्डप बनाते हैं न यह? और बेलडी नहीं करते बड़ी? बड़ी-बड़ी बेलड़ी ऐसे चारों ओर। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ होगी थोड़ी। परन्तु बड़ी-बड़ी देखी है। कहाँ गये थे वहाँ। ओहोहो!

मुमुक्षु : बाहुबली।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहुबली तो ठीक। वह नहीं थे गाँव में? एक ही दिन रहे थे, वह रसोईया मनुष्य मर गया। एक रसोईया मर गया न बहुत खाया और फिर उस रात्रि में वहाँ मर गया। वह कोई गाँव था। वह वहाँ बँगले में उतरे थे, क्या कहलाता है वह? गेस्ट हाउस। ऐसी बेलड़ियाँ ऐसी थी। ओहोहो! वह तो ऐसे से ऐसे चढ़ी हुई और ऐसे से ऐसे चढ़ी हुई ढेर।

कहते हैं कि वह मण्डप जहाँ तक है, वहाँ तक बेलड़ी विस्तरे, बेलडी विस्तरे। वह कहाँ विस्तरे? परन्तु उससे विस्तृत होने की शक्ति नहीं, ऐसा नहीं। कहो, बराबर समझ में आया इसमें? यह बेलड़ी ऐसे ऐसी होती है न बहुत नीचे और मूल झाड़ा ऐसा हो, फिर हिला ही करे, लगातार फिर ऐसा हो और ऐसा हो, ऐसे जाये और ऐसे जाये। ठोंगा तो अमुक तक हो। पाँच, पच्चीस हाथ तक या इतने तक। वह बड़ा लम्बा था। ऐसे से ऐसे बेल और ऐसे से ऐसे बेल डालते हैं। मण्डप से आगे नहीं जाती, इसलिए मण्डप से आगे जाने की शक्ति नहीं, ऐसा नहीं। मण्डप इतना नहीं, इसलिए जहाँ तक है, वहाँ तक जाये। परन्तु उसमें शक्ति तो इतनी है कि मण्डप चाहे जितना हो, ऐसी की ऐसी चली ही जाती है बेलड़ी। लो! उस बेलड़ी को जाने की शक्ति होने पर भी मण्डप नहीं, इसलिए (नहीं जा सकती वह) निमित्त की प्रधानता हुई या नहीं वहाँ? लो! यह विपरीत वाले ऐसा निकाले। आहाहा! यह आयेगा अभी देखना।

जहाँ तक मण्डप है, वहाँ तक तो चढ़ती है और आगे मण्डप का सहारा न मिलने से... देखो! **चढ़ने से ठहर जाती है,...** आहाहा! जो अभिप्राय कहना है, वह न लेकर उससे उल्टा दूसरा निकालते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि बेलड़ी चढ़ने की ऐसी सामर्थ्य रखती है, कि इतना ही मण्डप है। परन्तु इससे आगे होता तो (भी जाती)। परन्तु मण्डप ही इतना, इसलिए क्या हो? इसलिए वहीं की वहीं, शक्ति बहुत होने पर भी इतने में और इतने में रहती है। इससे कहीं पर नहीं, इसलिए उसके निमित्त बिना यह काम नहीं करता, निमित्त हो तो काम करे—ऐसा कहाँ सिद्ध करना है? अरेरे! यहाँ तो निमित्त नहीं, इसलिए काम नहीं करता, ऐसा सिद्ध नहीं करना। उसकी शक्ति को सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया इसमें? आहाहा! परन्तु भाई! जगत... परन्तु आत्मा है न!

जहाँ तक मण्डप, वहाँ तक तो चढ़ती है और आगे मण्डप का सहारा न मिलने

से चढ़ने से ठहर जाती है,... अर्थात् कि वह निमित्त मण्डप नहीं, इसलिए चढ़ती नहीं, ऐसा सिद्ध नहीं करना है। उसकी शक्ति बहुत है, परन्तु ऐसा नहीं इसलिए कहाँ जाये? शक्ति तो अनन्त सिद्ध करनी है। निमित्त नहीं, इसलिए नहीं जाती, ऐसा सिद्ध नहीं करना। आहाहा! समझ में आया?

उसी तरह मुक्त-जीवों का ज्ञान... देखो! भगवान केवलज्ञानी का ज्ञान सर्वज्ञपद... सर्वज्ञपद... सर्वज्ञपद... एक समय में सर्व... सर्व... सर्व... सर्व... सर्व जाने। लोकालोक मण्डप, लोकालोक मण्डप, तीन काल मण्डप। उन मुक्त जीवों का ज्ञान (सर्व को जाने)। देखो! तेरी शक्ति में ऐसा ज्ञान पड़ा है, ऐसा कहते हैं। वह मुक्तस्वरूप शक्ति ऐसी ही पड़ी है अन्दर। केवलज्ञान प्रगट मुक्तानाम **ज्ञान भी जहाँ तक ज्ञेय (पदार्थ) हैं, वहाँ तक फैल जाता है,...** जहाँ जाननेयोग्य पदार्थ तीन काल और लोकालोक है, वहाँ तक जानने का काम करे।

'ज्ञेयाभावे' देखो! टीकाकार ने भी ऐसा लिया है कि **ज्ञेय का अवलम्बन न मिलने से...** ठीक। इसमें से तर्क करते हैं। यह ज्ञेय नहीं मिलते—अवलम्बन निमित्त नहीं, वह क्या काम करे? काम तो बहुत कार्य करने का है। उपादान में शक्ति तो है। आहाहा! अरे! भगवान! तेरी भी बलिहारी है न, बापू!

मुमुक्षु : .... वह नहीं जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका अवलम्बन नहीं, ऐसा कहकर उसकी शक्ति की विस्तारता को सिद्ध करते हैं। निमित्त का अभाव है, इसलिए काम नहीं कर सकती, ऐसा सिद्ध नहीं करना है। समझ में आया? लोक **ज्ञेय का अवलम्बन न मिलने से...** ऐसी भाषा शैली समझानी है दूसरी। देखो! **'बलेपि'** शब्द है या नहीं?

मुमुक्षु : अपना बल....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। बल होने पर भी, ऐसा यहाँ लेना। **'बलेपि'** है न? **जानने की शक्ति होने पर भी...** ऐसा यहाँ लेना है। क्या कहना है? भगवान ज्ञान की पर्याय में—केवलज्ञानमय आत्मा की दशा में बल होने पर भी, बल होने पर भी लोकालोक और त्रिकाल ज्ञेय है, उतना काम करती है। बल होने पर भी। इससे इतना

ही बल है, ऐसा नहीं। यह सिद्ध करना है। आहाहा! अरे! तू चैतन्य आनन्दकन्द जाननेवाला। क्या राग और क्या शरीर और क्या लोकालोक। जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... अमाप—अथाह जाननेवाला तेरा स्वभाव है। परन्तु वह जीव की महिमा इसे नहीं आती। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सिद्ध करना है। समझ में आया इसमें?

यह मण्डप की हद आयी, परन्तु बेलड़ी की हद नहीं कि अब इतनी ही रहे। इसलिए इसका अर्थ ऐसा नहीं कि बेलड़ी की शक्ति होने पर भी वह लकड़ी मिली नहीं, इसलिए आगे नहीं गयी। ऐसा सिद्ध नहीं करना है। आहाहा! बेलड़ी की भी बलिहारी है न? उसमें से निकालते हैं, हों! यह दृष्टान्त आया था, भाई! हों! पत्रिका में आया था। क्या समझ में आया इसमें? ऐई! ज्योति! क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी शक्ति अनन्त है, ऐसा बतलाना है। मण्डप नहीं, इसलिए आगे जाती नहीं, ऐसे मण्डप की प्रधानता नहीं बतलानी है। आहाहा! समझ में आया?

अवलम्बन न मिलने से जानने की शक्ति होने पर भी ठहर जाता है,... समझ में आया? दूसरा भी शास्त्र में बोल आता है। देखो! कि आत्मा में ऊर्ध्व शक्ति का स्वभाव बहुत है सिद्ध का, परन्तु धर्मास्ति नहीं, वह क्या करे? लो! यह पाठ दूसरा धर्मास्ति का। जैसा यह ज्ञान का, वैसा वह। ऊर्ध्व स्वभाव, वह तो ऊर्ध्व स्वभाव है, अनन्त ऊर्ध्व स्वभाव है। परन्तु आगे धर्मास्ति नहीं तो ऊर्ध्व कैसे जाये? इससे निमित्त की प्रधानता नहीं सिद्ध करनी है। उसका सामर्थ्य है, उतना ही वहाँ जाये और वहाँ निमित्त उतना ही है। शक्ति तो बहुत है, परन्तु शक्ति इतना ही काम करती है, वहाँ निमित्त इतना ही है। आहाहा! गजब परन्तु वहाँ से यह निकालते हैं। लो!

तीसरा। काल न हो तो परिणमन नहीं होता, काल अभाव में परिणमन नहीं होता। नियमसार में स्पष्ट पाठ है। काल अभाव में परिणमन और कालद्रव्य न हो तो

परिणमन नहीं होता। परिणमन नहीं होता तो पर्याय नहीं होती, तो द्रव्य नहीं रहे और पर्याय नहीं रहे। यह कहकर क्या सिद्ध करना है? परिणमन करनेवाले पदार्थ के समय एक निमित्त चीज़ है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! सिद्ध करने जाते हैं निमित्त, वहाँ उसके बल का सामर्थ्य उसके कारण से काम करता है, वरना उसके बिना काम नहीं करता। छोटाभाई! आहाहा!

जिसमें ज्ञेय नहीं, इसलिए वह आगे काम नहीं करता निमित्त के अभाव में, ऐसा नहीं। उसकी शक्ति अपार है, ऐसा सिद्ध करना है। इतना जाननेवाला क्या न जाने? कितना अनन्त गुणा काल से और किसी क्षेत्र से अधिक, ऐसी उसकी अपार, अचिन्त्य शक्ति सत् है... है... है... जिसकी ज्ञान की पर्याय जाननेवाली है... है... है... है... है... है। उसमें है... है... है... है में नहीं, ऐसा आता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया?

जैसे सर्व आकाश है... है... है... है... है... उसमें नहीं, ऐसा कुछ नहीं आता, ऐसा सिद्ध करना है। अब फिर आकाश नहीं कहीं, ऐसा नहीं। है... है... है... है... है... है। इसी प्रकार ज्ञान की पर्याय और गुण आदि में है... है... है... है। उस है का अन्त नहीं, इतना है। आहाहा! समझ में आया?

अरे! इसके अपने माहात्म्य की बात करे, तब माहात्म्य डाले किसी का। बलिहारी है न परन्तु इसकी! काल अभाव में परिणमन (नहीं) होता, धर्मास्ति के अभाव में ऊर्ध्वस्वभाव होने पर भी नहीं जाता। यह उसके स्वभाव की स्थिति का वर्णन करते हैं। पुद्गल न हो तो लोक यात्रा नहीं होती, ऐसा नियमसार में पाठ है। लो! जेठाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात इसे इस प्रकार की उल्टी घड़ी ही बैठ गयी होती है। वहाँ से ही ऐसे देखनेवाले। ऐसी चीज़ बताते हैं, तब वहाँ से देखते हैं। पुद्गल बिना लोकयात्रा नहीं होती, ऐसा नियमसार में है। परन्तु वह तो पुद्गल है, तब तक परमाणु की गति है, जीव भी उसके साथ में है, इतना बतलाना है। समझ में आया? गति का वास्तविक उसका कायम स्वभाव नहीं जीव का। पुद्गल के निमित्त के लक्ष्य से योग्यता

से इतना परिभ्रमण है। योग्यता क्षणिक है, उसका त्रिकाली स्वभाव नहीं। इसलिए पुद्गल हो वहाँ यात्रा करके उसका योग स्वभाव त्रिकाली है, वह परिभ्रमण का नहीं। इस प्रकार विभाव में गति करने का नहीं। चार गति, ऐसा कहना है। अब वहाँ यह ले, काल में वहाँ ले, धर्मास्ति में यह ले। यह ज्ञेय बिना ज्ञान काम करता नहीं, ऐसा ले। भगवान! तेरी बलिहारी, भाई! इसमें वाद और इसमें चर्चा किस प्रकार करना? समझ में आया? धर्मास्ति आ गया, अधर्मास्ति न हो तो स्थिरता नहीं होती, काल न हो तो परिणमन नहीं होता। धर्मास्ति न हो तो गति नहीं होती, पुद्गल न हो तो यात्रा नहीं होती, यह ज्ञेय न हो तो ज्ञान नहीं होता। लो! आ गया। ऐई!

जानने की शक्ति होने पर भी... इसके ऊपर से यह सब जरा (आ गया)। भाई! यह तो शक्ति तो बहुत है, परन्तु जहाँ ज्ञेय नहीं, तो क्या करे? इसलिए निमित्त नहीं तो काम करता नहीं, ऐसा सिद्ध नहीं करना है। आहाहा! उसका जानने का स्वभाव, उसकी क्या मर्यादा कहोगे? जो क्षेत्र का स्वभाव, उसे क्या कहोगे मर्यादा? समझ में आया? उसी प्रकार जिसका जानने का स्वभाव भगवान आत्मा एक एक आत्मा। जिसका जानने का स्वभाव उसमें है... है... है... है... है... है... है... है... है..., अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... अनन्त अस्ति। उसमें नास्ति कहीं आवे, ऐसा उसका स्वरूप है नहीं। ऐसी वसतु हो नहीं सकती। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

कोई पदार्थ जानने से बाकी नहीं रहता,... सिद्ध यह करना है। '**कोई पदार्थ जानने से बाकी नहीं रहता, सब द्रव्य, सब क्षेत्र, सब काल, सब भाव और सब भव को ज्ञान जानता है...** भाई! तेरे ज्ञान के अस्तित्व की तुझे खबर नहीं, भाई! वह अस्तित्व सिद्ध करते हैं। समझ में आया? यह इतने-इतने ज्ञेय, लोकालोक, उसका ज्ञेय है उतना ही यहाँ ज्ञान है, ऐसा नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? लोकालोक तो है। क्यों यहाँ केवल (ज्ञान) नहीं? उसके कारण से है तो यहाँ केवल (ज्ञान) क्यों नहीं? वह केवल (ज्ञान) अपने अन्तर में से प्रगट नहीं करता, इसलिए नहीं। समझ में आया?

जिसके अन्तर स्वभाव में शक्तिरूप से महा... महा... महा... ज्ञान पदार्थ, महा ज्ञान स्वभाव, महा ज्ञान स्वभाव (भरा हुआ है)। क्षेत्र असंख्य प्रदेशी ऐसा भले हो,

परन्तु भव उसका महा स्वभाव। उस महा स्वभाव समुद्र में से निकलती बेल, एक समय की बेल केवलज्ञान की। उसके अन्तर स्वभाव के अस्तित्व का तो क्या कहना? परन्तु जिसकी पर्याय प्रगट हुई, उसके अस्तित्व की हद नहीं कि इतना ही जाने, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या सिद्ध करते हैं? समझ में आया?

आत्मा कितना, ऐसा अस्तित्व उसे सिद्ध कराते हैं। भाई! तेरा एक ज्ञानगुण की एक पर्याय कितनी? एक पर्याय कितनी? कि, यह लोकालोक को जाने, इतना ही ज्ञेय है, इसलिए इतनी ही ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य है, ऐसा अस्तित्व इतना ही है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो स्वभाव की अलौकिकता है, ऐसा वर्णन करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वर्तमान श्रुतज्ञान की पर्याय का भी सामर्थ्य इतना है कि वह लोकालोक और सब उसके ज्ञान में ज्ञात हो जाता है। मात्र प्रत्यक्ष और परोक्ष का अन्तर है। परन्तु उस श्रुतज्ञान की पर्याय की भी बेहदता है। आहाहा! तो जहाँ प्रगट अकेली पर्याय जहाँ पूर्ण हो गयी... आहाहा! वह ज्ञेय कम हुए, परन्तु ज्ञान कम नहीं होता, ऐसा कहना है। आहाहा! वे ज्ञेय कम हुए, इसलिए ज्ञान काम नहीं करता, ऐसा परालम्बी सिद्ध नहीं करना। शशीभाई! आहाहा! कहो, समझ में आया?

अरे! तेरा माहात्म्य तूने एक गुण की एक पर्याय का भी जाना नहीं, कहते हैं। ऐसा जिसका स्वभाव, भगवान एकरूप अखण्ड पदार्थ है न? सब पदार्थ भिन्न-भिन्न उनकी बात नहीं अभी। एक-एक भगवान आत्मा... आत्मा, जिसका जानना स्वरूप, जानना स्वभाव, जानना तत्त्व, उसका निकला हुआ तत्त्व पर्यायरूप परिणमा, उसमें इतनी सामर्थ्य है, एक समय की पर्याय को इतनी सामर्थ्य अस्तिरूप से, अस्तिरूप से है, है के सामर्थ्य की इतनी ताकत है कि यह इतना लोकालोक ज्ञेय और काल है, लोकालोक ज्ञेय, लोकालोक क्षेत्र और ज्ञेय, काल। तो भी उससे अनन्त गुणा हों तो भी वह ज्ञान की एक समय की पर्याय में नहीं जानना अथवा जानना कम है, ऐसा नहीं। वह जानने का स्वभाव ही कोई बेहद... बेहद... बेहद... बेहद... बेहद... हद की कहीं हद नहीं लगती। आहाहा! ऐ... रतिभाई! समझ में आया?

यह ज्ञेय कम हुए परन्तु तेरा ज्ञान कम नहीं है, हों! भाई! आहाहा! एक समय

की पर्याय का ज्ञान कम नहीं कि अब (जानना) रह गया। यह तेरे समुद्र की तो क्या बात करना! ऐसे एक-एक गुण के सामर्थ्य का तो क्या कहना! और ऐसे-ऐसे अनन्त गुण के सामर्थ्य का क्या कहना! और उसका एकरूप द्रव्य, उसका तो क्या कहना!! आहाहा! यह वर्णन करते हैं, परमात्मा वर्णन करते है। परमात्मा का प्रकाश वर्णन करते हैं न? समझ में आया?

यह धनतेरस है। यह लापसी परोसी जाती है। आहाहा! देखो! यह लक्ष्मीपूजन। यह ज्ञान की लक्ष्मी भगवान! तेरी एक समय की प्रगट हुई पर्याय, जिसमें हद कही ही नहीं जाती। इतना ही जाने, ऐसा होता नहीं। आहाहा! ऐसा तो भगवान! तेरी एक पर्याय। एक समय की एक पर्याय—अवस्था—अंश, वह अंश। अंश की बेहदता। आहाहा! भगवान! तेरे ऐसे अनन्त अंश का पिण्ड ज्ञान, उसका क्या कहना! आहाहा! धीरुभाई! यह ज्ञानपूजन चलती है। सरस्वतीपूजन चलती है न? घर में मुफ्त के बहियों की पूजा करते हैं। धूल में भी नहीं वहाँ। पैसा मिले इसलिए ऐसा करते हैं। यहाँ केवलज्ञान लक्ष्मी का भण्डार द्रव्य पड़ा है न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु स्वभाव को हद क्या? स्वभाव को हद क्या? इसलिए तो बारम्बार क्षेत्र का दृष्टान्त दिया जाता है। उसमें हेतु है। समझ में आया? और वह दृष्टान्त 'अंबर' करके 'परमात्मप्रकाश में' दिया। आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... ऐसा आत्मा... आत्मा... आत्मा... भाव-भाव। आहाहा! यहाँ तो परमात्मप्रकाश प्रगट होता है।

भगवान आत्मा... ओहो! अरे! वहाँ विकल्प की कीमत क्या? वहाँ शुभभाव की कीमत क्या? आहाहा! जिसके बन्ध में तीर्थंकरपना बँधे, उसकी कीमत क्या? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान तेरा आत्मा, उसके खजाने के अस्तिपने के ज्ञानगुण की अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... ऐसी अनन्त पर्यायें, उससे भी सामर्थ्य अनन्तगुणा है। समझ में आया? यह लिया है न, भाई! चिद्विलास में? एक-एक गुण की अनन्त शक्ति, एक-एक गुण की अनन्त पर्याय। गुण का गुण, वस्तु जिसका स्वभाव है, जिसका एक सत्त्व का सत्त्व एक-एक गुण का है,

उसकी हद क्या? भाई! वह वस्तु है, बापू! वह प्रभु है। एक-एक गुण में प्रभुता का माप—हद होती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : .... यात्रा कराने से.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चैतन्य—सम्मेदशिखर पर चढ़ जा, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! एक बार वीर्य से यह स्वीकार तो करे। ऐसा नहीं। स्वीकार इसके अन्दर से आना चाहिए। इसके 'हाँ' की हाँ, हों! हाँ में कहीं ना नहीं।

कहते हैं, यहाँ '**बलेपि**' आया न? '**तिष्ठति**' उसमें से फिर वे दो-चार याद आये। लोक की यात्रा पुद्‌गल बिना होती नहीं, धर्मास्ति बिना ऊपर जाते नहीं, काल बिना परिणमते नहीं। बहुत आया। अरे! भगवान! अधर्मास्ति बिना स्थिर नहीं होते।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा बल होने पर भी। मूल तो दूसरा कुछ नहीं। '**तिष्ठति**' वहाँ ज्ञान उतना काम करता है। करता है अर्थात् शक्ति नहीं, ऐसा नहीं।

भगवान परमेश्वर आत्मा, यह स्वयं परमेश्वर आत्मा। इसकी ईश्वरता ज्ञान की महत्ता, उसकी ज्ञानगुण की महत्ता, वह तो अपार। परन्तु उसकी पर्याय एक समय की, उसकी ईश्वरता की अमापता। ऐसे ईश्वरता में खण्डन, अपूर्ण कुछ हो सकता नहीं। वह ज्ञान की एक समय की सर्वज्ञपर्याय, उसकी ईश्वरता, उसकी प्रभुता इतनी। इतना जानने पर भी बहुत जानने की सामर्थ्य, इससे अनन्त गुणी हैं, ऐसी एक पर्याय की ईश्वरता है। यह तो बल शब्द से आया। समझ में आया? आहाहा! यह वह कहीं... कहो, नेमिचन्दजी! समझ में आया या नहीं यह? कि, यह बनियागिरी जैसी बात होगी यह? ऐसा है। अस्ति है, उसकी अस्ति का कथन है। सत्‌पद प्ररूपणा होती है। शास्त्र है न? भाई! ऐसा पहला। सत्‌पद प्ररूपणा भगवान शुरुआत करे तब। है, उसका कथन करते हों उसका ... करेंगे। सत् पद प्ररूपणा। पहला ही बोल आता है यह धवल आदि में। योगदान में भी ऐसा आता है। सत् पद प्ररूपणा। है, उसे शब्दों द्वारा कथन करना है। आहाहा! धीरुभाई!

इसी प्रकार भगवान आत्मा का एक ज्ञानगुण, उसकी एक समय की अंश-दशा

प्रगट भेद अंश, हों! वह अंश केवलज्ञान की इतनी हदता... हदता... हदता... कि जिसमें हद नहीं होती। मर्यादारहित। लोकालोक जाने तो भी उससे अनन्त गुणा बल है उसमें। यह ईश्वरता अनन्त गुणी है उसमें। आहाहा! अरे! यह माँगे भिखारी जहाँ-तहाँ राग से, पुण्य से, विकल्प से माँगे कि मुझे कुछ देना। भिखारी हुआ। चक्रवर्ती राजा माँगने जाये, वहाँ वाघरी के घर में। झोपड़ी में जाये झोपड़ी में। वह .....

अरे! भगवान तीन लोक का नाथ चैतन्य नाथ विराजता है। एक-एक गुण से जिसकी मर्यादा नहीं होती। उसकी एक समय की पर्याय की जिसमें अस्ति में यह नहीं (ऐसा आवे नहीं)। है... है... है... स्वभाव में 'नहीं', ऐसा आवे नहीं। ऐसा तेरा स्वभाव सर्वज्ञ पर्याय से प्रगट होता है और सर्वज्ञस्वभावी तू। आहाहा! समझ में आया? इतने स्वभाव को जो वीर्य, जो श्रद्धा जोर से स्वीकार करे... समझ में आया? इसमें विकल्प का सहारा-फहारा होता नहीं। समझ में आया?

सब द्रव्य,... सभी द्रव्य। ओहोहो! यह सब द्रव्यों में रहा हुआ एक-एक में मर्यादा (रहित) गुण, ऐसे अनन्त गुण। उन्हें भी केवलज्ञान पर्याय जानती है, तथापि जानने की (शक्ति) बाकी रह जाती है। अरे! भगवान! सब द्रव्य में वापस आया या नहीं? पूरे द्रव्य में एक-एक गुण आये या नहीं सब? ज्ञान में...

एक-एक परमाणु में एक-एक गुण लो। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श गुण, उस गुण की भी अस्ति की बेहदता है। ऐसा न देख कि क्षेत्र इतना है। वह स्वभाव का एक पिण्ड है, बस। रूपी-मूर्त स्वभाव का पिण्ड एक परमाणु। उस स्वभाव को—शक्ति को क्षेत्रता की आवश्यकता नहीं। उसके स्वभाव के सामर्थ्य की आवश्यकता है। वह सामर्थ्यवाला एक परमाणु भी इतना है, एक वर्ण, एक वर्ण शक्तिरूप गुण, गुण है... है... है... है... है... है... ... उसकी पर्याय में अनन्त गुणी पर्याय परिणमती है, तो भी उसका सामर्थ्य उससे अनन्त गुणा है। समझ में आया?

ऐसा न देख कि क्षेत्र इतना है, इसलिए व्यंजनपर्याय निकाल डालते हैं। अर्थपर्याय में सामर्थ्य कितनी है, यह बताते हैं। सात हाथ का क्षेत्र हो और केवल (ज्ञान) प्राप्त करे। पाँच सौ धनुष का क्षेत्र हो और केवल (ज्ञान) प्राप्त करे। इसलिए केवल (ज्ञान) की पर्याय की बेहदता छोटे क्षेत्र ने रोकी नहीं। छोटाभाई! आहाहा! इसलिए व्यंजनपर्याय

और अर्थपर्याय को भिन्न किया है। समझ में आया? आकृति छोटी है, इसलिए उसकी अर्थपर्याय छोटी है, ऐसा नहीं। बड़ी आकृति की अर्थपर्याय बड़ी हो जाये, ऐसा नहीं। उसकी बेहद पर्याय ज्ञान की अर्थपर्याय इतनी है, भले सात हाथ का हो, अमाप, पाँच सौ हाथ का हो। अमाप। वह लोकप्रमाण व्यापे केवलज्ञान (समुद्घात) के समय क्षेत्र। समझ में आया? तो भी उस एक समय की पर्याय में, लोकालोक से भी अनन्त गुणी सामर्थ्य एक समय की पर्याय में है। क्षेत्र बड़ा-छोटा होने की अपेक्षा से वह वस्तु है ही नहीं। समझ में आया? यह पदार्थ विज्ञान, सर्वज्ञ भगवान के घर का पदार्थ विज्ञान चलता है। शशीभाई! तुम्हारे वहाँ पदार्थविज्ञान आत्मा उतारते थे थोड़ा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझाते होंगे वे। तुम्हारे ऊपर हाथ करते हैं। साइंस में...

मुमुक्षु : वह संयोगी कार्य है। यह वीतरागी कार्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वाह रे नाथ! यह तो स्वभाव, स्वभाव समर्थ शास्त्र। स्वभाव ईश्वर शास्त्र। यह तो धनतेरस है न? भगवान मोक्ष पधारे परसों। लो! तो यह आता है या नहीं? यहाँ तो अभी मानो धनतेरस है। भगवान की और मोक्ष की पूजा है। काल को कौन देखता है?

सब द्रव्य... ओहोहो! केवलज्ञान की एक पर्याय! ऐसी पर्याय अनन्त, जिसके एक द्रव्य या एक आत्मा में पड़ी है, ऐसा एक ज्ञानगुण अन्दर है। ऐसे अनन्त गुण से भरपूर द्रव्य, ऐसा क्षेत्र अमाप, काल त्रिकाल, भाव। समझ में आया? ओहो! यह गुण का स्वभाव, भाव सबको केवलज्ञान की पर्याय एक समय में जान लेती है।

ज्ञान जानता है, ऐसे तीन लोक सरीखे अनन्त लोकालोक होवें,... लो! ऐसे तीन लोक जैसे अनन्त लोकालोक हों। **तो भी एक समय में ही जान लेवे,...** कहो, समझ में आया? एक समय में भगवान जाने, ऐसी पर्याय है, भाई! यह ज्ञान की पर्याय। लो! सहज आज यह धनतेरस और लक्ष्मी आयी यह। समझ में आया? लो, समय हो गया। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ३०, रविवार, दिनांक २४-१०-१९६५
गाथा - ४७-४८, प्रवचन - ३१

परमात्मप्रकाश। पहला भाग, ४७ वीं गाथा चलती है। आज भगवान का निर्वाण दिवस है। भगवान महावीर परमात्मा पावापुरी के क्षेत्र में, अनन्त काल से सिद्धपर्याय प्रगट नहीं हुई थी, ऐसी सिद्धपर्याय को आज प्राप्त हुए। उसे यहाँ निर्वाण दिवस, मोक्ष दिवस कहते हैं। अर्थात् आज वास्तव में २४९१ वर्ष पूरे होते हैं न, २४९२वाँ वर्ष लगता है, नूतन वर्ष भी यह और पूरा भी आज। ऐसे भगवान को पावापुरी में देह छूटा। अनन्त काल से जो सम्बन्ध—कर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध था, वह पूरा नहीं छूटा था। वह सम्बन्ध छूटकर अपना जो निर्मल परमपारिणामिकस्वभाव जो ध्रुव, उसकी वर्तमान पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, उसे यहाँ मोक्ष कहते हैं। उस मोक्ष की पर्याय की इतनी सामर्थ्य है, वह यहाँ वर्णन चलता है।

केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य है कि **जिस भगवान परमात्मा के केवलज्ञान में...** परमात्मा अर्थात् मूल द्रव्यस्वरूप तो वस्तु, वस्तु ही है। परन्तु जिसकी एक समय की ज्ञान की अवस्था पूर्ण शुद्ध प्रगट हुई, उस केवलज्ञान में इतनी सामर्थ्य है कि **अपना उत्कृष्ट स्वभाव सबके जाननेरूप प्रतिभासित हो रहा है...** जिस केवलज्ञान में अपना द्रव्यस्वभाव, पर्यायस्वभाव और जो त्रिकाली द्रव्य का और पर्यायस्वभाव, सब जिन्हें ज्ञानपर्याय में प्रतिबिम्बित हो गया है। ऐसी एक समय की पर्याय की सामर्थ्य इस आत्मा के केवलज्ञान की एक समय की है।

ज्ञान सबका अन्तर्यामी है,... क्या कहते हैं? यह केवलज्ञान वस्तु जो ध्रुव है, उसे जानता है, अपनी वर्तमान अवस्था को जानता है। तीन काल-तीन लोक के जगत के द्रव्य-पर्याय वे भी एक समय की पर्याय में अपनी सामर्थ्य से अपने में ज्ञात होते हैं। कहते हैं कि, **जानकर ज्ञान का आराधन करो।** यह **सर्वाकार ज्ञान की परिणति है,...** सर्व आकार अर्थात् अपना द्रव्य, अपने गुण, अपनी पर्याय और जगत के द्रव्य, गुण,

पर्याय। इन सबरूप परिणमने की सामर्थ्यवाली एक समय की पर्याय है, तथापि एक समय की पर्याय लोकालोक को जाने, इतनी ही सामर्थ्यवाली है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- जहाँ तक मण्डप वहाँ तक ही बेल (लता) की बढ़वारी है,... मण्डप जहाँ तक हो, वहाँ तक बेल बढ़े। इससे बेल आगे बढ़ने की सामर्थ्य नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह दीवाली में दी—वळ्यो पर्याय का। स्वकाल प्राप्त हुआ। एक समय की ज्ञान की पर्याय इतनी सामर्थ्य रखती है कि लोक और अलोक तीन काल-तीन लोक है, इतने तो जाने, परन्तु इससे अनन्तगुणा काल और अनन्तगुणा क्षेत्र आदि हो तो भी एक समय की ज्ञानपर्याय जानने की सामर्थ्य रखती है। क्यों?-कि जो ज्ञान की एक समय की पर्याय पूर्ण शुद्ध हुई, उसमें उसका अस्तित्व का सामर्थ्य, अस्तित्व का—मौजूदगी का सामर्थ्य इतना ही जानने का है, ऐसा माप नहीं। समझ में आया?

एक समय की जो ज्ञानपर्याय इतनी सामर्थ्य रखती है कि जिसमें जिसकी व्यक्तता... वस्तु तो एक ओर रही। एक समय की पर्याय में सामर्थ्य है... है... है... है... है... है... उसमें है... है में नहीं, ऐसा कहीं नहीं आता। समझ में आया? इतना काल और लोकालोक इतना जाना, इतनी ही (सामर्थ्य) है, ऐसा भी नहीं। वह है... है... है... है... है। इसलिए एक समय की पर्याय में सामर्थ्य है... है... है... उसका माप नहीं। ...भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐसी तो एक ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय। उसमें उसके सामर्थ्य की मर्यादा जहाँ इतनी रहे, ऐसा होता ही नहीं। क्योंकि जिसका स्वभाव व्यक्त हो गया... स्वभाव की तो बात क्या करना? वह तो भिन्न ही है। स्वभाव तो पर्याय को स्पर्शता नहीं। पर्याय स्वभाव को स्पर्शती नहीं और द्रव्य उस पर्याय को स्पर्शता नहीं। दोनों का अस्तित्व ही भिन्न-भिन्न है। राजमलजी! आहाहा!

जिसका एक समय का... स्वभाव है न, स्वभाव है न, प्रगटरूप ज्ञान पर्याय स्व, स्वभाव, स्वभाव, स्व-भवन, स्वभाव। उस स्वभाव में ऐसे लोकालोक और अनन्त काल जाना, इतनी ही सामर्थ्य है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? एक समय की पर्याय में, वह बेलड़ी मण्डप जितना विस्तार पायी, इससे बेलड़ी का विस्तार होने की सामर्थ्य नहीं और मर्यादा हो गयी, ऐसा नहीं। यह तो दृष्टान्त दिया।

उसी प्रकार भगवान आत्मा। बाद में कहेंगे, हों! बाद की गाथा में यह ४७ गाथा में यहाँ तक लिया है। समझ में आया? जिनकी ४७ प्रकृति का नाश हुआ। पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, अट्ठाईस मोहनीय और पाँच अन्तराय। उनकी ४७ का नाश होकर, व्यय होकर उत्पाद हुआ ज्ञान की पर्याय का। देखो! ४७ गाथा आयी है इसमें वापस। समझ में आया? एक समय का पर्याय सामर्थ्य! क्या कहा? यह बात की बात नहीं, हों! क्योंकि जिसका पर्याय स्वभाव पूर्ण एकरूप प्रगट हुआ, उसकी एकरूपता की पर्याय की अस्ति है... है... है... है... है..., अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... उस अनन्त में कहीं (अन्त) नहीं। अन्त आवे ऐसा पर्याय में भी नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **जहाँ तक मण्डप वहाँ तक ही बेल (लता) की बढ़वारी है, और जब मण्डप का अभाव हो, तब बेल स्थिर होके आगे नहीं फैलती, लेकिन बेल में विस्तार-शक्ति का अभाव नहीं कह सकते,...** बेल में विस्तार—शक्ति के सामर्थ्य का अभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। आहाहा! ऐसा आत्मा जिसे लक्ष्य में आवे, उसे यह शरीर, संयोग, विकल्प की महिमा उड़ जाती है। समझ में आया?

कहते हैं, **इसी तरह सर्वव्यापक ज्ञान...** सर्वव्यापक अर्थात्? सबको पहुँच जानेवाला, एक समय का निर्वाणी ज्ञान, केवलज्ञान, पूर्ण ज्ञान। आहाहा! **केवली का है, जिसके ज्ञान में सर्व पदार्थ झलकते हैं, वही ज्ञान आत्मा का परमस्वभाव है,...** प्रगटरूप स्वभाव की बात चलती है यह, हों! **ऐसा जिसका ज्ञान है, वही शुद्धात्मा उपादेय है।** वह ज्ञान जिसका है, ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द, वह उपादेय है। जिसकी एक समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य! जिसकी एक समय की पर्याय—अंशी का अंश। ऐसा अंशी भगवान ध्रुव स्वरूप परमात्मा, वही उपादेय है, वही दृष्टि में अंगीकार करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया?

यह ज्ञानानन्दरूप आत्माराम है,... वह आनन्द ज्ञानानन्द प्रभु आत्माराम है। **वही महामुनियों के चित्त का विश्राम धाम (ठहरने की जगह) है।** लो! सन्तों का विश्रामधाम है वह। भगवान आत्मा... विश्राम की पर्याय है, विश्राम की पर्याय है। उस पर्याय को स्थिरता का स्थान चिदानन्द धाम है। समझ में आया? धर्मात्मा को स्थिरता का स्थान

शरीर, वाणी, विकल्प नहीं। राजमलजी! यह बात कठिन जगत को।

कहते हैं कि भगवान आत्मा जिसके एक समय की (पर्याय)... वस्तु किसे कहें? अकृत्रिम, अविनाशी अकृत्रिम वस्तु चैतन्य ज्ञानपिण्ड आनन्दकन्द पदार्थ वस्तु। उस वस्तु का स्वभाव क्या कहना? यह फिर विशेष ४८ (गाथा) में कहेंगे। यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे वस्तु के स्वभाव में से प्रगट हुई केवलज्ञान पर्याय, एक समय की जिसकी अवस्था। आहाहा! जिसके आनन्द का भी पार नहीं। जिसके ज्ञान का एक समय में यह... यह... यह... यह... यह..., अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त..., है... है... है... है... उसमें कहीं न (नहीं) आता। अनन्त को अनन्तपने में कहीं न आवे, ऐसा नहीं। ऐसी उसकी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द में अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द... आनन्द... आनन्द..., अनन्त... अनन्त... अनन्त... उस आनन्द के है-पने में नहींपना नहीं आता। समझ में आया? भाई! यह तो वस्तु की स्थिति का वर्णन है। आहाहा!

कहते हैं, अहो! **महामुनियों के चित्त का...** उपादेय शब्द लिया था, उसमें से यह निकाला है। उपादेय यह भगवान आत्मा। अरे! परन्तु अकृत्रिम पदार्थ है या नहीं? अकृत्रिम, अकृत नित्य वस्तु, नित्य सत्, नित्य सत्। ऐसा यह भगवान आत्मा। एक-एक आत्मा, हों! उसकी पर्याय में इतनी सामर्थ्य, जिसकी वह ज्ञान की सामर्थ्य पर्याय है, ऐसा भगवान आत्मा ही अन्तर दृष्टि में ज्ञानी को विश्रामधाम है। आहाहा! परमात्मप्रकाश है न? समझ में आया? अब झगड़े कितने? यह व्यवहार से होता है और... अरे! प्रभु! परन्तु तू क्या कहता है? भाई!

यह परमानन्द की मूर्ति, उसके स्वभाव का (क्या कहना)! यहाँ कहेंगे। उसे तो क्या कहना? जिसकी एक समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य! समझ में आया? ऐसा भगवान का आनन्द। यह भगवान अर्थात् आत्मा की पूरी पर्याय—अवस्था का आनन्द, उसकी अवस्था का ज्ञान, उसकी अवस्था का वीर्य बल, उसकी अवस्था का दर्शन, उसकी अवस्था की स्वच्छता, उसकी अवस्था की प्रभुता, उसकी अवस्था में वह राग को कारण न हो और स्वयं पर से उत्पन्न न हो—ऐसा अकारणकार्यपना का अनन्त सामर्थ्य एक समय की पर्याय में उत्पन्न हुआ है। आहाहा! समझ में आया? जो द्रव्य को कारण बनकर कार्य हुआ, वास्तव में उस कारण और कार्य का दोनों का एकपने स्पर्श

नहीं। राग के विकल्प को, पर्याय की मन्दता को, पूर्व की अवस्था के मार्ग का आश्रय करके प्रगट नहीं हुई। जो प्रगट हुई है, वह पूर्णानन्दस्वरूप भगवान पूर्ण स्वरूप वस्तु है। हुआ है... हुआ है... हुआ है। वह कार्यरूप दशा हुई है। समझ में आया? वह कार्यदशा भी कारणरूप भगवान है, उसे कार्य दशा स्पर्शी नहीं, कारण कार्य को स्पर्शता नहीं। आहाहा! बाहर के कारण से होता है, यह बात तो कहाँ रही? राजमलजी!

अरे! भगवान! बापू! तुझे तेरी महिमा की खबर नहीं होती, और तू महत्ता दूसरे को देने जाये, वहाँ तेरा हल्कापन हो जाता है, भगवान! आहाहा! ...भाई! आत्मा पूर्ण धाम, उसकी एक समय की पर्याय की आनन्द की, स्वच्छता की इतनी सामर्थ्य! ऐसा भगवान आत्मा ध्रुव, ध्रुव धाम, वह आदरणीय है, वहाँ दृष्टि लगानेयोग्य है। वहाँ विश्राम स्थान, वहाँ ध्रुव है, इसलिए स्थिर होने का ठिकाना वह है। समझ में आया? ...भाई! बड़ी बातें सब यह तो अलग प्रकार की है। तुम्हारे रायपुर में या कलकत्ता में कहीं मिली न हो ऐसी। अब जरा इससे अधिक बात अधिक है। ४८ (गाथा) आती है।

★ ★ ★

गाथा - ४८

आगे जो शुभ-अशुभ कर्म हैं, वे यद्यपि सुख-दुखादि को उपजाते हैं, तो भी वह आत्मा किसी से उत्पन्न नहीं हुआ, किसी ने बनाया नहीं, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर गाथा-सूत्र कहते हैं—

४८) कम्महिँ जासु जणंतहिँ वि णिउ णिउ कज्जु सया वि।
किं पि ण जणियउ हरिउ णवि सो परमप्पउ भावि॥ ४८॥

अन्वयार्थ :- ज्ञानावरणादि कर्म... जड़ है। स्वरूप और पूर्णानन्द को भूलकर, पर्याय में विकार करके, और जो कर्म उपार्जित किये, वे **हमेशा अपने-अपने सुख-दु:खादि कार्य को प्रगट करते हैं,...** वे कर्म पर्याय में सुख-दु:ख की अवस्था / हालत में उत्पन्न करे। **तो भी शुद्ध निश्चयनयकर जिस आत्मा का कुछ भी अर्थात् अनन्त ज्ञानादिस्वरूप न तो नया पैदा किया और न विनाश किया, और न दूसरी तरह का**

किया,... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा जो ध्रुव चैतन्य प्रभु, विकार की पर्याय उत्पन्न हुई और विकार से कर्म हुए और कर्म से फिर सुख-दुःख की पर्याय हुई। परन्तु वस्तु जो है, वह कर्म से उत्पन्न हुई नहीं, वस्तु है, उसे कर्म ने घात किया नहीं। समझ में आया?

न दूसरी तरह का किया,... ध्रुव भगवान आत्मा। ओहो! भले पर्याय में विकार हुआ और विकार का अभाव होकर केवलज्ञान हुआ। वह भले उत्पन्न हुआ। वस्तु है, वह ढँकी नहीं और वस्तु, वह उत्पन्न होती नहीं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्—ऐसा जो उसका त्रिकाली स्वभाव, वह कहीं नया उपजता नहीं। केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वह पर्याय उत्पन्न हुई, वस्तु उपजती नहीं। समझ में आया? कर्म के सद्भाव में पर्याय की हीनता और अभाव में उग्रता। वस्तु को हीनता और उत्पन्न होना वस्तु में नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव वस्तु उसे क्या? जो है सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... आहाहा! उस सत् की डली सत् स्वरूप ध्रुव तारा है। गजब बात, भाई! उस सत् को कोई उत्पन्न करता नहीं, पर्यायरूप से उत्पन्न हो, वह तो अवस्था उत्पन्न होती है और हीन होती है, वह अवस्था होती है। वस्तु हीन हो या उत्पन्न हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

एक समय में भगवान आत्मा सत् शाश्वत् सत् है या नहीं? शाश्वत् सत् है या नहीं? शाश्वत् अनन्त नहीं कहा? आया न? शाश्वत् अनन्त, वह शाश्वत् अनन्त। वस्तु शाश्वत् अनन्त। अनन्त के ग्यारह बोल आये हैं इसमें। शाश्वत् अनन्त, वस्तु शाश्वत् अनन्त। शाश्वत् में अन्त आवे, ऐसा कहाँ है? उपजना, वह शाश्वत् में कहाँ है? समझ में आया? आहाहा!

वस्तु स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... समझ में आया? जिसे अलिंगग्रहण में कहा न? कि वस्तु स्वभाव केवलज्ञान पर्याय को स्पर्शती नहीं। नहीं? चिल्लाहट मचाये, हों! लोगों को... अरर! सुन तो सही, भाई! वस्तु ध्रुव सत्, सत् जिसमें उपजना,

विनशना वस्तु में नहीं। उपजना-विनशना। संसार का उपजना और केवल (ज्ञान) का उपजना और संसार का व्यय जिसमें नहीं। समझ में आया?

वस्तु है न अपनी? वह है, वह शाश्वत अनन्त, शाश्वत्, अन्त नहीं ऐसा तत्त्व। अन्त नहीं अर्थात् शाश्वत् वस्तु को अन्त क्या? शाश्वत्। वह विराट वस्तु है द्रव्य। ऐसा शाश्वत् पदार्थ, कहते हैं, वह **न तो नया पैदा किया...** वह पैदा होता नहीं। **न विनाश किया,...** उसका कोई विनाश होता नहीं। **और न दूसरी तरह का किया,...** दूसरे प्रकार से रूपान्तर करे द्रव्य का, ध्रुव का—ऐसा है नहीं। आहाहा! भाई! बात भी जगत को....

'**भूदत्थम**' जो है न? (समयसार) ११वीं गाथा में। भूतार्थ, वह कूटस्थ है, वह ध्रुव है। उसका आश्रय करनेवाली भले पर्याय है। ध्रुव द्रव्य वस्तु। वह वस्तु नयी पैदा नहीं होती, उस वस्तु की हानि नहीं होती, उस वस्तु का दूसरा रूप जो सदृश का एकरूप, उसमें कोई दूसरे प्रकार से नहीं होती। ओहोहो! ऐसे सब पढ़ते होंगे, उसमें भी ऐसा कुछ नहीं आता होगा। पदार्थ विज्ञान का। गप्प मारे सब, पढ़ावे परन्तु गप्प। हिम्मतभाई पढ़ाते होंगे न ऐसा सब? परन्तु उसका लिखा हुआ हो, तत्प्रमाण पढ़ावे।

मुमुक्षु : उनके तत्त्व समझाने के नहीं, संयोग समझाने के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग समझाने के हैं। आहाहा!

भाई! जो स्वत:, स्वत:सिद्ध सत् शाश्वत् अनन्त वस्तु एक अपनी, हों! समझ में आया? अरे! इसका अनन्त काल में इसने माहात्म्य किया नहीं। इसका माहात्म्य करे तो सब उड़ जाये। संयोग का माहात्म्य और पर में सुख का माहात्म्य और यह राग में मजा है, यह माहात्म्य सब उड़ जाता है। जहर का माहात्म्य जहर का उड़ जाये सब। अमृत का सागर जो शाश्वत् अनन्त, शाश्वत् अनन्त। ओहोहो! जमुभाई! भाषा तो बहुत संक्षिप्त है, कोई ऐसी नहीं।

मुमुक्षु : .... मुक्ति की प्रसिद्धि करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब मुक्तस्वरूप ही है।

वस्तु है या नहीं? देखो न! रात्रि में नहीं कहा था? एक परमाणु है, यह परमाणु,

उसका क्षेत्र नहीं देखना। एक परमाणु अनन्त स्वभाव का पिण्ड सागर है। क्षेत्र छोटे-बड़े का प्रश्न यहाँ हो सकता नहीं। एक पॉइन्ट परमाणु है, उसमें अनन्त... अनन्त... अनन्त... स्वभावरूप तत्त्व है। रूपी अनन्त स्वभावरूप तत्त्व है। अनन्त जिसके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की शक्ति का भी जिसका सत्त्व शाश्वत् अनन्त है। ...भाई! एक पॉइन्ट, हों! यह परमाणु। यह तो बहुत रजकणों का पिण्ड ही दिखता है। एक पॉइन्ट रजकण लो, अन्तिम भाग, जिसके दो टुकड़े नहीं होते, वह भी महान वस्तु है। स्वभाव है, भाई! ध्यान रखो। वह स्वभाव है। अचेतन अनन्त रंग, गन्ध, रस, स्पर्श स्वभाव स्वरूप। क्षेत्र छोटा, ऐसा न लो। क्षेत्र का अर्थ यह न लो। इतना ऐसा नहीं। एक अनन्त बेहद रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, अस्तित्व, वस्तुत्व शक्ति का सागर शाश्वत् अनन्त, शाश्वत् अनन्त ऐसी वस्तु है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे-ऐसे अनन्तगुणे परमाणु।

अब एक अंगुल के असंख्य भाग में, इतने में अनन्त परमात्मा—आत्मा विराजते हैं। अब जितना क्षेत्र परमाणु का है, यह अंगुल के असंख्य भाग... जरा असंख्य प्रदेश रोकता है न एक जीव, बाकी तो एक प्रदेश में अनन्त प्रदेश रहते हैं। परन्तु यह असंख्य प्रदेश रोकता है और परमाणु एक प्रदेश (रोकता है)। इतने से जरा चौड़ा-मोटा है। परन्तु अंगुल के असंख्य भाग में असंख्य तो औदारिकशरीर है, और एक-एक शरीर में अनन्त आत्मा हैं। एक-एक आत्मा में अनन्त-अनन्त शाश्वत्, अनन्त स्वभाव की बेहद ... पड़ी है। समझ में आया? यह है, यह है। ऐसे सब हैं, उन्हें ज्ञान की पर्याय स्वीकारती है, यही वह सब है। इतना एक समय की पर्याय की सामर्थ्यवाला है। द्रव्य तो एकओर रह गया। द्रव्य का प्रतीतिरूप भले आया पर्याय में, परन्तु द्रव्य पर्याय में आया नहीं। उसका ज्ञान आया, भाई! ज्ञान की पर्याय में उस द्रव्य का ज्ञान आया। ऐसे अनन्त परमात्मा ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव स्वभाव के सागर, स्वभाव। वह स्वभाव जहाँ देखा, जाना, उसे सब स्वभाव ऐसे हैं। समझ में आया?

यह तो वीतरागमार्ग है और अनन्त आनन्ददायक है। समझ में आया? ऐसी एक समय की पर्याय इतने सब अनन्त केवली, सिद्धों को भी पर्याय जाने। वह द्रव्य है... है... है... ठीक। परन्तु उसकी एक समय की पर्याय वह है, उसे स्पर्शे बिना जाने, ऐसी एक समय की पर्याय की सामर्थ्य है। ऐसी पर्याय जिसे स्पर्शती नहीं, ऐसा द्रव्य उत्पन्न

होता नहीं, वह द्रव्य नाश होता नहीं। शाश्वत् अनन्त द्रव्य है। समझ में आया? शान्तिभाई! यह दीवाली का आया है यह। आहाहा!

वस्तु है या नहीं? है या नहीं? वह सत् है या नहीं? है या नहीं? अस्तिरूप से है या नहीं? अस्तिरूप से है, उसका न होनापना (किस) काल में होगा? कब उस काल में न होनापना हो? और जिसका होनापना है, उसके होनेपने की सत्ता में अन्त (आवे) कि यहाँ अब नहीं, ऐसा कब हो? किस काल में होनापना न हो और किस भाव में उसके होनेपने का अन्त आवे? समझ में आया? आहाहा! मस्तिष्क में लॉजिक से तो बात की जाती है, कहीं ऐसा की ऐसा घसरपसड़ नहीं होता।

जो है तत्त्व , परमाणु हो या आत्मा हो, मात्र परमाणु में ज्ञान नहीं, उसका निर्णय करनेवाला ज्ञान है। इसलिए उसकी महत्ता है। परन्तु वह भी स्वभाव जहाँ परमाणु भी वस्तु है या नहीं अकृत अकृत्रिम? उसे काल है? कि किस काल में नहीं? किस काल में नहीं होगी? तो उसके भाव में कितने भाव हों और इतना भाव न हो, ऐसा हो सकता नहीं। द्रव्य तो हो गया। काल का ... भाव स्वयं हुआ, क्षेत्र इतना है। समझ में आया? आहाहा!

अब यह आत्मा, जिसकी एक समय की पर्याय परिपूर्ण प्रगट हुई। अब परिपूर्ण प्रगट हुई, उसकी आदि हुई पर्याय की, काल की आदि हुई। अब नहीं जाये। परन्तु उसके भाव का सामर्थ्य अनन्त है। तब द्रव्य जो है, उसे काल का कोई काल नहीं। भाव के स्वभाव की बेहदता भरी हुई है। समझ में आया? कभी आता है तुम्हारे वहाँ उसमें? आँकड़े-बाँकड़े में नहीं आता होगा? आहाहा!

यह सर्वज्ञ भगवान का पदार्थ विज्ञान। सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा वाणी द्वारा कहकर समाप्त हो गयी आज। बस, समाप्त हो गयी—वाणी पूरी हो गयी, संसार पूरा हो गया। ऐसा भगवान आत्मा... कहते हैं, भाई! वह कर्म के सद्भाव से द्रव्य का घात नहीं, कर्म के अभाव से द्रव्य उत्पन्न होता नहीं। वस्तु है, उसे काल भी नहीं और उसके भाव की हद नहीं। पर्याय प्रगट हुई, उसका काल नया उत्पन्न हुआ। परन्तु उसके भाव के सामर्थ्य का स्वभाव है न पर्याय? स्वभाव की पूर्णता प्रगट हुई, उसके भाव का माप नहीं कि, अब इतना जाने और इतना जाने। ऐसा है... है... है... है... है...

इसलिए बहुत बार आकाश का दृष्टान्त देते हैं। ऐसे आकाश ऐसा का ऐसा चला जाता है, उसमें 'है' उसमें 'नहीं' ऐसा कहीं नहीं आता। क्षेत्र अस्ति में नास्ति अर्थात् नहीं, ऐसा नहीं आता। क्योंकि क्षेत्र का स्वभाव अस्तिरूप से ऐसा का ऐसा जाता है। उस अस्ति में कहीं नास्ति नहीं आती।

इसी प्रकार भगवान आत्मा में एक समय की पर्याय के प्रगटपने में भावना सामर्थ्य का अस्तित्व, मौजूदगी कितनी... कितनी... कितनी? अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... उसका पार न आवे, परन्तु उसकी काल की नयी पर्याय प्रगट हुई, इतना अन्तर है, द्रव्य की अपेक्षा से। भाई! परन्तु द्रव्य जो है, उसे काल भी नहीं। जैसे यहाँ हद नहीं, वैसे उसे—काल को हद नहीं। अब उसके क्षेत्र का स्वभाव भी अनन्त-अनन्त ऐसा का ऐसा सर्वत्र चला जाता है, हों! व्यापक क्षेत्र स्वभाव। यहाँ भगवान आत्मा का द्रव्य, उसका स्वभाव इतना है कि एक पर्याय को जानना, छह द्रव्य को जाना। इतने में द्रव्य नहीं आता। बाहर द्रव्य नहीं आ गया पर्याय में, उसका ज्ञान भले आया। समझ में आया?

जो वस्तु है, सत् है उसे काल की मर्यादा नहीं, उसे भाव की मर्यादा नहीं। पर्याय को काल की मर्यादा उत्पन्न हुई, भाव की मर्यादा स्वभाव को नहीं होती। समझ में आया इसमें? अरेरे! ऐसा प्रभु तू है। ऐसा भगवान आत्मा वस्तुरूप से सत्, शाश्वत् सत् निरालम्बी देह प्रमाण चैतन्यगोला भगवान आत्मा, जिसकी उत्पत्ति नहीं, अन्त नहीं। जिसके स्वभाव की शक्तियों की तो बात क्या करना! जिसके एक समय की पर्याय में उसकी मर्यादा नहीं आती कि अब बस। बहुत जाना, इसलिए इतनी (मर्यादा) उसमें नहीं आती। आहाहा! ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें सदृश शक्तिरूप का पिण्ड ध्रुव तत्त्व, नया उत्पन्न होता नहीं, कर्म उसे घातता नहीं, कर्म के अभाव से वह उत्पन्न होता नहीं। नवरंगभाई! समझ में आया?

उस परमात्मा को तू चिन्तवन कर। आहाहा! यह तो परमात्मप्रकाश है। ऐसा परमात्मा पहले विश्वास में ला। यदि विश्वास बैठे तो उस ओर दृष्टि जाये। विश्वास बैठे कि ऐसा यह होता ही है। ऐसा न हो तो उस सत्त्व को सत्त्व ही नहीं कहा जाता। ऐसा जो वीर्य और ज्ञान और श्रद्धा भले विकल्पवाली, ऐसी स्वीकृति जिसकी न आवे तो

अन्दर ढल नहीं सकता। समझ में आया? आहाहा! कहो, रतिभाई! इसमें न्याय से बात है या ऐसी की ऐसी है? भगवान ... जाओ। ऐसा मानो, हम ऐसा कहते हैं। परन्तु किस प्रकार से? बापू! भाई! सत् शाश्वत् कहते हैं जिसे। सत् शाश्वत् कहते हैं। एक-एक सत् शाश्वत् होता है, अनन्त शाश्वत् भिन्न-भिन्न। ओहोहो!

जिसका स्वभाव शाश्वत्। सदृशता की शक्ति का सत्त्व पूरा शाश्वत्। ओहो! ऐसा परमात्मा, उसका तू विश्वास पर्याय में कर। और विश्वास करके उस ओर ढल। आहाहा! समझ में आया? यह इसे करना है यदि सत् चाहिए हो तो। बाकी तो भटका करे चौरासी में। स्वर्ग मिले या नरक मिले, धूल राजा हो या रंक हो, सब भिखारी हैं। समझ में आया? जो स्थिर होने का ठिकाना पिण्ड पड़ा है ध्रुवरूप से, उसे विश्वास में लेकर वहाँ जा तो वहाँ विश्राम स्थान स्थिर हो सकेगा। आहाहा! परन्तु यह बैठना मुश्किल पड़े। यह इतना मैं? ऐसा कैसे बैठे? ऐसे दाल बिना चले नहीं, सब्जी बिना चले नहीं। जरा सा एक अंग सुविधा का एक टूटे, वहाँ चिल्लाहट मचाये। ....भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रशंसा ऐसी रुचे वह झूठे हड्डियों और लकड़ियों की और धूल की। तू पैसावाला और तू शरीर से अच्छा और तू बुद्धिवाला। मूर्ख कहे तो अपमान लगे। बुद्धिवाला कहे चतुर। यह सब जड़ के अपमान और जड़ की प्रशंसा मूर्ख को सुहाती है। चन्दुभाई! आहाहा! हम निर्धन, हम स्त्रीरहित। एक स्त्री नहीं, अविवाहित। हमको रोग मिटता नहीं कभी। क्या है परन्तु अब?

मुमुक्षु : यह नजर से दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या नजर से देखता है? नजर से देखनेवाला कितना है, उसकी तो खबर नहीं। जिसके अस्तित्व में यह क्या है, वह ज्ञात होता है, भले पर्याय तो इसका अस्तित्व है न? ज्ञान के अस्तित्व—मौजूदगी में यह ऐसा ज्ञात होता है या नहीं? तो वह अस्तित्व की पर्याय भी किसकी है? जिसकी है, उसका तो माहात्म्य नहीं और इस अस्तित्व का पर का अन्दर रखकर... यह आया और यह गया और यह हुआ और यह गया। होली किया ही करता है अनादि से। उसमें कहीं उसे शान्ति नहीं मिलती। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, यह परमात्मा का चिन्तवन कर। पहले आठ कर्म की बात करेंगे जरा कि जरा पर्याय में ऐसा होता है परन्तु शुद्ध चैतन्य देखो तो उसमें कुछ है नहीं। हुआ और गया, ऐसा कुछ है नहीं। समझ में आया ?

भावार्थ :- यद्यपि जो कि व्यवहारनय से... देखो! यह सब पर्याय का उत्पन्न होना और व्यय होना, सब व्यवहारनय है। निश्चय तो भगवान ऐसा पड़ा है। उत्पाद-व्यय है, वह व्यवहारनय का विषय है; ध्रुव, वह निश्चय का सत् विषय है। आहाहा! समझ में आया ? केवलज्ञान की उत्पत्ति होना और न हो, वह सब व्यवहारनय का विषय है। उत्पाद-व्यय व्यवहारनय का (विषय है)। भगवान आत्मा ध्रुव नित्यानन्द प्रभु सत् शाश्वत्। जिसकी एक पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात हो, उसे माने, उसने पर्याय को माना। इतनी पर्याय को इतनी माने तो, हों! परन्तु वापस द्रव्य जो है, उसमें तो इतनी पर्याय अन्दर नहीं। समझ में आया ? ऐसा प्रभु ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव है।

जिसे पर्याय में **शुद्धात्मस्वरूप के रोकनेवाले...** स्वरूप को रोकनेवाला अर्थात् पर्याय में प्राप्ति की पर्याय को रोकने में। द्रव्य में तो जैसा है वैसा है। समझ में आया ? **अपने-अपने कार्य को करते हैं,...** पर्याय विकारी कार्य करती है। **अर्थात् ज्ञानावरण तो ज्ञान को ढँकता है,...** ढंकता का अर्थ ? वह निमित्त होता है और यहाँ पर्याय में हीन दशा होती है। वह कार्य है, कारण प्रभु भगवान में वह नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

जगत में भी (कहते हैं), अच्छे में अच्छी चीज़ लाना, हों! ऐसा कहे। कहे या नहीं ? लड़का, उसका पिता जाये तो कहे, बापू! अच्छे प्रकार का अच्छा खिलौना लाना, स्त्री कहे अच्छी साड़ी लाना, लड़का बड़ा हो तो (कहे), अच्छे में अच्छा गहना लाना, हों! अच्छे में अच्छा ऊँचा। अब अच्छे में अच्छा तो यह भगवान आत्मा है, कहते हैं। भगवान को कहते हैं कि अच्छे में अच्छा महाराज मुझे प्रभु बताना, हों! तो कहते हैं देख अच्छे में अच्छा यह तेरा आत्मा, यह अच्छे में अच्छा है। चन्दुभाई!

केवलाानादि क्षायिकभाव आदि जिसके पास अपरमभाव है। क्षायिक केवलज्ञान भी जिसके द्रव्यस्वभाव परमभाव के समक्ष अपरमभाव है। नवरंगभाई! यह किसकी बात चलती है ? '**भेदत्थम**' की। भूतार्थ... भूतार्थ... भूतार्थ। पश्चात् '**अलस्सदो**' यह

तो उसकी नजर करना, वह तो पर्याय से भी ऐसा यह है। समझ में आया? वह कर्म के कारण से जरा निमित्त में पर्याय के सम्बन्ध से ढँकना, ऐसा पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध हो, वस्तु में नहीं।

दर्शनावरणकर्म दर्शन को आच्छादन करता है,... दर्शन की पर्याय में नैमित्तिकपने में हीन दशा, निमित्त दर्शनावरणीय वह हो, यह दोनों व्यवहार है। **वेदनीय साता-असाता उत्पन्न करके अतीन्द्रियसुख को घातता है,...** पर्याय में, हों! पर्याय में सुख की दशा में निमित्त असाता-साता है। इतना उसे सम्बन्ध है। वस्तु में वह है नहीं। ओहो! **मोहनीय सम्यक्त्व तथा चारित्र को रोकता है,...** समकित एक पर्याय, हों! चारित्रपर्याय। उसमें मोहनीय का निमित्त है। यह उसके साथ दो सम्बन्ध है। रोकता का डाले। रोकता है अर्थात् तू पर्याय से वहाँ अटकता है, इसलिए वह रोकता है, ऐसा कहा जाता है। उसमें भी तेरी स्वतन्त्रता है।

आयुकर्म स्थिति के प्रमाण शरीर में रखता है,... जितनी स्थिति हो, उतना उसमें रहे। आत्मा को और कहाँ स्थिति? यहाँ तो एक समय की पर्याय में उसकी पचास-पच्चीस वर्ष की स्थिति की योग्यता और आयुष्य का निमित्त। इतना सम्बन्ध पर्याय को उसके साथ है। वस्तु जो है स्थिति के बाहर वस्तु अनादि-अनन्त भगवान आत्मा। उसमें यह स्थिति-फिस्थति लागू पड़ती नहीं। समझ में आया? कहो, कान्तिभाई! समझ में आया? यह अलग प्रकार की कारीगरी है।

अब दीवाली का दहाड़ा, हम तो सुनने आये। तुम ऐसी लगाओ। हमको समझ में नहीं आती। नहीं समझ में आती। परन्तु तू न समझे ऐसा कहते है क्यों? नहीं समझ में आती, ऐसा कहता है क्यों? वह तेरी योग्यता की हानि पाता है। यहाँ तो कहते हैं, केवलज्ञान की पर्याय है, वह भी जहाँ पूरा अंश पूरी चीज़ नहीं, उसमें पूरा पड़ता नहीं सत् का जानने में इतनी तो उसकी सामर्थ्य है। वह पर्याय भी उत्पन्न हुई है, वस्तु उत्पन्न नहीं होती। फिर नहीं ज्ञात हो, न समझ में आये—ऐसा मानना, वही उसे अपने आत्मा की महिमा छोड़कर दूसरे की हीन की, हीन करनेवाले की महिमा करके सुनता है।

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा नहीं? मैं सिद्ध और तू सिद्ध। सुन। इनकार करना नहीं, ना करे तो श्रोता नहीं हमारा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा कहा या

नहीं ? अनन्त सिद्ध को हमारी पर्याय में स्थापित करते हैं। यह दीपावली है। अनन्त सिद्ध एक तो भगवान मोक्ष गये, ऐसे अनन्त वहाँ इकट्ठे हुए हैं। वे फिर बहुत सिद्ध संख्यात हुए। महाविदेह में से मोक्ष जाये। यहाँ से भले जाते नहीं, यहाँ से थोड़े गये थे। नहीं ? सुधर्मस्वामी, जम्बुस्वामी आदि दूसरे मुनि केवल (ज्ञान) प्राप्त हुए। वहाँ से तो सदा जाये। छह महीना आठ समय में लगातार है ऐसा। कहते हैं कि, सब सिद्धों को हम आत्मा की पर्याय में स्थापित करते हैं। अरे ! जनता ! हम तेरी पर्याय में भी अनन्त सिद्धों को स्थापित करते हैं। स्थापित करके हम बात करते हैं, हों! अब हीन नहीं समझ सकता, वह तुझसे नहीं होगा। आहाहा! यह बात उठाई है, वहाँ से ही उठायी है समयसार की। समझ में आया इसमें ? आहाहा !

मुमुक्षु : दाता तो ऐसे होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दाता वह कहीं माँगे ? तू माँग कहते हैं। कहा था एक दाता को। लेने गया था वह बीड़ी। दियासलाई पीकर डाला उसमें—बॉक्स में। वे लेने आये। अब इसके पास कितना माँगना ? क्या करने आये हो भाई ? दियासलाई से बीड़ी पीवे न ? थोड़ी ... डाली बॉक्स में। कहा, इससे क्या माँगना ? यह दियासलाई बाहर बरामदे में डालता नहीं। भाई किसलिए आये हो ? क्या आशा रखते हो मुझसे ? ऐसा पूछा। क्या आशा रखते हो मुझसे ? ... दो-पाँच हजार दोगे। तुम्हारी आशा मेरे लिये कितनी है ? कि दस हजार दो। यह दस हजार। यह क्या ? ... परन्तु वह दियासलाई का ठूंठा बाहर डाल देना। उसकी राख जरा सी हो इस ओर में, वह कहीं गिरे, कहीं बिगड़े कि उसमें पड़ेगा इस हेतु से मैंने इसमें डाली थी, उसके लिये नहीं। इस ओर सुलगी हो न थोड़ी ? राख हो कहीं डाले वहाँ, वह जमीन बिगड़े, कपड़ा बिगड़े। उसके बदले उसमें (बॉक्स में) डाली है, वह बिगड़े भले, फिर डाल देंगे। ऐसे हेतु से दाता की कीमत तू न कर। वह कहे, माँग, तुझे मुझसे क्या आशा है ? अब उनसे वे घात हो गये न अन्दर पहले से ? साहेब ! दस हजार। भूले। फिर से कुछ कहा जाता है ?

भगवान परमात्मा कहते हैं, माँग माँग तू ! कितना चाहिए है तुझे ? आहाहा ! हम कहते हैं सिद्ध है, पर्याय में सिद्ध स्थापित करते हैं। अब तुझे क्या माँगना है ? आहाहा ! ऐसा कहकर तो समयसार शुरु किया है। उसकी गति, समयसार कहने की गति अलग

प्रकार की है। समझ में आया? हमारे पास सिद्ध के अतिरिक्त कम माँगना नहीं और वह भगवान अन्दर पूरा है। वह सिद्धपद को एक समय में प्रगट करे, ऐसी सामर्थ्य तो अनन्त पड़ी है उसमें। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उसे यह वस्तु, वस्तु की कीमत उसे आती नहीं। अब यह कीमत आये बिना जिसकी कीमत उसे है, वह संयोग कैसे छोड़े? निमित्त की कीमत, राग की कीमत, अल्पज्ञता की कीमत का अहंकार जहाँ थोड़ा सा जानपना हो, वहाँ आहाहा! अब यह वह अल्पज्ञता कब छूटेगी तुझे? उसी और उसी में सड़ जायेगा राग में और राग में निमित्त में लक्ष्यवाला। समझ में आया?

भरा भण्डार जिसके घर में पड़ा है। लोग नहीं कहते? भरे बर्तन सन्तोष नहीं और यह जूठन चाटने जाता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा पर्याय में, भले कहते हैं, कार्य-कारण हो निमित्त साथ में। भगवान ध्रुव में कुछ है ही नहीं। आहाहा! ऐसा विश्वास क्या करे? उसे कैसे आवे? अरर! यह? भाई! जो सत् है, शाश्वत् है, अकृत्रिम है, काल की मर्यादारहित है, काल के नाशरहित है। उसके भाव की मर्यादा की शक्ति की शाश्वतता का क्या कहना? भाई! उसे कोई क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं। इतना क्षेत्र कि ऐसा नहीं। उसका स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... ध्रुव, पर्याय में भले स्थिति भी इतनी हो। वस्तु की कोई स्थिति ही नहीं। समझ में आया?

नामकर्म नाना प्रकार गति जाति शरीरादिक को उपजाता है, गोत्रकर्म ऊँच नीच गोत्र में डाल देता है, और अन्तरायकर्म अनन्त (बल) को प्रगट नहीं होने देता। इस प्रकार ये कार्य को करते हैं,.... पर्याय निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, वह व्यवहार। **तो भी शुद्धनिश्चयनयकर (भगवान) आत्मा का अनन्तज्ञानादिस्वरूप का...** ध्रुव हों! वह। अनन्त ज्ञान, विज्ञान का पिण्ड प्रभु अकेला चैतन्यघन है। अन्त जिसके ज्ञान का, दर्शन में सार में नहीं, ऐसे अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... शक्ति, हों! वह पर्याय की अनन्तता तो पहले कही। ऐसा **इन कर्मों ने न तो नाश किया, और न नया उत्पन्न किया,...** उत्पन्न हो तो पर्याय हो, ध्रुव उत्पन्न होता नहीं। ओहोहो! कहो, समझ में आया? लो! क्या कहते हैं?

आत्मा तो जैसा है, वैसा ही है। चन्दुभाई! भगवान! तेरे अन्तर का भगवानपना

जो ध्रुवपना है, ऐसा का ऐसा पड़ा है। इसे बैठता नहीं, वही यहाँ दिक्कत है। समझ में आया? एक समय का भगवान ऐसा आत्मा। जैसा अनादि का ऐसा अभी ऐसा का ऐसा है। ध्रुवपने में हीनता, न्यूनता, अधिक, विकार, हीन, अधिक कुछ है नहीं। समझ में आया? ओहोहो! जिसमें से केवलज्ञान हो तो वहाँ हीन हुआ नहीं, जैसा है वैसा है। केवलज्ञान हो तो है वैसा का वैसा है। और निगोद में रहा वहाँ पर्याय में अन्तर हो भले, परन्तु वस्तु तो है ऐसी है। समझ में आया? आहाहा!

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ देवाधिदेव परमात्मा महावीर यह अन्तिम वाणी करके मुक्ति में पधारे। बापू! तू भी प्रभु! ऐसा है, हों! तेरी प्रभुता की हद हमारे ज्ञान में आयी, वाणी में पूरी न आवे, ऐसा तू है। समझ में आया? कहते हैं, ऐसा भगवान ध्रुव प्रभु, वह पर्याय से उत्पन्न हुई तो वह अवस्था उत्पन्न हुई। हीन हुई तो पर्याय हीन हुई, मोक्षमार्ग रूप से हुई तो पर्याय में निर्मलता आयी; वस्तु तो जो है ऐसा... ऐसा... ऐसा... ध्रुव... ध्रुव... सत्।

ऐसे अखण्ड परमात्मा को तू वीतराग निर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर ध्यान कर। लो! आहाहा! भाई! उसका माहात्म्य लाकर एक ओर का पहलू बदलकर, और यह अन्तर पहलू में जा। रागरहित श्रद्धा, रागरहित ज्ञान, रागरहित शान्ति, उसके द्वारा ऐसा आत्मा है, ऐसा माहात्म्य आवे, इसलिए ऐसी दृष्टि की स्थिरता हुए बिना रहे नहीं। इसके द्वारा उसका ध्यान कर, यह मोक्ष का मार्ग है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

: प्रकाशक :

श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

विले पार्ला, मुंबई

www.vitragvani.com